किन्नर लोक साहित्य

डॉ. बंशी राम शर्मा

हिमालय पर्वत की धवल शृंखलाओं के मध्य बसे पौराणिक किन्नर-क्षेत्र की अर्वाचीन संस्कृति एवं भाषा पर प्रस्तुत प्रथम मौलिक एवम् सशक्त शोध-कृति ।

किन्नर लोक साहित्य

डॉ० बंशी राम शर्मा

किन्नर लोक साहित्य

मूल्य : 50 रुपये ।

प्रथम संस्करण : 1976 ।

प्रकाशक : ललित प्रकाशन, लेहड़ी सरेल,
बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश ।

मुद्रक : जॉर्ज प्रिंटिंग वर्कस,
मनीमाजरा (चण्डीगढ़) ।

KINNAR LOK SAHITYA

by DR. BANSI RAM SHARMA Rs. : 50.00

लोक देवता का नृत्य

किन्नर लोक साहित्य

डॉ० बंशी राम शर्मा,
अनुसन्धान अधिकारी,
हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी,
परिमहल, शिमला-9

ललित प्रकाशन, लैहड़ी सरेल 174027,
बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश।

प्रस्तावना

हिमालय प्रकृति का पालना है। इन्द्रधनुषी सौन्दर्य के अतिरिक्त यहां बहुत कुछ ऐसा है जिसका सीधा सम्बन्ध हमारी प्राचीन संस्कृति व इतिहास से रहा है। हिमाचल प्रदेश का काफी बड़ा भाग हिमालय पर्वत की श्वेत, धवल शृंखलाओं के मध्य स्थित है। वैसे तो प्राय: प्रत्येक हिमाचल वासी प्रात:काल सूर्योदय के समय किसी ऊंची सफेद चोटी के दर्शन करता है परन्तु इस पर्वत के भीतरी भागों के निवासी तो साक्षात प्रकृति पुत्र हैं। यही नहीं, इन लोगों ने अपनी संस्कृति को जिस तरह से सुरक्षित रखा है उसके कारण प्राचीन इतिहास को खोजने में हमें बड़ी सहायता मिल सकती है। इन भागों के निवासियों की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी संस्कृति का रूप विकृत नहीं होने दिया। देवी-देवताओं पर अगाध विश्वास, त्योहार-उत्सवों में निजीपन, खान-पान तथा पहरावे की विशेषता आदि बातें पर्वतीय संस्कृति के जीवन्त उद्धरण हैं।

इन क्षेत्रों के लोक साहित्य व भाषा पर गत दशक में साहित्य प्रकाश में आना शुरू हुआ है। इससे पूर्व पाश्चात्य लेखकों ने विभिन्न पक्षों पर जो विवरण प्रस्तुत किए हैं उनका अपना स्थान है और तुलनात्मक अध्ययन के लिए ये काफी सामग्री प्रस्तुत करते हैं परन्तु एक कठिनाई जो इन अध्ययनों में रही है वह यह है कि इन में क्रमबद्धता का अभाव रहा है। सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन तुलनात्मक ढंग से करने पर कई आदिकालीन स्रोतों का पता चलता है परन्तु इन सब बातों के लिए धैर्य, बुद्धि, अध्ययनशीलता तथा श्रम की जितनी आवश्यकता रहती है वह अपने आप में एक बड़ी समस्या है। यही कारण है कि इस प्रकार के गहन अध्ययन उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।

'किन्नर लोक साहित्य' के लेखक डॉ० बंशी राम शर्मा ने इस प्रदेश के किन्नौर जिला के निवासियों के रहन-सहन तथा रीति रिवाजों एवम् लोक-भाषा आदि पर लोक साहित्यिक दृष्टि से कार्य किया है। इसी विषय पर उन्हें पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है। पौराणिक किन्नर-जाति के सम्बन्ध में उन की स्थापनाएं नई हैं तथा अपने इस प्रयास में उन्होंने असुर, मोन, खश, किरात और मुण्डा आदि प्राचीन जातियों के सम्बन्ध में यथोचित जानकारी दी है। उनकी खोज से सहमति अथवा असहमति प्रकट करना निश्चय ही विवादास्पद हो जाएगा, अत: यह कार्य इस क्षेत्र में शोध करने वाले अन्य विद्वानों पर छोड़ा जाना चाहिए। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इस ग्रन्थ से उनका परिश्रम स्पष्ट झलकता है। इसमें अधिक कहने की गुंजाइश नहीं है।

लोक गीतों और लोक कथाओं से वह केवल अंश ही दे सके हैं, क्योंकि एक ग्रंथ में इस सारे लोक साहित्य को इकट्ठा नहीं किया जा सकता था। परन्तु जो वर्गीकरण प्रस्तुत किये गये हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने निष्कर्ष

निकालने के लिये प्रचुर सामग्री का संकलन किया। लोक कथाओं तथा लोक गीतों का अभिप्राय-अध्ययन इस दिशा में नया कार्य है। 'लटी सरजङ् और हिनाड़ुण्डुब' की लोक कथा पर रोचक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो हमारे प्रदेश की अन्य लोक कथाओं का अध्ययन करने की दिशा में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

त्यौहार-उत्सवों पर व्यवस्थित विवेचन उस क्षेत्र के निवासियों के जीवन का पूरा विवरण प्रस्तुत करता है। क्योंकि लोक देवता इस क्षेत्र के लोगों के जीवन की धुरी हैं अत: उसका वर्गीकरण तथा विवरण सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है।

दो अन्य महत्वपूर्ण अध्याय 'लोक जीवन और संस्कृति' तथा 'लोक-भाषा' हैं। जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कार, खान पान, दण्ड विधान तथा तोशिम आदि की प्रथाएं बहुत आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। लोक-भाषा के अध्याय में उस क्षेत्र की बोलियों के प्रकार उदाहरण सहित दर्शाये गये हैं तथा विद्वान लेखक ने यह प्रयत्न किया है कि प्रचलित शब्दों व वाक्यांशों के आधार पर प्राचीन इतिहास की खोज की जाए।

ग्रंथ एक महत्वपूर्ण अनुसूचित आदिम जातीय क्षेत्र के जन-जीवन व संस्कृति पर दुर्लभ सामग्री प्रस्तुत करता है, इसके लिये डॉ० बंशी राम शर्मा हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

शिमला,

29 अप्रैल, 1976

–डॉ० यशवन्त सिंह परमार,

मुख्य मन्त्री, हिमाचल प्रदेश।

भूमिका

'किन्नर लोक' का क्षेत्र हिमाचल प्रदेश का किन्नौर जिला है। इसी क्षेत्र के निवासी किन्नर कहलाते हैं। इस क्षेत्र के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य सामग्री जब तब पत्र-पत्रिकाओं और कुछ पुस्तकों में उपलब्ध है पर वैज्ञानिक प्रणाली से इस क्षेत्र के लोक साहित्य का अध्ययन अभी तक नहीं हुआ था। यह निश्चय ही एक बड़ा अभाव था। लोक-मानस लोक साहित्य, लोक-जीवन और लोक-संस्कृति के सभी पक्षों से घनिष्ठ रूपेण सम्बद्ध रहता है। फलतः लोक साहित्य के अध्येता को लोक-जीवन और लोक-संस्कृति का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त करना होता है, वह भी स-प्रमाण। इसी अभाव की पूर्ति डॉ० बंशी राम शर्मा ने इस शोध-प्रबन्ध के द्वारा की है। यह एक कठिन क्षेत्र के लोक साहित्य, लोक जीवन और लोक संस्कृति का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

डॉ० बंशी राम शर्मा लग्न से कार्य करने वाले हैं और अपनी प्रकृति से ही अनुसन्धान प्रिय हैं। तभी इन्होंने कठिनाई को कठिनाई नहीं माना। इस शोध-ग्रन्थ को पढ़ कर कोई भी पाठक यह अनुमान कर सकता है कि इस क्षेत्र के अनुसंधान में पदे-पदे कठिनाइयां थीं—एक नहीं अनेक। उन पर विजय पाने के लिए असीम धैर्य, व्युत्पन्नमति और व्यवहार-बुद्धि की अपेक्षा ही नहीं थी वरन् नवीनतम पद्धति से अनुसंधान करने की योग्यता भी आवश्यक थी।

डॉ० शर्मा ने मेरे निर्देशन में यह महान कार्य सम्पन्न किया है, इसलिए मैं जानता हूं कि उन्होंने सच्चे अनुसन्धित्सु की तरह अपने अनुसंधान-क्षेत्र के कोने-कोने में जा कर प्रामाणिक सामग्री एकत्र की। हमने बचपन में सुना था कि हिमालय पर्वत में गुफाएं हैं, जिनमें सिद्ध लोग तपस्या कर रहे हैं। डॉ० शर्मा को किन्नर-क्षेत्र में सचमुच एक गुफा मिली थी जिसमें भीतर दूर जाकर आश्चर्यचकित करने वाला मन्दिर और भगवान बुद्ध की सुन्दर प्रतिमा थी। वहां प्रचुर साहित्य भी था। पर इन का क्षेत्र था 'किन्नौर-लोक'। यह लोक भी कुछ कम अद्भुत नहीं था। इसे सचमुच 'देव लोक' कह सकते हैं क्योंकि यहां प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक कार्य देव की आज्ञा से होता है। किन्नौर भर में देवताओं एवं देवियों के भिन्न शासन-क्षेत्र हैं। इन देवताओं के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम और रुचि उन के क्षेत्र के जन-जन को सहनी पड़ती है। देव-देवी शासन की प्रक्रिया का अध्ययन भी अपने आप में रोचक है। डॉ० बंशी राम शर्मा पर इन देवताओं की कृपा हो ही गयी, अन्यथा अनुसन्धान में ऐसी अड़चनें खड़ी हो सकती थीं जिन्हें दूर करने में न जाने क्या करना पड़ता।

वस्तुत: लेखक ने इस ग्रन्थ द्वारा अद्भुत क्षेत्र के समस्त मौखिक साहित्य तथा जीवन और रहन-सहन से उसका सम्बन्ध ऐसे रोचक किन्तु प्रामाणिक ढंग से दिया है कि एक परि-लोक (Fairy Land) की यात्रा का आनन्द मिलता है, यों देव लोक तो वह यथार्थत: ही है। डॉ० शर्मा ने इस में प्रासंगिक या भूमिका रूप में यहां के इतिहास, नृतत्त्व, भाषा और भूगोल पर भी प्रकाश डाला है। भले ही यह इन के अनुसन्धान का क्षेत्र नहीं था, पर इन बातों पर भी अधिकाधिक प्रामाणिकता के साथ

लिखने का प्रयत्न किया है। यों इन बातों पर, इनकी स्थापनाओं पर भले ही प्रश्न उठाये जा सकते हों, पर मैं समझता हूं, यह शंका कोई नहीं कर सकेगा कि लेखक ने अनधिकार चेष्टा की है। उन्होंने लोक साहित्य की प्रभूत सामग्री एकत्रित कर के उसका यथा-सम्भव अधुनातन वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो अत्यन्त श्लाघ्य है। हिन्दी में इस दिशा में एक आदिम जाति के लोक साहित्य का यह अध्ययन आदर्श माना जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय लोक वार्ता के क्षेत्र में जिन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, उन सभी का उपयोग करके लोक साहित्यिक अध्ययन की परम्परा के लिए नये प्रयोगों को प्रस्तुत किया गया है—इससे इस ग्रन्थ के द्वारा लोक साहित्य के अनुसन्धान का प्रयत्न अब तक की उपलब्धियों से एक कदम आगे बढ़ा है।

क्योंकि प्रत्येक विषय पर विद्वान लेखक ने अब तक के हुए अध्ययनों का निचोड़ दिया है और अपेक्षित स्थलों की भली प्रकार विवेचना करके अपने द्वारा प्राप्त सामग्री के उदाहरण से आगे का कदम प्रस्तुत किया है—जो स्पष्ट ही प्रामाणिक भी लगता है, और आज के ज्ञान की स्थिति में सही भी आता है।

ऐसे विवेचनों, पाण्डित्यपूर्ण चर्चाओं और वैज्ञानिक विधि से उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण और वर्गीकरण के साथ आवश्यकतानुसार तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करते हुए तथा समीचीन निष्कर्षों से युक्त इस ग्रन्थ की विशेषता यह भी है कि यह अत्यन्त रोचक है। यह रोचकता एक तो इसलिए है कि पाठक के लिए किन्नौर का समस्त वर्णन अद्भुत लोक के जैसा लगता है; फिर उस के इतिहास, नृतत्त्व, रहन सहन, लोक साहित्य, मेले-उत्सव, व्रत-अनुष्ठान, लामा-धर्म तथा लोक-भाषा आदि का समस्त स्वरूप भी पद पद पर आश्चर्यकारक लगता है, और वैसी ही आश्चर्यप्रद उन पर विद्वानों की चर्चाएं लगती हैं, अतः शोध प्रबन्ध होते हुए भी यह औपन्यासिक रोचकता से युक्त है।

एक और प्रकार से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है—इस में सर्वप्रथम लोक साहित्य की दृष्टि से ऐतिहासिक भौगोलिक सम्प्रदाय की हेलसिंकी परिपाटी का यत्र तत्र उपयोग किया गया है। इस शोध ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर इस परिपाटी का और अधिक उपयोग करके आगे के लोक साहित्य के अध्येता अपनी शोधों को अन्तर्राष्ट्रीय भूमि पर अधिक प्रामाणिकता से प्रस्तुत कर सकेंगे।

लेखक निश्चय ही इस कृति के कारण अभिनंदनीय है। इस विशिष्ट शोध प्रबन्ध पर और अधिक विस्तार से इसके योगदान को बताने की आवश्यकता थी; ऊपर जिन बातों की ओर संकेत किया गया है उनके महत्व को भी समझना-समझाना आवश्यक था, पर ऐसी भूमिका लिखने में जितना समय लगता, उतना लेखक और प्रकाशक नहीं दे सकते, उनकी अपनी विवशता है, अतः मैं भी विवश होकर इन्हीं शब्दों से इस शोध-प्रबन्ध की पुनः श्लाघा करते हुए, यह प्राक्कथन समाप्त करता हूं।

—डॉ० सत्येन्द्र

जयपुर,
चैत्र शुक्ल १, २०३३ विक्रमी

दो शब्द

हिमाचल प्रदेश का सीमावर्ती जिला किन्नौर अनुसूचित आदिम जातीय क्षेत्र है। ऊंची गगनचुम्बी पर्वत-चोटियों से रक्षित होने के कारण यहां के समाज में अब भी प्रागैतिहासिक कालीन मान्यताओं के दर्शन होते हैं। लोक-साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से इस क्षेत्र की जाति नितान्त अछूती रही है। किन्नर-जाति जिसे पौराणिक काल में देव-योनियों में स्थान दिया गया था परवर्ती साहित्य में अपना आकर्षण खो बैठी और इस का उल्लेख यक्ष तथा गन्धर्वों के साथ अलौकिक नर-देव वर्ग के रूप में ही होने लगा। वर्तमान समय में, जब कि संसार की छोटी से छोटी आदिम जातियों पर भी साहित्य प्रकाश में आया है, इस जाति का सशक्त एवम् बहुचर्चित होने के पश्चात् भी उपेक्षित रह जाना, मानव इतिहास के अध्ययन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का अभाव रहा है।

लोक साहित्य का अध्ययन हमारे देश के लिए अपेक्षाकृत नई दिशा है। इस क्षेत्र में यद्यपि सन्तोषजनक प्रगति हो रही है तथापि दुर्गम क्षेत्रों में निवास करने वाली जातियों के सम्बन्ध में जो अध्ययन हो रहे हैं, वे पर्याप्त नहीं माने जा सकते। यह सच है कि भाषागत और सांस्कृतिक विविधताओं के कारण इन वर्गों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक तथा विश्वस्त जानकारी प्राप्त करना अपेक्षाकृत कठिन है परन्तु निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर जिस मूल तथा वास्तविक रूप में इन क्षेत्रों में सुरक्षित है, उस दशा में लिखित साहित्य में भी नहीं है।

किन्नर जाति को संसार की उन महत्त्वपूर्ण आदिम-जातियों में गिना जा सकता है जिनका इतिहास तथा पुराण दोनों प्रकार के साहित्य से सम्बन्ध रहा है। भाषा-विदों ने इस क्षेत्र की बोली पर मुण्डा-भाषाओं का प्रभाव बताया है परन्तु सांस्कृतिक अध्ययन के अन्तर्गत इससे भी अधिक रोचक तथ्य सामने आते हैं। बाणासुर तथा हिड़िम्बा (हिरमा) की सन्तान असुर देवी-देवताओं की पूजा, रल्डङ् (स्वर्ग) की कल्पना, पितरों के नाम पर पर्वत-शिखरों पर चबूतरे (कोटङ्) बनाना, बहुपति प्रथा, लोक-भाषा में लिंग का अभाव तथा तीन वचनों की विद्यमानता, दक्षिणायन (दकरेणी), बूढ़ी दीवाली तथा माहङ् सोङा जैसे त्यौहारों का मनाया जाना, लोक-देवताओं का शीत ऋतु में स्वर्ग जाना तथा 'तोशिम' की प्रथा आदि ऐसी बातें हैं जो अनेक पौराणिक एवम् इतिहास-सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने में संकेत-चिन्हों का काम देती हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी बातों का यथा तथ्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

यह ग्रन्थ पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए किए शोध-कार्य का परिणाम है। इस क्षेत्र में कार्य करने से पूर्व मेरे मन में इस क्षेत्र की संस्कृति तथा लोक साहित्य का अध्ययन कर सकने के सम्बन्ध में अनेक संकल्प-विकल्प थे, क्योंकि मन में ऐसा डर का सा भाव था कि हो सकता है कि इस दुर्गम क्षेत्र में जहां जून मास में भी अनेक बार हिमपात हो जाता है, मैं अधिक समय तक न ठहर सकूं तथा प्रत्येक गांव के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में अड़चनें आएं, परन्तु

जैसे जैसे मैं इस अनुसन्धान में प्रवृत्त होता गया, नई नई सूचनाएं मिलती गईं, नए सम्पर्क बनते गए तथा आत्मीयता के ऐसे भाव उमड़ते चले गए कि कड़ाके की सर्दी तथा मार्गों की बीहड़ता सामग्री-संकलन के उत्साह को अवरुद्ध नहीं कर सकी। इस ग्रन्थ में वर्णित अधिकांश बातें केवल सुनी-सुनाई ही नहीं हैं, बल्कि मैंने उन्हें स्वयं देखा तथा समझा है।

इस कार्य में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है उन में से सब का विवरण देना तो सम्भव नहीं है परन्तु शेष सब का मूक आभार-प्रदर्शन करता हुआ मैं, सर्व श्री राम लाल गुप्ता, गंगाधर नेगी, धर्म दास नेगी, भूपेन्द्र सिंह चौहान, कलसंग नरगू नेगी, शालिग्राम शर्मा, तारा चन्द नेगी, बाल मुकुन्द भट्ट, दौलत सिंह नेगी, रूपलाल शर्मा, देवराज भारद्वाज, नन्द लाल नेगी, मन बहादुर सिंह नेगी, सोम नाथ नड्डा, कृष्ण सिंह ठाकुर, ईश्वर दास मेहता, नरेन्द्र पाल मोदगिल, भागवत दास नेगी, परस राम चन्देल, हुकम चन्द भरमौरिया, उत्तम लाल नेगी, गैण्डा राम नेगी, प्रकाश चन्द नेगी, भुवन सिंह नेगी, अपने अग्रज सुखराम शर्मा तथा अन्य अनेक लामाओं एवम् स्थानीय व्यक्तियों के अतिरिक्त श्रीमती जालिमपुरी, जयवन्ती देवी, सुभाग देवी, श्रीमती धर्मदास नेगी, ज्ञानभक्ति एवं अनेक नानियों (वृद्धाओं) का अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने इस कार्य को सफल बनाने में मेरा भरसक साथ दिया है।

हिमाचल प्रदेश के विद्वान समाज शास्त्री तथा लोक-प्रिय राज-नेता मुख्य मन्त्री डॉ० यशवन्त सिंह परमार, जिन्हें पर्वतीय संस्कृति के पोषण तथा संरक्षण में विशेष रुचि है, ने कृपा पूर्वक इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिख कर लेखक को प्रोत्साहित किया है। इसके लिए मात्र कृतज्ञता-ज्ञापन अपर्याप्त प्रतीत हो रहा है।

गुरुवर डॉ० सत्येन्द्र जी ने इस दुरुह विषय को पी-ऐच० डी० उपाधि के लिए निर्देशित किया, शोध के लिए निरन्तर नई दृष्टि दी तथा इस ग्रन्थ की भूमिका लिख कर कृतार्थ किया, इस सब के लिए आभार-प्रदर्शन के शब्दों का अभाव खल रहा है। उनके लोकवार्ता सम्बन्धी गहन अध्ययन, सूझ-बूझ और पैनी दृष्टि के कारण ही इस ग्रन्थ को साकार होने का अवसर मिल सका है।

माननीय श्री लाल चन्द प्रार्थी, कृषि, भाषा एवं संस्कृति मन्त्री, हिमाचल प्रदेश सरकार के प्रोत्साहन, अनुज सीता राम शर्मा की तत्परता के अतिरिक्त सर्वश्री सुरेन्द्र नाथ वर्मा, ऐच० सी० पराशर, मौलू राम ठाकुर, कैं० शक्ति सिंह चन्देल, अमर नाथ शर्मा, कैलाश चन्द्र भारद्वाज, बुक एम्पोरियम शिमला, किरण बुक डिपो, मेरिया ब्रदर्ज, श्री अमृत लाल गुप्ता प्रबन्धक जार्ज प्रिंटिंग वर्कस, सुरेन्द्र शर्मा चित्रकार तथा अन्य शुभ चिन्तकों के मूल्यवान सुझावों एवम् सहयोग के कारण इस ग्रन्थ को आकार प्राप्त हो सका है, इसके लिए आभार-वर्णन मात्र औपचारिकता होगी।

दिल्ली विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, राजस्थान वि० वि०, सैण्ट्रल स्टेट लाइब्रेरी सोलन, जिला पुस्तकालय बिलासपुर तथा सैक्रेटेरियेट लाइब्रेरी शिमला के पुस्तकालयाधिकारियों का सुविधा प्रदान करने हेतु आभार प्रकट किये बिना भी मैं अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं मान सकता।

जिन महानुभावों ने प्रस्तुत ग्रन्थ के लिए किसी भी प्रकार का सहयोग दिया है और जिन के नामादि स्थानाभाव के कारण यहां नहीं आ सके हैं उनके प्रति भी कृतज्ञता-ज्ञापन मेरे कर्त्तव्य की परिधि में आता है, अतः मैं उन सब का हृदय से आभारी हूं।

पुस्तक का प्रकाशन शीघ्रता से हुआ है अतः इसमें प्रकाशन तथा प्रूफ आदि की जो भी कमियां रह गई हैं उन के लिए विद्वान पाठकों से क्षमा मांग लेना शिष्टता से अधिक कर्त्तव्य है।

अन्त में मैं पंजाब विश्वविद्यालय का इस प्रबन्ध को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करने के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं।

शिमला :
11 मई, 1976

—बंशी राम शर्मा

विषय-संकेतिका

अध्याय : 1 पृष्ठ

किन्नर तथा किन्नौर

चित्र सूची

1 किन्नर तथा किन्नौर

स्थिति

किन्नौर हिमाचल प्रदेश का सीमावर्ती जिला है। प्रथम मई, 1960 ई० से पूर्व यह महासू जिले का एक भाग तथा उससे पूर्व रामपुर बुशहर रियासत की एक तहसील थी परन्तु इस क्षेत्र की संस्कृति पर बुशहर का सीधा प्रभाव बहुत कम दिखाई देता है। इस के पूर्व में तिब्बत, दक्षिण में उत्तर प्रदेश का उत्तरकाशी क्षेत्र और शिमला जिला की रोहड़ू तहसील, दक्षिण-पश्चिम में शिमला जिला, पश्चिमोत्तर में कुल्लू तथा लाहुल स्पीति के क्षेत्र स्थित हैं। इस जिले का क्षेत्रफल 6,553 वर्ग किलोमीटर तथा 1961 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 40,980 थी। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार इस क्षेत्र की जनसंख्या 49,835 हो गई है[1]। हिमालय पर्वत के गर्भ में बसे इस क्षेत्र के प्रायः सभी गांव समुद्र तल से 1500 मीटर से ले कर 3500 मीटर के बीच बसे हैं। पर्वतों की चोटियां 5180 मीटर से 6770 मीटर तक ऊंची चली गई हैं और अधिकांश समय में हिमाच्छादित रहती हैं। अधिकांश गांव सतलुज, स्पीति तथा बास्पा नदियों के दोनों किनारों पर बसे हैं तथा पर्वत-शृंखलाओं के मध्य स्थित होने के कारण शिखरों तथा पर्वत-मूल के बीच पड़ते हैं। गांव के अतिरिक्त किन्नरों की कृषि योग्य भूमि दो स्थानों पर होती है –एक तो 'रंङ्' या कण्ढे (पर्वत) के पास चोटी से नीचे तथा दूसरे नदी के किनारों अथवा गांव से काफी नीचे। गांव के ऊपर की भूमि को 'कण्ढा' तथा नीचे की भूमि को 'त्योल' कहा जाता है। कण्ढे की भूमि की देख भाल करने के लिए किन्नर लोग पर्वत शिखरों के पास छोटे छोटे मकान–दोघरियां (शेन्नङ्) बनाते हैं तथा उस भूमि में कार्य करने के दिनों में वहीं रहते हैं। उपरि किन्नौर में गांवों के समीप भी वनस्पति का अभाव है और सारे पर्वत नग्न तथा वनस्पति-विहीन होने के कारण भयानक तथा उदास प्रतीत होते हैं। इन क्षेत्रों में लोग जलाने के लिए छोटी छोटी कांटेदार झाड़ियों को काम में लाते हैं। हङरङ् में तो वही परिवार अधिक धनवान तथा प्रभावशाली माना जाता है जिस के घर की छत पर जलाने की लकड़ी अधिक मात्रा में तथा अच्छे प्रकार की हो। यही कारण है कि लोग जलाने की अच्छी लकड़ी को घरों की छतों पर वर्षों तक रख छोड़ते हैं।

इस क्षेत्र के मनुष्यों का मुख्य धन्धा खेती बाड़ी तथा भेड़-बकरी पालन है। बहुपति प्रथा होने के कारण परिवार के सारे व्यक्ति घर के कार्य में बहुत रुचि लेते हैं और

---

1. District Gazetteer-Kinnaur, Himachal Pradesh, 1971, p. 3 and Census Report for 1971.

पारिवारिक विच्छृंखलता की घटनायें अपेक्षाकृत कम देखने में आती हैं। भेड़ बकरियाँ चरागाहों में ले जाना आवश्यक कार्य होता है अतः घर में सारे परिवार के सदस्यों को इकट्ठा रहने के अवसर बहुत कम मिलते हैं क्योंकि चरवाहों (फुआलों-पुहालों) को गर्मियों में कण्डे की चरागाहों तथा सर्दियों में किन्नौर के बाहर के स्थानों पर भेड़ बकरियों को ले जाना पड़ता है।

किन्नर-क्षेत्र में ब्राह्मण-धर्म का प्रवेश नहीं हो पाया है। सवर्ण लोग 'नेगी' अथवा 'खोशिया' (खश) कहे जाते हैं तथा दूसरी श्रेणी में हरिजन अथवा चामङ्, डाकेस तथा ओरस आदि हैं जो सामाजिक स्तर की दृष्टि से अपेक्षाकृत अलग वर्ग के समझे जाते हैं। इस क्षेत्र को प्रकृति ने देश के शेष भागों से अलग-थलग बनाया है और एक स्थान 'वाङतू' को छोड़ कर सारे क्षेत्र के लिये सुगम मार्ग सम्भव नहीं है। अब सड़कों के बन जाने से किन्नर-क्षेत्र में प्रवेश करना दुर्गम तथा असम्भव नहीं रहा है परन्तु प्राचीन समय में जब मार्ग कठिन रहे होंगे तो इन पर्वत-चोटियों को पार किये बिना इस स्थान से बाहर जाना शक्य नहीं होता होगा। यही कारण है कि इस क्षेत्र में अति प्राचीन मान्यताओं के दर्शन होते हैं।

यहां के लोगों का रहन सहन भी शेष क्षेत्रों के लोगों के सामाजिक जीवन से पर्याप्त भिन्न है। स्त्री-पुरुष सारा साल भर गर्म कपड़े पहनते हैं तथा घरों की बनावट इस प्रकार की है कि उन में हवा के प्रवेश के लिये बहुत कम साधन रहते हैं। लोग साधारण तथा भोले भाले होते हैं। ये बहुत मिलनसार तथा अतिथि-सेवक भी हैं। घरोंकी छतों पर मिट्टी डाल कर कूटी जाती हैं तथा उस के नीचे भोज-पत्र के पत्ते लगाये जाते हैं। क्योंकि छतों पर लकड़ी के फर्श बनाये जाते हैं अतः रात के विश्राम के लिये घर का कोई भी कमरा चुना जा सकता है। युवकवर्ग अन्य क्षेत्रों की प्रथाओं की दिशा में जागरूक है और जनसाधारण के रहन सहन के ढंगों में भी द्रुत गति से परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है।

यह क्षेत्र वनस्पति की दृष्टि से बहुत धनवान तथा सुन्दर है। यहाँ देवदार, कायल तथा भोजपत्र आदि के सुन्दर तथा सदाबहार वृक्ष मिलते हैं तथा पहाड़ों की ऊंची चोटियों पर बर्फ बहुत मोहक प्रतीत होती है। इस क्षेत्र का पूह डिवीजन वनस्पति-विहीन होने के कारण यात्रियों तथा दर्शकों के लिये विचित्र अनुभव प्रस्तुत करता है। यहाँ मीलों ऊंचे पर्वत उस भेड़ की भाँति प्रतीत होते हैं जिस के शरीर से ऊन छीन ली गई हो। इन पर्वतों से मिट्टी के छोटे छोटे कण नीचे की ओर खिसकते रहते हैं तथा इस प्रकार नदियों में मिट्टी घुल कर मैदानी भागों की ओर प्रति-क्षण बहती चली जा रही है। भूस्खलन इस क्षेत्र की सब से बड़ी समस्या है। पूह-हङरङ् क्षेत्र में पक्की चट्टानें कम हैं तथा पर्वतों से मिट्टी के कण फिसल कर गांवों को आपस में मिलाने वाले मार्गों को दुरुह बना देते हैं।

सतलुज नदी इस क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करती है। स्पीति नदी हङ्-रङ् क्षेत्र के बीच बह कर खाबो के स्थान पर सतलुज से मिलती है। इस क्षेत्र में एक अन्य बड़ी नदी बास्पा है जो सांगला घाटी के बीच से बहती हुई कड़छम[1] के स्थान पर

---

1. इस का शुद्ध किन्नौरी नाम करछम (कर—मेमना, छम—पुल) अर्थात् 'मेमनों का पुल' है। कहा जाता है कि इस स्थान पर किसी प्राचीन समय में बहुत छोटा सा पुल था जिस से केवल मेमनों को ही नदी से पार किया जा सकता था।

सतलुज नदी में मिलती है। सतलुज को किन्नर लोग बहुत पवित्र नदी मानते हैं और उसे 'गंगा' कह कर याद करते हैं। किन्नर बोली में नदी के लिए 'समुद्रङ्' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। कहा जाता है कि द्रविड़ भाषाओं में 'गंगा' शब्द पानी के लिए भी प्रयुक्त किया जाता रहा है। यदि ऐसा हो तो प्रागैतिहासिक काल से सतलुज को गंगा कहना आश्चर्यजनक नहीं है। इस क्षेत्र में नदियों का बहाव इतना द्रुतगामी है कि पानी की उत्ताल तरंगें टकराते रहने के कारण बड़ी बड़ी चट्टानों में छेद हो जाते हैं। आमने सामने के दो पर्वतों के आंचलों में बसे गांवों में वाद्ययन्त्रों की ध्वनि तो सुनाई देती है परन्तु दूसरे गांव में पहुंचने के लिये कई घण्टे समय लग जाता है क्योंकि एक गांव से नदी तट पर उतरना पड़ता है तथा दूसरे में पहुंचने के लिए तीन-चार मील की सीधी चढ़ाई चढ़ना आवश्यक सा होता है।

यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। इस का कारण यह है कि पवनें इन शृंखलाओं तक पहुंचते पहुंचते शुष्क हो जाती हैं। वर्षा के अभाव तथा भयंकर सर्दी के कारण किन्नौर के उपरि-क्षेत्रों में वर्ष में एक ही फसल होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किन्नौर एक विचित्र धरती है जहां जीवन की अनेक कठिनाइयां हैं। यह क्षेत्र उत्तरी अक्षांश में 31^0 05′ 50″ तथा 32^0 05′ 15″ के बीच तथा पूर्वी देशान्तर 77^0 45′ तथा 79^0 00′ 35″ के मध्य बसा है। यह अनुसूचित आदिम जातीय क्षेत्र है।

'किन्नौर' क्यों ?

किन्नौर के दूसरे नाम कनौर, कनावर, कूनावर, कुनावुर, कुनावर तथा कनौरिङ् भी हैं। प्रायः सभी अंग्रेज यात्रियों ने इस क्षेत्र को 'कुनावर' के नाम से पुकारा है। स्थानीय बोली में इसे 'कनौरिङ्' कहा जाता है। किन्नर लोग स्वयं को भी 'कनौरिङ्' कहते हैं अतः यह शब्द 'स्थान विशेष' तथा निवासियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। तिब्बत वाले इसे 'खुनू' कहते है। 'खुनू' या 'कुनू' का अर्थ पर्वत होता है। यह द्रविड़ भाषा का शब्द है। इस क्षेत्र में 'कुनू' एक गांव का नाम भी है जो तिब्बत की सीमा पर पर्याप्त ऊंचाई पर बसा है। 'कुनू' से आधुनिक 'कनावर' की व्युत्पत्ति मानी जाए तो आश्चर्य न होगा। वैसे तो यह क्षेत्र हिमालय के मध्य में होने के कारण अत्यन्त दुर्गम स्थल है परन्तु तिब्बत जैसे ऊंचे स्थान के लोग यदि इसे 'पर्वतीय क्षेत्र' कहें तो इसका सम्बन्ध उनकी भाषा से अथवा किन्नौर के प्राचीन इतिहास से मानना चाहिए। राहुल सांकृत्यायन ने इस क्षेत्र को 'किन्नर देश' कहा है और इसी नाम से एक प्रसिद्ध पुस्तक भी लिखी है। बुशहर रियासत के पत्रों में इस क्षेत्र का नाम 'कनावर' तथा यहां के लोगों का नाम 'कनावरा' ही मिलता है परन्तु वर्तमान हिमाचल सरकार ने इस ज़िला का नाम 'किन्नौर' रखा है जो निश्चय ही 'किन्नर' शब्द के अधिक समीप बैठता है। ग्राहम बैली ने लिखा है, 'जहां तक मैं जानता हूं 'कनावर' नाम यूरोपियनों के कारण है। मैंने कभी किसी स्थानीय व्यक्ति को इस तरह उच्चारण करते नहीं सुना है[1]'।

---

1. So far as I know the form Kanawar is due to Europeans. I have never heard a native pronounce the word in that way—Asiatic Society Monographs, Vol. XIII, 'Kanawari Vocabulary' by Rev, T. Grahame Bailey, 1911, P. 2.

कनावर को 'कूरपा' भी कहा जाता है[1]। लेह में इसे 'माऊन' कहा जाता है। माऊन अथवा मौन बुशहर के नामों में से एक है[2]। कामरू गांव का प्राचीन नाम 'मोने' इस बात की ओर संकेत करता है कि 'मौन' जाति का इस क्षेत्र के साथ निश्चित रूप से सम्बन्ध रहा है तथा महेशुर देवताओं को 'मोनशिरस' कहना भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। मोने (कामरू) किसी प्राचीन राज्य की राजधानी रहा है और रामपुर बुशहर के सभी राजाओं का अभिषेक पीढ़ियों तक यहां के दुर्ग में किए जाने की प्रथा रही है। 'कुनावर' 70 मील लम्बा और उत्तर में 40 मील तथा दक्षिण में 20 मील चौड़ा है[3]।

जैसा कि पहले कहा गया है, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मत में यह 'किन्नर-देश' है। उनके अनुसार, 'किन्नर के लिए किम्पुरुष शब्द भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है, अतः इसी का नाम किम्पुरुष देश या किंपुरुष वर्ष भी है। किन्नर या किंपुरुष देवताओं की एक योनि मानी जाती थी किन्तु इससे हमें इतिहास के जानने में कोई सहायता नहीं मिलती। यदि किन्नर का शब्दार्थ 'बुरा आदमी' ले लें, तो अपने शत्रु के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग आज भी हुआ करता है। किन्हीं ने अपने शत्रुओं को यह नाम दिया होगा, यह तो जरूर मालूम होता है, और ऐसा नाम आर्यों की भाषा में होने से यह अपराध आर्यों का ही हो सकता है, तो क्या किन्नर आर्यों से भिन्न थे? हां, भिन्न जरूर मालूम होते हैं। किन्नर देशियों को आजकल आसपास वाले कनौरा कहते हैं। पहले कनौर या किन्नर का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। काश्मीर से पूर्व नेपाल तक प्रायः सारा पश्चिमी हिमालय तो निश्चित ही किन्नर जाति का निवास था। चन्द्रभागा (चनाव) नदी के तट पर आज भी कनौरी-भाषा बोली जाती है। सुतपिट्टक के 'विमान वत्थु' (ईसापूर्व द्वितीय-तृतीय सदी) में लिखा है—'चन्द्र भागा नदी तीरे अहोसिं किन्नर तदा' जिस से स्पष्ट है कि पर्वतीय भाग के चनाव के तट पर उस समय भी किन्नर रहा करते थे। इसी तरह उत्तर काशी (टेहरी) के पास के धरासू आदि 'सू' शब्दान्त गांव बतलाते हैं कि वहां किन्नरी भाषा बोली जाती थी, किन्नरी भाषा में 'शू' या 'सू' शब्द देवता के लिए आता है[4]'।

वे आगे लिखते हैं—अस्तु, जैसे भी हो आधुनिक 'कनौर' शब्द किन्नर का ही अपभ्रंश है, और किसी समय किंपुरुषवर्ष प्रायः सारे ही हिमालय का नाम रहा होगा, यद्यपि आज वह संकुचित हो बुशहर-रियासत (अब महासू जिला) की एक तहसील चीनी तथा कुछ नीचे उतर कर उस से लगे हुए 20, 25 गांवों के लिए व्यवहृत होता है[5]।

फ्रेजर के अनुसार कुनावर बुशहर का वह भाग है जो समस्त उत्तरी, उत्तर-

---

1. Capt. A. Gerard—Account of Koonawar, Page 1.
2. Notes on Moorcroft's Travels in Ladakh and on Gerard's Account of kunawar by J. D. Cunningham, Journal of Asiatic Society of Bengal, Vol. XIII, 1844, Page 230.
3. वही, पृ० 172।
4. किन्नर-देश, पृ० 261-92।
5. राहुल सांकृत्यायन, किन्नर-देश, पृ० 292।

पूर्वी और पूर्वी भागों में फैला है और बर्फ के पहाड़ों के पीछे और मध्य स्थित है । यह मुख्यत: सतलुज नदी के आर पार है, जो इन पर्वतों से परे व बीच बहती है, यह इन्हें एक रेखा में काटती है और पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है[1] ।

यहां नदी का तल 750 मीटर और 1,350 मीटर के बीच है, किनारे 2,100 से 2,700 मीटर तक सीधे उठे हैं। वहां से 3,000 या 3,300 मीटर तक थोड़ी ढलान वाले क्षेत्र हैं जहां अधिकतर गांव और लोगों के खेत हैं और यहां से पर्वतों की चोटियां अनेक स्थानों पर 6,000 मीटर तक ऊंची उठ गई हैं[2] ।

कनावर के दो भाग हैं—उपरि कनावर और निचला कनावर। उपरि कनावर में शुआ परगना तथा अन्दरूनी टुक्पा परगना का वह भाग है जो सतलुज के बांएं या दक्षिणी तट के साथ साथ है। निचले कनावर में 18/20 परगना, राजग्राम, अन्दरूनी टुक्पा परगना का एक भाग तथा 15/20 परगना का कुछ भाग भी आता है। बाह्य टुक्पा परगना कनावर की वस्पा उपत्यका में है परन्तु यदि ठीक कहा जाए तो यह न तो उपरि और न ही निचले कनावर का कोई भाग है क्योंकि यह एक ऐसा भूक्षेत्र है जो अन्य भागों से अलग-थलग है। भाबा परगना पित्ती (स्पीति) की ओर थांग घाटी में है[3] ।

बुशहर के सात खुन्द[4] प्रसिद्ध हैं। खुन्द का अर्थ परगना लिया जाता है इन के नाम ये है :—

	नाम	स्थान	देवता
1.	दो शो खुन्द	गौरा से नीचे	बसाक
2.	पन्द्रह बीस खुन्द	गानवीं	लाछी
3.	अट्ठारह बीस खुन्द	सुङ्रा	मेशू या मेशुर (मोनशिरस)
4.	बङ्पो खुन्द	भाबा	मेशू (मोनशिरस)
5.	पग्राम (राजग्रामङ्)	ठौलङ्	मेशू (मोनशिरस)
6.	छुवङ् खुन्द	चिनी (छुवङ्)	चण्डिका (कोठी)
7.	टुक्पा खुन्द	कामरू (मोने)	बदरीनाथ

सात खुन्दों में पहले को छोड़ बाकी कनौरी भाषा-क्षेत्र में पड़ते हैं, इन में अन्तिम चार ही वर्तमान चिनी तहसील के अन्तर्गत अथवा मुख्य कन्नौर के अंग हैं।

---

1. James Baillie fraser—Journal of a Tour through Part of the Snowy range of the Himala Mountains, 1820, Page 263.
2. On An Indian Border by Pran Chopra, Page 5.
3. Notes on Ethnography of Busehar State by Pt. Tikka Ram Joshi with Introduction by H. A. Rose, Vol. II, Page 525.
4. खुन्द का अर्थ परगना न हो कर 'वीर वंश' भी लिया जाता है। शिमला जिला की चौपाल तहसील में खशों के अनेक 'खून्द' अथवा खुन्द रहते हैं जो प्राचीन काल में आपस में लड़ते रहते थे।

ठीक ठीक सीमा निर्धारित करने पर नीचे (सतलुज उपत्यका में) मनोटी धार (चौरा से 3 मील नीचे) और रूपी नाला (रूपी से 4 मील नीचे) से लेकर भाबा खड्ड (नदी) और बस्पा नदी के उद्गमों एवं श्यासो खड्ड तक कनौर देश है[1]।

उपर्युक्त विवरण से हम किन्नौर के विभिन्न नामों से परिचित होते हैं परन्तु इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाते कि किन्नौर का प्राचीन नाम क्या होगा तथा किन्नर जाति के साथ इस नाम का क्या सम्बन्ध रहा होगा। यह तो निर्विवाद है कि सारे नाम 'किन्नर' शब्द से सामीप्य का बोध कराते हैं और इस प्रकार का निर्णय लेने से पहले हमें सोचने पर बाध्य करते हैं कि सम्भवत: जन-प्रयोग में आने के कारण 'किन्नर' शब्द से कनावर, कुनावर, किन्नौर आदि शब्द निकल गए होंगे अथवा इन में से ही कोई शब्द 'किन्नर' शब्द की व्युत्पत्ति का कारण रहा होगा। 'किन्नर' अथवा 'कनौरिङ्' शब्द किस प्रकार प्रचलित हुए, उनकी व्युत्पत्ति क्या है? इत्यादि प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व हम किन्नर-जाति पर भी विचार करेंगे।

किन्नर

हिमालय हमारे धर्म-शास्त्रों तथा पुराण-कथाओं का जनक है। आदिकाल से भारतीय मनीषी मानसिक शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से इस की गोद में जाते रहे हैं। सच तो यह है कि भारतीय वाङ्मय का अधिकांश भाग इसी पवित्र पर्वतराज की श्वेत, धवल शृंखलाओं की साक्षी में ही विकास को प्राप्त हुआ है। इस के सौन्दर्य का गरिमामय वर्णन करके कालीदास जैसे महाकवियों ने विश्व साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। स्कन्दपुराण में एक स्थान पर कहा गया है कि जो हिमालय का स्मरण करता है, भले ही वह उसे न भी देखे, उस से बड़ा है जो काशी में सम्पूर्ण पूजा करता है[2]।

महाकवि भारवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ किरातार्जुनीय महाकाव्य के हिमालय वर्णन-खण्ड में इस के दर्शन-मात्र से पाप-समूहों का नष्ट होना स्वीकार किया है[3]। इसी हिमाचल में किन्नर, गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सराओं आदि देव-योनियों के निवास-स्थान होने के सम्बन्ध में अनेक संकेत मिलते हैं। हिमालय की पवित्रता के कारण यहां निवास करने वाले प्राणी भी श्रद्धास्पद बन गए हैं और पुराणकारों ने उन के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारिक वर्णन प्रस्तुत किये हैं। यदि हिमालय से सम्बन्धित विवरण को धर्म-गाथाओं से निकाल दिया जाए तो जो कुछ शेष रह जाएगा वह इतना कम होगा कि एक ग्रन्थ में समा जाए।

हिमालय की विशालता के सम्बन्ध में पुराणकारों ने जो विवरण दिए हैं वे कवित्वपूर्ण हैं और उन से भौगोलिक जानकारी के केवल संकेत ही मिलते हैं। महाभारत में आए सामाजिक तथा भौगोलिक वर्णनों के आधार पर हमें उस समय के समाज

---

1. राहुल सांकृत्यायन—किन्नर-देश, पृ० 306।
2. Berreman D. Gerald-Hindus of the Himalayas, 1963, Page XI.
3. पांचवा सर्ग, श्लोक 17।

का ज्ञान होता है। पुराण-गाथाओं में चमत्कार तथा अलौकिकता का समावेश रहता है अतः इन में इतिहास को उलट-पुलट कर जन-साधारण को प्रिय लगने वाली कथाओं के रूप में ढाल कर प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि धर्म के आधार विश्वास एवं श्रद्धा होते हैं अतः अलौकिक कथाओं को पढ़ते तथा सुनते समय पाठकों एवं श्रोताओं में तर्क का प्रायः अभाव रहता है। अनेक पौराणिक जातियां तथा देवता किसी समय वास्तविक रूप में पृथ्वी पर निवास कर चुके होते हैं। पुराण-कथाओं (Mythology) में उन के कार्यों को अलौकिक प्राणियों के कार्यों के समकक्ष बिठाया जाता है और उनके द्वारा असम्भव को सम्भव होना बताया जाता है।

हमारे धर्म-शास्त्रों में देवताओं की संख्या 33 करोड़ मानी गई है। इन देवताओं के सम्बन्ध में जो विवरण दिए गए हैं उनके आधार पर पता चलता है कि हमारी देव-कथा में समय समय पर बहुत परिवर्तन होते रहे हैं। देवताओं के संघर्षों के अनेक कथानक मिलते हैं तथा अपने शत्रुओं के साथ तो उन के संघर्ष आरम्भ से अन्त तक वर्णित हैं। धार्मिक वैर विरोध के कारण इन पौराणिक गाथाओं में इतना अधिक परिवर्तन हुआ है कि आरम्भ में किस पौराणिक नाम तथा महापुरुष का क्या वास्तविक रूप रहा होगा, यह बताना कठिन है। बहुत प्राचीन काल में 'देव तथा असुर समानार्थक थे। जिस को देव कहते थे उस को असुर भी कहते थे। वेदों में अनेक स्थानों पर ऐसे प्रयोग आए हैं। तीसरे मण्डल के 55वें सूक्त के सभी 22 मन्त्रों में देवों के महान असुरत्व की चर्चा है। वृत्रासुर को, जिस का वध इन्द्र ने किया था, देव कहा गया है परन्तु पीछे से यह परम्परा छूट गई। देव शब्द केवल अच्छे अर्थ में और असुर केवल बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। भारत में पठान राज्य स्थापित होने के बाद फारसी का देव शब्द हमारे यहां आया। आज भी कहानियों में काला देव, लाल देव के नाम सुन पड़ते हैं। देवगण के लिए हमने 'देवों' कहना ही छोड़ सा दिया, 'देवताओं' कहने लगे। ईरान में उल्टी बात हुई थी, वहां 'देव' शब्द का अर्थ बुरा हो गया था और 'असुर' अच्छा हो गया। यहां तक कि ईश्वर को अहुर मज्द (असुर महत्) अर्थात् बड़ा असुर कहने लगे'[1]। अतः यह आवश्यक है कि देव-परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध में सामग्री संकलन करते समय हम इन परिवर्तनों को दृष्टि में रखें और उपलब्ध सामग्री के आधार पर निष्पक्षता से किसी निर्णय पर पहुंचने का यत्न करें। पुराण-कथाओं में वर्णित 'किन्नर' भी इस प्रकार की धार्मिक उथल पुथल के कारण ही वर्तमान रूप को प्राप्त हुए हैं।

हिन्दुओं के प्रथम तथा प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में किन्नरों का वर्णन नहीं आया है[2]। वायुपुराण में महानील पर्वत पर किन्नरों का निवास-स्थान बताया गया है[3]। डी. सी. सरकार के अनुसार गन्धर्व तथा किन्नर आदिम जातियां थीं पर बाद में वे पौराणिक गाथाओं में इस रूप में प्रयुक्त न हो कर पौराणिक देव-योनियों (Mythical

---

1. डॉ० सम्पूर्णानन्द—हिन्दु देव परिवार, पृ० 47।
2. D. Kumar Raja Ram Patil—Cultural History from the Vayu Purana, 1946, Page 81.
3. वही, पृ० 91।

beings) के रूप में आईं। उनका कथन है कि किन्नर और यक्ष सम्भवत: हिमालय में बसने वाली आदिम जातियां थीं और गन्धर्व 'गान्धार' के निवासियों को कहा जाता था। उन्होंने अलबरूनी के कथन को आधार मान कर लिखा है कि किम्पुरुष तथा खश भी हिमालय की जातियां थीं[1]। कई विद्वान राक्षस, निशाध, किरात, गुह्यक, किम्पुरुष तथा किन्नरों को न्यून संस्कृति का तथा वन्य जातियों के साथ सम्बन्धित मानते हैं[2]। पी. थोमस के अनुसार गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सरायें स्वर्ग में नहीं रहते बल्कि पौराणिक पर्वतों पर निवास करते हैं। उनके आचार-व्यवहार सम्बन्धी अपने नियम हैं, मनु के नियम इन पर लागू नहीं होते[3]। मत्स्यपुराण के अनुसार राक्षस, पिशाच, यक्ष, विद्याधर, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सरायें हिमवान पर्वत के निवासी हैं। यह पर्वत वर्ष भर बर्फ से ढका रहता है[4]।

डॉ. कन्हैया लाल मणिक लाल मुन्शी किन्नरों के सम्बन्ध में लिखते हैं—हिमाचल प्रदेश के खश क्षेत्र के पास एक क्षेत्र में एक जाति कनावरा या किन्नर रहती है। कनावरे खशों से भिन्न हैं। उन के चेहरे लम्बे तथा घोड़ों की भांति के होते हैं। बैशाखी में जब वे सामूहिक नृत्य करते हैं तो हर किन्नर घोड़े का मुखौटा पहनता है। किन्नरियां बहुत सुन्दर कण्ठ वाली होती हैं और 'किन्नर-कण्ठी' शब्द को सार्थक करती हैं। हरिवंश पुराण में किन्नरियों को फूलों तथा पत्तों से शृंगार करते हुए बताया गया है। बाण ने उन को संगीत तथा नृत्य में दक्ष बताया है। आधुनिक समय में भी किन्नर गाते, नाचते तथा हंसते और प्रसन्न-चित्त होते हैं। भीम ने शान्ति पर्व में कहा है कि किन्नर बहुत सदाचारी होते हैं और उन्हें अन्त:पुर में भृत्य के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। वे आगे लिखते हैं—राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्य-मीमांसा में खशों के सम्बन्ध में एक रोचक उद्धरण लिखा है इस के अनुसार कार्तिकेय नगर किन्नरों के मधुरगान की ध्वनि से गुंजरित है। किन्नर बड़ी बड़ी कन्दराओं में रहते हैं। इस से स्पष्ट होता है कि खश किन्नरों के देश के समीप रहते थे और उनकी राजधानी कार्तिकेय नगर में थी। किन्नर जाति जौनसर बावर के उत्तर में रहती है और खशों के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है[5]।

किन्नरों के सम्बन्ध में जो विवरण उद्धृत किया गया है उस के अनुसार वर्तमान

---

1. D. C. Sircar-Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, Pp. 62-63.
2. T. W. Rhys Davids-History and Literature of Buddhism, Page, 3.
3. Epics, Myths and Legends of India, Page 43.
4. A Critical Survey of the Geographical Material in the Nilmata, the Matsya, The Vishnu and the Vayu Purana.—A copy of the Thesis for Ph. D. Degree in the Library of Delhi University, submitted by Savitri Saxena, Page 33.
5. R. N. Saxena—Social Economy of a Polyandrous people with a forward by K. M. Munshi, Pp. V-XIII.

किन्नरों को 'अश्वमुख' कहा गया है जो युक्तिसंगत नहीं है। यह बात देखने में नहीं आती कि किन्नर वैशाखी के दिन अपने चेहरों पर घोड़ों के मुखौटे लगा कर नृत्य करते हों। इस सन्दर्भ में त्यौहारों से सम्बन्धित अध्याय में विचार किया गया है। यहां यह उल्लेखनीय है किन्नर-क्षेत्र में यत्र-तत्र राक्षसों से सम्बन्धित मुखौटे तो विभिन्न त्यौहारों के अवसरों पर पहनने की प्रथा है परन्तु घोड़ों के मुख पहनने की प्रथा नहीं है। ये (राक्षसों के) मुखौटे भी सभी किन्नरों द्वारा नहीं पहने जाते बल्कि चार या पांच व्यक्तियों द्वारा ही स्वांग-प्रदर्शन के लिए इन्हें पहना जाता है। जब वर्तमान समय में भी विद्वानों द्वारा अनुमान से ही किसी जाति अथवा वर्ग का सामाजिक चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा हो तो प्राचीन काल के आचार्यों का इस दुर्गम क्षेत्र के सम्बन्ध में चमत्कारिक ढंग से लिखना आश्चर्यजनक नहीं है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सरायें मानसरोवर झील तथा निशाध पर्वत के पास रहते हैं[1]।

महाभारत के दिग्विजय पर्व मे अर्जुन का किन्नरों के देश में जाना वर्णित है :—

स श्वेत पर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान्।
देशं किम्पुरुष वासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम् ।1।
महता संनिपातेन क्षत्रियान्तकरेण ह।
अजयत् पाण्डव श्रेष्ठः करे चैनं न्यवेशयत् ।2।

—तदनन्तर पराक्रमी वीर पाण्डव-श्रेष्ठ अर्जुन धवलगिरि को लांघ कर द्रुमपुत्र के द्वारा सुरक्षित किम्पुरुष देश में गए जहां किन्नरों का निवास था। वहां क्षत्रियों का विनाश करने वाले भारी संग्राम के द्वारा उन्होंने उस देश को जीत लिया और कर देते रहने की शर्त पर उस राजा को पुनः उसी राज्य पर प्रतिष्ठित कर दिया[2]।

इस के पश्चात् अर्जुन ने हाटक देश पर आक्रमण किया और गुह्यकों को समझा बुझा कर ही वश में कर लिया। गुह्यक हाटक देश के रक्षक थे। अर्जुन ने हाटक देश के पश्चात् गन्धर्वों द्वारा रक्षित प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया। उन्होंने नागों द्वारा सुरक्षित प्रदेश को भी जीता और तत्पश्चात् वे मानसरोवर पहुंचे।

इस विवरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं, एक तो यह कि किम्पुरुष देश में किन्नर लोग रहते थे और दूसरे यह क्षेत्र हिमालय में स्थित था तभी इसे जीतने के पश्चात् दिग्विजय के समय अर्जुन मानसरोवर पर पहुंचा था। डॉ० गोविन्द चातक के मतानुसार यक्ष, किन्नर, नाग तथा किरात आदि गढ़वाल के आदि निवासी रहे हैं[3]। चन्द्र चक्रवर्ती ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लिटरेरी हिस्ट्री आफ् एन्शियण्ट इंडिया' में लिखा है कि किन्नर लोग मंगोल जाति से सम्बन्धित नहीं हैं और वे कुल्लू घाटी, लाहौल और रामपुर में, सतलुज के पश्चिमी किनारे पर तिब्बत की सीमा के साथ रहते हैं। अब

1. Berriedate Keith—The Mythology of all Races, Vol. VI, Page 143.
2. महाभारत, दिग्विजय पर्व, श्लोक 1,2।
3. मध्य पहाड़ी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 20।

यद्यपि उनमें बहुपति प्रथा का प्रचलन है परन्तु युधिष्ठिर के अंग-रक्षकों में किन्नर भी होते थे[1]।

उत्तर वैदिक साहित्य में सुर तथा असुरों के संघर्षों के अनेक वर्णन मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण तथा छान्दोग्य उपनिषद् में इन्द्र तथा विरोचन को अपने अपने समूहों के नेता कहा गया है[2]। दैत्यों के दो प्रसिद्ध नेता शुक्र तथा मय थे[3]। तारकासुर दानव के तीन पुत्र मय के मित्र थे। उसने उनके लिए तीन रहस्यमय नगर बनाए थे। स्कन्द (शिवजी के पुत्र) ने तारकासुर को मार दिया जिस के कारण देवता तथा दानवों के मध्य अधिक वैमनस्य बढ़ गया।

श्रीमद्‌भागवत[4] में ब्रह्मा के तमोमय शरीर से यक्षों तथा राक्षसों की उत्पत्ति मानी गई है। जब यक्ष–राक्षस भूख प्यास से व्याकुल होकर ब्रह्मा को ही खाने के लिये दौड़ पड़े तो उनमें मतभेद हो गया। कुछ कहते थे कि इन्हें खा लिया जाय और अन्य कहते थे कि इनकी रक्षा की जाय। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा जी ने भयभीत होकर कहा... हे यक्षो! और राक्षसो! तुम सब मेरी सन्तान हो, अतएव मुझे खाओ नहीं बल्कि मेरी रक्षा करो। तुम में से जिन्होंने मुझे 'जक्षध्वम्' अर्थात् 'खा जाओ' यह कहा है, वे 'यक्ष' और जिन्होंने 'मारक्षत्' इनकी 'रक्षा की जाय' यह परामर्श दिया, वे राक्षस कहलायेंगे। इसके कुछ समय पश्चात् ब्रह्मा ने अपने प्रतिबिम्ब से किम्पुरुषों की रचना की। अब वे किन्नर और किम्पुरुष एक साथ प्रातः के समय ब्रह्मा जी का गुणगान करते हैं[5]। सब से पहले ऋग्वेद में लिंग-पूजा का वर्णन आता है। इस समय लिंग को 'शिश्नदेव' कहा गया है। पुराणों में भगवान को अर्द्धनारीश्वर भी कहा गया है। शैव–धर्म में लिंग तथा योनि का बहुत महत्त्व है। विष्णु-पुराण में ब्रह्मा ने रुद्र को दो भागों में बंटने के लिए कहा है जिस कारण वे 'लिंग' तथा 'योनि' के प्रतीक के रूप में दो भागों में बंट गए[6]। जैन धर्म–ग्रन्थों में न्यून देव-योनियों का वर्गीकरण इस प्रकार दिया गया है—1–पिशाच, 2–भूत, 3–राक्षस, 4–किन्नर, 5–किम्पुरुष, 6–महोराग (नाग) और गन्धर्व। बौद्ध-

1. Chandra Chakravarti-Literary History of Ancient India, Page 4.
2. Shatpatha Brahmana I, 1, 3. III, 13. IV, 1, 3. V, 5, 5 & Chhandogyopanishad I, 2. VIII, 6-12, as quoted by G. S. Ghurye-Gods and Men, Pp. 54-55.
3. Hopkins, Epic Mythology, Pp. 178-80, 49-50.
4. श्रीमद्‌भागवत महापुराण–(सामयिकी भाषा टीका सहित)-साहित्य शास्त्री पाण्डेय- पृ० 235-36।
5. स किन्नरान् किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येना सृजत्प्रभुः।
   मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्मा भासं विलोकयन्। 45।
   ते तु तज्जगृहु रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना।
   मिथुनीभूय गायंतस्तमेवोषसि कर्मभिः। 46।
6. Cultural History from the Vayu Purana—Devendra Kumar Raja Ram Patil, Pp. 150-151.

धर्म ग्रन्थों में यह वर्गीकरण इस प्रकार है—देव, यक्ष, नाग राक्षस, गन्धर्व, असुर, गरुड़, किन्नर तथा महोराग। ब्राह्मण धर्म-ग्रन्थों में कुछ अन्य देवता भी इस सूची में सम्मिलित हैं, यथा—कुम्भण्ड, कबन्ध, दैत्य, दानव, अप्सरायें, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, प्रमथ तथा गण आदि[1]। महाभारत एक व्यक्ति की रचना नहीं है और इसे किसी आरम्भिक लिपिबद्ध अथवा लोक-प्रचलित महाकाव्य का रूप माना जाता है।[2]

प्राचीन बेबीलोनिया तथा असीरिया में राष्ट्रीय स्तर के देवता होते थे। असीरिया में असुर तथा बेबीलोनिया में मरदक इस प्रकार के देवता थे[3]। किन्नर इक्ष्वाकू के वंश में सुनक्षत्र का बेटा था जिस का पुत्र अन्तरिक्ष हुआ। अन्तरिक्ष का लड़का सुवर्ण तथा उसी के वंश मे संजय के लड़के का नाम साक्य था। इस प्रकार किन्नर तथा 'साक्य' (शाक्य) जातियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि ये एक ही वंश से उत्पन्न हुई थी। इक्ष्वाकू सूर्यवंश का प्रतापी राजा था[4]। किन्नरों का नाम किरातों के साथ भी लिया जाता है अतः किरातों पर भी इसके साथ ही विचार करना युक्तिसंगत जान पड़ता है। संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार ये लोग मंगोल जाति से सम्बन्धित बताये जाते हैं। ये हिमालय की गुफाओं में रहते थे। किरात लोग महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े थे। उन्हें दवाइयों का बहुत ज्ञान था। चिरेता उन्हीं के नाम का अपभ्रंश है[5]। कुछ विद्वान दस्युओं को अनार्य जातियों से सम्बन्धित मानते हैं उनका कहना है कि जो व्यक्ति आर्यों के साथ युद्ध में पकड़े जाते थे अथवा पराजित बना लिये जाते थे वे ही बाद में 'दस्यु' अथवा 'दास' बन गये। इन्हीं लोगों को बाद में शूद्र बना दिया गया[6]। डा० पाण्डुरंग काणे के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'धर्म-शास्त्र' (II, (I), p. 33) के अनुसार दास वह जाति थी जो धीरे धीरे लुप्त होती चली गई। मनुस्मृति के अनुसार इन्द्र को दास्य-देवता ने बनाया[7]। गन्धर्व, अप्सरायें, गण, किन्नर, गुह्यक तथा यक्ष देवताओं के कृपापात्र तथा नौकर कहे गये है। किन्नर, गुह्यक तथा यक्ष कुबेर की प्रजा है। ये कुबेर के समक्ष गाते तथा बजाते हैं और उन के सिर घोड़ों के तथा शरीर मनुष्यों के होते हैं परन्तु किम्पुरुषों के शरीर

1. The Elements of Hindu Econography, P. 58-59, Vol. II, Part I.
2. Jitendra Nath Banerjea—The Development of Hindu Econography, Page 336.
3. Ethnography of Ancient India by Robert Shafer, 1954, Pp. 3-6.
4. Sabatino Moscati—Ancient Semitic Civilization, 1957, Pp. 59-63.
5. Wilson-Vishnupurana, Vol. IV, Chapter XXII, Pp. 167-172 as quoted by Bimla Charan Law in Kshatriya Tribes of Ancient India, Pp. 167-68.
6. Benjamin Walker-Hindu World, Vol. I, Pp. 555-56 and Vol. II, Page 12.
7. Dr. B. R. Ambedkar—Who Were The Shudras ? Page 104.

घोड़ों और सिर मनुष्यों के होते हैं[1]। दस्यु वास्तव में वे आदिवासी थे जिन्होंने आर्यों को आगे बढ़ने से रोका। इनके साथ हुए घमासान युद्धों की अनेक कथायें धीरे धीरे प्रचलित हो गईं और वे राक्षस और पिशाच कहे जाने लगे[2]। हिन्दी विश्वकोश के चतुर्थ भाग में[3] किन्नरों के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण है :—

किन्नर—(सं० पु०) कि० कुत्सितो नरः (कर्मधारय)।
1–देवयोनि विशेष, एक प्रकार के देव।

किन्नर का मुख अश्व की भांति रहता, किन्तु अन्यान्य समस्त अवयव मनुष्य-तुल्य देख पड़ता है। उस का संस्कृत पर्याय किम्पुरुष, तुरंगवदन, मयु, अश्वमुख, गीतमोदी और हरिणनर्तक है। किन्नर अतिशय संगीतपटु होता है। तुम्बुरु प्रभृति स्वर्ग गायक भी उक्त जाति के ही हैं।

2—वर्ण विशेष।
3—कोई बौद्ध उपासक।

पुराणों में कुबेर के वंश के सम्बन्ध में बताया गया है कि तृणबन्धु की पुत्री द्रविर अथवा इलाविला थी। द्रविर का विवाह पुलस्त्य से हुआ था। उसके पुत्र विश्ववसु ने देववर्णिनी, जो अंगीरस बृहस्पति के परिवार से सम्बन्धित थी, से विवाह किया। उनका पुत्र वैश्रवण कुबेर हुआ और उनके वंश से उसके पश्चात् चार पुत्र नलकुबेर, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा एक पुत्री सूर्पणखा हुईं[4]। क्योंकि किन्नर कुबेर की प्रजा कहे जाते हैं अतः उनका किसी प्राचीन जाति के साथ सम्बन्धित होना निश्चित है। अजन्ता के भित्ति-चित्रों में गुह्यकों, किरातों तथा किन्नरों के चित्र भी हैं। इन चित्रों का ऐतिहासिक महत्त्व है और ये ईसा की तृतीय से अष्टम शताब्दी के मध्य के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं। 'ऐनसाइक्लोपीडिया आफ् रिलीजन ऐण्ड ऐथिक्स' में भी किन्नरों को अश्वमुख तथा किम्पुरुषों को अश्व-शरीर माना गया है[5]। किन्नर तथा नाग हिमालय में वास करने वाली प्रागैतिहासिक जातियां थीं जिन के सामाजिक नियम आर्यों से भिन्न थे। वर्तमान काल में इन दोनों जातियों का अपना कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, नाग देवताओं में परिणत हो गये और किन्नर केवल प्रदेश विशेष को अपना नाम दे कर लुप्त हो गए[6]। किन्नरों, विद्याधरों, यक्षों तथा गन्धर्वों के गणों को कश्यप की सन्तान अभिहित

1. N. M. Penzer—The Ocean of Story, Vol. I, Appendix I, P. 197-202, 203.
2. Ibid, Page 206.
3. नरेन्द्र नाथ बसु, पृ० 730।
4. Akshaya Kumari Devi—A Biographic Dictionary of Puranic Personages, Page 24.
5. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Part I, Page 258 B & Vol. II, Page 810 A.
6. पद्म चन्द काश्यप-कुल्लुई लोक-साहित्य (मूल प्रति शोध प्रबन्ध, पंजाब वि० वि० पुस्तकालय) पृ० 7-8।

किया जाता है। अलबरूनी किन्नर तथा यक्षों को हिमालय की आदिवासी जातियां मानता है[1]। किम्पुरुष भी आदिम जाति से सम्बन्धित थे। किम्पुरुषवर्ष हिमवत तथा हेमकूट पर्वत के बीच के स्थान को कहा जाता है[2]। कुछ विद्वानों का मत है कि किन्नरों का जन्म ब्रह्मा के पांव के अंगूठे से हुआ। उन्हें अश्व-मुख, तुरङ्गवक्तरस तथा मयु भी कहा जाता है[3]।

किन्नरों के वर्णन बौद्ध-धर्म कथाओं में भी आते हैं। चन्द किन्नर जातक[4] में बोधिसत्व के हिमालय-प्रदेश में किन्नर-योनि में जन्म लेने की बात वर्णित है। इस कथा के अनुसार काशी का राजा ब्रह्मदत्त हिमालय-भ्रमण के लिये गया। वहां चन्द किन्नर अपनी भार्या के साथ पर्वत से नीचे उतरा हुआ था। प्राकृतिक सौंदर्य से मुग्ध हो कर चन्द किन्नर ने बांसुरी बजा कर मधुर स्वर में गाना आरम्भ किया। चन्दा किन्नरी ने कोमल हाथों को झुका कर उसके समीप ही खड़े हो कर नृत्य तथा गायन किया। उस राजा ने उनकी आवाज सुनी तो छुप कर उनके समीप आया और किन्नरी पर आसक्त होकर चन्द किन्नर को गोली से मार दिया।

बोधिसत्व के मर जाने पर राजा निकला। किन्नरी ने उसे श्राप दिया कि उसे भी वही कष्ट मिले जो उसने किन्नरी को दिया है। चन्दा किन्नरी ने दूसरी गाथा कही :—

अपि नूनाहं मरिस्सं न च पनाहं राजपुत्त तव हेस्सं।
यो किंपुरिसं अवधि अदूसकं मय्हं कामाहि। 11।

—हे राजपुत्र ! तू ने मेरे निर्दोष किन्नर को मार डाला है। मैं मर भले ही जाऊं, किन्तु तेरी नहीं होऊंगी।

राजा के इस प्रकार चले जाने पर चन्दा ने बोधिसत्व को उठाया और कहा :—

ते पब्बता ता च कन्दरा ता च गिरि गुहायो,
तत्थं त अपस्सन्ती किंपुरिस कथं अहं कासं। 13।

—वे ही पर्वत हैं, वे ही कन्दरायें हैं, वे ही गिरि-गुफायें हैं, (किन्तु) जब तू उन में नहीं दिखाई देगा तो हे किन्नर ! मैं क्या करूंगी ?

दक्खगण सेविते गन्धमादने ओसधेहि संछन्ने
तत्थं तं अपस्सन्ती किंपुरिस कथं अहं कासं। 23।
किंपुरिस सेविते गन्धमादने ओसधेहि संछन्ने,
तत्थ तं अपस्सन्ती किंपुरिस कथं अहं कासं। 24।

1. देवेन्द्र कुमार राजा राम पाटिल, कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम दी वायु पुराण, पृ० 52।
2. D. C. Sirkar—Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, P. 62.
3. Dowson—A classical Dictionary of Hindu Mythology, P. 158.
4. भदन्त आनन्द कौसाल्यायन—जातक—चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ 486-492।

—यक्षों से सेवित, औषधियों से ढके गन्धमादन पर्वत पर जब तू दिखाई नहीं देगा तो हे किन्नर ! मैं क्या करूंगी ? किन्नरों से सेवित, औषधियों से ढके गन्धमादन पर्वत पर जब तू नहीं दिखाई देगा, तब मैं क्या करूंगी ? इत्यादि ।

महाकवि कालीदास ने अपने अमर ग्रन्थ कुमार सम्भव[1] में किन्नरों का मनोहारी वर्णन किया है । वे किन्नरियों के सम्बन्ध में लिखते हैं :—

> उद्वेजयत्यङ्गुलि पार्ष्णि भागान्मार्गे शिलीभूत हिमेऽपि यत्र ।
> न दुर्वह श्रोणिपयोधरार्ता भिन्दान्ति मन्दा गतिमश्वमुख्यः ।

—अंगुलियों तथा एड़ियों में सर्दी के कारण अतिशय पीड़ा का अनुभव करते हुए भी किन्नरियां अपने भारी नितम्बों तथा स्तनों के कारण अपनी मन्थरगति को नहीं बदल रही हैं ।

मेघदूत में वे लिखते हैं :—

> शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
> संरक्ता भिस्त्रिपुर विजयो गीयतं किन्नरीभिः ।
> निर्हादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्सं-
> गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र ।
>
> (पूर्वमेघः 1)

भावानुवाद :—वायु से भरे बांस मधुर शब्द कर रहे होंगे, प्रेम भरी किन्नरियां (महादेव द्वारा) त्रिपुरासुर की विजय का गान का रही होंगी । यदि कन्दराओं में तुम्हारा शब्द मृदग की ध्वनि के समान हो जाए (तो) सचमुच महादेव के संगीत की सारी वस्तुएं जुट जाएंगी ।

जम्बूद्वीप के राजा अग्निधर के 9 पुत्र थे जिन के बीच उसने सारे जम्बूद्वीप को बांट दिया था । उनमें से किम्पुरुष को हेमकूट मिला[2] । मत्स्यपुराण के अनुसार उन वर्षों की संख्या 9 के स्थान पर सात है और किम्पुरुषवर्ष को भारत के ऊपर की ओर स्थित बताया गया है[3] । विष्णु पुराण (II, 2/14) के अनुसार किम्पुरुषवर्ष 9000 योजन लम्बा है और हिमवतवर्ष से हेमकूट पर्वत तक मीरु पर्वत के दक्षिण में स्थित है । महाभारत सभापर्व के अनुसार यह धवल गिरि से पीछे हिमालय के उत्तर की ओर है । परन्तु मत्स्यपुराण (114/63), गरुड़ (55/2) के अनुसार यह उत्तर पूर्व में स्थित है । वामन पुराण (12/13) के अनुसार यहां के लोग बहुत सुन्दर और लम्बी आयु वाले हैं । कुछ पुराणों के अनुसार किम्पुरुषवर्ष को हेमकूटवर्ष भी कहा गया है[4] । भारतवर्ष को नौ भागों में बांटा गया था जिन में से इन्द्रद्वीप, ताम्रपर्ण,

1. प्रथम सर्ग, श्लोक 11-14 ।
2. A Critical Survey of the Geographical Material in the Nilmata, The Matsya, The Vishnu and the Vayu Purana—A copy of the Thesis for Ph. D. Degree in the Library of Delhi University submitted by Savitri Saxena, Page 39.
3. वही । पृ० वही ।
4. वही, पृ० 87 ।

गन्धर्व, नागद्वीप, वरुण, भारत आदि प्रसिद्ध हैं। किरात लोग नवम द्वीप के ठीक पूर्व में बसते हैं तथा यह समुद्र के बिल्कुल समीप है। यह बहुत दुर्भाग्य की बात है कि पुराणकारों ने केवल स्थानों के नामों, पर्वतों, नदियों तथा पवित्र स्थानों का वर्णन करके ही अपना भौगोलिक विवरण पूरा कर दिया है, उन्होंने कहीं भी उन की स्थिति तथा उन के सम्बन्ध में सीमाओं आदि का विवरण नहीं दिया है, इस दशा में हमें पुराणों पर किये गये बाद के कार्यों का ही सहारा लेकर निर्वाह करना पड़ता है[1]। बाल्मीकि ने गान्धार देश को गन्धर्व देश कहा है[2]। हिमालय पर्वत के निवासी गन्धर्व व किन्नर आदि नरदेव तथा अर्द्ध-मानव हैं[3]।

पुराणों में किन्नरों को दैवी गायक कहा गया है[4]। वे कश्यप की सन्तान हैं और हिमालय में निवास करते हैं। वायु पुराण के अनुसार किन्नर अश्वमुखों के पुत्र थे उन के अनेक गण थे और उनके मुंह घोड़ों के मुखों जैसे होते थे तथा वे नृत्य और गायन में प्रसिद्ध थे[5]। उन के देश में महादेव किरात के रूप में अवतरित हुए। इस से प्रतीत होता है कि किन्नर और किरातों में अन्तर नहीं था और वे हिमालय के बनों (यथा, उमा बन, सर वन, क्रौंच, शैल–वन आदि) में रहते थे। पुराणों में हिमालय की शृंखलाओं का वर्णन कवित्वमय है[6]। हिमालय में स्थित अनेक स्थानों पर किन्नरों के लगभग सौ शहर थे। यहां की प्रजा बड़ी प्रसन्न तथा समृद्धिशाली थी। इन राज्यों के अधिपति राजा द्रुम, सुग्रीव, सैन्य, भगदत्त आदि थे जो बहुत शक्तिशाली माने जाते थे। इस पर्वत पर महादेव की उमा के साथ शादी हुई थी। महादेव यहां किरात के रूप में रहे और उन्होंने पार्वती के साथ सारे जम्बूद्वीप का भ्रमण किया। रुद्र देव का खेल का मैदान भूतों, अद्‌भुत फूलों और फलों से भरपूर रहता है। इसमें प्रसन्नमुख किन्नरियां गुफाओं तथा पर्वतों पर निवास करती हैं[7]। किन्नरादि इन्द्रवन में खेलते हैं[8]। श्री ऐस० ऐम० अली के अनुसार हिमालय का वर्णन काशगर शृंखला पर पूरा उतरता है जहां लोग अब भी गुफाओं में रहते हैं[9]। परन्तु किन्नरों के पौराणिक वर्णन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उन का हिमालय के बहुत बड़े क्षेत्र पर अधिकार था और केवल एक शृंखला विशेष से सम्बन्ध स्थापित करने पर हम उनके गणों को भली प्रकार स्पष्ट नहीं कर सकते। पौराणिक हेम-कूट पर्वत की स्थिति हिन्दुकुश तथा कराकुरम पर्वतों के क्षेत्र में आती है[10]।

---

1. Ibid, Page 90.
2. Ibid, P. 163.
3. Ibid, P. 348.
4. भागवद् II, 10.38।
5. Puranic Index, Vol. I, P. 377.
6. The Geography of The Puranas—by S. M. Ali, Page 55.
7. Ibid, Page 75.
8. Ibid, Page 108.

9-10. Ibid, P. 106 and 112 Map showing places occured in the Puranas.

किन्नौर जिला तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ अन्य भागों में किन्नरों के निवास करने के सशक्त प्रमाण उपलब्ध हैं क्योंकि एक तो 'किन्नौर' अथवा 'कुनावर' शब्द का ही 'किन्नर' शब्द से साम्य है तथा दूसरे इस क्षेत्र में वर्तमान समय में लोक-परम्परायें तथा लोक-देवता इस बात को स्पष्टतया उद्घाटित करते हैं कि यहां प्रागैतिहासिक काल में विशिष्ट संस्कृति वाली जाति रहती थी। हिन्दी विश्वकोष का जो उद्धरण गत पृष्ठों में दिया गया है उसके अनुसार 'किन्नर' शब्द के दो पर्याय मयु तथा हरिणनर्तक भी आए हैं। यह सर्वविदित है कि मयु शब्द 'मय' के साथ सम्बद्ध है। मय असुर संस्कृति का एक शक्तिशाली योद्धा रहा है। बाणासुर मय वंश से था। किन्नौर के वर्तमान अट्ठारह देवी देवता बाणासुर तथा हिरमा (हिडिम्बा) की सन्तान माने जाते हैं। किन्नर को 'हरिण नर्तक' भी कहा गया है। किन्नर-क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक नाट्य 'होरिङफो' तथा कुल्लू व शिमला एवं सिरमौर के कुछ भागों में प्रचलित 'हरन' तथा 'हरण्यातर' 'हरिणनर्तक' शब्द के ही रूपान्तर हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक तथ्य इस विशिष्ट संस्कृति की ओर संकेत करते हैं। इन सभी बातों पर अगले अध्यायों में चर्चा की गई है।

खश

मनु के अनुसार क्षत्रिय जाति की व्रात्य शाखा से झल्ल, मल्ल, निच्छिवी, नट, करण, खश तथा द्रविड़ों का जन्म हुआ[1]। काश्मीर के राजा जैन-उल-अबीदीन (1420-70) ने गुग्गादेश (जो पश्चिमी तिब्बत का किन्नौर के साथ लगने वाला प्रान्त है) पर आक्रमण किया था और कुल्लू को भी तहस-नहस किया था[2]। इस प्रकार के आक्रमण केवल समीप के ही राजाओं द्वारा इस क्षेत्र पर नहीं हुए हैं बल्कि सिक्खों तथा गोरखों के आक्रमणों के सम्बन्ध में भी यहां गीत प्रचलित हैं। इन आक्रमणों के कारण बहुत अधिक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। बुशहर रियासत के कागज-पत्रों में किन्नर-क्षेत्र के सवर्णों को कनैत कहा गया है। पं० टीका राम जोशी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नोट्स आन एथनोग्राफी आफ् बुशहर स्टेट' में इन कनैतों का वर्ग-विभाजन भी प्रस्तुत किया है। वे यहां के कनैतों को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं परन्तु उन का अध्ययन इस सम्बन्ध में पूर्ण नहीं माना जा सकता क्योंकि अपनी पुस्तक में उन्होंने केवल कुछ ही राजपूत-वंशों की चर्चा की है[3]। कनैत शब्द की व्युत्पत्ति कुछ लोग कुनीत से तथा कुछ अन्य व्यक्ति कन्या—हेत से मानते हैं। कुनीत शब्द से व्युत्पत्ति मानने वालों का कहना है कि ये लोग धर्म-विरुद्ध आचरण करने वाले थे। कन्याहेत के साथ इस शब्द को सम्बन्धित करने वाले विद्वानों की धारणा है कि आरम्भ में आर्य राजपूत अपनी कन्याओं को मार डालते थे, उन राजपूतों में से वे व्यक्ति, जिन्हों ने इस प्रथा का पालन करना छोड़ दिया, कन्याहेत अर्थात् कन्याप्रेमी कहलाये[4]।

---

1. झल्लो मलश्च राजन्याद् व्रात्यन्निच्छिविरेव च।
   नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड़ एव च ॥-मनुस्मृति 10/22।
2. History of the Punjab Hill States by Hutchison & J. Ph. Vogel, Vol. II, Page 421.
3. Notes on The Ethnography of Busehar State–Pt. Tika Ram Joshi, Pp. 540-544.
4. पद्मचन्द्र काश्यप, मूल प्रति शोध प्रबन्ध 'कुल्लुई लोक-साहित्य' पृ० 95।

एक मत यह भी है कि कनैत 'कुलिन्द' शब्द का ही बिगड़ा रूप है और वे पर्वतीय भारत की इसी नाम की प्राचीन जाति से सम्बन्धित हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार वे उस खस अथवा खश जाति की सन्तान हैं जो वैदिक आर्यों के भारत में आने से पहले पश्चिम में सिन्धु नदी के पनढर से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के पनढर के बीच हिमालय प्रदेश में रहती थी और जिसे वैदिक आर्यों के आक्रमणों के कारण भाग कर पहाड़ों में बस जाना पड़ा।[1] इस मत को मानने में कठिनाई यह है कि यदि 'कुलिन्द' ही कनैत हों तो वे आरम्भ में प्रागैतिहासिक 'कुलिन्द' क्षेत्र के निवासी हुए। यह क्षेत्र वर्तमान 'कुल्लू' के साथ पर्याप्त शब्द-साम्य रखता है। दूसरे, खशों का आर्यों के आने से पहाड़ों में भाग जाना यह सिद्ध करता है कि यह जाति आर्य वर्ग से सम्बन्धित नहीं थी। खशों का अनार्यवर्ग से सम्बन्ध रखना वर्तमान समय तक के अध्ययनों से सिद्ध नहीं हो सका है अतः इस सम्बन्ध में हमें अन्य विद्वानों के मतों पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए। राहुल सांकृत्यायन भी कनैतों को खशों के अन्तर्गत मानते हैं।[2] खश जाति के सम्बन्ध में कन्निघम तथा इबट्सन आदि अंग्रेज विद्वानों का मत है कि वे हिमालय में आने वाले वैदिक आर्यों तथा यहां की आदिम-स्त्रियों की सन्तान हैं। डॉ० ग्रियर्सन[3] के अनुसार भारत के पश्चिमोत्तर में हिन्दुकुश पर तथा दक्षिण के पहाड़ी प्रदेश और पश्चिमी पंजाब में खश जाति निवास करती थी। इन लोगों को आर्यों ने अपने सामाजिक नियमों का उलंघन करने के कारण अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया था तथा बाद में इन्हें मलेच्छ कहा जाने लगा। मनुस्मृति की रचना के समय तक खश जाति अपना प्रभाव काफी अंश तक खो चुकी थी तथा महाभारत में तो उसे 'पाप जातियों' में भी गिना गया है।

खश तथा कनैतों के सम्बन्ध में अनेक अनुमान लगाए गए हैं तथा उन्हें एक तथा भिन्न वर्गों से सम्बन्धित बताया जाता रहा है। डॉ० वाई० ऐस० परमार[4] का कथन कि 'कनैत' दो शब्द 'कन' तथा 'ऐत' से बना है तथा 'कन' का पहाड़ी बोलियों में अर्थ 'कंस' और 'ऐत' का अभिप्राय 'पुत्र' होता है, भी विचारणीय है। इस व्याख्या के अनुसार 'कनैत' का अर्थ 'कंस की सन्तान' हुआ। यद्यपि वे कंस को दैत्य वंश से सम्बन्धित बताते हुए इस जाति को 'कंस की सन्तान' मानने से स्वयं इनकार करते हैं परन्तु कंस को कृष्ण का मामा होने का गौरव प्राप्त है। अपने स्वभाव तथा कृत्यों के कारण उसे अपमानित होना पड़ा। इसी कारण हम उसका सम्बन्ध दैत्य वंश से नहीं जोड़ सकते। 'कंस' के यहां अपने पुत्र होने का विवरण प्राप्त नहीं होता परन्तु उसके वंश के लोगों को उसकी सन्तान कहा जाना असंगत नहीं है। महाभारत की कथा लोक प्रचलित किम्वदन्तियों तथा कथा-रूपों पर आधारित है। यह आवश्यक नहीं है कि उस समय लोक में प्रचलित रूपों को यथावत लेखनीबद्ध कर लिया गया हो। एक महान् योद्धा को साहित्यकार अपनी भावनाओं के अनुसार चित्रित करता है। उसके गुणों अथवा दुर्गुणों को उभारना तत्कालीन वातावरण की मांग के अनुसार होता है। इस

---

1. कुल्लुई लोक-साहित्य—मूल शोध प्रबन्ध प्रति, पृ० 96, पद्म चन्द्र काश्यप।
2. कुमाऊं, पृ० 27, 28।
3. Linguistic Survey of the Panjab—Introduction Pp. 7, 8.
4. Polyandry in the Himalayas - Pp. 20—24.

प्रदेश के दुर्गम क्षेत्रों में प्रचलित 'शाठा और पाशा' के खेल जिनमें कौरवों का साठ तथा पाण्डवों का पांच होना बताया जाता है तथा जौनसार बाबर एवम् उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में दुर्योधन का देवता के रूप में पूजा जाना, लोक प्रचलित विश्वास के अनुसार हिरमा का पाण्डवों को अपने क्षेत्र से भगा कर बाणासुर से विवाह करना आदि ऐसी बातें हैं जो लिखित शास्त्रीय रूप से मेल नहीं खातीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय के एक भाग में आदिकाल से निवास करने वाली जाति खश ही थी। इसकी बोली आर्य भाषा से मिलती जुलती थी। खश वैदिक आर्यों से पूर्व हिमालय में आ गए थे। राहुल सांकृत्यायन अपने ग्रन्थ 'कुमाऊं' में खशों का आदि देश मध्य एशिया मानते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार खश कश्यप ऋषि की क्रोधवशा नामक पत्नी की सन्तान हैं। इसी पुराण के अनुसार वे पिशाचों तथा यक्षों के सहजातीय बन्धु थे। कल्कि पुराण में भी अन्य पर्वतीय जातियों के साथ खशों के वर्णन आए हैं। राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ कुमाऊं (पृ० 28) में रोमन इतिहासकार प्लीनी (78ई०) को उद्धृत करते हुए लिखा है कि सिन्धु और यमुना के बीच की पहाड़ी जातियां खश और क्षत्रियाणी (खत्री) हैं। उनके अनुसार उस समय खश जाति अपने वर्तमान निवास कुमाऊं और नैपाल से बहुत पश्चिम में रहती थी और टौंस तथा शारदा (काली) के बीच की भूमि में तंगण और किरातों का निवास था। उन का यह मत कि शक और खश मूलतः एक ही जाति थी, तथ्यों पर आधारित प्रतीत नहीं होता क्योंकि अनेक ग्रन्थों में इन दोनों जातियों के अलग उल्लेख उपलब्ध हैं। उनका कथन है कि शकों की भांति खशों में भी सामर्थ्यानुसार मुर्दों को अच्छी प्रकार से समाधि देने की प्रथा थी और उनके (खशों के) विस्तार के अनुरूप ही ये कब्रें लद्दाख, लाहुल, चम्बा, किन्नौर से कुमाऊं तक मिलती हैं। प्रश्न यह है कि यदि शक और खश एक ही वंश के लोग थे और वे मुर्दों को समाधि देते थे तो कालान्तर में खश वर्ग में ये कब्रें बनाना बन्द क्यों हुआ? अपने ग्रन्थ 'किन्नर देश' में भी उन्होंने मुसलमानों की कब्रों (खछे रोङ्खङ्) से सम्बन्धित विश्वास को चुनौती दी है परन्तु इस सम्बन्ध में वे सशक्त प्रमाण नहीं दे सके हैं। कानम गाँव में 'खछे लागङ्' (मुसलमानों का बौद्ध मन्दिर) यह सिद्ध करता है कि इस क्षेत्र में मुसलमान काश्मीर, अफगानिस्तान तथा तिब्बत आदि की ओर से आते रहे हैं और उन्हें बौद्ध-धर्मानुयायी होने पर भी स्थानीय निवासियों के बौद्ध-मन्दिरों में जाने की आज्ञा नहीं होती होगी। स्पष्टतः इसी लिए उन्हें अपने लिए अलग बौद्ध-मन्दिर बनाने की आवश्यकता पड़ी होगी। मुसलमान व्यापारियों के दिए हुए पत्थर के मोटे बर्तन किन्नर-क्षेत्र में अब तक भी लोगों के पास सुरक्षित मिल जाते हैं। इस क्षेत्र में अब किसी जाति के लोग इस प्रकार के बर्तन नहीं बनाते। अतः स्पष्ट है कि राहुल सांकृत्यायन का खशों में कब्रों की प्रथा का प्रचलन बताना भ्रांति पूर्ण है। किन्नर जाति खश जाति का एक अंग थी अथवा उससे भिन्न वर्ग रहा है, जब तक इस सम्बन्ध में सांस्कृतिक तथा पुरातात्त्विक अध्ययन के आधार पर निर्णय नहीं हो जाता, मुसलमान पठानों की कब्रों को हमें इस जाति के साथ पूर्वाग्रह के आधार पर नहीं जोड़ना चाहिए। शक सूर्य पूजक थे परन्तु खशों में यह प्रथा अधिक प्रचलित नहीं है। डॉ० परमार[1] का यह मत कि

1. **Polyandry in the Himalayas—Page 22.**

'कन' शब्द का अर्थ 'धनुष' भी लिया जाता है, अतः शायद कनैत जाति तीर चलाने वाली रही हो, भी उल्लेखनीय है। खशों में तीरों के साथ 'ठोडा' जैसे नृत्य अब भी प्रचलित हैं।

मत्स्य पुराण में लिखा है कि दक्ष की दस पुत्रियों अदिति, दिति, दानू, अरिष्टा, सुरस, सुरभि, विनता, तमरा, कादू तथा विश्वमुनि के विवाह कश्यप के साथ हुए। वे ही सम्पूर्ण सृष्टि की माताएं हुईं। अदिति ने बारह आदित्यों को जन्म दिया। ऋग्वेद में अदिति के आठ पुत्र बताए गए हैं तथा अथर्व वेद में उसे अष्टयोनि कहा गया है। दिति के हिरण्यकश्यपु तथा हिरण्यक्ष पुत्र हुए[1]। सम्भवत: खश भारत में 1500 और 1000 पूर्व प्रविष्ट हुए।[2] महाभारत, वायुपुराण (45/116) तथा मत्स्य पुराण (114/49) के अनुसार वे उत्तर में रहने वाले थे। महाभारत में वे विदेह, मागध, पुन्द्र, मालव, दरद, बर्बर, चीना, ओदरा, पह्लव, गान्धार, कुरु, पुलिन्द आदि अनेक जातियों के समकक्ष कहे गए हैं। वे घुमक्कड़ थे और जंगलों व गुफाओं में रहते थे। राजपूत, गुज्जर, जाट तथा अहीर उन्हीं की सन्तान हैं।[3] गुप्तों तथा हूणों के आक्रमणों के कारण उन में से बहुतों को हिमालय में शरण लेनी पड़ी।[4] शकों में से कुशान बादशाहों ने हिन्दु धर्म को अपना लिया था। महाभारत के सभापर्व में बताया गया है कि खश हिमालय के दक्षिणी अंचल में पंजाब से नैपाल तक रहते थे तथा किरातों के बन्धु थे। गंगा व यमुना का उत्तरी भाग 'कौलिन्द' कहलाता था। वे आधुनिक कनैत हैं और वर्तमान कुल्लू तथा शिमला की पहाड़ियों के क्षेत्रों में हिमालय की ढलानों के साथ सतलुज के दोनों ओर रहते हैं।[5] किरात चपटे नाक वाले आदिम जाति के लोग थे और वे जंगलों में रह कर शिकार पर अपना निर्वाह करते थे।[6]

खश आर्यों से काफी पहले भारत में आए और गिलगित तथा कराकुरम क्षेत्रों से लेकर नैपाल तक फैले। उस समय हिमालय के बहुत बड़े भाग पर किन्नर-किरातों का प्रभुत्व था। आर्य तथा खश-वर्ग के लोगों ने इन जातियों को जंगलों तथा अन्य क्षेत्रों में भगा दिया तथा अपने अधीन कर लिया। खश तथा वैदिक आर्य एक ही वंश से सम्बन्धित होने के कारण मेल-मिलाप से रहे[7]। ग्रियर्सन ने खशों को आर्य-भाषा-भाषी आदि निवासी बताया है।[8] पंजाब तथा हिमालय के आर्य-वर्ग में बहुपति-विवाह प्रथा का प्रचलन यहां की आदिवासी जातियों के प्रभावान्तर्गत माना जाता है। मैक्समूलर

---

1. मत्स्यपुराणानुशीलनम्—वासुदेव ऐस० अग्रवाल, पृ० 72.
2. Gerald D. Berreman–Hindus of the Himalayas, page 17.
3. A Critical Survey of the Geographical Material in the Nilmata, The Matsya, The Vishnu and Vayu Purana. (A copy of the Thesis for Ph. D. Degree in the Library of Delhi University).
4. हिमालय परिचय, प्रथम भाग, पृ० 64—राहुल सांकृत्यायन।
5. A Critical Survey of the Geographical Material—Pp. 189—190.
6. Ibid., 323.
7. Ibid., Page 336.
8. L.S.I. Vol. IX, Part IV, Page 373.

के अनुसार आर्य कोई जाति नहीं थी[1] बल्कि एक प्रकार की भाषा प्रयुक्त करने वाला समूह था। जनरल कनिंघम का मत है कि कुल्लू के निवासी कनैत मुण्डावंश का सम्मिश्रण हैं।[2] पाराशर संहिता में कुनिन्द आदिवासी कहे गए हैं तथा उनके देश का नाम 'कौनिन्द' बताया गया है। मार्कण्डेय पुराण में 'कुनिन्द' के स्थान पर 'कुलिन्द' शब्द का प्रयोग किया गया है। शरतचन्द्र राय के अनुसार कुलिन्द शब्द मुण्डा (कोल) जाति के लोगों के लिए ही प्रयुक्त होता था। उनके अनुसार कनैत हिन्दी की एक बोली का प्रयोग करते हैं परन्तु इस बोली में मुण्डा शब्दों का बाहुल्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि खश जाति का जो भाग खनन (खुदाई), अर्थात् हल चला कर खेती करता था, कालान्तर में 'खनैत' कहलाया और उन्हें ही 'कनैत' कहा जाने लगा। खशों के अनेक खून्द (वीर वंश) शिमला जिला की चौपाल तहसील में रहते हैं, इनमें अभी भी मातृसत्तात्मक व्यवस्था है तथा वधु बरात लेकर वर के घर जाती है। बढ़ाली खून्द के गीत के इन बोलों से इनकी वीरता पर प्रकाश पड़ता है—

ओर कौरा खौशिया गौला ओ बाता।
त्यारे नाईं पाइन्दा पाणी दे लाता॥

"और खश केवल बातें ही करते हैं परन्तु तुम्हारी तो जूतियों में भी कोई पैर नहीं रख सकता।"

कुछ विद्वान वैदिक काल की 'दस्यु' जाति को कोलवंश से सम्बन्धित बताते हैं। इन्हें ही असुर नाम से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार आर्यों ने शम्बर को हराया, वह कुलितारा का पुत्र था। आर्यों ने कोलों को पर्वतों की ओर भगाया तथा स्वयं गंगा तथा सिन्ध के मैदान में बस गए। महाभारत के भीष्मवध पर्व (117.23 तथा 117.25) में सात्यकि मुण्डा जाति के लोगों की तुलना दानवों से करते हुए कहता है—

'मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासव:।'

अर्थात्, मैं इन मुण्डाओं को इस प्रकार मारूंगा जैसे इन्द्र ने दानवों को मारा।[3] कुछ विद्वानों के मतानुसार मुण्डा लोग अपने मूल निवास स्थान अरावली और विन्ध्य पर्वतमालाओं से भारत के उत्तरी भागों की ओर बढ़े और उत्तरी भारत की नदियों के किनारे बसे।[4] हिमाचल प्रदेश के वर्तमान निवासियों में मुण्डा वर्ग की भाषा तथा संस्कृति का मिश्रण किस अंश तक है, इसका निर्धारण कर पाना अभी तक किए गए अध्ययनों के आधार पर सम्भव नहीं हो सका है। जनरल कनिंघम का यह केवल अनुमानमात्र था कि सम्भव है इन क्षेत्रों के निवासियों की भाषा व संस्कृति में मुण्डा

---

1. "There is no Aryan Race. Aryan is in Scientific language utterly inapplicable to race. It means a language and nothing but a language."

—Max Muller—Biographies of Words and the Home of the Aryans, Pp. 89—90 as quoted by R. N. Saxena in 'Social Economy of a Polyandrous People, page 22.

2. "The Mundas and their Country", Page 51—Sarat Chandra Roy.
3. The Mundas and their Country—Sarat Chandra Roy, Pp. 60—86.
4. Ibid, Pp. 26—27.

जातियों के संस्कारों का मिश्रण हो गया हो परन्तु बाद के विद्वानों ने इसे 'वेद वाक्य' मान कर इसी धारणा के वशीभूत होकर मुण्डावर्ग को हिमालय के इस क्षेत्र के साथ सम्बद्ध कर दिया।[1] यद्यपि हिमालय क्षेत्र की बोलियों पर व्यवस्थित अनुसन्धान तथा सर्वेक्षण नहीं हुआ परन्तु उनके कुछ शब्दों तथा व्याकरण के छिटपुट रूप से समान प्रतीत होने वाले अंशों के आधार पर इन बोलियों पर मुण्डा-भाषाओं का प्रभाव सिद्ध करने के प्रयत्न हुए। जैसा कि हम अगले पृष्ठों में देखेंगे, किन्नर-क्षेत्र की बोलियों पर भी संस्कृत व्याकरण के अधिकांश नियम लागू होते हैं। यह स्वयं अंग्रेज विद्वानों ने भी स्वीकार किया है कि कनैत क्षेत्र की बोलियां, खश बोलियों की भांति, हिन्दी का अपभ्रंश रूप हैं परन्तु इनमें अनार्य वर्ग की भाषाओं के लक्षण विद्यमान हैं। उदाहरण-स्वरूप यह कहा गया है कि पानी के लिए 'ती' शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण कुनैत क्षेत्र में होता है।[2] इस शब्द का सम्बन्ध मुण्डा शब्द 'दा' के साथ बताया गया है और सोमा डि कोरस (Csoma de korosi) के एक लेख[3] के उद्धरण से सिद्ध होता है कि कोलवर्ग की भाषाओं के साथ इस शब्द का साम्य है। पानी के लिए तमिल में 'तण्णि' तथा मलयालम में 'चीत्त' शब्द प्रचलित हैं, उनका सम्बन्ध भी 'ती' शब्द से प्रतीत होता है। बाद के विद्वानों, यथा, ग्राहम बैली, जास्चे (Jas'che) तथा ब्रस्के (Bruske) आदि के अध्ययनों के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन ने इन बोलियों पर मुण्डा-प्रभाव सिद्ध करने का

1. "All the ancient remains within the present area of kunet occupations are assigned to a people who are variously called Mowas, or Mons, or Motans, and all agree that they were the kunets themselves...... At Dwara Hath there are numbers of monuments like tombs built of large flat tiles, which the people attribute to the Maowis or Monas. These I take to be the monuments of the ancient kunindas or kunets before they were driven from Dwara Hath to Joshi Math......In Dhami and Bhagal and in all districts along the Satluj there are numerous remains of old stone buildings, many of them foundations of squared stones, all of which are attributed to the Maowis or Mons, the former rulers of the country......I think it therefore, very probable that the Mons of the Cis-Himalaya may be connected with the Mundas of Eastern India, who are certainly the Monedes of Pliny, as well as with the Mons of Pegu."

   —Archaeological Survey of India, Vol. XIV, Pp. 125—135 as quoted by Gustav Oppert, Ph.D. in 'The Original Inhabitants of India' at Page 213—214.

2. The language of the kunets, like that of khas, just described by Mr. Hodgson, is a corrupt dialect of Hindi, but it still retains several traces of a non-Aryan language. Thus the word 'Ti' for water of stream, is found all over the kunet area. The word is not Tibetan, but occurs in Milchang dialect of lower kunawar.

   See—The Original Inhabitants of India, Footnote P. 214.

3. Geographical Notice of Tibet'—Bengal Asiatic Society's Journal, Vol. I, Pp. 122-133, as quoted by Gustav Oppert, P. 214-215.

यत्न किया। इस सम्बन्ध में किन्नर-बोलियों से सम्बद्ध अध्याय में विचार किया गया है।

यह निश्चित है कि किन्नर-क्षेत्र के प्राचीन निवासी 'मोन' जाति से सम्बन्धित थे, क्योंकि, जैसा कि अन्यत्र भी बताया गया है, किन्नौर के महत्वपूर्ण गाँव 'कामरू' जहाँ प्रागैतिहासिक कालीन दुर्ग में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तक रामपुर बुशहर के राजाओं के अभिषेक की प्रथा रही है, का स्थानीय नाम 'मोने' रहा है। 'मोने' शब्द का स्पष्टतया 'मोन' जाति से सम्बन्ध है। परन्तु 'मोन' जाति कौन थी तथा किन्नौर के साथ उसके क्या सम्बन्ध थे, यह प्रश्न विचारणीय है। अब हम मोन जाति के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराओं पर विचार कर लेने की स्थिति में आ गए हैं।

मोन :

मोन जाति के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। जङ्स्कर में सभी भारतीयों को, भले ही वे काश्मीरी, डोगरा अथवा किसी अन्य वर्ग के हों 'मोन' कहा जाता है[1]। ए०ऐच० फ्रैंके के विचारानुसार 'मोन' भारतीय आदिम-जाति थी तथा इस प्रजाति के लोगों के मुख्य पशु 'क्याङ्' (जंगली बकरा तथा जंगली याक) पश्चिमी क्षेत्रों की चरागाहों में काफी दूर तक विचरते थे। ऐच० ए० रोज़ का कथन है कि इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि लामा-धर्म के आगमन से पूर्व वर्तमान तिब्बती-वर्ग के साथ इस जाति के कुछ सम्बन्ध रहे हों क्योंकि पूर्व-बौद्ध कला के कुछ अवशेष जिनका इस जाति से सम्बन्ध है, जङ्स्कर और लद्दाख में प्राप्त होते हैं।[2] तिब्बत के जङ्स्कर क्षेत्र में वर्तमान समय में इस जाति के लोग अछूत समझे जाते हैं तथा बढ़ईगिरी आदि के कार्य करते हैं। यह विचित्र संयोग है कि किन्नर-क्षेत्र की देव-गाथा सम्बन्धी गीत में बाणासुर तथा हिरमा के एक दूसरे को अचानक मिल जाने पर बाणासुर हिरमा से पूछता है कि वह कहां से आ रही है। हिरमा उत्तर देती है कि वह कुल्लू क्षेत्र से आ रही है, परन्तु हिरमा द्वारा ऐसा ही प्रश्न पूछे जाने पर 'बाणासुर देव' उसे उत्तर देता है कि वह 'गूंगे चन्तरङ्' से आ रहा है। कौन नहीं जानता कि 'गुगा प्रदेश' पश्चिमी तिब्बती का किन्नौर के साथ लगने वाला क्षेत्र है तथा 'चन्थङ्' क्षेत्र पर भारतीय हिन्दु राजाओं का प्रर्याप्त समय तक अधिकार रहा है। 'चन्थङ्' क्षेत्र की राजधानी 'चपरङ्' नामक स्थान पर थी।[3] 'चन्थङ्' अथवा

---

1. History of Western Tibet—A. H. Francke, Pp. 20—21.
2. A Glossary of Tribes and Castes of North Western Province and Panjab, Vol. I, Page 35.
3. "Chanthan (now in Tibet) was formerly subject to Independent princes, but their authority gradually merged into the Supremacy of the Chief Pontiff of Lassa—Moorcraft, II, 364. These independent Princes were Hindoos; and claimed a Rajput descent. Their Chief place was Chaprang on the Sutlej, and they ruled over the districts around the Mansarovar lake, and westward, as far as Ladakh. The Pitti Valley was also their's."

—Journal of Asiatic Society of Bengal, Part I and II (New Series), Vol. XIII Nos. *145 to 150, 1844,* Page 231.

'चपरङ्' का शुद्ध रूप 'चन्तरङ्' में परिवर्तित हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। दिलचस्प बात तो यह है कि लोकगीतों के गायक यह नहीं जानते कि यह क्षेत्र कहां है। 'चन्तरङ्' में हिन्दु राज्य की स्थापना यह सिद्ध करती है कि बाणासुर का सम्बन्ध आर्यवंश से रहा है। इस प्रकार यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि 'मोन' आरम्भ में तिब्बत के इस भारतीय क्षेत्र में प्रभुत्वसम्पन्न थे तथा बाणासुर उनका महान् नेता था। कालान्तर में अन्य जातिओं से युद्धों के कारण वे तिब्बती-क्षेत्र में वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए। कुछ विद्वान[1] 'मोन' को 'मनु' के समीप का शब्द बतलाते हैं परन्तु शब्द-साम्य होने के अनन्तर भी 'मोन' जाति को मनु से सीधा सम्बन्धित मानने में अनेक कठिनाइयां हैं। मनु मानव इतिहास का आदिपुरुष माना जाता है जब कि मोन एक वर्ग–विशेष का नाम है। यहां यह स्पष्ट कर दिया जाना युक्ति संगत है कि 'मोन जाति' के लोगों को तिब्बत के प्राचीन धर्म 'बोन' के साथ सम्बन्धित करने की भूल नहीं की जानी चाहिए। 'बोन धर्म' अन्ध-विश्वासों तथा लामाओं का धर्म था और इसकी साधना-पद्धति के अनुसार साधारण नागरिक इस में अधिक योगदान नहीं दे पाते थे। इसमें लामा ही रहस्यपूर्ण सिद्धियों के द्वारा चमत्कार दिखाते थे। दूसरे, बोन-धर्म के समानान्तर तत्कालीन समाज में तिब्बत-क्षेत्र में किसी अन्य धर्म के प्रचलन का पता नहीं चलता अतः 'बोन' को 'मोन' के साथ सम्बन्धित नहीं किया जा सकता।

वाराहमिहिर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वृहत संहिता (अध्याय xiv, श्लोक 22-29) में तत्कालीन जातियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि पश्चिम दिशा में माण्डव्य, तुखारा, तलहला, मद्र, असमक, कुलूत, लाहदा, स्त्रीराज्य, नरसिंह तथा बनखस्थ जातियाँ रहती थीं। इसी ग्रन्थ (श्लोक-29) में पुष्पल, किर, कश्मीरा, अभिसर, दरद, तंगण, कुलूत, सैरिन्ध तथा बनराष्ट्र आदि जातियों का संकेत भी दिया गया है।[2] उक्त श्लोक में 'असमक' शब्द से 'अश्वमुख' जाति का अनुमान लगाया जा सकता है। 'अश्वमुख' किन्नरों को कहा जाता था। सम्भवतः 'लाहदा' लाहुल के रहने वाले थे। इन्हें कुनिन्द्रिन अथवा क्तुलिन्द्रिन (Ktulindrine) भी कहा गया है। कुलिन्द्रिन क्षेत्र के साथ सुलिन्द्रिन अथवा जालन्धिन (जालन्धर) का सम्बन्ध भी स्थापित किया जाता है।[3]

सर अलैक्जेण्डर कनिंघम कुनिन्द अथवा कुलिन्दों को ही आधुनिक कनैत मानते हैं[4]। वाराहमिहिर ने कुनिन्दों के राजा का भी वर्णन किया है। यह लगभग 560 ई०

---

1. कुलूत देश की कहानी—लालचन्द प्रार्थी, पृ० 89।
2. The Original Inhabitants of India—Gustav Oppert, 1894, Pp. 143—144.
3. Ancient Geography of India, Pp. 236—138.
—A. Cunningham as quoted by Gustav Oppert at Page 143.
4. "The origin of the bulk of the population in the Valleys of the Bias, the Satluj and the Tons rivers, has long engaged my attention; and I believe that I have now solved the puzzle by identifying them with the kunindas or kulindas of early Hindu history."
—Arch. Survey of India, Vol. XIV, Pp. 125—135.

की बात है। परन्तु ई० पूर्व काल के (राजन्य कुनिन्दसा) कुनिन्दराज का भी पता चला है।[1]

जनरल कनिंघम का कथन है कि कुनिन्द, कौलिन्द तथा कुलिन्द एक ही जाति थी तथा वे लोग पहाड़ों के 'अंचल' (कुलिन्दोपत्यका) में निवास करते थे। वे कुलिन्दों की राजधानी श्रुघ्न (Shrughna) में होना बताते हैं[2]। श्रुघ्न का शब्द-साम्य 'सराहन' के साथ है। सराहन अथवा शोणितपुर रामपुर बुशहर के पास एक सुन्दर स्थल है जहां प्राचीनकाल से बुशहर राज्य की राजधानी रही है।

जहां जनरल कनिंघम कनावर के 'मोन' लोगों को कोल-मुण्डा लोगों के साथ सम्बद्ध बताते हैं वहां गस्टव ऑपरट उन्हें गौड़-द्रविड़ जाति के साथ सम्बन्धित करते हैं।[3] उनका कथन है कि जनरल कनिंघम ने प्रतिभापूर्ण अथक शोध की है परन्तु कोई भी व्यक्ति भले ही कितना प्रतिभा सम्पन्न क्यों न हो यत्र तत्र भूलें किए बिना इतना अधिक नहीं लिख सकता[4]। उनके अनुसार 'मोन' का अर्थ गौड़-द्रविड़ भाषाओं के अनुसार 'पर्वतीय' होता है। वे 'कुनावर' शब्द के 'कु' को भी 'पर्वत' अर्थ में प्रयुक्त हुआ मानते हैं[5]। उनका यह कथन है कि आर्यों के भारत में आने से पूर्व यहां जो जातियां मूल निवासियों के रूप में निवास कर रही थीं उनमें से अधिकांशतः पर्वतों के साथ सम्बन्धित थीं। वे इन मूल निवासियों को गौड़-द्रविड़ के नाम से अभिहित करते हैं।

1. Ibid, Pp. 125—135, 137—139.

2. "In the Vishnu Purana I find not only the kulindas but also kulindopatyakas or kulindas dwelling along the foot of the hills ! Which describes exactly the tract of plain country bordering the hills in which Srughna, the capital of kaunindas was situated".

   Ibid. Alexander Cunningham as quoted by Gustav Oppert in Original Inhabitants of India, Page 144.

3. "On very slight, and, as I think, on very suspicious linguistic evidence does General Cunningham connect the Mons of kunawar with the kolarian Mundas, and thus with the kolarian population of India. I, on the other hand, regard these kunawari Mons together with the kulindas as a branch of the Gaudian tribe of the Gauda - Dravidian race, and even Sir Alexander Cunningham cannot deny the possibility of "a Gondish affinity for the kunets".

   —The Original Inhabitants of India—Pp. 213—214.

4. Ibid, P. 213.

5. Ibid, Page 214—"If the kunets or kunawaris are, as I believe, of Gaudian origin the circumstance of their being called Mon, mountaineer, gains in importance ; for this name can then be derived from Gauda—Dravidian word. I feel inclined to derive the name of the inhabitants of kunawar, i. e. the ancient kulindas and the modern kunets, from the root 'ku' mountain."

उन्होंने भारत की इन जातियों के मूल में प्रयुक्त होने वाले दो शब्दों[1] 'मल' तथा 'को' के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि इन दो शब्दों से ही भारतवर्ष की अनेक जातियों के नाम आरम्भ होते हैं और इनका अर्थ 'पर्वत' होता है। इस प्रकार 'कुनावर' का आरम्भिक शब्द 'कुन' 'पर्वत' का द्योतक है। बहुत सम्भव है 'आवर' फारसी का शब्द इसके साथ मिल गया हो और इस प्रकार इस का अर्थ 'पर्वत से आने वाला' हो गया हो। किन्नर बोली में अनेक शब्द, यथा, कोडू-चोटी, जिसका प्रचलित रूप 'कण्ठा' हो गया है इस प्रकार द्रविड़ भाषाओं के साथ सम्बन्धित हैं। 'क' का 'ख' 'ग' और 'घ' में परिवर्तन अथवा इनका आपस में बदल जाना द्रविड़ भाषाओं की विशेषता[2] है। यह बात पहाड़ी भाषा में भी यत्र-तत्र दिखाई देती है परन्तु द्रविड़ भाषाओं की यह प्रवृत्ति कि 'फ' को 'प' हो जाना, यथा—फलम का पलम (तामिल), ल की तीन ध्वनियां, र तथा ड़ का सम्बन्ध, ब का प, यथा—ब्रह्मा से पिरामा, प्रबन्ध—पिरापन्तम्, ग्रन्थ-किरन्तम् आदि किन्नर बोलियों में देखने में नहीं आती। अर्द्ध व्यञ्जनों का शब्द के आरम्भ में जुड़ जाना, यथा, बेला से येला, वेसा से येसा आदि पहाड़ी बोलियों में नहीं प्रयुक्त होते।

सिन्धु संस्कृति, जो मूल रूप में द्रविड़ संस्कृति कही जाती है, हिमाचल प्रदेश के निवासियों तथा जन-परम्पराओं के अध्ययन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह सभ्यता हिमाचल प्रदेश के समीपस्थ क्षेत्र रोपड़ तक फैली हुई थी। अतः निश्चय ही विप्लव अथवा सांस्कृतिक समन्वय के समय इसके अवशेष इस क्षेत्र के अनेक भागों में सुरक्षित रहे होंगे। पार्जिटर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक एज' (पृ० 164) में बताया है कि 'हनुमान' शब्द द्रविड़ भाषा के 'अणमन्ति' का अपभ्रंश है। 'अणमन्ति' का अर्थ 'नरबन्दर' होता है परन्तु हनुमान की पूजा राम-भक्त तथा शक्तिशाली पवन-सुत के रूप में की जाती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हमारा विवेच्य विषय 'किन्नर जाति' है अतः हमें इस शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करना होगा। कुनावर शब्द से 'किन्नर' बन जाना संस्कृत की प्रकृति के अनुकूल है। संस्कृत में द्रविड़ तथा अन्य भाषाओं की अपेक्षा उच्चारण सम्बन्धी दुरूहता का पुट रहता है। इस में अनेक शब्दों को संस्कृत-मनीषियों ने अपनी आवश्यकतानुसार बदल लिया है और उन्हें इस प्रकार इस भाषा में आत्मसात कर लिया गया है कि अब उनके प्राचीन रूप व परिवर्तन की आवश्यकता के सम्बन्ध में कुछ भी कह पाना कठिन है[3]।

हिमालय क्षेत्र में किन्नरों के साथ जिस जाति का अनेक बार उल्लेख आता है

1. The Original Inhabitants of India—Pp. 13-14.
2. Ibid, Page 111.
3. Sanskrit prefers on the whole a form whose pronunciation is more difficult than what satisfies the Dravadian languages. Some of these changes may have been made for reasons of which we are now ignorant."

—Original Inhabitants of India, Page 72.

वह किरात है। महा भारत में किरातों को हिमवन्त के निवासी बताया गया है।[1] कुछ लोग किरातों को ही 'दस्यु' संज्ञा से अभिहित करते हैं। ऋक्संहिता में दास-दस्युओं के वर्णन आए हैं उनके अनुसार उन्हें मृद्धवाक् (अपरिचित भाषा में बोलने वाला), अकर्मन अदेवयु तथा 'शिश्नदेव' आदि कहा गया है।[2] सिन्धु-सभ्यता के अध्ययन से लिंग-पूजा का प्रचलित होना स्पष्ट होता है तथा पुरातात्विक शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता के लोग जिस देवता की पूजा करते थे वह वर्तमान शिव ही है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयों में प्राप्त वृषभ-प्रतिमा को नन्दी का रूप माना जाता है।[3] किन्नर बोली में देवता के लिए 'शू' शब्द प्रयुक्त होता है। इस वर्ग के प्रधान देवी-देवता असुर वंश से सम्बन्धित हैं। इस क्षेत्र के अट्ठारह प्रधान देवी-देवताओं का पिता बाणासुर तथा माता हिरमा (हिड़िम्बा) है। कोठी तथा निचार गाँवों की देवियां चण्डिका तथा ऊषा उनकी बहिनें हैं। लाहुल-स्पीति, कुल्लू, शिमला जिला तथा किन्नर-क्षेत्र में अनेक ऐसे मन्दिर हैं जिनमें प्रागैतिहासिक काल से शिवलिंगों की स्थापना है। शरद्ऋतु में इस क्षेत्र के देवी-देवता अपनी प्रजा हेतु वर्ष भर के लिए सुख-समृद्धि लाने के उद्देश्य से इन्द्रलोक जाते हैं। उस समय इन शिवलिंगों में घी मल कर, देवता की पालकी के कपड़े लपेट कर देव-मुखड़् (धातु के चेहरे) सजा दिए जाते हैं। जब देवता स्वर्ग से निश्चित् अवधि के पश्चात् वापिस लौटता है तो पुजारी शिवलिंग के गिर्द लपेटे गए कपड़े को सावधानी से अलग करता है और देख कर यह पता लगाता है कि वर्ष भर में लोगों को क्या क्या वस्तुएं सुख-समृद्धि लाएंगी। उदाहरणत: यदि उस कपड़े में अनाज के दाने मिलें तो धन-धान्य की वृद्धि तथा यदि कोयले-पत्थर हों तो अपशकुन माना जाता है। इस क्षेत्र में माघ पवित्रतम महीना माना जाता है। 'माहङ् साङा' अर्थात् '15 माघ' बड़ा त्यौहार होता है। इसी मास में देवता स्वर्ग जाते हैं। शिव पुराण तथा लिंग पुराण में कथा आती है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु में इस बात पर झगड़ा हो गया कि दोनों में बड़ा कौन है। जब वे समझौता नहीं कर पाए तो उनके सामने हजारों लपटों वाला लिंग प्रकट हुआ। इस चमत्कार के कारण उन्होंने लड़ना बन्द कर दिया। बाद में दोनों को शिवजी का पता लग जाने पर उन्होंने उसे महान् देवता मान लिया। यह मार्गशीर्ष का महीना था, तभी से इस मास में शिवरात्रि मनाई जाती है और ईशुर महादेव को भेंट पूजा दी जाती है। इस क्षेत्र में शिवरात्रि के दिन बकरे काटने की प्रथा है। इसका अर्थ शिवजी पर बलि-मांस चढ़ाना होता है। माघ मास में गौवध तथा गौमेध प्रथाओं का साक्ष्य महाभारत के भीष्म पर्व से भी प्राप्त होता है।[4] ईशुर महादेव स्थानीय देवताओं की पालकी का प्रधान मुखड़् (चेहरा) होता है तथा अट्ठारह चेहरों में से दो अन्य प्रमुख मुखड़् 'गोरे' व 'गंगे' के हैं। गोरे व गंगे किन्नर पुराण-कथा के अनुसार बर्फ के राजा युकुन्तरस

---

1. महाभारत 7.4.7, हिमवद् दुर्गनिलया: किराता:।
2. ऋ० 7.21.5 ; 10.99.3
3. उत्तर-वैदिक कालीन समाज एवं संस्कृति : एक अध्ययन, विजय बहादुर राव, पृ० 8, 11-23।
4. The Illustrated Weekly of India—March 9, 1975, Pp. 6-15, 17.

की लड़कियां थीं, इनके विवाह 'ईशुरस' से हुए थे। सारांश यह है कि शिवजी यहां का प्रधान देवता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'शू' शब्द ही कालान्तर में 'शिव' बन गया। नारायण देवता शिवजी अथवा महेशुर (महासुर) देवताओं के सहायक माने जाते हैं। इस क्षेत्र के लोगों का विशिष्ट परिधान गोल टोपी, छुबा (लम्बा इकहरा कोट) एवं दोहड़ू व गाची (कमरबन्ध) भी यहां की विशिष्ट संस्कृति के द्योतक उपकरण हैं।

राहुल सांकृत्यायन किरातों के सम्बन्ध में लिखते हैं—ये लोग हैं, चम्बा के लाहुली, लाहुल के निम्न भागों के निवासी, कुल्लू के मलाणा गांव के वासी, ऊपरी सतलुज के किन्नर या कन्नौर, माणा-नीती के मारछा, अस्कोट (अल्मोड़ा) के राजी या राज-किरात, पश्चिमी नैपाल के मगर, गुरंग, मध्य नेपाल के तमंग, नेपाल उपत्यका के नेवार पूर्वी नेपाल की तीनों किराती जातियां-लिम्बू, याखा, राई—सिक्कम के लेपचा, आसाम के नागा आदि।[1] वे उन्हें मोन-ख्मेर नाम से भी अभिहित करते हैं। उन्होंने किरातों का यह वर्ग-निर्धारण किस आधार पर किया यह तो स्पष्ट नहीं हुआ परन्तु एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या मुण्डावर्ग के लोग किरात थे? यदि हां, तो उन्होंने इस वर्ग में उन्हें क्यों नहीं रखा! किरात-संस्कृति की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि इसमें बहु-भर्तृता का प्रचलन रहा है।[2] खासी और गारो जातियों में अब भी वंशावली का प्रारम्भ स्त्रियों से माना जाता है तथा सम्पत्ति माता अथवा पत्नी के नाम होती है। गारो जाति में सास के विधवा हो जाने पर नोकोम (दामाद) से उसको विवाह करना पड़ता है। दूसरा प्रश्न जो महत्त्वपूर्ण है, यह है कि इस वर्गीकरण में किन्नर तथा-किरातों में अन्तर नहीं दिखाई देता। उनका कथन है कि किरातों के प्रदेश को 'मोन-युल' तथा इस प्रदेश के निवासियों को 'मोनपा' कहा जाता था। 'मोन' शब्द का प्रयोग बर्मा के प्राचीन निवासियों के लिए होता रहा है। मलाणा के किरातों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—'कांगड़ा जिले में केवल कुल्लू सब-डिवीजन की मलाणा उपत्यका में किरात बोली बोलने वाला मलाणा एक बड़ा सा गांव है। वह भाषा में जरूर किरात है किन्तु आस पास के खसों के समुद्र में एक छोटा सा द्वीप कैसे जातीय तौर पर अपने को अछूता रख सकता था? मिलम वाले मुख-मुद्रा से मोन होते ख्मेर हैं, उससे उलटे मलाणा वाले मुख-मुद्रा से खस होते मोन हैं।[3] वे किरातों के विलीनीकरण के बारे में विचार व्यक्त करते हैं—उनको अपने में विलीन करने वाले या उत्तर की ओर भगाने वाले आर्य नहीं, बल्कि उन्हीं के मध्य-एसिया के भाई-बन्द खस थे, जो मैदान से नहीं, बल्कि पहाड़ों ही पहाड़ काशगर, कशकर (गिलगित), कश्मीर में अपने खस या कश नाम की छाप छोड़ कर आगे बढ़े थे। वे किरातों की भूमि में नेपाल तक प्रवेश कर गये।[4] किन्नर तथा किरातों को एक वर्ग में रखना ठीक नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक वर्ग को 'जंगली जाति' तथा दूसरे को 'देव-योनि' माना गया है।

---

1. ऋग्वैदिक इण्डिया—पृ० 82-85।
2. उत्तर-वैदिक समाज एवं संस्कृति—पृ० 19-20।
3. ऋग्वैदिक आर्य, पृ० 84-85।
   मलाणा गांव अब कुल्लू जिला के अन्तर्गत है।
4. वही, पृ० 106।

पौराणिक वर्णन के अनुसार हिरण्यकश्यपु के पुत्र का नाम प्रह्लाद था। यह वही प्रह्लाद था जिसके लिए विष्णु भगवान ने नरसिंह रूप धारण किया था। प्रहलाद को हिरण्यकश्यपु ने गर्म स्तम्भ को छूने की सजा इस लिए दी थी कि वह शिवभक्त न हो कर विष्णु भक्त था। प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन था। असुरों तथा सुरों के युद्धों को अनेक कथाएं पुराणों में वर्णित हैं। दो वर्गों के ये संघर्ष बहुविध रूप से पुराणों में प्रस्तुत हुए हैं। 'बलराज' अथवा 'बरलाज' का त्यौहार जो कुछ क्षेत्रों में दीवाली के दूसरे दिन तथा अन्य में स्वतन्त्र उत्सव के रूप में मनाया जाता है, स्पष्टतया राजा बलि के साथ सम्बन्धित है। किन्नौर से लगने वाले सराहन क्षेत्र में जहाँ बाणासुर की राजधानी रही है, अब भी पण्डितों द्वारा दीवाली के दिन आटे से राजा बलि का चित्र फर्श पर बनाया जाता है तथा उसकी छाती पर जलता हुआ दीपक रख कर 'काब' की कथा गाई जाती है। तात्पर्य यह है कि असुर संस्कृति का प्रभाव इस क्षेत्र में अब भी विद्यमान है। सुर असुरों के सारे कथानक का अध्ययन करने पर पता चलता है कि यह संघर्ष धर्मों का था और कालान्तर में समाप्त हो गया। असुर-देवताओं के साथ नारायण के रूपों को सहायक के रूप में स्वीकृत कर लिया जाना, दोनों संस्कृतियों का सन्धि-स्थल कहा जा सकता है। महाभारत में वर्णित ऊषा-अनिरुद्ध की कथा का रूप किन्नर-क्षेत्र में मिल जाता है। बाणासुर की पुत्री ऊषा का विवाह युद्धोपरान्त अनिरुद्ध से हुआ था। बाणासुर का हिड़िम्बा (हिरमा-जो कफौर गाँव की देवी है) के साथ राक्षस-विवाह हुआ था। हिड़िम्बा का महाभारत के हिडिम्बवध पर्व में राक्षसी बताया गया है परन्तु वह प्राय: सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र की बड़ी देवी रही है। निश्चय ही उसका सम्बन्ध हिमालय में निवास करने वाली सशक्त असुर जाति से रहा है। किन्नर लोक-गीतों में ऊषा के पति का नाम 'हौनू' बताया गया है। 'हौनू' का अनिरुद्ध हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

'असुर' शब्द की मूल धातु 'असु' 'जीवन' अथवा 'रहना' है। ऋग्वेद में इसका प्रयोग मुख्यत: वैदिक देवताओं, यथा—वरुण, इन्द्र, अग्नि, पुष्न, रुद्र, सवित्र, सोम तथा मारुत आदि के लिए हुआ है।[1] बाद के साहित्य में देवों की उत्पत्ति प्रजापति के मुख से बताई गई तथा इस कारण उन्हें असुरों से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया। विष्णु पुराण में भी ब्रह्मा के मुख से देवताओं तथा जांघ से असुरों की उत्पत्ति मानी गई है। जैसा कि कहा जा चुका है, बलि, मत्स्य-पुराण के अनुसार, विरोचन का पुत्र तथा बाण का पिता था जिसे विष्णु ने वामन रूप धारण करके पाताल भेज दिया था। दक्षिणी भारत में बलि की पूजा अनेक स्थानों, यथा, महाबलिपुरम् आदि में होती है। यह विश्वास किया जाता है कि बलि बहुत न्यायी तथा प्रजा-पालक राजा था और वह अब भी वर्ष में एक बार पृथ्वी पर आता है परन्तु उसका आगमन एक समय में उत्सव के रूप में हमारे देश में नहीं मनाया जाता बल्कि भिन्न समयों पर इस सम्बन्ध में उत्सव होते हैं।[2] बलि के पृथ्वी पर आगमन की यह कथा बाणासुर की आत्मा के किन्नर-क्षेत्र में अपने पुत्र-पुत्रियों के यहाँ अलग अलग समयों पर आने की

---

1. ऋग्वेद, I, 12, 5, VI, 16, 29।
2. Ibid, Pp. 15–16.

घटना से मिलती है। यह विचित्र संयोग है कि दक्षिणी भारत में बलि के पृथ्वी पर आने का सबसे बड़ा पर्व कार्तिक मास में होता है। इस समय फसल खेतों में होती है तथा घरों में प्रकाश किया जाता है।[1] इस प्रदेश के अनेक स्थानों में 'बूढ़ी दीवाली' तथा बलराज (बरलाज) के त्यौहार इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि 'असुर' कहे जाने वाले लोगों का प्रभुत्व इन क्षेत्रों में भी रहा है। मैसूर में नवरात्रों के अन्तिम दिन बलि की प्रशंसा में गीत गाए जाते हैं, पोंगल के प्रसिद्ध त्यौहार में उसकी पूजा की जाती है तथा मालाबार में ओनम त्यौहार के अवसर पर उसकी पूजा होती है।

किन्नौर के वर्तमान सवर्ण निवासी स्वयं को 'खोशिया' कहते हैं। इन के अतिरिक्त हरिजनों में निम्न मुख्य वर्ग मिलते हैं :—

कोली :—कनिंघम के मतानुसार इस जाति के लोग कोल जाति से सम्बन्धित हैं परन्तु किन्नर देश के हरिजनों के रहन सहन तथा बोली का अध्ययन करने पर यह बात निराधार मालूम होती है। यहां सवर्ण जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह हरिजनों में प्रचलित नहीं है। यहां के हरिजन पश्चिमी पहाड़ी का प्रयोग करते हैं। यह बोली आर्य भाषा है तथा किन्नौरी बोली से नहीं मिलती। ये अपनी बसती में विष्णु देवता की पूजा करते हैं। जिन गांवों में नारायण देवताओं के रथङ् हैं, वहां देवता को गांवों के बाहर ले जाने की दशा में इस वर्ग को भी पालकी उठाने की आज्ञा दे दी जाती है। वैसे यदि कोई हरिजन देवता के रथ से भूल से भी छू जाए तो देवता 'लाख' (जूठा, अपवित्र) हो जाता है और तब तक शुद्ध नहीं होता जब तक कि भूल करने वाला उसे मेमने अथवा बकरे की बलि न दे दे। अतः केवल 'कोल' के साथ 'कोली' शब्द का सामीप्य होने से हम इन्हें 'मुण्डा' वर्ग में नहीं रख सकते।

हरिजन अब भी सवर्णों के खेतों में हालस (हल जोतने वाले) का कार्य करते हैं तथा उन के पास अपनी भूमि बहुत कम होती है। कोली इस वर्ग में अपने आप को सवर्णों से दूसरे दर्जे पर गिनते हैं क्योंकि वे गो-मांस भक्षण नहीं करते थे। हरिजनों का दूसरा वर्ग सम्भवतः प्राचीन काल में गौमांस-भक्षण किया करता था, ऐसा कहा जाता है। कोलियों को कई किन्नर-ग्रामों में 'डाकेस' भी कहा जाता है क्योंकि ये लोग देवता का 'डाकङ्' (छोटा तम्बूरा) बजाते हैं तथा देवता के पास सायं प्रातः की प्रार्थना करते हैं। जब रियासत-शासन के समय में हरिजन-वर्ग सोने व चांदी के गहने नहीं बनवा सकता था, तब भी इस क्षेत्र के कुछ कोलियों को निश्चित तोल के सोने के आभूषण बनवाने की आज्ञा राजा की ओर से मिल जाती थी। यह इस बात का प्रमाण है कि ये लोग अच्छी सेवाओं के कारण राजाओं को प्रसन्न कर लेते थे।

इस क्षेत्र में बसने वाली जाति के लिए हरिजन नए अतिथि थे और उन्होंने सवर्णों की बहुत सेवा की है, तथा उनका बहुत शोषण भी हुआ है।

हरिजनों के द्वितीय वर्ग के लोग ओरेस हैं। ये लकड़ी आदि का कार्य करते हैं। इन की बोली सामान्यतया शेष हरिजनों की बोली से नहीं मिलती। ओरेस तथा हरिजनों के आपस में विवाह-सम्बन्ध भी नहीं होते।

---

1. Ibid, P. 15—16.

चणालङ् हरिजन चमार होते हैं। ये प्राय: सारे किन्नौर में बसे हुए हैं। ये साधारणतया जूते बनाने का कार्य नहीं करते। इस वर्ग के कई लोग करघे आदि का कार्य भी कर लेते हैं और लोगों के कपड़े बुन कर निर्वाह करते हैं।

लुहार भी हरिजन होते हैं। ये लोगों के आभूषण तथा देवता के मुखङ् को बनाने का कार्य करते हैं। हरिजनों की स्थिति का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे यहां के मूल निवासी नहीं हैं। उन्हें या तो सवर्ण लोग दूसरे क्षेत्रों से बुला कर लाए हैं अथवा समय समय पर आजीविका की तलाश में वे लोग यहां आ कर बसते रहे हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों से निम्न लिखित निष्कर्ष जा सकते हैं :—

1. किन्नर नृत्य-गायन में रुचि रखने वाले थे।
2. वे दैवी गायक थे।
3. वे हिमालय के निवासी थे।
4. वे अश्वमुख थे।

इस सम्बन्ध में हमारा मत यह है कि किन्नर—

1. आर्य-परिवार की एक जाति थी।
2. यह हिमालय के बहुत बड़े भाग में निवास करती थी।
3. हिमालय के प्रति श्रद्धा के कारण तथा अपने वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण आर्यों ने उसे नर–देवों की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया।

किन्नर आर्यों के शत्रु नहीं हो सकते क्योंकि शत्रुओं की प्रशंसा करना तथा उन्हें नरदेवों की श्रेणी में रखना समीचीन प्रतीत नहीं होता। दूसरी बात जो ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि अप्सरायें तथा गन्धर्व जिन का वर्णन किन्नरों के साथ आता है, वेदों में किसी न किसी रूप में वर्णित हैं परन्तु किन्नरों का वर्णन इन के बाद की बात रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल में अपने इन बन्धुओं का पता आर्यों को सम्भवत: नहीं चल पाया होगा और वे इन की रहस्यमयता से परिचित नहीं होंगे, यही कारण है कि किन्नरों का वर्णन पुराण काल में ही सम्भव हो सका।

किन्नरों को 'अश्वमुख' कहा गया है। वर्तमान किन्नर न तो 'अश्वमुख' होते हैं और न ही इस बात के प्रमाण इस समाज की प्रथाओं में मिलते हैं। हां, एक बात जो देखने में आती है वह यह है कि इन लोगों को 'घोड़े पालने' का शौक होता है। पुराणों में बातें लाक्षणिक ढंग से कही गई हैं अत: अश्व पालकों को 'अश्वमुख' कहा जाना आश्चर्यजनक नहीं है। पौराणिक पुरुष अद्भुत शारीरिक शक्ति तथा शरीर-रचना वाले माने जाते हैं अत: किन्नरों को भी विचित्र शरीर वाले बना देना पुराण–कारों के लिए कोई नई बात नहीं थी। कुछ विद्वानों ने ग्रीक-पुराण-कथा में वर्णित कैन्टौर (Kantour) जिसके शरीर का उपरि भाग मनुष्य का तथा टांगों का भाग घोड़े का होता है, की भारतीय धर्मगाथा में वर्णित गन्धर्वों व किन्नरों से तुलना की है। कैण्टौर से 'किन्नर' हो जाना भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से भले ही सम्भव हो परन्तु वैज्ञानिक अनु-सन्धान के अभाव में इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना दूर की कौड़ी लाना है।

किन्नरों में मृतकों के नाम पर चबूतरा, शेखार (कोटङ्) बनाने की प्रथा तथा (घोटुल की भाँति का त्यौहार) ऐसी बातें है जिन के कारण विद्वानों ने मुण्डा लोगों के साथ वर्तमान निवासियों के सम्बन्ध जोड़े हैं। मृतकों के नाम पर चबूतरा बनाने की प्रथा मुण्डा वर्ग में ही प्रचलित रही हो, ऐसी बात नहीं है। चम्बा, मण्डी, सुकेत, कांगड़ा तथा बिलासपुर के ही क्षेत्रों में यह प्रथा प्रचलित नहीं रही है बल्कि पितरों एवं वीर पुरुषों की याद के लिये स्मारकों का निर्माण विश्व भर की जातियों में प्रचलित है। मुसलमानों में कब्रें बनाने की जो प्रथा प्रचलित है वह पितरों को पर्याप्त समय तक याद रखने के विश्वास पर ही अधिक आधारित है।

शरतचन्द्र चकलादर ने लिखा है कि ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तर कुरुओं को हिमालय के दूसरी ओर (परेण हिमवंतम्) रहते हुए बताया गया है। उनका कथन है कि ऋग्वेद में 'उत्तर' का अर्थ ऊंचा तथा परवर्ती होता है। वे उत्तर कुरुओं तथा उत्तर मद्रों को इस नाम से पुकारने का कारण यह बताते हैं कि वे हिमालय के उपरि भागों में रहते थे। कालान्तर में किरातों तथा मंगोलियनों के आक्रमणों के कारण उन्हें अपने स्थानों से हट जाना पड़ा और इस प्रकार उनके सम्बन्ध मैदानी भागों में रहने वाले भाई-बन्धुओं से कट गए। प्रो० जैकोबी का कथन है कि उत्तर कुरुओं की स्मृति अभी भी आर्यों के मस्तिष्कों में थी तथा मध्य देश के ये कुरू, जिनका क्षेत्र हिमालय की पवित्र शृंखलाओं से घिरा था, सामान्य मानव-श्रेणी से ऊपर की जाति मान लिए गए। यह स्थान आश्चर्यों से युक्त तथा सब प्रकार की व्याधियों से मुक्त माना जाने लगा। यह सम्पूर्ण विवरण किन्नरों पर घटित होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किन्नर-बोली (कनौरयानुस्कद) में उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं के लिए कोई शब्द नहीं हैं और पूर्व (जरको) तथा पश्चिम (रेदको) दो ही दिशाएं हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'कुनावर' शब्द से 'किन्नर' बन जाना असम्भव नहीं है क्योंकि 'किम्+नर' शब्दों में संस्कृत भाषा में 'किम्' का जो अर्थ है वह इस शब्द के मूल में प्रतीत नहीं होता। किन्नर धर्म-ग्रन्थों में 'कुत्सित नर' नहीं कहे गए हैं। नृत्य-गायन में दक्ष ये लोग हिमालय में निवास करने वाली जाति से सम्बन्धित थे। बहुत सम्भव है कि इस क्षेत्र में प्रचलित तिब्बती भाषा का 'किम' (घर) शब्द, इसके मूल में हो। इस प्रकार किन्नर का अर्थ 'घर का व्यक्ति' हुआ। किन्नरों में देव-पूजन की जो परम्परायें प्रचलित हैं, उनसे इस अर्थ का मेल बैठता है। वे दैवी गायक हैं, पर्वतों पर रहते हैं तथा उन्हें पुष्पों से बहुत प्रेम है। 'किम्' की व्याख्या न दिए जाने तथा अन्य भाषाओं, यथा, तिब्बती आदि में इस शब्द के रूप मिल जाने से 'किन्नर' शब्द को समझने में भूल होती रही है, जो स्वाभाविक थी। बहुत सम्भव है द्रविड़ भाषाओं के 'कु' अथवा 'कुन्नु' शब्दों की भांति 'पर्वत' अर्थ बताने वाला कोई अन्य शब्द 'किम' हिमालय की किसी भाषा में हो तथा मनीषियों ने उसके आधार पर 'किन्नर' (पर्वत का व्यक्ति) शब्द की रचना की हो। किन्नरों के लिए 'किम्पुरुष' शब्द के जो पर्याय प्रयुक्त हुए हैं उनका उत्तर निम्न श्लोक से मिल जाता हैं :—

(किं पुरुषः) :—स च अश्वाकार जघनः नराकारमुखः।
किन्नरस्तु अश्वाकार वदनः नराकारजघन इति त्योर्भेदः।

इस प्रकार जहां किम्पुरुष 'नर मुख' होते हैं वहां किन्नर 'अश्व मुख' बताए गए

है। अश्वपालक बन्धुओं को 'अश्वमुख' बना कर अर्द्ध देव-योनि की श्रेणी में ला खड़ा करना धर्मशास्त्र प्रणेताओं की अनोखी कल्पना का सुन्दर उदाहरण है। अमरकोश में निम्नलिखित दस देव योनियां बताई गई हैं—

विद्याधरोऽप्सरो यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः।
पिशाचो-गुह्यकः सिद्धो-भूतोऽमी देवयोनयः॥ स्वर्ग वर्ग : 3 : 11

वाल्मीकीय रामायण में भी किन्नरों का वर्णन आया है। जब सीता की खोज हो रही थी तो सुग्रीव ने शतवलि नामक वानर को उत्तर दिशा में जाने का आदेश दिया—

मयस्य भवनं तत्र दानवस्य स्वयं कृतम्।
मेनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकन्दरः ॥30॥
स्त्रीणामश्वमुखीनां तु निकेतस्तत्र तत्र तु।
तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ॥31॥

—उस क्षेत्र में मय का भवन है जिसे दानव ने स्वयं बनाया है तथा वहां शिखर युक्त मैनाक पर्वत समतल मैदानों तथा कन्दराओं से परिपूर्ण है। वहां अश्वमुख स्त्रियां विचरण करती हैं तथा आश्रम सिद्धों द्वारा सेवित हैं। उस देश में जाकर सीता को खोजना।

किष्किन्धा काण्ड सर्ग 3 के अगले श्लोकों में सुग्रीव निर्देश देते हुए किन्नर देश की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं—

गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा।
रमन्ते सततं तत्र नारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥50॥

इस क्षेत्र में पहुंचने पर वैखानस सर के पश्चात् सूना आकाश दिखाई देगा। मेघों की घटाएं नहीं होंगी तथा इस क्षेत्र में शीतोदा नदी बहती है। शीतोदा के तट पर उत्तर कुरु प्रदेश है। गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग तथा विद्याधर यहां सर्वदा मधु-कण्ठी नारियों के साथ भ्रमण करते हैं।

ऊपरोक्त श्लोकों से स्पष्ट होता है कि किन्नर असुर वंश से थे क्योंकि उनके देश में मय का भवन है। सम्भवतः मय के वंश से सम्बद्ध होने के कारण ही किन्नरों को 'मयु' भी कहा जाता है। शीतोदा वर्तमान सतलुज नदी है तथा उसके तट पर कुरु प्रदेश में किन्नरों का होना उन्हें आर्यों के समीप लाता है। कुछ विद्वान असुरों को अनार्य मानते हैं परन्तु यह धारणा पुष्ट नहीं हो सकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य जाति का शिवभक्त वर्ग 'असुर' तथा विष्णु पूजक वर्ग 'सुर' कहलाता था। कालान्तर में इन दोनों वर्गों में समन्वय स्थापित हो गया था।

खश व कनैत जातियों के सम्बन्ध में सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक ही जाति के दो वर्ग थे। वर्तमान किन्नरों में खशों का विलय हो गया है। हिमालय के इस भूभाग में विविध संस्कृतियां पनपी हैं और इस प्रकार अनेक सांस्कृतिक परतें देखने में आती हैं। यदि वर्तमान किन्नरों की संस्कृति में कुछ ऐसे तत्व सम्मिलित हो गए हों जो भाषा-विदों, इतिहासकारों तथा नृतत्त्वशास्त्रियों को सुदूर स्थित जातियों में भी मिलते हों तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। संस्कृति व भाषा का समन्वित इकाई के रूप में अध्ययन ही वर्ग-निर्धारण के क्षेत्र का एकमात्र सोपान तथा मानदण्ड रहना चाहिए।

2 प्रस्तुत अध्ययन और सर्वेक्षण

लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है, 'यह वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना मानता है और जिस में लोक की युग युगीन वाणी-साधना समाहित रहती है, इस में लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है[1]'। यह अपने लोकरंजनी रूप में साधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है। कतिपय पाश्चात्य विद्वान, यथा, प्रो० चाइल्ड, श्री किटरेज, सिजविक, गुमेर तथा लूसी पौण्ड प्रभृति लोक-साहित्य के अध्ययन को असंस्कृत समाज तथा आदिम मानस की अभिव्यक्ति का अध्ययन मानते रहे हैं और इस कारण लोक (फोक) शब्द का अर्थ गांवों अथवा वनों में रहने वाले गंवार तथा असंस्कृत समाज के रूप में प्रयुक्त होने लगा[2]।

लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिस में :—

(अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।

(आ) मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक-मानस में समायी हुई हो।

(इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो, उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रखते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे[3]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'लोक साहित्य' 'लोक' और 'साहित्य' दो शब्दों से मिल कर बना है। 'लोक' शब्द बहुत व्याप्त है। जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त है[4]। लोक-साहित्य धर्म की आधार-शिला पर खड़ा है क्योंकि सृष्टि के

---

1. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य-कोष—पृ० 682।
2. डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोक गाथा—पृ० ङ, 1957।
3. डॉ० सत्येन्द्र, लोक-साहित्य विज्ञान, पृ० 4, 5—1962।
4. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—षोड्श भाग, प्रस्तावना, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 4।

समस्त मानव-समाज मूलरूप में धर्म में आस्था रखते हैं। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय[1] के शब्दों में—'सच तो यह है कि धर्म की आधार-शिला पर ही लोक-साहित्य की प्रतिष्ठा हुई है। जनता के इस लोकप्रिय साहित्य में वर्णित विधि-विधानों, रीति रिवाजों, विश्वास-परम्पराओं तथा रहनसहन का अनुशीलन किया जाये तो इस से ज्ञात होगा कि उन को धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है, कितना बल मिला है। किम्बहुना यदि लोक-साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार प्राप्त न होता तो उसका इतना सजीव, स्वस्थ तथा सबल होना सम्भव न था'।

इस विवेचन के पश्चात् हम लोक-साहित्य के क्षेत्र-विस्तार के विषय में कह सकते हैं कि यह समस्त जातियों की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, रूढ़ियों, अंध-विश्वासों, लोक गीतों, लोक-कथाओं, मुहावरों, कहावतों तथा उन मान्यताओं का साहित्य है जो मौखिक रूप से बौद्धिक सम्पत्ति के रूप में एक मनुष्य से दूसरे को किसी कृतज्ञता के बिना प्राप्त होते हैं और जिनका संरक्षण करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है तथा जिन्हें वह अगली पीढ़ी को अपनी अर्जित सम्पत्ति के साथ देता चला जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है और वह चौड़ाई में यदि किसी व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक फैला हुआ है तो लम्बाई में आदिम मानव से लेकर सभ्यतम जातियों तक पांव पसारे हुए है। लोक-साहित्य के बिना समाज मृतप्राय है तथा यह विज्ञान सामाजिक विघटन या उत्थान के कारणों के अध्ययन में शेष विज्ञानों की अपेक्षा अधिक सक्षम है।

किन्नर-क्षेत्र के निवासियों के सम्बन्ध में हमारे धर्मशास्त्रों तथा पुराणों में अनेकों उद्धरण आते हैं परन्तु हम इस प्रकार के सन्दर्भों को लोक-साहित्यिक अध्ययन नहीं कह सकते क्योंकि उन से किन्नर-समाज की मान्यताओं पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। हम केवल इतना ही जान पाते हैं कि किन्नर नृत्य-गायन में विशेष रुचि रखते थे।

किन्नौर के इतिहास पर लिखने वाले विद्वानों में अंग्रेजों की संख्या पर्याप्त है परन्तु इस क्षेत्र के लोक-साहित्यिक अध्ययन नितान्त कम प्रस्तुत हुए हैं।

यह निश्चित है कि तिब्बत के बहुत बड़े क्षेत्र पर भारतीय अधिकार रहा है। तिब्बत हमारे धर्म-ग्रन्थों के अनुसार पवित्र भूमि है, जहां देवी-देवता निवास करते हैं। मानसरोवर की धार्मिक पृष्ठभूमि से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है। तिब्बत के इतिहास के अनुसार एक भारतीय राजकुमार ने उस देश पर राज्य किया था। यह राजकुमार कौन रहा होगा, इस सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं। परम्परा के अनुसार यह पाण्डु-पुत्र कर्ण अथवा रूपती राजा था जो कि कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध के समय स्त्री-वेष में तिब्बत भाग गया था। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह कौसल के राजा प्रसेनजित का पुत्र था अथवा साक्य-बंश की लिच्छवी शाखा से सम्बन्धित व्यक्ति रहा होगा।

कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि जब यह राजकुमार हिमालय से तिब्बत की

---

1. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका—पृ० 270।

ओर उतर रहा था तो मार्ग में उसे कुछ चरवाहे मिले। क्योंकि यह उन की भाषा नहीं समझ सकता था अतः उन के द्वारा किसी प्रश्न के पूछे जाने पर उसने केवल हाथ हिला कर हिमालय की ओर संकेत किया जिस से उसका अभिप्राय यह था कि वह हिमालय पर्वत से उतर कर आ रहा था और उस का देश पर्वत के दूसरी ओर था। चरवाहों ने उसके संकेत से अनुमान लगाया कि वह अपने आपको स्वर्ग से आया हुआ बता रहा है। उन्होंने उसे सम्मान देने के उद्देश्य से एक लकड़ी की कुर्सी पर बिठा कर कन्धों पर उठा लिया और अपना बादशाह मान लिया। इस के पश्चात् उस का नाम न्या-ख्री-त्सान-पो[1] पड़ गया। इस घटना से पता चलता है कि तिब्बत के साथ भारत के अति प्राचीन काल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। तिब्बत पर गोरखों के अधिकार का तो इतिहास साक्षी है।

किन्नर-क्षेत्र की लोकवार्ता पर एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल, जिस की स्थापना सर विलियम जोन्स ने सन् 1784 ई० में की थी, का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, इस संस्था का उद्देश्य ही एशिया महाद्वीप के इतिहास, पुरातत्त्व, कला, विज्ञान तथा साहित्य पर कार्य करना था[2]। इस पत्रिका की ओर से समय समय पर इस क्षेत्र के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से अनेक विद्वानों को यहां भेजा जाता रहा और उन के द्वारा एकत्रित की गई सामग्री का प्रकाशन किया गया। इन में से कुछ यात्राओं का विवरण अगले पृष्ठों में दिया गया है। जी० डी० खोसला ने अपनी पुस्तक 'हिमालियन सर्कट' में लाहुल स्पीति तथा किन्नौर के बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला है परन्तु यह पुस्तक केवल विवेचनात्मक है और यात्रा की डायरी की भांति लिखी गई है। प्रस्ततु पुस्तक मुख्यतः लाहुल स्पीति के सम्बन्ध में लिखी गई है। किन्तु किन्नौर के बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में भी इस में कुछ टिप्पणियां उपलब्ध होती हैं।

अपनी पुस्तक 'पीक्स ऐण्ड लामाज' में मार्कोपालिस ने किन्नौर के लोगों तथा बौद्ध-धर्म पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। उन्होंने 'ओम् मणि पद्मे हुं' की व्याख्या की है तथा तिब्बत के बौद्ध-धर्म के साथ किन्नौर में प्रचलित बौद्ध-धर्म को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है परन्तु पुस्तक एक यात्रा-विवरणिका है अतः लोक साहित्य सम्बन्धी व्यवस्थित कार्य नहीं कहा जा सकता। उन्होंने यहां की बोली पर भी कुछ परिचयात्मक टिप्पणियां दी हैं।

बुशहर रियासत के इतिहास तथा किन्नौर के जन-जीवन पर प्रकाश डालने वाली महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'नोट्स ऑन दी एथनोग्राफी आफ् बुशहर स्टेट' है। यह पं० टीका राम जोशी द्वारा लिखी गई है। लेखक ने पुस्तक को दो भागों में बांटा है। पहले भाग में किन्नौर को छोड़ कर रियासत के शेष भाग का ऐतिहासिक तथा सामाजिक वर्णन है। पुस्तक का दूसरा भाग किन्नौर के सम्बन्ध में ही है। इस ग्रंथ में लेखक कनावर को 'उपरि' तथा 'निचले' दो भागों में बांटता है। पुस्तक का आमुख एक

---

1. Tsang-Lien Shen and Shen-Chi Liu—Tibet and Tibetans, Pp. 19-20. (Nya-Khari-Tsan-Po—means Neck Throne Hero.)
2. Durga Bhagwat—An Outline of Indian Folk-lore, Pp. 2-3.

अंग्रेज विद्वान एच० ए० रोज द्वारा लिखा गया है। पं० टीकाराम जोशी बुशहर रियासत के राजा के दीवान थे, इस कारण उन्हें इस पुस्तक को लिखने में सामग्री-संकलन की विशेष कठिनाई नहीं हुई होगी।

पुस्तक के अनुसार कनावर के प्राय: सारे त्यौहारों के नाम संस्कृत के आधार पर रखे गए हैं। इस में कनावर की प्रथाओं के संकेत दिए गए हैं तथा इस क्षेत्र में प्रचलित कुछ लोक-गीतों को भी सम्मिलित किया गया है। कुछ देवताओं के नाम मात्र दिए गए हैं और उन के इतिहास आदि पर कोई विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। पुस्तक में कनावर में बसे कनैतों को भी तीन वर्गों में विभाजित किया गया है[1] परन्तु इस वर्गीकरण में किन्नर-क्षेत्र में बसने वाले सैंकड़ों वंशों में से केवल कुछ के ही नाम तथा स्थान दिये गए हैं, शेष का विवरण उपलब्ध नहीं है।

इस ग्रन्थ में जो लोकगीत दिए गए हैं उन में से प्राय: कोई भी अब इस क्षेत्र में प्रचलित नहीं है। इन में से मुख्य ये हैं—वजीर मनसुख दास का गीत, वजीर फतेह जित का गीत, कलमपुर नेगी का गीत, नेगी सनम दास का गीत तथा लिप्पा के पालू राम बोरेस का गीत, आदि। इन गीतों को देखने से प्रतीत होता है कि ये अपने प्रचलित रूप में पर्याप्त लम्बे रहे होंगे परन्तु ग्रन्थकार ने इन्हें संक्षिप्त रूप में अपने ग्रन्थ में रखा है। पुस्तक में स्थानीय बोली में नल और दमयन्ती की कथा का कुछ अंश भी उद्धृत किया गया है। यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक कनावर के सम्बन्ध में जिस प्रकार की जानकारी देने के उद्देश्य से लिखी गई थी, उसमें लेखक सफल रहा है परन्तु लोक साहित्य के सारे पक्षों पर विचार करना इस में सम्भव नहीं हो सका है।

ऐन्ड्रयू विल्सन की पुस्तक 'एबोड आफ् स्नो' में लेखक ने कनावर की यात्रा का वर्णन किया है। इस में वह अपनी यात्रा के अनुभवों पर ही अधिक प्रकाश डालता है और लोगों तथा स्थानों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत मत देता है अत: पुस्तक, लोक-साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से नहीं लिखी गई है। यह सन् 1875 ई० में लन्दन में छपी है। इस में कनावर के इतिहास पर यथा-सम्भव प्रकाश डाला गया है।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'होली हिमालय' में ई० एस० ओक्ले ने अपनी यात्रा के ही विवरण दिए हैं अत: लोक-साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से पुस्तक का महत्त्व नहीं है। किन्नर-परम्पराओं की दिशा में चार्ल्स ए० शेरिंग[2] की पुस्तक महत्त्वपूर्ण है।

एक अंग्रेज विद्वान 'स्वेन हेडिन' की पुस्तक 'ट्रान्स हिमालियन डिस्कवरीज ऐण्ड एडवैंन्चरज इन् तिब्बत' में भी कनावर के बौद्धधर्म का वर्णन है। ग्रन्थ में 'ॐ मणि पद्मे हुँ' की व्याख्या सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई है। लेखक कनावर होकर तिब्बत गया था। इस क्षेत्र के अनेक गाँवों तथा व्यक्तियों के वर्णन इस ग्रन्थ में आ गए हैं जिनसे जन-जीवन की झलकियां प्रकाश में आई हैं।

---

1. Notes on Ethnography of Busehar State, Simla Hills, Pp. 540-544.
2. Western Tibet and the British Overland.

प्राण चोपड़ा की पुस्तक 'ऑन एन इण्डियन बॉर्डर' भी किन्नौर के सम्बन्ध में कुछ विवरण प्रस्तुत करती है। इस में किन्नौर पर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुई गोरखों की चढ़ाई का संक्षिप्त विवरण है तथा इस क्षेत्र के अनेक स्थानों की स्थिति तथा भौगोलिक जानकारी स्पष्ट की गई है। पुस्तक चीनी आक्रमण के पश्चात् लिखी गई है। लोक-साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से पुस्तक का महत्त्व बहुत अधिक नहीं है। लेखक का कथन है कि इस क्षेत्र में धर्मों का ही सम्मिश्रण नहीं है बल्कि सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सांस्कृतिक परतें विद्यमान हैं।

'हिस्ट्री आफ पंजाब हिल स्टेट्स' में रामपुर बुशहर रियासत का जो विवरण दिया गया है उसमें भी कनावर की स्थिति आदि का भौगोलिक वर्णन है।

जेम्स बैली फ्रेजर की प्रसिद्ध पुस्तक 'जर्नल आफ् ए टूअर ओ पार्ट आफ् दी स्नोई रेंज आफ दी हिमाला माऊन्टेन्ज' में लेखक ने कनावर का विशेष विवरण दिया है। पुस्तक सन् 1820 में छपी है अतः बुशहर रियासत पर गोरखा राज्य की प्रतिक्रिया का ताजा विवरण प्रस्तुत करती है। लेखक का कथन है कि गोरखों ने कुनावर में 3 दिन तक यात्रा की परन्तु उन्हें वहां की कठिनाइयों तथा सामग्री के अभाव के कारण लौट जाना पड़ा। वे लिखते हैं कि राजा के कर्मचारियों में अधिकांश कुनावर के रहने वाले हैं। ग्रन्थकार ने कुनावर के वजीरों के सम्बन्ध में भी विवरण प्रस्तुत किया है जिस से पता चलता है कि इस क्षेत्र का शासन-प्रबन्ध अधिकांशतः मन्त्रियों के हाथों में ही होता था। पुस्तक किन्नौर के इतिहास पर ही प्रकाश डालती है।

ए० एच० फ्रैंके[1] ने कनावरी बोली के सम्बन्ध में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि यह बोली मुण्डा भाषाओं के अधिक समीप है। इस पुस्तक में लेखक ने लाहुली तथा कनावरी बोलियों का ही अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया बल्कि इस क्षेत्र की कुछ प्रथाओं को भी मुण्डा जाति से सम्बन्धित बताया है।

जैसा कि पहले कहा गया है, बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से समय समय पर इस क्षत्र के सम्बन्ध ने रिपोर्ट तैयार करने के उद्देश्य से विभिन्न विद्वानों को इस क्षेत्र में भेजा जाता रहा है। लैफ्टिनेंट जे० डी० कन्निघम[2] भी ऐसे व्यक्तियों में से एक थे। उन्होंने मूरक्राफ्ट के लद्दाख भ्रमण तथा अलैक्जेण्डर जेरार्ड की प्रसिद्ध पुस्तक 'एकाउन्ट आफ कुनावर' पर टिप्पणी की है।

जेरार्ड का कार्य लोक साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि वे यहाँ की प्रथाओं आदि का क्रमिक तथा गुम्फित विवरण नहीं दे सके परन्तु उन के ग्रन्थ से किन्नौर-क्षेत्र (कुनावर) के जन-जीवन को समझा जा सकता है। उन्होंने बौद्ध-धर्म पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। वे कुनावर में जंगी के स्थान पर ठहरे। इस पुस्तक में किन्नौर ने निचले भागों के विषय में अपेक्षाकृत कम विवरण दिया गया

---

1. A History of Western Tibet— A. H. Francke, Appendix II, Page 181.
2. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1844, Vol. XIII, P. 172.

है। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में उन की पुस्तक में अनेक सुधार प्रस्तुत किये परन्तु फिर भी यह अध्ययन व्यवस्थित हो सका हो, ऐसी बात नहीं है। कनिंघम की रिपोर्ट को पढ़ने से पता चलता है कि स्वयं उन्हें भी विषय की पूरी पकड़ नहीं थी, उनके द्वारा प्रस्तुत विवरण में अनेक भूलें तथा असम्बद्धता है फिर भी उनके अनेक निष्कर्षों से सहज ही असहमति प्रकट करना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है।

कैप्टन हटन ने भी सन् 1938 में एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल की ओर से कुनावर-भ्रमण किया। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने केवल यात्रा-वर्णन ही दिया है[1]।

कनावर की भाषा का विशद विवेचन एब्राहम ग्रियर्सन की प्रसिद्ध पुस्तक लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (वोल्यूम 3 भाग 9) में दिया गया है। इस के अतिरिक्त ग्राहम बैली ने भी कनावरी भाषा पर एक पुस्तक[2] लिखी है जो इस बोली का संक्षिप्त शब्द कोष है। इस पुस्तक में कनावर की प्रचलित बोली के उच्चारण व व्याकरण आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

किन्नर-लोक-साहित्य पर लिखे गए ग्रन्थों में 'किन्नर देश' का विशेष स्थान है। यह पुस्तक भी यद्यपि यात्रा-विवरण के रूप में लिखी गई परन्तु इस के लेखक स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन ने इस क्षेत्र के धर्म तथा निवासियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। पुस्तक के अन्त में कुछ लोकगीत भी अनुवाद सहित दिए गए हैं। लेखक का उद्देश्य इस क्षेत्र की समस्याओं से पाठकों को अवगत कराना था जिस के कारण अनेक स्थलों पर वह अधिक भावुक तथा व्यक्तिवादी हो गया है और उसने निष्पक्ष दृष्टिकोण को छोड़ दिया है। क्योंकि यह पुस्तक यात्रा-विवरण है अतः लेखक को इस प्रकार की छूट भी थी। एक कमी जो इस ग्रन्थ में खटकती है वह यह है कि लेखक ने किन्नर इतिहास को मनगढ़न्त ढंग से प्रस्तुत किया है और यहाँ प्रचलित सामाजिक परम्पराओं को तिब्बत की संस्कृति के साथ जोड़ने का यत्न किया है। इन सब कमियों के रहते हुए भी यह पुस्तक इस क्षेत्र के सम्बन्ध में लिखा गया मूल्यवान ग्रन्थ है और उस के महत्व को मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन की रचना क्योंकि यात्रा-विवरण है अतः उन में पुनरावृत्ति आदि दोष हो सकते हैं तथा सम्बद्धता का अभाव भी खटक सकता है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक समय में जनगणना विभाग, स्टेट गजेटियरज तथा कुछ लेखकों द्वारा इस क्षेत्र के जन-जीवन के सम्बन्ध में ग्रन्थ लिखने के प्रयास हुए हैं और अनेक नए तथ्य सामने आए हैं परन्तु इस क्षेत्र के सांस्कृतिक स्रोतों के आधार पर व्यवस्थित कार्य नहीं हो पाया है, इसका कारण रीति-रिवाजों की भिन्नता तथा भौगोलिक कठिनाइयां हैं।

सन् 1961 की जन-गणना के पश्चात् जन-गणना विभाग ने भी गृह-मन्त्रालय

---

1. Ibid, Part I & II, (New Series) 1839. Pp. 901-950 & Vol. IX, Part I & II, 1840.
2. T. Grahame Bailey—Kanawari Vocabulary-in two Parts (English Kanawari and Kanawari English, 1911).

की ओर से तीन गांवों (कोठी, कानम तथा निचार) के सम्बन्ध में ग्राम-विवरणिकायें (Monographs) प्रकाशित की हैं। इन संग्रहों में दी गई सामग्री तथ्यों पर आधारित है और इन गांवों के सम्बन्ध में मूल्यवान जानकारी देती है। इन में कुछ गीत भी उद्धृत किये गए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किन्नर-क्षेत्र के सम्बन्ध में उपलब्ध लिपिबद्ध सामग्री नितान्त अपर्याप्त है तथा इस जाति के लोक साहित्य के सम्बन्ध में किसी भी ग्रन्थ में व्यवस्थित विवरण देखने में नहीं आता है।)

अध्ययन की आवश्यकता :

किन्नर लोक-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करना इस लिए आवश्यक है कि—

—इस जाति के सम्बन्ध में अनेक विचार धारायें प्रचलित हैं जिन के अनुसार इस के इतिहास को जानने की बहुत आवश्यकता है। यह जाति भारत की उन आदिम जातियों में से एक है जिन के सम्बन्ध में अध्ययन के क्षेत्र में बहुत कम कार्य हुआ है।

—लोक साहित्यिक अध्ययन के लिये आदिम जातियां अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि उन से नृत्तत्व शास्त्रीय पक्ष स्पष्ट होता है और अपेक्षाकृत्त अधिक सभ्य कहे जाने वाले समाजों में प्रचलित रीति रिवाजों तथा लोक-परम्पराओं के अध्ययन में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से भी किन्नर जाति का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

—कनावरा ऐसी जाति है जिस की बोली के आधार पर कुछ विद्वानों ने इस क्षेत्र में अति प्राचीन काल में मुण्डा वर्ग के लोगों के होने का अनुमान लगाया है। इस बोली पर व्यवस्थित कार्य नहीं हुआ है अतः लोक साहित्यिक अध्ययन के परि-प्रेक्ष्य में इस बोली पर आर्य-भाषाओं का प्रभाव देखना रोचक विषय है।

—किन्नर पौराणिक जाति है जिसे हमारे धर्म-शास्त्रों के अनुसार नरदेवों की श्रेणी में रखा गया है, इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक रूप से कोई कार्य नहीं हो सका है अतः शोध के लिये यह बहुत उपयुक्त विषय है।

—किन्नरों के लोक साहित्य का मुण्डा अथवा अन्य आदिम जातियों की प्रचलित परम्पराओं के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये जाने की बहुत आवश्यकता है।

इस सीमावर्ती क्षेत्र की संस्कृति को सुदूर क्षेत्रों के लोग भी जान सकें, इस उद्देश्य से भी इस अध्ययन का महत्त्व बढ़ जाता है। किन्नर लोग प्रबुद्ध वर्ग के लिए प्रश्न-चिन्ह बने हुए हैं, उनकी संस्कृति का अध्ययन केवल उन के इतिहास पर ही प्रकाश नहीं डालता बल्कि सम्पूर्ण हिमालय की संस्कृति पर नई जानकारी प्रस्तुत करता है। हिमालय में निवास करने वाली जातियों में अभी भी प्रागैतिहासिक काल की मान्यताओं के दर्शन होते हैं अतः यह अध्ययन इस सन्दर्भ में भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सम्भावनायें :

किन्नर क्षेत्र को लोक-साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से अनेक इकाइयों में बांटा जा सकता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर यहां सांस्कृतिक विषमता दृष्टिगोचर नहीं होती परन्तु सामाजिक गतिविधियों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट होता चला जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने भी लिखा है—दुनिया के लिए अल्प परिचित दूर देश का नाम सुनने पर पहले वह स्वप्नलोक सा मालूम होता है, फिर एकाएक वहां पहुंच जाने पर कुछ विस्मय, कुछ अज्ञात आकर्षण, कुछ नवीनता सी मालूम होती है। वहां कुछ महीनों रह जाने पर उसके वर्तमान और अतीत को नजदीक से यथाविधि अध्ययन करने पर उसकी रहस्यमयता जाती रहती है, आत्मीयता आ जाती है।[1]

इस क्षेत्र का प्रायः प्रत्येक गांव लोकोत्सवों तथा लोक-देवताओं की दृष्टि से अलग सांस्कृतिक इकाई है जिसका अध्ययन स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। ग्राम-समूह को 'घोड़ी' कहा जाता है। यह शब्द 'गढ़' का बिगड़ा हुआ रूप है। प्राचीन समय में पांच-दस गांवों पर एक ठाकुर अथवा 'ठक्करस' का अधिकार होता था। बाद में घोड़ी-प्रथा का ह्रास होता गया और लोग अपने अपने ग्राम-देवता की आज्ञानुसार त्यौहार-मेले[2] मनाने लगे। अभी तक भी घोड़ी के किसी गांव में एक ग्राम-देवता उस घोड़ी का सब से बड़ा देवता माना जाता है और शेष ग्राम-देवता उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। मुख्य त्यौहार प्रधान देवता द्वारा निश्चित की गई तिथि के अनुसार ही मनाए जाते हैं।

प्रत्येक किन्नर कथा कहना, नृत्य करना, गीत गाना, पहेलियां कहना तथा स्थानीय मेलों में भाग लेना आवश्यक समझता है। मेलों में देवताओं की पालकियों को नचाया जाता है और ग्राम-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए सन्थङ्[3] में नृत्य गायन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि समस्त समाज नृत्य-गायन में रुचि रखता है और बाल-वृद्ध इस में सक्रिय सहयोग देते हैं अतः दर्शक नर्तक तथा गायक बनते चले जाते हैं और क्योंकि सभी नर्तक एक दूसरे के हाथ पकड़ कर एक घेरे में नाचते हैं अतः अधिक संख्या में नर्तकों के आ जाने पर एक के पीछे दूसरी पंक्ति में नृत्य का कार्यक्रम चलता है। इस प्रकार की नृत्य-व्यवस्था को 'कोल्डुङ् कायङ्' अर्थात् 'कुण्डल (चक्र) मेला' कहा जाता है। जब नर्तक तीन घेरों में नाचने लगें तो 'शुम कोल्डुङ् कायङ्' (तीन कुण्डलों का मेला) कहा जाता है।

---

1. किन्नर-देश, राहुल सांकृत्यायन, पृ० 314।
2. उत्सव के लिये प्रचलित शब्द 'मेला' है जिसमें नृत्य व गायन का आयोजन रहता है। अगले पृष्ठों में त्यौहार के लिये 'मेला' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।
3. देव-मन्दिर का आंगन। 'सन्थङ्' शब्द सन्थागार (बौद्ध-धर्मावलम्बियों के द्वारा धार्मिक सभा करने का स्थान) का अपभ्रंश है। विशेष अध्ययन के लिये देखिये —हिमालय कल्पद्रुम पत्रिका, वॉल्यूम 1, अंक 4, 1965 में पृष्ठ 65 पर पी० ऐन० सेमवाल का "ट्रेसिज आफ् एन्शियेण्ट रिपबलिक्स इन हिमालियन रीजन" लेख।

ऊन कातते समय सारे परिवार के लोग घर में एक कमरे में ठीक बीच गाड़े गए पत्थर के चूल्हे[1] के चारों ओर बैठ जाते हैं और लोक-कथाओं, पहेलियों, तथा लोक-गीतों का घण्टों कार्यक्रम चलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां सैंकड़ों लम्बी लोक कथायें सुनी व सुनाई जाती हैं तथा ऊन कातने के कार्य के साथ इस श्रुत-साहित्य का बड़ा उपकार हुआ है। उत्सवों के अवसरों पर गीत गाये ही जाते हैं परन्तु जब रात की नींद आंखों में उतर आती है और शराब के बाटिच[2] खाली होते चले जाते हैं तो स्थानीय भाषा में गीत की स्वर-लहरी शराबियों के होठों पर उतर जाती है और परिवार के बड़े बूढ़े, युवक-युवतियां एवं नानियां (अधेड़ स्त्रियां) सभी इकट्ठे होकर गीत तथा नृत्य आरम्भ कर देते हैं। गीत की भनक कानों में पड़ते ही पड़ौसी लड़के-लड़कियां उस घर की ओर दौड़ पड़ते हैं और नर्तकों की संख्या बढ़ती जाती हैं। अतिथि के स्वागत के लिए भी घरों में मेले होते हैं। प्रथा के अनुसार अतिथि को दो रात तक आवश्यक रूप से ठहराया जाता है।

यहां के लोक-देवताओं तथा त्यौहारों पर प्राय: प्रत्येक गांव में अलग अलग गीत गाये जाते हैं और इनमें ग्राम-देवता की प्रशंसा तथा प्रसन्नता का भाव ही अधिक रहता है। त्यौहार-गीत केवल छोटे क्षेत्र भर में ही प्रचलित होते हैं क्योंकि अन्य स्थानों में उनकी उपयोगिता अनुष्ठान सम्बन्धी भिन्नता के कारण अपेक्षाकृत कम होती है। इनके अतिरिक्त लोक-मानस की रुचि के सैंकड़ों लोक-गीत सारे क्षेत्र में प्रचलित हैं जिन्हें किसी भी अवसर पर गाया जा सकता है।

लोक-देवताओं तथा लामाओं के वर्णन के अभाव में इस लोक-साहित्य का सर्वेक्षण पूर्ण नहीं माना जा सकता। प्रत्येक ग्राम का अलग ग्राम-देवता होता है और लामा भी प्राय: सभी प्रकार के सामाजिक क्रिया-कलापों तथा जादू टोनों का नियन्त्रक माना जाता है। बौद्ध-धर्म की अनेक शाखायें इस क्षेत्र में प्रचलित हैं और लामाओं की समाज में बहुत प्रतिष्ठा है। उनके द्वारा बौद्ध-धर्म सम्बन्धी अनेक कथाओं का प्रचलन हुआ है और उनके सम्बन्ध में अनेक लोक-गीत इस क्षेत्र में गाए जाते हैं।। उपरि किन्नौर में लामाओं की प्रतिष्ठा जन-मानस में आश्चर्यजनक रूप से घर किये हुए है। अत: लोक-साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करते समय इन सभी बातों को दृष्टि में रखा जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विभिन्न संस्कारों तथा लोक-नाट्यों की परम्परा पर भी विचार करना समीचीन रहेगा क्योंकि इन सामाजिक विधाओं के अपने विशिष्ट स्थान हैं और वे भी इस लोक-साहित्य का आवश्यक अंग हैं।

वर्गीकरण :

इस क्षेत्र के लोक-साहित्य को हम मुख्यतया निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

1. लोक गीत। 2. लोक कथाएं। 3. त्यौहार तथा उत्सव। 4. लोक देवता। 5. लोक जीवन तथा संस्कृति। 6. कहावतें तथा लोकोक्तियां। 7. लोक-भाषा। 8. बौद्ध-धर्म। 9. लोक-नाट्य। 10. खान-पान तथा 11. दण्ड विधान।

---

1. स्थानीय बोली में इस का नाम फालिङ् है।
2. शराब पीने का पीतल का प्याला।

सामग्री-संकलन में कठिनाइयां :

लोक साहित्य के अध्ययन हेतु सामग्री-संकलन अत्यन्त कठिन कार्य है। प्रायः देखा गया है कि सामग्री-संकलनकर्ता को लोग सन्देह की दृष्टि से देखते हैं तथा सीमान्त क्षेत्र होने के कारण उस पर भेदिया तक होने का सन्देह कर लेते हैं।

इसके साथ ही अपरिचित ग्रामों में रात्रि-विश्राम की बहुत बड़ी कठिनाई है। गांव पर्याप्त ऊँचाइयों पर बसे हैं जहां गर्म कपड़ों के अभाव में ठहर पाना सम्भव नहीं है। ग्रामीण अपनी विवशताओं के कारण अतिथि को ठहराने में कठिनाई अनुभव करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग अतिथि सेवक नहीं हैं परन्तु आर्थिक कठिनाइयां तथा रहन-सहन और सांस्कृतिक भिन्नतायें इस सम्बन्ध में बाधाएं उपस्थित करती हैं।

सामग्री संकलन में सब से बड़ी कठिनाई स्थानीय बोली को शुद्ध रूप में लिखने की है। कोचा (किन्नौर के बाहर का व्यक्ति) इस क्षेत्र की बोली को भली प्रकार नहीं समझ सकता। दूसरे, इस क्षेत्र में अनेक बोलियां होने के कारण सब को सीख पाना अति कठिन कार्य है अतः दुभाषिये के बिना कार्य चला पाना संभव नहीं है। स्थानीय व्यक्तियों का गाना आदि लिखाने में संकोच अनुभव करने का यह भी एक कारण है। दुभाषिया ढूंढना भी सामग्री संकलन की भांति कठिन कार्य है।

क्योंकि यहां का जन-जीवन कठिन है और लोग अधिकांशतः पहाड़ों के पास की भूमि (कण्ठे) में तथा गांव के नीचे की जमीन (ग्योल) में खेती के कार्य में लगे रहते हैं अतः अनेक बार गांव में जाने पर कोई भी उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिलता और संकलनकर्त्ता को निराश लौटना पड़ता है। अनेक गांवों के लिये रास्ते इतने विकट तथा चढ़ाई वाले हैं कि वहां दूसरी बार जाने के लिये मानसिक तैयारी की आवश्यकता पड़ती है। इस क्षेत्र के लोक साहित्य की कतिपय विशेषताएं निम्नलिखित हैं :—

यह आदिम जाति का मौखिक साहित्य है :

यह लोक-साहित्य उस प्रागैतिहासिक जाति तथा क्षेत्र का साहित्य है जिसका वर्णन हमारी धर्मगाथाओं में अनेक बार आया है। इस जाति की प्रथाएं तथा मान्यताएं आदिम हैं और उन का अध्ययन करना आदिम जाति की संस्कृति एवं सभ्यता का अध्ययन करना है।

इसमें समाज की आत्मा बोलती है :

जिस प्रकार इस क्षेत्र के रहने वाले लोग निष्कपट तथा सीधे-साधे हैं, वैसे ही इन की संस्कृति तथा लोक साहित्य भी दुराव छिपाव तथा छल रहित है। इसमें पग पग पर यहां के समाज की आत्मा बोलती है। कुछ लोक-कथाओं तथा गीतों व प्रथाओं के अध्ययन के पश्चात् हमारे सामने सारे समाज का चित्र आ जाता है।

यह लोक-देव प्रधान साहित्य है :

यह लोक-साहित्य न जाने कब से अपरिवर्तित रूप से चला आ रहा है। देवता, जो इस लोक-साहित्य के संरक्षक हैं, प्राचीन प्रथाओं को बदलने से इन्कार करते हैं। इस कारण आदिम-प्रथाओं के प्रचलन में बहुत कम व्यवधान आये हैं और ये मान्यताएं

अत्यन्त प्राचीन काल से लोगों में प्रचलित हैं। इस प्रकार लोक-वार्ता सम्बन्धी सामग्री को नष्ट होने से बचा लिया गया है।

नये गीतों का निर्माण :

मुख्य सामाजिक घटनाएं गीतों में उतरती चली जाती हैं। यहां के लोक-गीत गतिशील हैं, वे अनेक बार संशोधित, परिवर्धित, तथा परिमार्जित हो कर श्रोताओं के सामने आते हैं। ऐसे लोक-गीतों का भी अभाव नहीं है जो शताब्दियों से जनता के कण्ठ पर आरूढ़ हैं और वर्ष के कुछ ही गिने चुने अवसरों पर गाये जाते हैं। सङ्गीथङ् (ब्राह्म मुहूर्त में गाया जाने वाला पाण्डवों का गीत), गितकारेङ् गीथङ् (आत्मा को श्राद्ध के अवसर पर बुलाने के लिये गाया जाने वाला गीत) तथा लोक-देवताओं के गीत बहुत प्राचीन काल से इस क्षेत्र में प्रचलित रहे हैं।

लोक-गीतों तथा कथाओं के रूपान्तर :

सांस्कृतिक भिन्नता के कारण एक ही गीत तथा लोक-कथा के अनेक रूपान्तर लोक में प्रचलित हैं। एकाधिक रूपान्तरों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इनके मूल रूप का अनुमान कर सकते हैं। अनेक बार घटना के वास्तविक रूप के सम्बन्ध में निर्णय करना इन रूपान्तरों के कारण भी कठिन प्रतीत होता है।

संस्कृतियों की परतें :

क्योंकि समय समय पर बाहर से अनेक जातियां अथवा व्यक्ति इस क्षेत्र में आ कर बसते रहे अतः संस्कृतियों की एकाधिक परतें इस क्षेत्र में विद्यमान हैं। इन परतों का पता यहां के त्यौहारों तथा लोक-देवताओं के अध्ययन से लगता है। इस बात की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि यहां प्रत्येक गांव में अनेक वंश निवास करते हैं।

लामा–इस लोक-साहित्य की विशेषता :

तिब्बत की ओर से आया हुआ तथा बोन-धर्म से प्रभावित बौद्ध-धर्म जिस में तान्त्रिक-विद्या का बहुत प्रभाव है, इस क्षेत्र के लोक-साहित्य की विशेषता है। लामा भी लोक-देवताओं की भांति इस संस्कृति के संरक्षक हैं। लामाओं को भगवान बुद्ध के अवतारों से सम्बन्धित माना जाता है और उन्हें 'महान गुरू' (रिम्पोछे) मान कर समादृत किया जाता है। उपरि किन्नौर में सामाजिक अनुष्ठानों में लामाओं की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है।

इस क्षेत्र की लोक-भाषा :

इस क्षेत्र की प्रचलित लोक-भाषा पर व्यवस्थित रूप से कोई कार्य नहीं हुआ है परन्तु जिन विद्वानों ने इस क्षेत्र में कुछ अध्ययन किया है, उनका कथन है कि यह बोली तिब्बती-बर्मी बोली की हिमालियन शाखा से सम्बन्धित है। इसे किराती बोली भी कहा जाता है। सारे किन्नौर में लगभग दस उप-भाषायें बोली जाती हैं जिनका विवेचन प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। मुण्डा भाषा से साम्य के कारण कुछ विद्वान इस भाषा को मुण्डारी के समीप की बोली मानते हैं।

विचित्र प्रथाओं का क्षेत्र :

यहां के अनेक त्यौहार नाम तथा मनाने के ढंग से प्रायः शेष क्षेत्रों के त्यौहारों से

नहीं मिलते । लोक-देवताओं के साथ जीवन का प्रत्येक क्रिया-कलाप जुड़ा होने के कारण यहां के जन-जीवन में अनेक विचित्र प्रथायें प्रचलित हैं, यथा, भूतों को गालियां देकर भगाना, पुत्रोत्पत्ति पर पिता का पीटा जाना, पुजारी द्वारा फूल के साथ भौंरे को खाना तथा उलटे पांव श्मशानघाट तक चलना, इत्यादि बातें प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति के अवशेष हैं जो यहां के लोक-साहित्यिक अध्ययन को अधिक रुचिकर बना देते हैं । मृतकों के नाम पर पर्वत-चोटियों पर चबूतरे बनाना तथा 'तोशिम' की प्रथा भी इसी प्रकार की विशिष्ट परम्पराएं हैं जिन का सम्बन्ध इस जाति के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है । होरिङ्फो, चैत्रोल, बीशू मनाने की प्रथा तथा अन्य अनेक त्यौहार व लोक-देवता इस क्षेत्र की संस्कृति के अध्ययन के विशिष्ट आकर्षण हैं ।

इन बातों के अतिरिक्त हम देखते हैं कि प्रस्तुत क्षेत्र भारत का सीमावर्ती जिला तथा अनुसूचित आदिम-जातीय क्षेत्र है जहां तिब्बत की संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा है और बहुत सम्भव है कि तिब्बत की प्रथाओं पर भी इस क्षेत्र में रहने वाली जाति ने सांस्कृतिक प्रभाव छोड़े हों । प्रागैतिहासिक काल में इस क्षेत्र को एक सशक्त संस्कृति का गढ़ होने का गौरव प्राप्त है । बाणासुर इस क्षेत्र का अधिपति रहा है सम्भवत: इसीलिए यहां के देवी-देवता बाणासुर व हिरमा की सन्तान माने जाते हैं । यही नहीं, इस क्षेत्र पर अनेक जातियों ने समय समय पर आक्रमण किये हैं और आश्चर्य नहीं कि उन्होंने भी अपने पद-चिन्ह क्षेत्रीय संस्कृति में छोड़े हों । लोक-देवता तथा लोकोत्सव सामाजिक जीवन का स्थायी अंग होते हैं । देव-परम्परा की विशिष्ट छाप ने इस क्षेत्र के लोक मानस को बहुत प्रभावित किया है । इस कठिनाइयों से भरे दुर्गम भूखण्ड में मानव-समाज को किन्हीं अदृश्य शक्तियों का सम्बल आवश्यक ही था । किन्नर वास्तविक रूप में देव-पुत्र हैं, यह उनके दैनिक जीवन का अंशतः अध्ययन करने पर ही स्पष्ट हो जाता है । जहां प्रकृति ने उन्हें 'किन्नर-कण्ठ' दिया है वहां वे रहस्यमय परिवेश में रहते हुए जिस बोली का प्रयोग करते हैं वह भी भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की धरोहर संजोये हुए है ।

खश, कनैत, मुण्डा, असुर तथा द्रविड़ जातियां वर्तमान समय में हिमालय के इस क्षेत्र के साथ सम्बद्ध मानी जाने लगी हैं । कुछ विद्वान किन्नर-किरातों को एक ही वर्ग का मानते हैं तथा अन्य कतिपय नागों को भी मुण्डावर्ग से जोड़ते हैं । यह सब इस लिए हुआ है कि हिमालय-क्षेत्र की संस्कृति पर व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सका है अत: अध्ययन का वर्तमान क्षेत्र ऊपर-वर्णित विवादों को किसी सीमा तक सुलझाने में सहायता दे सकता है और यह केवल लोक साहित्यिक शोध के द्वारा ही सम्भव है ।

3 किन्नर लोक गीत

लोकगीत का उद्गम

आनन्द और शोक मानव-जीवन के आधारभूत तत्त्व हैं। शोक की पीड़ा से मनुष्य रो उठता है और प्रसन्नता के क्षणों को वह नाच गा कर दूसरों में भी बांटना चाहता है। आदिम मानव ने जब भाषा को अपनाया होगा तो प्रसन्नता के क्षणों में अनायास ही उस के हृदय में रसात्मक अनुभूति भी हुई होगी। इन क्षणों में जो कुछ उस ने लयात्मक ढंग से कहा होगा, वही सृष्टि का प्रथम गीत रहा होगा। यही गीत जब श्रोताओं ने रचयिता का नाम जाने बिना, अपने ही मन के उद्गार समझ कर गाया होगा तो लोक में प्रचलित हो कर वह लोकगीत बन गया होगा। लोक-गीत के निर्माण तथा प्रचलन में आज भी यही नियम अपरिवर्तित रूप से विद्यमान है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने स्वर्गीय श्री झबेर चन्द मेघाणी के गुजराती कथन का भावानुवाद[1] करते हुये लिखा है कि जिस प्रकार कोई नदी किसी घोर अन्धकारमयी गुफा से बह कर आती हो और किसी को उसके उद्गम का पता न हो, ठीक यही दशा लोकगीतों की है[2]। लोकगीतों में निजीपन तो होता है परन्तु लोकमानस को पसन्द आने वाले विषय के साथ सम्बन्धित होने के कारण उन में साधारणीकरण की भावना साहित्यिक गीतों की अपेक्षा अधिक होती है[3]।

लोक-गीत ग्रामीण जगत की प्राकृतिक फुलवाड़ी हैं, इन का क्षेत्र इतना विस्तृत होता चला जाता है कि वह समान भाषा और संस्कृति वाले शहरों को भी अपने में संजो लेता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी लोकगीतों को आर्येत्तर सभ्यता के वेद मानते हैं[4]। लोकप्रियता लोकगीत का आवश्यक गुण है[5]। स्काटलैंड का महान देश

---

1. देखिये—लोकायन, डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० 9 तथा रढियाली रात, भाग 1, भूमिका, पृ० 6।
2. कविता कौमुदी, भाग 5, ग्राम-गीत प्रकरण, पृ० 11।
3. गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० 123।
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय, भूमिका, पृ० 5।
5. The Science of Folk lore—Alexander H. Krappe, Page 153.

भक्त फ्लैचर लोकगीतों को देश के संविधान से भी महत्त्वपूर्ण मानता है[1]।

डॉ० कुञ्ज बिहारी दास[2] का यह कथन कि लोकगीत सुसंस्कृत तथा सभ्य प्रभावों से बाहर रहने वाले लोगों की प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, सर्वथा निराधार नहीं[3] है। यह देखा जाता है कि अपेक्षाकृत आदिम अवस्था में निवास करने वाली जातियों में लोकनाट्यों तथा लोकगीतों का अन्य जातियों की अपेक्षा बाहुल्य रहता है तथा वर्ग का प्राय: प्रत्येक सदस्य उन में सक्रिय सहयोग देता है। लोकगीतों के प्रचलन में वातावरण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहां मनोरंजन के अन्य साधन कम प्रचलित हों वहां के समाज में मनुष्य अधिक स्वाभाविक अवस्था में देखा जा सकता है। किन्नर क्षेत्र भी इसी श्रेणी में आता है।

इन सभी बातों पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि—

(1) लोकगीत अज्ञात कवि की ऐसी रचना होती है जिस में लयात्मकता हो और जिस के द्वारा लोक-मानस के प्रिय विषय का उद्‌घाटन हो[4]।

(2) लोक-गीत में साधारणीकरण की क्षमता होती है। इसमें रचयिता तथा गायक श्रोता के साथ एकात्मकता स्थापित करते हैं।

(3) लोक-गीत की लय तथा धुन समाज को प्रिय लगने वाली होती है तथा उसमें अनगढ़पन रहता है।

(4) लोकगीत में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामूहिकता की भावना अधिक होती है।

(5) लोक-गीत स्वत: नि:सृत अनुभूति पर आधारित होते हैं, उन्हें बनाने में छन्द व अलंकार का उपयोग अथवा ज्ञान आवश्यक नहीं।

(6) लोक-गीतों का उद्देश्य मनोरंजन के साथ शिक्षा भी रहता है परन्तु मनोरंजन उन का मुख्य उद्देश्य होता है।

(7) आदिम जातियों में लोकगीतों की संख्या अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।

(8) इन गीतों में सामाजिक मान्यताओं का दिग्दर्शन रहता है।

(9) लोक-गीत सरल व सुबोध भाषा में होते हैं तथा इनका प्रचार-क्षेत्र किसी बोली या भाषा के बोलने वालों पर निर्भर करता है। जितने अधिक लोग किसी

---

1. भोजपुरी लोक-गाथा—सत्यव्रत सिन्हा, पृ० (भूमिका) ज।
2. मैथिली लोक-गीतों का अध्ययन—डॉ० तेज नारायण लाल शास्त्री, पृ० 11।
3. A study in Orrison Folk lore—Kunj Bihari Dass-Introduction, Page 1.
4. डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार—वह गीत जो लोक मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिस में लोक-मानसाभास भी हो, लोक-गीत के अन्तर्गत आता है—
देखिये, लोक-साहित्य विज्ञान, पृ० 390।

क्षेत्र में ऋतु सम्बन्धी गीत भी नहीं मिलते। डॉ० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा किए गए वर्गीकरण के केवल संस्कार सम्बन्धी गीतों तथा धर्म-गीतों के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के गीत इस क्षेत्र में नहीं मिलते हैं।

पं० सूर्यकरण पारीक ने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी लोक-गीत[1]' में राजस्थानी गीतों का निम्न वर्गीकरण दिया है :—

1. देवी देवताओं और पितरों के गीत। 2. ऋतुओं के गीत। 3. तीर्थों के गीत। 4. व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत। 5. संस्कारों के गीत। 6. विवाह के गीत। 7. भाई-बहिन के प्रेम के गीत। 8. साली-सालेल्यां (सरहज) के गीत। 9. पति पत्नी के प्रेम के गीत। 10. पणिहारियों के गीत। 11. प्रेम के गीत। 12. चक्की पीसते समय के गीत। 13. बालिकाओं के गीत। 14. चरखे के गीत। 15. प्रभाती गीत। 16. हरजस—राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत। 17. धमालें। 18. देश-प्रेम के गीत। 19. राजकीय-गीत। 20. राज-दरबार, मजलिस, शिकार, दारु के गीत। 21. जम्मे के गीत। 22. सिद्ध पुरुषों के गीत। 23 (क) वीरों के गीत। (ख) ऐतिहासिक गीत। 24. (क) गवालों के गीत। (ख) हास्यरस के गीत। 25. पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत। 26. शान्त रस के गीत। 27. ग्राम-गीत। 28. नाट्य-गीत। तथा 29. विविध।

ऊपरवर्णित वर्गीकरण किन्नर-लोक-गीतों की प्रकृति के अनुकूल नहीं है क्योंकि यहां हरजस, जम्मे, सिद्ध पुरुषों, पशु-पक्षी सम्बन्धी तथा सरहज आदि के गीत प्रचलित नहीं हैं। अतः इस वर्गीकरण को भी हम स्थानीय ही समझते हैं। इस क्षेत्र में मांगने वालों तथा खेल के सम्बन्ध में भी गीत प्राप्त नहीं होते[2]।

इसी प्रकार स्व० श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव[3] द्वारा प्रस्तुत किया गया वर्गीकरण भी इस क्षेत्र के लोक गीतों पर ठीक नहीं उतरता। डॉ० श्याम परमार[4] ने अपने वर्गीकरण में जातियों की दृष्टि से, कार्य के सम्बन्ध की दृष्टि से तथा रस-सृष्टि की दृष्टि से जो विभाजन किया है वह भी किन्नर-लोक गीतों पर पूरा नहीं घटता।

एक अन्य वर्गीकरण डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय ने[5] किया है, जो इस प्रकार है :—

1. संस्कारों की दृष्टि से। 2. रसानुभूति की प्रणाली से। 3. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से। 4. विभिन्न जातियों के प्रकार से तथा 5. क्रिया-गीत की दृष्टि से।

---

1. पृ० 22-25 तथा लोक साहित्य विज्ञान, पृ० 398-399।
2. लोक-साहित्य विज्ञान, पृ० 400-404।
3. देखिए लोक-साहित्य विज्ञान पृ० 405-406।
4. देखिए लो० सा० वि० पृ० 406 तथा डॉ० श्याम परमार—भारतीय लोक साहित्य।
5. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोड्श भाग, पृ० 52।

प्रस्तुत वर्गीकरण में रसानुभूति की प्रणाली से किन्नर-लोक-गीतों का अध्ययन करना रुचिकर रह सकता है। परन्तु ऊपरवर्णित क्रम नं० 3, 4 व 5 के अन्तर्गत लोक गीतों का अध्ययन सम्भव नहीं है क्योंकि इस क्षेत्र में इन के अन्तर्गत गीत नहीं मिलते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक गीतों के अब तक जो वर्गीकरण किए गये हैं, वे क्षेत्र-विशेष के लिये ही उपयुक्त हैं और किन्नर-क्षेत्र के लिए उनकी उपयोगिता नहीं है।

यह कहना असंगत नहीं है कि किन्नर-क्षेत्र में लोक-गीतों के जो प्रकार मिलते हैं उन में अनेक ऐसे हैं जो हिमालय के गर्भ में निवास करने वाली तथा बहुपति-प्रथा में विश्वास रखने वाली जातियों में ही मिल सकते हैं, मैदानों में बसने वाले लोगों में न तो किन्नर-समाज की सी मान्यताएं प्रचलित हैं और न ही इस वर्ग के गीत उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत क्षेत्र के लोक-गीतों को निम्न मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. **धर्मगाथा सम्बन्धी—**
   1. देवताओं के गीत—
      - अ. सभी प्रकार के देवी/देवताओं के गीत।
      - आ. अनुष्ठान सम्बन्धी गीत।
   2. बौद्ध-धर्म के गीत—
      - अ. लामाओं के गीत।
      - आ. बौद्ध मन्दिरों के गीत।
   3. दैवी घटनाओं के गीत—
      - अ. भूत-प्रेतों के गीत।
      - आ. सौभाग्य-दुर्भाग्य के गीत।
2. **सामाजिक—**
   1. सामाजिक मान्यताओं के गीत—
      - अ. जाति सम्बन्धी।
      - आ. अनहोने विवाह-सम्बन्ध।
      - इ. कोची गीत (केवल सामाजिक)।
   2. सौन्दर्य के गीत।
   3. ऐतिहासिक गीत—
      - अ. राजाओं के गीत।
      - आ लड़ाइयों के गीत।
      - इ. सामाजिक कलह के गीत।
      - ई. हत्याओं/आत्म हत्याओं के गीत।

4. स्वांग गीत—
   अ. हास्य रस के गीत।
5. उत्सवों के गीत—
   अ. सभी प्रकार के त्यौहार-उत्सव।
6. संस्कारों के गीत।

3. **लोकनाट्यों के गीत—**
   1. कायङ्, जबरो आदि।
   2. नाटियों व शेरों के गीत।

4. **वैयक्तिक गीत—**
   1. प्रेम गीत।
   2. विरह गीत।
   3. दर्शक पुरुषों के गीत।

5. **जीवन-दर्शन के गीत।**

स्टिथ थॉम्पसन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मोटिफ इण्डैक्स ऑफ फोक लिट्रेचर' (Motif Index of folk Literature) की परिपाटी पर किन्नौरी लोक-गीतों को देवनागरी वर्णमाला के आधार पर अकारादि क्रम से वर्गीकृत करके इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है :—

(क) धर्म-गाथा :

क 0—क 49	सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी गीत।
क 50—क 119	देवताओं की उत्पत्ति।
क 120—क 149	देवताओं से सम्बन्धित विवरण।
क 150—क 199	देवताओं के चमत्कार।
क 200—क 249	देवताओं के प्रकार।
क 250—क 299	देवताओं द्वारा सामाजिक नियन्त्रण।
क 300—क 349	पौराणिक देवताओं के गीत।
क 350—क 399	देवताओं के कलह-सहायता-मित्रता गीत।
क 400—क 449	गृह-देवताओं के गीत।
क 450—क 499	वन देवियों (सावनियों) के गीत।

(ख) बौद्ध-धर्म सम्बन्धी गीत :

ख 0—ख 49	बौद्ध धर्म का प्रचार तथा शिक्षा।
ख 20—ख 99	लामाओं की बौद्ध-धर्म के कारण प्रतिष्ठा।
ख 100—ख 149	बौद्ध-धर्म सम्बन्धी त्यौहारों के गीत।
ख 150—ख 199	लामाओं के बौद्ध-धर्म सम्बन्धी गीत।

(ग) त्यौहारों के गीत :

ग 0—ग 49	चैत्रोल।
ग 50—ग 99	बीशू।
ग 100—ग 119	ऐराटङ्।
ग 120—ग 139	शोनेटङ्।
ग 140—ग 159	दकरेणी/डकरेणी।
ग 160—ग 199	फुलाइच् (फुल्याच), नमङ्न आदि।
ग 200—ग 239	दीवाल।
ग 240—ग 279	फागुली, सुस्कर।
ग 280—ग 299	अन्य त्यौहारों के गीत।
ग 300—ग 399	त्यौहारों के विविध गीत।

(घ) जन्म, विवाह तथा मृत्यु के गीत :

घ 0—घ 19	जन्म के गीत।
घ 20—घ 169	विवाह के गीत।
घ 170—घ 199	तलाक, पसन्द के ससुराल, मजबूरी तथा हारी के गीत।
घ 200—घ 249	शोक-गीत।
घ 250—घ 299	पितरों को बुलाने के गीत (गितकारेङ् गीथङ्)।

(च) प्रेम गीत :

च 0—च 249	सफल प्रेम-सम्बन्ध गीत।
च 250—च 349	असफल प्रेम के गीत।
च 350—च 449	विवाहित प्रेमी-प्रेमिकाओं के गीत।
च 450—च 549	फुटकर प्रेम-गीत।
च 550—च 599	प्रेमियों का पलायन।

(छ) भूत-प्रेतों के गीत :

छ 0—छ 19	घर में निवास करने वाले भूत-प्रेतों के गीत।
छ 20—छ 49	अन्य भूत-प्रेतों के गीत।

(ज) सामाजिक प्रथाओं-विश्वासों से सम्बन्धित गीत :

ज 0—ज 59	तीर्थ-यात्रा।
ज 60—ज 99	शकुन एवं अपशकुन-गीत।
ज 100—ज 149	विवाहादि सम्बन्धी विश्वास तथा मान्यताएं।
ज 150—ज 249	सामाजिक मानदण्डों के गीत।

ज 250—ज 349 — विविध-गीत।

(झ) **ऐतिहासिक गीत :**

झ 0—झ 99 — ऐतिहासिक वीर।

झ 100—झ 149 — लड़ाई।

झ 150—झ 199 — समझौतों से सम्बन्धित गीत।

(ट) **स्वांग गीत :**

ट 0—ट 49 — शराबियों के गीत।

ट 50—ट 99 — अन्य स्वांग-गीत, होरिङ् फो आदि।

(ठ) **विरह-गीत :**

ठ 0—ठ 99 — विरह के सभी प्रकार के गीत।

(ड) **जाति सम्बन्धी गीत :**

ड— 0 ड 99 — हरिजनों के गीत।

ड 100—ड 149 — सवर्णों के सम्बन्ध में गीत।

ड 150—ड 199 — अन्य जातियों के गीत।

(ढ) **दैवी घटनाएं :**

ढ— 0 ढ 99 — भाग्योदय।

ढ 100—ढ 199 — मन्द भाग्य।

(त) **सौन्दर्य के गीत :**

त— 0 त 99 — वर्णनात्मक सौन्दर्य।

त 100—त 149 — फूलों, प्रकृति का सौन्दर्य।

त 150—त 199 — स्त्रियों का सौन्दर्य।

(थ) **किन्नौर के दर्शक-महापुरुष :**

थ— 0 थ 99 — स्थानीय।

थ 100—थ 199 — बाहर के।

(द) **जीवन-दर्शन के गीत :**

द—0 द 99 — जीवन क्या है ?

द 100—द 199 — परलोक में सुख के लिए मार्ग।

(ध) **सामाजिक कलह :**

ध— 0 ध 99 — जीवन, सम्पत्ति के लिए।

ध 100—ध 149 — प्रेमी-प्रेमिका के लिए।

ध 150—ध 199 — फरयाद-मुकदमा।

(न) **अन्य सामाजिक उत्सवों तथा लोक-नाट्यों के गीत :**

न— 0 न 99 — राष्ट्रीय उत्सव।

न 100—न 149 लोक-नाट्य ।

(प) **हास्य-रस के गीत :**

प— 0 प 99 शिष्ट हास्य ।

प 100—प 149 उच्छृंखल हास्य ।

(फ) **हत्यायें :**

फ— 0 फ 49 आत्महत्या के गीत ।

फ 50—फ 99 दूसरों के द्वारा हत्या के गीत ।

(ब) **कोची गीत :**

ब— 0 ब 49 कोची प्रेम-गीत ।

ब 50 ब 99 कोची फुटकर गीत ।

(भ) **अनहोने प्रेम, विवाह सम्बन्ध :**

भ— 0 भ 99 अनहोने प्रेम सम्बन्ध ।

भ 100—भ 149 अनहोने विवाह-सम्बन्ध ।

भ 150—भ 199 धोखा ।

(म) **नाटियां—शेरों के गीत :**

म— 0 म 49 शेर, बाघों (मृत) के नचाने के गीत ।

म 50 म 99 अन्य प्रकार की नाटियां ।

हमने इसी वर्गीकरण को आधार मान कर संकलित गीतों को श्रेणी-बद्ध किया है ।

हरिजनों की बोली सवर्णों की बोली से अलग है और उस में भी कुछ गीत रचना हुई है, अतः इस दृष्टि से भी लोक गीतों का अध्ययन किया जा सकता है परन्तु ऐसा वर्गीकरण अपने में वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि गीतों के प्रायः अनुवाद-मात्र हरिजन लोक-गीतों में मिलते हैं, उन के लोक-गीत साहित्य में स्वतन्त्र अभिव्यक्तियों की अभिव्यंजना बहुत कम हुई है ।

लोक-गीतों के वर्गीकरण में अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया वर्गीकरण अधिक समीचीन जंचता है । गीतों को प्रस्तुत वर्गीकरण के अनुसार रखने से यह लाभ भी है कि भविष्य में संकलित किए जाने वाले लोक-गीतों को भी वर्ग के अनुसार ठीक स्थान पर रखा जा सकता है । इस क्षेत्र के सारे प्रचलित गीत प्रस्तुत वर्गीकरण में स्थान पा जाते हैं ।

अब ऊपर-वर्णित वर्गीकरण के आधार पर हम लोक गीतों के सभी पक्षों पर क्रम से विचार करेंगे :—

(क) धर्म गाथा सम्बन्धी गीत :

किन्नर लोग धार्मिक हैं । प्रत्येक गांव में लोक-देवता तथा लामा हैं जो लोगों के धार्मिक कृत्यों के अधिष्ठाता होते हैं । देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक

अवसरों पर उन्हें पालकियों में सजा कर मन्दिरों से बाहर 'सन्थङ्' में निकाला और नचाया जाता है। यहां अनेक प्रकार के देवी-देवता हैं। देवी-देवताओं के झगड़ों के अनेकों गीत यहां प्रचलित हैं परन्तु सामान्य-जन अन्य गांवों के देवताओं में भी गहन आस्था रखते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गाया जाने वाला 'ईशूरस' अथवा 'बडारन' का गीत बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस के अनुसार ईशूरस (महादेव) की उत्पत्ति अण्डे से हुई और वह युकुन्तरस (बर्फ के देवता) की दो लड़कियों-गोरे व गंगे को अपने चमत्कार से विवाह कर लाया। इस गीत में धातुओं व राख के मनुष्यों के सृजन के सम्बन्ध में भी वर्णन आता है। धातुओं से बनाए गए मनुष्य जब धार के परे भेजे जाने पर नहीं सुन सके तो राख का मनुष्य बनाना आवश्यक हुआ। राख का यह मनुष्य ही आज का नश्वर प्राणी है। महादेव की बरात के लिए युकुन्तरस ने अनेक शर्तें रखी थीं। इस क्षेत्र के देवी-देवताओं ने अति प्राचीन काल में अपने क्षेत्रों की बांट की थी। महेशुर (मेशुर) यहां के सब से शक्तिशाली देवता माने जाते हैं। ये 18 भाई बहन हैं। इन के पिता का नाम बाणासुर तथा माता का नाम हिरमा (हिड़िम्बा) है। क्षेत्रों की बांट सब से बड़ी बहिन कोठी गांव की चण्डिका ने की थी और किम्वदन्ती है कि इस क्षेत्र का सब से अच्छा भाग उसने अपनी बेणी के पीछे छुपा कर अपने लिए रख लिया था। यहां देवताओं की उत्पत्ति तथा इस बांट के सम्बन्ध में अनेक लोक-गीत मिल जाते हैं[1]।

धर्म-गाथा सम्बन्धी एक अन्य गीत के अनुसार देवताओं की क्षेत्र-बांट के पश्चात् कोठी की देवी चण्डिका ने अपनी छोटी बहिन ऊषा देवी (निचार गांव) के पति हौनू राक्षस (देव) को नमक के व्यापार के बहाने कोठी गांव ले जाना चाहा। ऊषा ने अपने पति को बड़ी बहिन के साथ भेज दिया। जब चण्डिका तथा हौनू चीनी (काल्पा) गांव के पास एक घराट में पहुंचे तो चण्डिका ने उसे आटा पीसने के लिए कहा और स्वयं पीसने के लिए अधिक अनाज लाने के बहाने वहां से चली गई। उस ने 'हौनू' को कहा कि यदि उस के वापिस आने से पूर्व ही अनाज समाप्त हो जाए तो वह अपने सिर की जटाओं[2] को घराट में लगा दे ताकि घराट खाली न घूमता रहे। उसने ऐसा ही किया। बताया जाता है कि चण्डिका ने धोखे से पीछे से उस का सिर तलवार से काट दिया परन्तु वह जरासन्ध के शरीर की भाँति फिर जुड़ जाता था अतः चण्डिका उसे बार बार काटते समय लहूलुहान हो गई और थक कर उसने रूवांगी गांव के देवता मरकारिङ् को याद किया। मरकारिङ् ने आकर देवी चण्डिका को घराट से निकालने का प्रयत्न किया पर वह सफल नहीं हो सका। अन्त में देवी ने उसे चगांव महेशुर (जो चण्डिका का सब से छोटा भाई है) को सहायतार्थ बुलाने के लिए भेजा। कुछ गीतों के अनुसार चगांव महेशुर उड़ कर घटनास्थल पर पहुंचा और देवी को कहा कि वह हौनू के सिर पर उड़ रहे काले भौंरे (भंवरे) को मारे। देवी ने वैसा ही किया जिस से हौनू की मृत्यु हो गई। दूसरे कुछ गीतों के अनुसार चगांव महेशुर ने जाने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि देवी चण्डिका ने क्षेत्र-बांट में उस के साथ अन्याय किया है। ऐसी दशा में गीतों के अनुसार, मरकारिङ् देवता ने, जो अपने आप

1. गीतों के लिए देखिये, परिशिष्ट 1।
2. इस क्षेत्र में देवताओं के सिरों पर याक की जटायें पहनाई गई होती हैं।

को महेशुरों का भानजा कहता है, चगांव महेशुर को समझाया और वह बहिन की सहायता के लिए मान गया।

इन गीतों में बाणासुर व हिरमा एक स्थान मुलट धार पर मिलते हैं और बाणासुर हिरमा (हिड़िम्बा) को बलपूर्वक एक स्थान गोरबोरिङ् गुफा में ले जाता है तथा वहां उन के यहाँ अट्ठारह बेटे-बेटियाँ जन्म लेते हैं। यही लड़के-लड़कियाँ इस क्षेत्र के बड़े देवी-देवता हैं। अन्य अनेक प्रचलित गीतों के अनुसार इन की संख्या सात भी बताई गई है। यह सम्भवत: इस लिए हुआ है कि बाणासुर-हिरमा के इन अट्ठारह पुत्र-पुत्रियों के नामों का लोगों को पता नहीं है परन्तु इस क्षेत्र में देवी-देवताओं के अट्ठारह 'मुखङ्' (धातु के चेहरे) जो सोने, पीतल तथा चाँदी के बने होते हैं, इस बात का संकेत करते हैं कि इस क्षेत्र के अट्ठारह प्रधान लोक-देवता रहे हैं। मेशुरों के मुखङ् सोने के होते हैं परन्तु शेष चान्दी व पीतल के बने होते हैं। गोरबोरिङ् आग (गुफा) सुङ्रा गाँव के पास है। बाणासुर की सन्तान होने के कारण महेशुर शब्द का प्रचलित शुद्ध रूप महासुर रहा होगा परन्तु कालान्तर में यह शब्द शिवजी का पर्याय-वाची बन गया और इस प्रकार इन क्षेत्रीय देवताओं के लिए 'महेशुर' या महेश्वर' शब्द प्रचलित हुआ।

जिस घराट में हौनू का वध किया गया था, उस स्थान पर कोठी गाँव की चण्डिका अब भी वर्ष में कम से कम एक बार पालकी (रथङ्) में ले जाई जाती है और हौनू के नाम पर बकरे की बलि दी जाती है। जब बलि दी जा रही होती है तो देवी का रथ घराट के स्थान की ओर झुक जाता है। गीत के अनेक रूपान्तर हरिजनों की बोली में भी मिलते हैं। हौनू व अनिरुद्ध-ऊषा की कथा लोक साहित्यिक आधार की पुष्ट करती है।

किन्नर-क्षेत्र में महेशुरों के अतिरिक्त नारायण, नाग, सरगा चोरोनी, कुलदेव, बौद्ध-धर्म मानने वाले देवी देवता, यथा-डबला, शिशेरिङ्, क्यङ्-युङ्मा आदि भी हैं जिन में से प्रत्येक के लोक गीत इस क्षेत्र में गाए जाते हैं। इन सभी प्रकार के गीतों में किन्नर-लोगों का धार्मिक विश्वास झलकता है।

देवताओं के सीमा सम्बन्धी झगड़ों में 'चगांव' महेशुर और सापनी के नागस का गीत प्रसिद्ध है। इस में बताया गया है कि सापनी का नाग देवता चगाँव महेशुर के क्षेत्र में पड़ने वाले गाँव जानी में अपनी इच्छा से आ जाता है। चगाँव महेशुर क्रोधित हो कर उसे जला देता है। बरी गाँव का नाग देवता गाँव में फैली बीमारी को दूर करने के लिए अपने जन्म-स्थान मीरू में जाता है और वहाँ से 'शक्ति प्राप्त' करके तथा अन्य देवताओं की सहायता द्वारा बीमारी को भगा देता है।

उरनी गाँव में भी एक नाग तथा दूसरा नारायण देवता है। नाग देवता गुप्त था। वहाँ के नारायण देवता ने उसे निकालने के लिए बड़े देवता चगाँव महेशुर की आज्ञा प्राप्त की और उस की इच्छानुसार ही नाग देवता प्रकट हुआ। देवी-देवताओं का प्रकट होना अभी भी सम्भव है और इस प्रकार अनेक गांवों में समय समय पर नए देवताओं का प्रादुर्भाव होता रहता है।

'डीबसरनी तथा ऊषा' के गीत में ऊषा देवी सुन्दरी डीबसरनी के सौन्दर्य से ईर्ष्या करती है और उसे मार डालती है। लोक-कवि डीबसरनी के भाग्य पर आंसू बहाता हुआ कहता है :—

किसमत मा ग्याशो, किस्मत नहीं चाहिए,
या डीबसी देसका किस्मत। डीबसी जैसी किस्मत।

युमदासी के गीत में देवता के यह कहने पर कि युमदासी की बीमारी नहीं हटाई जा सकती और वह ढांक पर का सूर्य है, युमदासी निराश होकर मर जाती है।

पौराणिक गीतों में 'सङ्गीथङ्' (ब्राह्ममुहूर्त का गीत), रामायण का गीत तथा गजेन्द्र हाथी के गीत प्रसिद्ध हैं। "सङ्गीथङ्" पाण्डवों का गीत है, इस में पाण्डवों व कौरवों के जन्म तथा कौरवों के संख्या में 60 होने का वर्णन है। यह गीत बहुत लम्बा है और ब्राह्म मुहूर्त में गाया जाता है। इस में 'नाती' ने अपनी बहिन कुन्ती को धोखा दिया है।

चमत्कार सम्बन्धी गीतों में 'सोरानङ् जोग गीथङ्' अर्थात 'सराहन के यज्ञ का गीत' भी प्रसिद्ध है। इसमें चगांव का महेशुर चमत्कार से निरमण्ड के ब्राह्मण को घमण्ड के कारण मार डालता है। इसी सम्बन्ध में पांगी गांव में देवता द्वारा बन्दरों को भगाने का गीत भी बहुत प्रसिद्ध है। गीत के कुछ बोल हैं :—

तेवे शिशेरिङ्स लोतोश- शिशेरिङ् (पांगी गांव का देवता) ने कहा–
तेवे राई निज़ाकू छाडा! आठ बीस (एक सौ साठ) लड़को!
तेवे युगती का पायरा! नीचे से तुम चलना!
तेवे थवागसी ग बतोक! ऊपर से मैं आऊंगा!

वर्षा लाने के भी अनेक गीत इस क्षेत्र में मिलते हैं। इन में देवी-देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि वे वर्षा लाएं और अपनी प्रजा की रक्षा करें।

सर्दी की ऋतु में किन्नर-देवता अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए अच्छी फसलें व वर्षा आदि लाने के लिए स्वर्ग चले जाते हैं। लोग उन्हें बड़ी भावभीनी विदाई देते हैं और राक्षसों से अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। इस सम्बन्ध में देवता के स्वर्ग जाने व आने के अनेक गीत यहां मिलते हैं।

ग्राम-देवताओं के अतिरिक्त वन-देवियों[1] के गीत भी यहां प्रचलित हैं। वन-देवियां पर्वत-चोटियों के समीप स्थित जमीन में बीजी गई फसलों की रक्षक मानी जाती हैं और वे नाराज होने पर फुआलों[2] की भेड़ बकरियों को छुपा लेती है। फागुली में इन की पूजा की जाती है। 'पिती राम पति राम' के गीत में सावनी देवियों ने भेड़ों के झुण्ड को छुपा लिया था। बलि देने पर वह झुण्ड फिर प्रकट हो गया।

धर्म-गाथा सम्बन्धी गीतों को निम्न प्रकार से भी वर्गीकृत किया जा सकता है :—

---

1. इन्हें स्थानीय बोली में 'साऊनिगे' अर्थात् 'सावनी' कहा जाता है। ये पहाड़ की चोटियों पर रहने वाले देवता हैं।
2. भेड़ बकरी चराने वालों को 'फुआल' कहा जाता है। इस के लिए स्थानीय शब्द 'पालस' है।

1. सृष्टि की उत्पत्ति के गीत—

1. देवताओं की उत्पत्ति—

   अ. स्थान विशेष में।

   आ. बाणासुर-हिरमा।

   इ. अण्डे से।

2. जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति—

   अ. हरिजन गीतों में।

   आ. सवर्णों के गीतों में।

2. देवताओं से सम्बन्धित अन्य गीत—

1. पौराणिक देवता—

   अ. वीर पुरुष।

   आ. आद्य-शक्तियां।

2. ग्राम-देवता के गीत—

   अ. ग्राम-देवियां।

   आ. महेशुरों की बहिनों (ऊषा, चण्डिका तथा चित्रलेखा आदि) के गीत।

   इ. बौद्ध धर्मानुयायी देवियों के गीत (डबला, जंगी की देवी आदि)।

3. वन-देवता/देवियां—

4. गृह-देवता/देवियां—

   अ. आपसी सम्बन्ध।

   आ. बंटवारा।

   इ. परामर्श।

   ई. चमत्कार सम्बन्धी।

   उ. कलह सम्बन्धी।

   उ. वर्षा लाना।

   ए. इन्द्र पुरी जाना।

   ऐ. बीमारी आदि।

धर्म-गाथा से सम्बन्धित गीतों की संख्या इस क्षेत्र में सर्वाधिक है। किन्नर-देव-गाथा सशक्त तथा स्वतन्त्र है। ऊपर जिस 'बडारन' के गीत का वर्णन किया गया है वह विशुद्ध किन्नर-संस्कृति का अंग नहीं है। उसकी भाषा आर्य-भाषा का अंश लिए हुए है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'बडारन' का गीत इस क्षेत्र में पर्याप्त

समय बाद प्रचलित हुआ। यहां की आदिम पुराण-कथा महासुरों अथवा महेशुरों की है। इन्हें बाणासुर व हिरमा की सन्तान मानना विशिष्ट संस्कृति का द्योतक है। इन सभी बातों पर लोक देवताओं से सम्बन्धित अध्याय में विचार किया गया है।

बौद्ध–धर्म से सम्बन्धित गीत :

दूसरी प्रकार के गीत बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित हैं। इन गीतों को हम बौद्ध-मन्दिरों तथा लामाओं के गीत भी कह सकते हैं। बौद्ध-धर्म किन्नौर का प्रायः मुख्य-धर्म है। जहां लोक-देवताओं की मान्यता अधिक है वहां भी लामा के पहुंच जाने पर उस का बड़ा सम्मान किया जाता है।

बौद्ध-धर्म सम्बन्धी गीतों के निम्नलिखित उपभाग किए जा सकते हैं :—

1. **बौद्ध-मन्दिरों से सम्बन्धित गीत—**
   - अ. प्राचीन बौद्ध-मन्दिरों के गीत।
   - आ. नए बौद्ध मन्दिरों के गीत।
2. **लामा तथा झोमो (चोमो) से सम्बन्धित गीत—**
   - अ. लामाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा।
   - आ. अवतारी लामा।
   - इ. लामाओं का पारिवारिक जीवन।
   - ई. बौद्ध भिक्षुणियां (झोमो)।
3. **बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित अनुष्ठानों तथा त्यौहारों के गीत—**
   1. त्यौहार—
      - अ. लोसर।
      - आ. शिरकिन।
      - इ. पूर्णमासी का पूजन।
      - ई. अन्य सम्बद्ध त्यौहार।
   2. अनुष्ठान—
      - अ. कङ्ग्युर ज्ञाल्मो।
      - आ. रमनस।
      - इ. फसल की रक्षा के अनुष्ठान।
      - ई. गृह रक्षा के अनुष्ठान।

किन्नौर के बौद्ध-धर्म तथा बौद्ध-मन्दिरों से सम्बन्धित गीतों में 'लोचा रिम्पोछे' (लोचा लामा) का गीत सब से पुराना है। 'लोचा' तिब्बती शब्द 'लोत्सवा' (भाषान्तर कार) अपभ्रंश है[1]। यहां लोचा का प्रचलित अर्थ उस लामा की ओर संकेत

---

1. देखिये इसी ग्रन्थ का—किन्नौर में बौद्ध-धर्म सम्बन्धी अध्याय।

करता है जिस ने सर्वप्रथम किन्नौर में बौद्ध-मन्दिरों का निर्माण किया था। उस लामा का नाम रिन-छेन-जङ्पो (रत्न भद्र) था और वह ग्यारहवीं शताब्दी में किन्नौर में आया था।[1] लोचा के गीत के अनेक रूपान्तर मिलते हैं। गीत के अनुसार लोचा रिन्पोछे (रिम्पोछे) ने सुमरा गांव में जन्म लिया था और कानम[2] के बौद्ध-मन्दिर में पर्याप्त समय व्यतीत किया था। उसके द्वारा बनाए गए रारङ्, रिब्बा, कानम तथा नाको आदि स्थानों के बौद्ध मन्दिर अब भी अच्छी दशा में विद्यमान हैं। लोचा को उस क्षेत्र में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था जिनमें से कुछ का वर्णन प्रचलित लोकगीतों में मिलता है।

नए बौद्ध मन्दिरों के निर्माण-सम्बन्धी गीतों में पूर्बणी गांव के आज्यान परिवार तथा भावा के लागङ् के गीत प्रसिद्ध हैं। इन गीतों में बौद्ध-मन्दिरों के निर्माण की कथायें वर्णित हैं।

'लोक्टासो फोच पालस' अर्थात् 'लोक्टस वंश का गधे चराने वाला' किन्नर-देश का बहुत प्रसिद्ध गीत है। इस गीत का नायक नरगू गधे चराने वाला था। उसकी समाज में बिल्कुल प्रतिष्ठा नहीं थी। परिवार के लोग भी उसे सदस्यों की पंक्ति के बाएं[3] कोने (छोर) पर बिठाते थे, परन्तु वह जब बौद्ध-धर्म में दीक्षा ले कर वापिस आया तो लोगों में उसका मान बहुत बढ़ गया।

इसी गीत का एक अन्य रूपान्तर भी मिला है जिस में लामा की बहिन कोरम पाली का लामा की तिब्बत यात्रा के लिए विदा होते समय दुःखी होना बताया गया है। गीत के कुछ बोल इस प्रकार हैं—

सोमपोरो बेरङ्	प्रातः के समय
ले हुन त्यारी त्यारी।	अब तैयार ही तैयार।
हुन त्यारी त्यारी याले,	अब तैयार ही तैयार,
काचेन[4] नरगू वइयार।	काचेन नरगू भाई।
पशीम चो बीग्यो ले,	विदा करने गई,
अनेनु कोनसङ् रिङ्जेच।	अपनी छोटी बहिन।
पशीम चो बीग्यो ले,	विदा करने गई,
बरालकीचा ओमो।	एक चौराहे पर।

---

1. किन्नर-देश, राहुल सांकृत्यायन पृ०-131।
2. कानम गांव में अभी भी बहुत बड़ा बौद्ध-मठ है जहां 'कछेन्' (काचेन) लामा रहते हैं।
3. यहां सम्मानित व्यक्ति पंक्ति के दायीं ओर बैठते हैं, शेष सब उन के पश्चात् स्थान ग्रहण करते हैं।
4. यह लामाओं की बहुत बड़ी उपाधि है जो लगभग 25 वर्ष तक तिब्बत में बौद्धमठों में पढ़ कर प्राप्त की जाती है।

नेसङ् टुल्कू (नेसङ् गांव का अवतारी लामा) के गीत में तिब्बत में शिक्षा-ग्रहण के लिए उन की विदाई का वर्णन है।

इस धर्म के लोक-गीतों में अभिप्राय व उपमाओं का बाहुल्य नहीं है। इसका कारण यह है कि ये गीत अमूर्त विषयों पर नहीं बनाए गए हैं। एक 'अभिप्राय' जिसके अनुसार लोचा (लोचवा) लामा उड़ कर रिब्बा से रारङ् गांव चले जाते हैं, एक गीत में प्राप्त होता है। सम्भवत: भाग जाने की बात को लोक-कवि ने चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए 'उड़ने' में बदल दिया होगा। तेलामा (बड़े लामा) का गीत भी बौद्ध-धर्म सम्बन्धी गीतों में रखा जा सकता है। इस की नायिका जोमो है जिस से सोनम डुबके लामा विवाह कर लेता है। गीत में कुछ सूक्तियों का प्रयोग भी हुआ है, यथा—

कोभी मा छोड़या या मोरछाङ्ों मोशिद छेचछाङ् ।	कभी नहीं छोड़ेगा, नौजवान की पसन्द की हुई लड़की।
मोरछाङों मोशीद छेचछाङा,	नौजवान की पसन्द की हुई लड़की,
पालासो मोशिद बोनयाङ् ।	चरवाहे की पसन्द की हुई चरागाह।
पालासो मोशिद बोनयाङ्,	चरवाहे के पसन्द की चरागाह,
ओडासा मोशिद बोठाङ ।	बढ़ई का पसन्द किया हुआ पेड़ (नहीं छूटते हैं।)

त्यौहारों के गीत :

किन्नर-त्यौहारों के साथ लोक-गीतों का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। ऐसे त्यौहार इस क्षेत्र में बहुत कम मिलते हैं जिन में गीत गाने की प्रथा न हो।

इस क्षेत्र में त्यौहारों पर दो प्रकार के गीत गाए जाते हैं :—

1—त्यौहार के विशिष्ट गीत।

2—सामान्य लोक-गीत।

प्रथम प्रकार के गीत अनेक गांवों में भिन्न भिन्न होते हैं और उन्हें प्राय: देवताओं के आदेशानुसार निश्चित समयों पर ही गाया जाता है।

बीशू मेला कई गांवों में जहां चैत्रोल नहीं मनाया जाता, वर्ष का प्रथम त्यौहार होता है। इसमें भी विशिष्ट गीत गाने की प्रथा है परन्तु ये गीत अधिकतर प्रेमी-प्रेमिकाओं के सम्बन्ध में ही होते हैं। इसमें एक गीत में बताया जाता है कि इस वर्ष की पौधों की नई कोंपलों से भेड़ बकरियों का भाग्योदय हो गया है।

उरनी के बीशू मेले के गीत में यह बताया गया है कि किस बड़े देवता की किस फूल से इस दिन पूजा होती है, जैसे सुङ्रा महेशुर की ओसङ् फूल से, ऊषा देवी की काथाङ् के फूल से, इत्यादि।

डकरैनी के दिन कई गांवों में, यथा, पांगी तथा रारङ् आदि में मृतकों के नाम पर अनाज तथा पकवान इत्यादि दान करने की प्रथा है। इसमें सावणी (साउणिगे) देवियों को प्रसन्न करने के लिए भी गीत में पूजा आदि का वर्णन आता है। इस दिन यदि वर्षा रहे तो यह समझा जाता है कि सावणी देवियां प्रसन्न नहीं हुईं।

सांगला गांव के दीवाल के दिन एक ऐसा गीत गाने की प्रथा है जो एक कागज पर लिखा हुआ है परन्तु परम्परा है कि इस कागज को मेले के ही दिन निकाला जाता है, शेष दिनों में नहीं। इस अवसर पर अश्लील गीत गाने की प्रथा भी प्रचलित है।

फुल्याच या उख्याङ् उत्सव पर गाए जाने वाले कुछ गीत फूलों तथा पितरों से सम्बन्धित होते हैं। इन लम्बे गीतों को 'गितकारेङ् गीथङ्' अर्थात् 'गायकों के गीत' कहा जाता है। यहां 'गितकारेस' का अर्थ उस व्यक्ति-विशेष से है जो 'गितकारेङ् गीथङ्' को गाता है। केवल चुने हुए व्यक्ति ही इस गीत को गा सकते हैं। इस गीत को घर के अन्दर तथा गांव के बीच नहीं गाया जा सकता क्योंकि विश्वास है कि इस के गाने से पितर इकट्ठे हो जाते हैं और उन्हें भेंट देनी पड़ती है।
मेबर गांव के फुल्याच के एक गीत के बोल इस प्रकार हैं :—

शुनोलिया शूवा चारासे	सुन लो ! देवता का प्रबन्धक
ऊम्रो बीमो रिङों।	फूल के लिए जाने को कह रहा है।
खीरिम खरम शुम निजागो छाङों	एक दम से तीन बीस लड़के (लोग)
ऊम्रो बीमो रिङों।	फूल को जाने के लिए कहते हैं।
अन्चो आमा कोन्या ता ब्योश।	उठो मां, साथी तो चले गए।
लानी आमा शुजोदू पोले।	बनाओ मां देवता की गेहूं की पूड़ियां।
छायङ् रानग्योश शुवो पिजारस।	सरसों दी, देवता के पुजारी ने।
हातू ठोरयाश शुम निजो छाङों।	किस को चुन लिया तीन बीस लड़कों से !

चगांव, उरनी, यूला तथा मीरू गांवों में प्राचीन काल में फुल्याच इकट्ठा मनाया जाता रहा है। दुमशाखार नामक स्थान में किस प्रकार नरबलि की प्रथा थी, इस गीत में वर्णित है। फुल्याच के गीत की यह यह भी विशेषता है कि किस गांव में कब यह मेला मनाए जाने की प्रथा है, इसमें गाया जाता है।

बारङ् गांव में 'दुने उख्याङ्' त्यौहार फुल्याच के दिन प्रति बारह वर्ष बाद मनाया जाता है। इस में किसी ऐसे व्यक्ति का वर्णन है जो आस्वान वंश से था और जिसे पाथो मस्त्वार वंश के आदमी ने मार दिया। पाथो मस्त्वार की पिंडली की हड्डी सात हाथ थी, उसने तीन देवताओं की पालकियों के रखे जा सकने वाले पत्थर से दबा कर आस्वान वंश के व्यक्ति को मार दिया। सम्भवतः उसी याद में 12 वर्ष के पश्चात् मेला लगता है। इस अवसर पर एक गीत गाया जाता है जिसमें महेश्वर देवता की प्रार्थना की जाती है। गीत के कुछ बोल इस प्रकार हैं :—

गोटे माइक्योश जाङ् मोनशिरस।	कम नहीं था सोने का महेश्वर।
किस थोम्याग्योईं जू सोमने कोइलास।	आपने थाम लिया, यह सामने कैलाश।
जाङ् मोनशिरस किनू लाग्योईं आजियू अम्बोर।	सोने के महेश्वर आपको (अपने को) बनाया अजर अमर।
निङ् लाग्योईं ई छलामला।	हम को बनाया एक नश्वर (थोड़ी देर रहने वाला)।

जिउली रुङरई आना बालिगो ।	जीवन रखना (पहरा देना जीवन
दोक ली पुरयातोश ठो देन गुगलङ् ।	का) । तब मिलेगा कोयले पर धूप ।

सुङ्नम गांव के फुल्याच गीत में राजा (तिब्बत) की बेटी का वर्णन है जो गहनों आदि की विशेष शौकीन थी। मूरङ् गांव के फुल्याच में गाय की बलि दिए जाने के उद्धरण मिलते हैं । 'ऊख्याङ्' फुल्याच का स्थानीय नाम है जिसका अर्थ ऊ-फूल तथा 'ख्याङ्—देखना होता है ।

फागुली फागुन मास में मनाया जाने वाला त्यौहार है । इस के गीतों में प्रायः सावणी देवियों का आह्वान किया जाता है ।

सुङ्रा गांव की फागुली के गीत के कुछ बोल हैं :—

जाबोली दुशा,	उतर रही हैं, आकाश से
सोरगा सोऊनिचा ।	सावणी (अप्सराएं),
जाबलोशिस जावरई,	उतर गए,
माजो ना फाङ्ने,	बीच फागुन में ।
दियूसे बुदारे ।	दिन बुधवार को ।
जाब लोशिस जावरई,	उतर जाना,
X X	X
श्कामो दायाङ्सी ।	पीली मिट्टी के प्रकाश से ।
किना नो नामङ्स,	आप के नाम से,
ठो रादो शङा ।	सफेद चीना का खाना (चावल) ।
ठो रादो शङा,	चीना का चावल,
श्बीग जादो पोले ।	लाल गेहूं की पूरियां ।

सांगला गांव की फागुली के गीत में साऊणी देवियों से कण्ढे में अनाज अधिक उत्पन्न करने की प्रार्थना की जाती है ।

मेबर के फागुल[1] के गीत में, सारे किन्नौर में सब गांवों में घूमने वाले ने क्या क्या देखा तथा कहां उसे क्या मिला ! आदि बातें गाने की प्रथा है । उसी गीत में यह भी बताया जाता है कि फागुली आने पर गृहणी तो रोती है (क्योंकि उसे सारा दिन आग के पास बैठ कर विभिन्न पकवान पकाने पड़ेंगे) परन्तु लड़के हंसते हैं (क्योंकि उन्हें खाने को अच्छा मिलेगा) परन्तु फागुली की समाप्ति पर बालक रोते हैं और गृहणियां हंसती हैं ।

चगांव के फागुली के गीत में उस समय की ऋतु का वर्णन किया गया है। फागुन में वर्फ का आना कम हो जाता है और कुफ़ू नाम की चिड़िया बोलना आरम्भ कर देती है जो गर्मी की ऋतु आने की सूचक होती है । इसी गांव के एक अन्य प्राचीन गीत में सुङ्रा के फागुली के गीत की भांति साउणियों के आकाश से उतरने का वर्णन है ।

जंगी गांव में कार्तिक मास में एक न्योजा मांगने का त्यौहार होता है । इसे 'शुर-गुरिच' कहते हैं । गीत में इस मेले की उपमा सराहन में आयोजित राजा के दशहरा के साथ की गई है ।

---

1. फागुली को 'फागुल' भी कहा जाता है ।

शिवरात्रि के मेले में कानम में एक बहुत सुन्दर गीत 'शुमली बईयार' (तीन भाई) गाया जाता है जिस का सारांश यह है—तीन भाई श्याङ् खलिहान में गए। तीनों ने सलाह की कि पल भर के लिए मेले में जाएं। बढ़ई के कमरे में वे खन्तरी तथा दुतार नाम के वाद्य-यन्त्र बजाने लगे। गायिकाएं कारीगर की दो लड़कियां हैं। एक ही मां की लड़कियां हैं और एक ही थाल की रोटियां है। बौद्ध मन्दिर में जा कर उन्होंने सोमा मिन्थो फूल को अपने दाहिने कानों पर लगाने की इच्छा व्यक्त की। फूल ने कहा...में मिट्टी की उपज हूं, आप के योग्य नहीं। तीनों भाइयों ने कहा...दिल में लग जाने पर कैसे नहीं सजेगा ? अर्थात् अवश्य सजेगा।

मेबर गांव में सास और बहू के बीच हंसी मजाक का एक गीत चैत के त्यौहार में गाया जाता है। इस में बहू सास को बुरी बुरी चीजें देना चाहती है और स्वयं अच्छी अच्छी चीजें रखना चाहती है। गीत हास्यरस का अच्छा उदाहरण है।

पन्द्रह माघ को 'माहङ् भगवान जीव' भी कहते हैं। उस दिन सारे किन्नौर में गांव गांव में मेले होते हैं। इस दिन बहुत से देवता स्वर्ग चले जाते हैं। इस दिन अनेक गांवों में हिरमा और बाणासुर का गीत गाना आवश्यक समझा जाता है। इस दिन को 'माहङ् सोङा' अर्थात् 15 माघ कहा जाता है।

मेबर में पोह मास की समाप्ति पर जब देवता स्वर्ग में कुछ देर के लिए सुख सम्पदा लाने के लिए जा रहा होता है, एक गीत साजो गीथङ् के नाम से गाया जाता है जिस के अनुसार देवता को कहा जाता है कि वह शीघ्र वापिस लौटे वरना इस राक्षसों के देश में हम अकेले कैसे निर्वाह करेंगे।

पन्द्रह भादों (भद्रङ् सोङा) भी एक त्यौहार है पर यह कुछ ही गांवों में पोल्टू आदि बना कर मनाया जाता है। इस से सम्बन्धित गीत भी हैं पर वे विशेष महत्त्व के नहीं हैं। इस दिन लोग पहाड़ों की चोटियों को देखने के लिए गांवों के ऊपर चले जाते हैं, इसे 'रङ् कोरङ् चिम' अर्थात 'चोटी के दर्शन करना' कहा जाता है।

ऐराटङ् त्यौहार केवल चगांव में ही मनाया जाता है। इस दिन पर्वत-चोटी पर निवास करने वाली देवी नागिन देवता से मिलने आती है। नारायण देवता का पुजारी देवी का प्रतिनिधि तथा प्रतीक बन जाता है। इस दिन एक विशेष गीत गाया जाता है जिसमें दोनों ग्राम-देवताओं (महेशुर व नारायण) की प्रशंसा की जाती है। इस दिन अश्लील बोलना भी बुरा नहीं माना जाता क्योंकि विश्वास किया जाता है इस से नागिन अपने घर वापिस चली जाएगी और गांव में नहीं आएगी।

'जाग्रो गीथङ्' में महासू देवता की अभ्यर्थना की जाती है। जाग्रो अथवा जाग्रा वैसे शिमला जिला का त्यौहार है परन्तु किन्नौर के निचले भागों में भी इस का प्रचलन है।

'दीवाल' दीवाली से भिन्न है। इसके गीत में बताया गया है कि छोटा व बड़ा दीवाल निग्मण्ड से आए। सांगला गांव में छोटे दीवाल में एक गीत गाया जाता है जिस के अनुसार यह प्रसिद्ध है कि कभी प्राचीन समय में दो दानव (मां तथा बेटा) सांप के रूप में साङ्ला तक चढ़ आए थे। इन अजगरों ने सारी घाटी को तहस नहस कर दिया होता, परन्तु यहां के देवता ने इन्हें अपने चमत्कार से पहचान लिया और

काट गिराया था, उसी याद में अब भी 'शोन' नामक झाड़ियों के सांप बनाकर देवता के दो प्रतिनिधि, जिन्हें सिहां कहते हैं, उन्हें अपने डोङ्रों (दराटों) से काट देते हैं। जब तक वे इस कार्य को पूरा नहीं कर लेते उनके साथ कोई बात नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में एक लम्बा गीत होता है जिसे प्राचीन समय में लिखे गए कागजों से पढ़ा और गाया जाता है। यह गीत बहुत अश्लील होता है। यह इस लिए गाया जाता है कि बाहर से आए हुए भूत प्रेत और उस अजगर की आत्मा वहां से भाग जाए और गांव वालों को कोई हानि न पहुंचाये।

उपरि-किन्नौर के रोपा गांव में सुस्कर त्यौहार के दिन 'सेली नङ् पाली' का गीत गाया जाता है। इस गीत के अनुसार सेली नामक सुन्दरी का विवाह पहले किसी अन्य स्थान पर हो गया था, पर बाद में वह किसी दूसरे प्रेमी के साथ भाग गई। यह बाबू पटियाला शहर में मर गया। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाए तो इस प्रकार के गीत का प्रस्तुत त्यौहार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। गीत के कुछ बोल हैं—

तायो शुम कोल्हङ्स कायङ्,	तीन धुरियों वाला मेला,
तायो नो कायङो माजो।	इस मेले के बीच—
तायो नो कायङो माजो,	इस मेले के बीच—
तायो जई दोरे हात दू ?	सब से धुरी में कौन है ?
तायो जई दोरे लोन्मा,	यदि धुरी में कहें तो,
तायो कोठी माथासो छाङा।	कोठी माथस का लड़का।

x x x

तायो सेलीस ता लोतोश,	सेली ने कहा,
तायो अङ् बाहो मा बञा।	मेरा दिल नहीं है।
तायो अङ बाहो मा बञा,	मेरा दिल नहीं है,
तायो जाङे बिश्पोनो घोरे।	जंगी विश्पन के घर में।

ऐसे ही गीत कुछ अन्य त्यौहारों में भी कई गांवों में गाए जाते हैं। जंगी गांव में भी गुरखुमपति सुन्दरी का गीत एक विशेष त्यौहार पर गाया जाता है, जिस से उस गीत का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

नमगिया गांव के शुक्लोक का गीत बहुत सुन्दर है। इसका सारांश है कि सोने की तीन चिड़ियां एक खड्ड में उत्पन्न हुईं। तीनों अलग अलग दिशाओं में गईं। तीन बरकतें (सिद्धियां) देवता के हाथ में दीं। चान्दी के नाले में तीन चान्दी की चिड़ियां उत्पन्न हुईं। तीनों अलग अलग दिशाओं में गईं। इसी तरह मिश्रित धातुओं की भी तीन चिड़ियां उत्पन्न हुईं। 'देवता को तीन सिद्धियां प्रदान करना' गीत हङरङ् की तिब्बती मिश्रित किन्नर-भाषा में है।

15 माघ या 'माहङ् सोंङा' सारे किन्नौर का प्रसिद्ध त्यौहार है। इस दिन देवता वर्ष भर के लिए सुख-समृद्धि लाने हेतु अपने गांवों को छोड़ कर इन्द्रलोक में चले जाते हैं। गांव के लोग कहते हैं :—

कीताले बोईयां बतोक	आप तो चले गए, मकड़ी के
बू तोराङ्स, निङता	जाल से, हम तो

दागचेया राक्शा शुनाऊ गूदो ।	गए राक्षस पिशाच के साथ ।

देवता की ओर से गाते समय उत्तर दिया जाता है :—

कादर था जाइयं,	घबराना मत,
तपास गस लानचोक ।	रक्षा मैं करूंगा।

गांव वाले गाते हैं कि अमुक देवता को हरा देना और हमारे लिए सात प्रकार के अनाज तथा अन्य सुख-समृद्धि लाना ।

रकछम गांव में माहङ् सोङ्ा (15 माघ) को एक ऐसा गीत गाया जाता है जो वहां देवता के एक विशेष रजिस्टर में प्राचीन समय से लिखा हुआ है। यह हस्तलेख न तो पहले निकाला जा सकता है और न ही किसी बाहर के व्यक्ति को दिखाया जाता है।

(घ) जन्म, विवाह और मृत्यु के गीत :

बच्चे के जन्म पर गाया जाने वाला इस क्षेत्र में एक भी गीत उपलब्ध नहीं हुआ है। विवाह के अवसर पर दोनों पक्षों में एक एक गीत गाने की प्रथा है। एक गीत वधु की विदाई के समय भी गाया जाता है। लड़की के सुसराल में पहुंचने के पश्चात् उस के साथ गई हुई सहेलियां जो गीत गाती हैं, उसका सारांश यह होता है कि यदि लड़की को खाने को ऐसी चीजें दी जाएंगी जो यह पसन्द नहीं करती तथा पहनने को ऐसे कपड़े दिए जाएंगे, जिन्हें यह नहीं पहनती तो इसके भाई बन्धु उठेंगे (सहायता के लिए आएंगे) और लड़की के ससुराल वालों को ठीक रास्ते पर लाएंगे।

विवाह का जो गीत लड़की की विदाई के समय उस के मायके में गाया जाता है, उसमें वर व वधु की राम तथा सीता से तुलना की जाती है और उनके भावी जीवन के सुख की कामना की जाती है।

विवाह महत्त्वपूर्ण संस्कार होने के बाद भी इस सम्बन्ध गीतों की संख्या में अपेक्षाकृत्त न्यून है इसका कारण यही हो सकता है कि पतियों तथा पत्नी को 'तलाक' की छूट है। विवाह कम या अधिक एक पारस्परिक समझौता होता है जिसे कई बार स्त्री को मजबूर हो कर तथा अनेक बार सामाजिक-संरक्षण के लिए करना पड़ता है परन्तु मानसिक-द्वन्द्व से बचने के लिए यहां 'तलाक' की प्रथा कड़ी नहीं है। लड़कियां प्रायः गाती सुनी जाती हैं :—

रङ खुशी प्रायो	खुशी के ससुराल में
सोगेन ठु ब्याङ्मिग ?	सह-पत्नी से भी क्या डर ?
रङ् खुशी गौरछङ् दुःखी	खुशी (पसन्द) के साथ घर-बार में दुःख
तोन्नङ् सुखी ।	तो भी सुख ।
रङ् मा खुशी गोरछङ्	नापसन्द के घर बार में
सुखी तौन्नङ् दुःखी ।	सुख तो भी दुःख ।

और यह तो एक कहावत है कि—

'बाहो मायच गौरचङ् पोशो लिसती देस ।
ती मायच गौटङ् देस' ।

बिना पसन्द का ससुराल बिस्तर में (गिरे) ठण्डे पानी जैसा, बिना पानी के घराट जैसा।

हङरङ् क्षेत्र में विवाह के अवसर पर लड़के की बरात में व्यावसायिक गायक जिन्हें 'ज्याओं' कहा जाता है, ले जाए जाते हैं। वधु-पक्ष की स्त्रियां इन 'ज्याओं' से अनेक प्रश्न पूछती हैं, जिनके उत्तर उन्हें गाकर देने आवश्यक होते हैं। यदि प्रश्नों के उत्तर ठीक न दिए जा सकें तो वधु-पक्ष के लोग वर-पक्ष वालों को आगे नहीं आने देते। ज्याओं के ये प्रश्नोत्तर विवाह-गीतों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि क्रियाकर्म 'छण्ट्यामो' के अवसर पर गांव वालों को सहभोज पर आमन्त्रित किया जाता है जिस के बाद रात के समय नृत्य का आयोजन किया जाता है। इस मेले में पहला गीत घर वालों के शोक में सम्मिलित होने के लिए 'शोक गीत' होता है। फिर कोई भी गीत गाया जा सकता है। शोक-गीत गाने की प्रथा धीरे धीरे कम होती जा रही है और मेले में किसी भी गीत को गाने का रिवाज ज़ोर पकड़ता जा रहा है। गीत में यमराज से प्रार्थना की जाती है कि वह अपने नगर (रल्डङ्) का दरवाज़ा बन्द कर ले ताकि किसी को वहां न बुलाया जा सके।

सामाजिक प्रथाओं एवं विश्वासों से सम्बन्धित गीत :

सामाजिक प्रथाओं में मूर्त एवं अमूर्त दोनों प्रकार के विश्वास प्रकट होते हैं। इन प्रथाओं में सभी प्रकार के त्योहार, विवाहादि सम्बन्ध, तीर्थ यात्राएं, सामाजिक मानदण्डों के गीत तो आते ही हैं, शकुन एवं अपशकुन को व्यक्त करने वाले गीत भी इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। क्योंकि जन्म, विवाह और शोक-गीतों तथा त्यौहारों के गीतों पर अलग विचार किया जा चुका है अत: इस सन्दर्भ में हम तीर्थ-यात्रा, शकुन एवं अपशकुन तथा सामाजिक मानदण्डों को व्यक्त करने वाले गीतों पर ही विचार करेंगे।

इस वर्ग के अन्तर्गत 'पंचोटीचो नाल्पा' के गीत को उद्धृत किया जा सकता है। इस गीत में दो फुआलों के जीवन, उनकी इच्छाओं तथा क्रिया-कलापों का मोहक चित्रण हुआ है। वे उद्यानिङ् मेला देखना चाहते हैं परन्तु भेड़ बकरियों के कारण नहीं देख सकते। मेले में जा कर वे स्वतन्त्र हो कर बांसुरी बजाते हैं जिसमें अपनी प्रेमिका के सम्बन्ध में गीत गाते हैं। भेड़ चराना यहां का मुख्य धन्धा है। यह काम बहुत कठिन है, इसमें आराम यह है कि फुआल लोग अमीर हो जाते हैं और पीने के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में दूध दही मिल जाता है, परन्तु सब से बड़ी कठिनाई जो इस गीत के नायक अनुभव करते हैं, यह है कि वे मेला भी नहीं देख सकते।

'कुंयालो[1] थासो चीहो' (कुंयाल में कपड़ा धोना) का गीत कपड़े धोने का वर्णन प्रस्तुत करता है। कृष्णमनी अपने पति के साथ, जो फुआल है, जाना चाहती है, उस

---

1. 'कुंयाल' नालों अथवा घरों के पास लकड़ी अथवा पत्थर को बीच से काट कर बनाए जाते हैं। इन में पानी भर कर पांवों से मल कर कपड़े धोए जाते हैं।

का छोटे पति में दिल नहीं है, उसका पति उसे समझाता है पर वह नहीं मानती, अन्त में आन्धी उड़ने से उसकी मृत्यु हो जाती है।

इन्द्रदासी देवागिर तथा मालजोर के एक मित्र रामगोपाल की प्रेमिका थी। देवागिर भी उसे चाहता था। बाद में उसने मालजोर से विवाह कर लिया। लोक-कवि के शब्दों में देवागिर की दशा का वर्णन इस प्रकार है :—

रामूसू छङ देवागिर,	रामू का लड़का देवागिर,
ठ मी ! मातङ्यो तोक्योश	कैसा आदमी ! नहीं देखने वाला था
कौनिचू वेन्नङ्स।	प्रेमिका के प्यार से।
यूने रेदे रङ् यग यग,	सूर्य छिपते समय सो कर,
यूने जरमाली मा सारशो।	सूर्य निकले तो भी नहीं उठ रहा।
रामूसू छङ् देवागिरचू,	रामू का लड़का देवागिर (को),
टिकन्यङ् शेशे।	(कालिख का) टीका लगा कर।
सामालू छङ् मालजोर,	सामालू का लड़का मालजोर,
जङ टिकन्याङ् शेशे।	सोने का टीका लगा कर।
बनठिन इन्द्र दासी, सामालू	सुन्दरी इन्द्र दासी, समालू के
गोरयाङ देन, गुस्याची वादो।	घर पर, मुस्करा कर हंस रही।

चन्द्रमणि के गीत में स्त्री की सामाजिक दशा का वर्णन है। देवाकृष्ण के गीत में उसका पत्नी छांटने के लिए घर से निकलने का वर्णन है। युमदासी के गीत में देवता द्वारा यह कह देने पर कि युमदासी की बीमारी ठीक नहीं हो सकती, युमदासी की मृत्यु होना तथा 'डीबसरनी तथा ऊषा' के गीत में ऊषा देवी की आंख डीबसरनी पर लगना और ईर्ष्या के कारण उसे देवी का दोष लग जाना, सामाजिक विश्वासों का प्रदर्शन करता है। रमनस के पूर्व हीरा सेन की मृत्यु तथा लामा द्वारा उसकी सहायता न कर पाना भी लामाओं में लोगों का विश्वास व्यक्त करता है। रिवालसर की यात्रा, तिब्बत-यात्रा आदि के लिए अनेकों उदाहरण यहां के गीतों में वर्णित हैं। धर्म दासी की विवशता इसी नाम वाले गीत में सुन्दर ढंग से चित्रित हुई है। सुरदासी व पोर वज़ीर का गीत छोटे व बड़े खानदान में विवाह-वर्णन का उदाहरण प्रस्तुत करता है। बाबू दुनी चन्द का गीत यहां का एक प्रसिद्ध गीत है। राम चन्द्र और डोल्मा के गीत में राम चन्द्र आदि चार भाई हैं जिनकी एक ही पत्नी है परन्तु राम चन्द्र अलग पत्नी लाना चाहता है। डोल्मा को यह बात पसन्द नहीं है। लोककवि पति को बेईमान तथा पत्नी को ईमानदार कहता है।

बाकर फरङ्गी और नीला पति का गीत बहुत प्रसिद्ध है। फिरंगी (अंग्रेज) नीलापति के पिता से अशर्फी का लालच देकर नीला पति के साथ विवाह की बात करता है लेकिन वह उससे छुप जाती है।

ठाकुर मणि के लम्बे गीत में उसके वंश का पुरा वर्णन मिलता है और किन्नरों के रहन सहन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नूरपाल का गीत, गंगा सेन नेगी का गीत,

धर्म सेन पर गीत, सुन्दरी मोनिकी का गीत तथा पोतम मणि का गीत भी प्रसिद्ध सामाजिक लोक गीत हैं।

छेरिङ् वाङ्ग्याल छोङ्पा के गीत में नायक बूटिग सुन्दरी पर रीझ जाता है और लोक कवि कहता है :—

दिलो लाग्यानो शुङ्गे,	दिल में लग गई,
मोरछाङ्चो दिलो।	मर्द युवक के दिल में।
दिलो लाग्यानो शुङ्गे,	दिल में लग गई,
कौभी ना छोड़ा।	कभी नहीं छूटेगी।

और माता के यह कहने पर भी कि यदि छेरिङ वाङ्ग्याल अपनी प्रथम पत्नी से प्रेम करे और दूसरी पत्नी न लाए तो वह उसके लिए हाथ के चांदी के कड़े बनवा देगी, वाङ्ग्याल उत्तर देता है कि कड़े बात नहीं करेंगे, बात तो पत्नी ही करेगी। वह बूटिग से विवाह कर लेता है। यहां के अनेक लोक-गीत प्रेमी प्रेमिका का पलायन बताते हैं। यह बात यहां देखने में भी आती है। अनेक दशाओं में पति अपनी पत्नी (पूर्व प्रेमिका) को भगा कर ले जाता है और बाद में उस के माता पिता को इस सम्बन्ध में मध्यस्थ के द्वारा सूचित करता है।

ऐतिहासिक गीत :

यहां के ऐतिहासिक गीतों का क्षेत्र भी कम विस्तृत नहीं। यद्यपि किन्नौर के किसी ऐसे वीर पुरुष के गीत उपलब्ध नहीं होते जिस ने लड़ाई में अभूतपूर्व वीरता दिखाई हो, फिर भी ऐतिहासिक गीतों को हम निम्नलिखित वर्गों में बांट सकते हैं—

1. वजीरों के गीत—ऐतिहासिक वीर।
2. बाहर से आने वालों राजाओं के गीत।
3. विदेशी आक्रमणकारियों के गीत।
4. समझौतों से सम्बन्धित गीत।

राजाओं के समय में भी यह क्षेत्र रामपुर बुशहर रियासत का तिब्बत के साथ लगने वाला सीमावर्ती क्षेत्र था। राजा की रियासत क्योंकि बहुत बड़ी थी और इस क्षेत्र का रास्ता एकदम कठिन था इस लिए इस क्षेत्र को 'घोड़ियों' अर्थात 'गांव समूहों' में बांट दिया गया था। एक 'घोड़ी' में चार पांच अथवा अधिक गांव होते थे और उन के लिए एक वजीर या 'विष्ट' होता था। वजीरों में 'प्वारी वजीर', 'अकपा वजीर' 'रोपा छोल्पा वजीर', 'वजीर रण बहादुर' 'सुरदासी और पोर वजीर' तथा 'गोबरनन्द वजीर' के गीत प्रसिद्ध हैं। इन गीतों में वजीरों के किसी आपसी झगड़े या प्रेम-सम्बन्ध का ही वर्णन मिलता है। 'रोपा छोल्पा' अर्थात् छोलङ् (चगांव) गांव का एक वंश रोपा गांव (उपरि किन्नौर) में बस गया। उस घर के लोग राजा के वजीर थे परन्तु शराब पीने के बाद तथा आपसी वैर के कारण वे किस प्रकार कट मरे, यही इस गीत की कथा है। गीत एक शताब्दी से अधिक पुराना है, इसके अनेक रूपान्तर मिलते हैं।

दूसरी प्रकार के लोक-गीत इस देश पर आक्रमण करने वाले राजाओं अथवा

रामपुर बुशहर के राजाओं के हैं। 'मण्डी के राजा का गीत', 'सिरमौर के राजा का गीत' व 'कुल्लू के राजा का गीत' इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। रामपुर बुशहर के राजाओं में भेड़ बकरी चराने में आनन्द लेने वाले राजा विद्या सिंह के गीत प्रसिद्ध हैं। यह राजा फुआलों की भांति हर वर्ष कण्ढे में भेड़ बकरियों के साथ स्वयं जाता था। लोक गीतों के अनुसार देश के अन्य राजाओं ने जो आक्रमण किए वे तो प्रसिद्ध हैं परन्तु तिब्बत के राजा के साथ जो रामपुर बुशहर के राजा की इतिहास-प्रसिद्ध लड़ाई हुई थी, वह अब लोक गीतों में विस्मृत हो चुकी है।

तीसरी प्रकार के ऐतिहासिक गीत वे हैं जो राजाओं के सिवा अन्य विदेशी आक्रमणकारियों से सम्बन्धित हैं इन में 'गोरखा वोइरीस' का गीत प्रसिद्ध है। गोरखे उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में इस क्षेत्र में आए थे। गीत बहुत प्रसिद्ध है तथा देवता के चमत्कार के साथ ही साथ ऐतिहासिक सत्य की पुष्टि भी करता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार गोरखे रामपुर बुशहर की पुरानी राजधानी कामरू में खजाना लूटने जा रहे थे और वे नाबालिग राजा को भी मार देना चाहते थे लेकिन मार्ग की बीहड़ता के कारण वे टापरी (छोल्तू) से आगे नहीं बढ़ सके और वापिस हो गए। गीत के अनुसार चगांव महेशुर के चमत्कार के कारण गोरखे वापिस हुए थे। इसी घटना पर आधारित एक अन्य गीत के अनुसार गोरखा-आक्रमण के समय बुशहर रियासत की रानी ने अपने मन्त्रियों सहित चगांव गांव में शरण ली थी।

स्वांग-गीत :

इस प्रकार के गीतों की संख्या अधिक नहीं है। शराब पी कर लोग कुछ उलटे टेढ़े गीत गा देते हैं, उन्हें इस श्रेणी में रखा जा सकता है। शराबियों द्वारा गाए जाने वाले ये गीत कई प्रचलित गीतों के टुकड़े मात्र होते हैं अतः इन का कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता।

'होरिङफो' एक ऐसा स्वांग है जिसे वर्ष के कुछ मासों में ही कई गांवों में निकाला जाता है। इस में गीत गाने की प्रथा नहीं है परन्तु रोपा गांव से एक ऐसा गीत प्राप्त हुआ है जो उस समय गाया जाता है।

होरिङफो का जो गीत रोपा से मिला है वह गुरखुमपति सुन्दरी का है जिस ने राजा के पास इस बात की शिकायत की थी कि चीनी चारस का लड़का उस के बच्चे को अपना नहीं कहता। गुरखुमपति का चीनी चारस के लड़के से प्रेम–सम्बन्ध था परन्तु पुत्रोत्पत्ति पर उस ने कहा था कि वह लड़का उस का नहीं है अतः उस ने गुरखुम पति से विवाह करने के लिए इन्कार कर दिया था। बाद में राजा ने ही गुरखुमपति से विवाह कर लिया था। होरिङफो के सम्बन्ध में इस गीत में कुछ भी नहीं बताया गया है। 'होरिङफो' किन्नरों का प्रसिद्ध लोक नाट्य है इसे किन्नौर के बाहर के क्षेत्रों, तथा कुल्लू, शिमला, सिरमौर तथा लाहुल स्पीति के कुछ भागों में भी प्रदर्शित किया जाता है तथा 'हिरण्यातर' के नाम से जाना जाता है। यह स्वांग होता है, इसमें एक व्यक्ति सींग लगाकर हिरण के से आकार का जानवर बन कर दर्शकों का मनोरंजन करता है। 'होरिङफो' के कारण किन्नरों को 'हरिणनर्तक' भी कहा जाता है। यह

प्रागैतिहासिक स्वांग है जिसका सम्बन्ध किन्नरों के मूल वंश से है। कुल्लू में यह 'हिरण' नाम से प्रसिद्ध है।

इस स्वांग के अतिरिक्त कुछ अन्य स्वांग लामाओं तथा स्पीति के 'बूचेन' लोगों द्वारा निकाले जाते हैं परन्तु इन के भी कोई गीत प्रचलित नहीं है। ये लोग 'लटी सरजङ् और हिनाडुण्डुब' की प्रसिद्ध लोक कथा का स्वांग भी प्रस्तुत करते हैं।

विरह-गीत :

विरह-गीत यहां नहीं के बराबर हैं। एक गीत जो शत वर्षीय बुढ़िया से मिला है, 'हाण्डला का गीत' है, जिस में नायिका अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिए तड़पती है और बाद में उसके गर चली जाती है। यह पता नहीं चलता कि वह कहां की रहने वाली थी। इस गीत में अन्य प्रेम-गीतों की भांति भेंट का वर्णन भी है। यह भेंट प्रेमी प्रेमिका को तथा प्रेमिका प्रेमी को देती है।

ऊपरोक्त गीत को भी हम आंशिक रूप से ही विरह-गीतों की श्रेणी में रख सकते हैं, यह एक प्रेम-गीत ही अधिक है। वास्तव में विरह-वेदना किन्नर-समाज में प्रेमी तथा प्रेमिका अथवा पति या पत्नी को सामान्यत: नहीं सता सकती, क्योंकि यहां प्रेम-सम्बन्धों की छूट है और ऐसे सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर विवाह की सम्भावनाएं रहती हैं। बहुपति प्रथा होने के कारण पत्नियों को पतियों के विरह में प्राय: नहीं रहना पड़ता। अत: शायद इसी कारण लोक-कवियों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है।

जाति-सम्बन्धी गीत :

जाति सम्बन्धी गीतों में वे गीत भी आते हैं जिन का वर्णन अनहोने विवाह-सम्बन्ध के सन्दर्भ में किया गया है। सुङ्नम गांव की बोरङमोल सुन्दरी एक वज़ीर की लड़की थी और वह एक हरिजन के साथ भाग गई थी। इसी प्रकार का एक गीत 'कुल्लू चामङ और वज़ीरों बेटी' का है उस में भी वज़ीर की लड़की कुल्लू के चामङ् के साथ भाग जाती है। देवी चन्द और भाग चरण दास के गीत में दो हरिजनों की लड़कियों के साथ देवी चन्द और भाग चरण दास के प्रेम-सम्बन्ध बताए गए हैं परन्तु वे भी यही कहते हैं—

कीसी या खोशनिगे तोन्मा,	आप यदि खश की लड़कियां होतीं,
छ हाचिदोता छ पोता !	तो क्या होता क्या पता !

'सूरदासी और पोर वज़ीर' के गीत में प्वारी गांव का वज़ीर रिब्बा की एक लड़की से विवाह करना चाहता है परन्तु वह कहती है—मन्त्री का वंश ऊंचा है, मैं उस के योग्य नहीं। गुरखुम पति का गीत भी इसी तरह का है, उसमें गुरखुम पति राजा द्वारा विवाह का प्रस्ताव किए जाने पर कहती है कि वह साधारण राजपूत वंश से है, राजवंश से नहीं, अत: उन के विवाह में बाधा है।

दैवी घटनाओं से सम्बन्धित गीत :

दैवी घटनाओं से मानव-जीवन दो प्रकार से प्रभावित होता है। भाग्योन्नति तथा मन्द-भाग्य।

किन्नर-लोक-गीतों में भाग्योन्नति सम्बन्धी वर्णन भी आते हैं तथा मन्द-भाग्य के सम्बन्ध में तो अनेकों गीत यहां प्रचलित हैं।

ज्ञानपुर सनपुर के गीत में नीलम मिल जाने से गीत के नायकों के भाग्य बदल गए। वे बौद्ध-स्तूप का निर्माण कराते हैं तथा रिवालसर की यात्रा करते हैं। 'याङ्किद डोल्मा व छदरमणि' के गीत में छदरमणि के पति बख्तावर की मूरङ् के तहसीलदार से लड़ाई हो जाती है। लड़ाई का कारण तहसीलदार का उस की सुन्दर पत्नी से विवाह-प्रस्ताव है। बाद में छदरमणि किसी अज्ञात कारण से बीमार हो जाती है, लोग समझते हैं कि तहसीलदार ने उस पर जादू कर दिया है जिसके कारण मन्द-भाग्य हो गया। इस गीत के अन्त में छदरमणि की मृत्यु बताई गई है। एक अन्य गीत जिस का वर्णन पहले आ चुका है, मोनिकी सुन्दरी का है। गीत की नायिका अपने दो पतियों में से छोटे को पसन्द नहीं करती और बड़े पति के साथ बाहर जाना चाहती है। बड़ा पति रोकता है परन्तु वह नहीं मानती अन्त में आंधी चलने से वह गिर कर दूर जा पड़ती है और मर जाती है। यह सब दैवी घटना के कारण हुआ।

करला गांव में आग लग जाने से गीत की नायिका 'जोर्की जाङमो' घर के अन्दर रह जाती है और जल कर मर जाती है।

सागर सेन सुङ्रा गांव का रहने वाला था। उसके परिवार के लोग उसे बरान के लिए जंगल में जाने से इन्कार करते रहे पर वह नहीं माना। अन्त में उसके ऊपर लकड़ी गिर गई और वह मर गया। इस गीत में उसकी बूआ (नानी) को बड़ा दुःखी दर्शाया गया है।

मियां राम और सभा राम की धर्म पत्नी उरगेन बूटिग कण्ठे में बीमार हो कर मर जाती है और वे रोते हैं—

हो भोगान ठाकुरा,	हे भगवान ठाकुर।
काशो जेस्क्यो पोरमीच।	हमारी ऐसी (इस जैसी) पत्नी।
काशो जेस्क्यो पोरमीच,	हमारी ऐसी पत्नी,
पोचिसी मा पोरयाश।	ढूंड कर भी नहीं मिलेगी।
पोचिसी मा पोरयाश,	ढूंड कर भी नहीं मिलेगी।
कुकुई मा थाजिश।	आवाज दे कर भी नहीं सुनेगी।

मियां राम और सभा राम ने पत्नी की बीमारी हटाने के लिए ग्राम देवता की प्रार्थना की थी परन्तु उसने जटा भी नहीं हिलाई अतः उन्हें पता चल गया कि उनकी पत्नी नहीं बच सकती। लोक-कवि कहता है कि उरगेन बूटिग बिना खिले मुरझा गई——

मा उस्ताङ् जुम्मिगो वास्क्यङ्	नहीं खिलने तक मुरझाने की बजाय,
मा ले जोरम्यान दाम दू।	नहीं पैदा होना अच्छा है।

कर्ण दासी सुन्दरी अपने गांव रारङ् से थोड़ी ही दूर नीचे गर्म पानी के स्रोत में पानी के लिए जाती है और मर जाती है (उसके सिर पर बन्दर ढांक से पत्थर गिरा देता है)।

कर्णदासीयू दुस्मन होरमानी बन्दरी ।	कर्ण दासी की शत्रु हनुमान बन्दरी ।

कानम गांव की सुन्दरी संज्ञामणि भी बीमार हो कर मर गई । लोक-कवि कहता है कि उसके मरने पर लामा बुलाए गए और उन्होंने बौद्ध-पोथियां पढ़ कर पता लगाया कि संज्ञामणि को अच्छा स्वर्ग मिलेगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दैवी घटनाओं के कारण होने वाले सामाजिक घटना-चक्र का वर्णन भी यहां के लोक-गीतों में होता रहता है । यहां का लोक-जीवन इतना दुरुह एवं कठिनाई पूर्ण है कि पथ पथ पर दैवी-प्रकोप की आशंका बनी रहती है । लोक-कवि इन कठिनाइयों के प्रति भी सजग है ।

प्राकृतिक सौन्दर्य के गीत :

किन्नर-देश के निचले भागों में प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक स्थल हैं। प्रकृति ने सुन्दर घाटियां, वनस्पति तथा किन्नर-कैलाश जैसे सुन्दर पर्वत दिए हैं । यहां का जन-जीवन भी प्राकृतिक है । यह सब होते हुए भी लोक-कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अपेक्षाकृत्त कम किया हैं ।

हङ्रङ् के हाङ्गो गाँव में एक लोक-कवि हाङ्पा दिला हुआ हैं जिस ने प्रकृति को सन्मुख रख कर कुछ गीत वहां की स्थानीय भाषा में बनाए हैं पर क्योंकि हङ्रङ् की बोली तिब्बती भाषा का ही एक रूप है अतः ये गीत दूसरे भागों के लोगों की समझ से बाहर हैं अतः अधिक प्रचलित नहीं हो सके । एक गीत के कुछ बोल इस प्रकार हैं :—

ञीमा शेरना शेरा शेरी ठोङ्जम ञीमा ।
औलो कैसी फायुल औलोङ् चैना शैर।
केसे हाङ्र ग्यलसा यालङ् चैना शैर ।

भावार्थः—सूर्य पूर्व की ओर से उदय होने के पश्चात् सब को प्रकाश देता है । गर्म भी हैं, नर्म भी है । धूप हमारी जन्म भूमि की चोटी पर चमकी । हाङ्गो की सब से ऊंची चोटी पर धूप चमकी ।

एक अन्य गीत 'सुनहरी स्पीलो' अर्थात 'स्पीलो का सुनहरी गांव' में बताया गया है कि स्पीलो बड़ी मनमोहक जगह है । इसे तीन सोने के (सुनहरी) पानी (नदियों) के बीच बसा बताया गया है, यथा :—

सुनैरु स्पीलो ठ नमनाङों देशङ् ।	सोने की स्पीलो, क्या प्रसिद्ध गाँव ।
छोटा शिमलेऊ करखान ।	छोटे शिमला की भांति ।
शुम जङतीयू माज़ाङों ।	तीन सोने के पानी के बीच ।
इद् ता लङ्चेन खम्पा,	एक तो झील मानसरोवर (का पानी),
इद् ता सरपा कुलङ्,	एक तो नया कूहल,
इद् ता सरपा कुलङ्,	एक तो नया कूहल,
इद् ता नागासू पानी ।	एक तो नागस पानी (पास की खड्ड) ।
सुनैरु स्पीलो हेद ता	सुनैहरु स्पीलो में और तो
खोरासी, बिजली गोर मइगे ।	अच्छा, बिजली घर नहीं है ।

सुनेरु स्पीलो आदी	सुनहरु स्पीलो (का) आधा
बगीचा बनादो ।	बगीचा बन गया ।

हम देखते हैं कि प्राकृतिक सौन्दर्य के गीतों की संख्या यहां बहुत अधिक नहीं है।

किन्नौर के दर्शक/महापुरुषों के गीत :

ढेबर भाई जब कांग्रेस अध्यक्ष थे और आदिम-जातीय सेवक संघ के प्रधान के रूप में किन्नौर-भ्रमण के लिए आए तो उन पर स्थानीय बोली में अनेक गीत बन गए जो अब भी बड़े शौक से मेलों से गाए जाते हैं।

गांधी जी, नेहरू तथा लाल बहादुर शास्त्री कभी भी किन्नौर नहीं गए पर उन पर भी अनेक गीत इस बोली में मिल जाते हैं। वर्तमान समय में श्रीमती इन्दिरा गान्धी पर गीत प्रचलित हैं।

पण्डित टीका राम जोशी राजा बुशहर के निजी सचिव रहे हैं। इन पर भी किन्नौर में बसने से सम्बन्धित एक गीत है। इसके अनुसार इन्हें किन्नौर की सांगला जगह बहुत पसन्द आई और ये वहीं रहने लग गए।

वर्तमान अधिकारियों पर जो गीत बनाए जा रहे हैं, उनके स्थानान्तरण पर उनका गाया जाना समाप्त हो जाता है और वे स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ते। कुछ प्रसिद्ध गीत ये हैं—नेगी हरबंश सिंह (सब डिवीजनल मैजिस्ट्रेट) का गीत, जय चन्द नेगी (पुलिस सुपरिन्टेण्डैण्ट, जिनकी किन्नर कैलाश की परिक्रमा करते समय निमोनिया से मृत्यु हो गई थी) का गीत, मास्टर राम रत्न का गीत, दौलत राम थानेदार का गीत (इस में दौलत राम के किन्नौर से स्पीति में स्थानान्तरण का हाल है), नेगी ठाकुर सेन का गीत (ये वहां से विधायक हैं, पहले चीफ सैक्रेटरी रह चुके हैं)।

इन गीतों में प्रशंसा का भाव होता है और नायक के वंश का भी थोड़ा वर्णन रहता है। जय चन्दनेगी के वंश का वर्णन तो दिया ही है, उनकी माता का किन्नर-कैलाश की परिक्रमा से रोकना तथा किन्नौर के बाहर की रहने वाली पत्नी का दुःख आदि सारी बातें लोक कवि ने सुन्दर ढंग से वर्णित की हैं। जय चन्द नेगी की मृत्यु छित्कुल गांव से बहुत दूर एक कण्ढे में हुई थी परन्तु एक रूपान्तर के अनुसार उनकी मृत्यु छित्कुल गाँव में आने के पश्चात् बताई गई है। इस तरह गीत के जितने रूपान्तर बनते जाते हैं, उतने ही अधिक उन में प्रक्षिप्त अंश जुड़ते चले जाते हैं और अनेक बार तो यह पता लगाना भी कठिन हो जाता है कि कौन सा प्रचलित रूप शुद्ध रहा होगा।

किन्नौर का पठित समाज भी जन साधारण को अपने नेताओं तथा देश की उन्नति के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए जागरूक है। गान्धी जी के प्रसिद्ध गीत 'सुनो सुनो ऐ दुनिया वालो गान्धी जी की अमर कहानी' का अनुवाद भी किन्नौरी भाषा में अनेक गांवों में प्रचलित हो गया है और लोक गीतों की श्रेणी में आ गया है। इसी प्रकार सन् 1962 में चीनियों के भारत-आक्रमण का भी एक गीत किन्नौर के अनेक गांवों में प्रचलित है। वास्तव में यहां के लोक-गीत ही जन समाज के लिए समाचार पत्रों का कार्य करते हैं।

जीवन-दर्शन के गीत :

इन गीतों में लामणों, 'संसार रङ् संसार' तथा 'जिन्दगी चू मजा मा बुदा' गीत प्रसिद्ध हैं।

लामण छोटे छोटे गीत होते हैं जिनमें भाव-प्राबल्य होता है और थोड़े में ही बात को कहा गया होता है। लामण गीत सारे किन्नौर में प्रचलित नहीं हैं। केवल पन्द्रह-बीस तथा अट्ठारह-बीस परगनों के क्षेत्रों में ही इनका प्रचलन है। लामण का प्रभाव शिमला जिला से हुआ प्रतीत होता है क्योंकि इनकी बोली भी महासू की बोली के साथ मिश्रित है, यथा :—

दुनियो खातेके बोदोच	दुनिया के मुंह में ढक्कन
ना पाइयो।	नहीं लगा सकते।
ढोङकियू फुलारो,	ढाँक में फूल,
चोका मुकियू दिशो।	चमकते हुए दीखते हैं।
नो ढोङकियू फुलारो,	ये ढाँक के फूल,
तोलेच नाशी जोचा।	तुझे नहीं जंचते।
माइटेयू ली छेचछाङ्,	मायके की लड़की,
सौदा माइचङ् मानी।	सदा मायके में नहीं।
डालोङो पतरङ् सदा,	डाली का पत्ता सदा,
मानी डालङों।	नहीं डाली में।

एक अन्य लामण में लड़की अपनी मां से कहती है—

बाह्रो लागेन मो न्युमचे	दिल में लगने के बाद।
छारेयो गोरबोन हौजार।	थोड़ा घर बार भी हजार।
अङ् प्रालब्ध तोन्मा,	मेरी प्रारब्ध हो तो,
पनुवेन गोरबन जातोक।	पत्थर पर भी घर बार खाऊंगी।
अङ प्रालब्ध माइमा,	मेरी प्रारब्ध न हो तो,
हजार गोरबोन ढीला।	हजार घर बार भी ढीला।

'संसार रङ संसार' (संसार और संसार) गीत में नायक तिब्बत जा कर बौद्ध-धर्म में शिक्षा प्राप्त करना चाहता है परन्तु उसका पिता उसे इस शिक्षा की आज्ञा नही देता :—

संसार रङ् संसार,	संसार और संसार,
संसार लोशिमिग अश्कोनङ्	संसार कहे तो झूठा।
संसार साथी मा बग्र।	संसार साथ नहीं आएगा।

'जिन्दगी चो मजा मा बुदा' गीत में जीवन की इच्छाएं फलीभूत न होते देख कर लोक-कवि दार्शनिक हो गया है। वह कहता है कि चौरासी लाख योनि भुगतने पर मनुष्य जन्म मिलता है, फिर भी जीवन का आनन्द नहीं आया। सब लोग

ज़िन्दगी ही ज़िन्दगी कहते हैं, आखिर यह है क्या ? वह निष्कर्ष निकालता है कि यदि पुरुषों का दु:ख बढ़ जाए तो वे या तो एक प्याला शराब पी लेते हैं या एक सुट्टा तम्बाकू। यदि स्त्रियों का दु:ख बढ़ जाए तो वे गाती-नाचती हैं अथवा पानी में डूब कर मर जाती हैं।

सामाजिक कलह के गीत :

समाज में झगड़े की जड़ धन, स्त्री तथा भूमि हैं। इन्हीं तीन विषयों पर किन्नर समाज में देवी/देवताओं में भी झगड़े होते रहते हैं। सापनी तथा चगांव मेशुर का झगड़ा तो प्रसिद्ध है ही, अन्य अनेक देवताओं के भी आपस में झगड़े लोक गीतों में वर्णित हैं। रोपा ठोल्या के गीत में वजीर भाइयों का आपस में झगड़ा होता है और एक भाई दूसरे की मृत्यु के घाट उतार देता है 'कलोन नङ् छेरिङ्' के गीत में ज़मीन के पीछे मामा और भानजा का झगड़ा बताया गया है। एक अन्य प्रसिद्ध गीत है—'तेले देवी दत्त गीथङ' अर्थात् तेलङ्गी गांव के देवीदत्त नामक व्यक्ति का गीत।

अन्य समाजों की तरह इस समाज में पत्नियों के लिए भी झगड़े होते हैं जिसका परिणाम हारी (विवाह पर खर्च किए गए पैसों को चुकाना) होता है।

हारी के गीतों में पत्नियां दूसरों के साथ चली जाती हैं और बाद में वे हारी दे कर फैसला कर लेते हैं। छेदरमणि के गीत में भी तहसीलदार का उसके पति बक्तावर से झगड़ा हो जाता है और तहसीलदार उसे हारी ले लेने के लिए कहता है। किन्नर-समाज में इस बात के लिए भी पत्नी से झगड़ा हो जाता है कि पत्नी अपने एक पति को अन्य पत्नी नहीं लाने देना चाहती। वह सभी पतियों को अपने अनुशासन में रखना चाहती है। राम चन्द्र और याङ्किद डोल्मा का गीत इस सम्बन्ध में उद्धृत किया जा सकता है।

राष्ट्रीय उत्सवों तथा लोक-नाट्यों के गीत :

पन्द्रह अगस्त तथा छब्बीस जनवरी के राष्ट्रीय उत्सवों से सम्बन्धित लोक-गीत इस क्षेत्र में लोक प्रिय होते जा रहे हैं। इन अवसरों पर स्थान-स्थान पर जो कार्य-क्रम प्रदर्शित किये जाते हैं, उन्हीं का वर्णन इन गीतों में अधिकांशत: रहता है। किस अधिकारी ने झण्डा चढ़ाया ? कहां-कहां पर क्या कार्य किया गया तथा वर्तमान समय में हमारे क्या कर्तव्य हैं ? इत्यादि बातों के वर्णन भी इस श्रेणी के लोक-गीतों में प्रस्तुत किए जाते हैं। राष्ट्रीय त्यौहार अन्य सामाजिक त्यौहारों के स्तर में इस क्षेत्र में नहीं मनाए जाते क्योंकि अनेक गांव में उन्हें मनाने के लिए ग्राम-देवता द्वारा कोई आदेश नहीं दिए जाते।

लोक—नाट्यों में 'जबरो' के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं। यह नाट्य बौद्ध-धर्म के प्रभावान्तर्गत होता है। इस में दुङ्ग्युर (धर्म-चक्र) की गति की भांति नर्तक दायीं ओर से बांई ओर को नाचते हैं। ये गीत हङ्रङ् क्षेत्र की बोली में ही मिलते हैं। इन में लामा को सर्वस्व अर्पण करने की इच्छा व्यक्त की गई होती है। एक जबरो के गीत में कहा गया है कि कान, नाक, सिर तथा बाजू आदि के गहने मुझे नहीं चाहियें, इन्हें लामा को भेंट कर दो।

हास्य-रस के गीत :

इस वर्ग में शेरका पानीए, ग्यानिया साधु तथा सागरसेन भाई या 'अेले अते खण्टो' के गीत प्रसिद्ध हैं। शेरका पानीए गीत का अर्थ विशेष कुछ नहीं है। इस के कुछ बोल निम्न लिखित हैं :—

शेरका पानीए पित्ती पोमो।	शेरका पानी स्पीत्ति बर्फ में।
ठण्डा पानीए पित्ती पौमो।	ठण्डा पानी स्पीत्ति बर्फ में।
ठण्डा पानीए।	ठण्डा पानी।
ठाकुर साबा जी ! ए	ठाकुर साहिब ! यह
कुर्ता क्या दामा ला बूटी।	कुर्ता क्या दाम का है !
हल्ला मचाए।	शोर मचाया।
बल्ले बल्ले।	बल्ले (करके)।

ग्यानिया साधु का गीत इस क्षेत्र का प्रसिद्ध एवं मनोरंजक गीत है। एक साधु सारे किन्नौर में पत्नी की खोज में घूमता है परन्तु इस आशा से कि अगले गांव में अधिक सुन्दरी लड़की होगी, वह आगे ही बढ़ता जाता है। गीत की लय सुन्दर बन पड़ी है। साधु को यह अभिमान है कि उसके पास टोकरी भर गहने हैं।

हत्याएं :

हत्याओं के गीतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

हत्याएं :

↓

↓	↓	↓
आत्म-हत्याओं के गीत	मनुष्यों द्वारा अथवा जीव जन्तुओं द्वारा हत्याओं के गीत।	मनोवैज्ञानिक कारणों से हत्याओं के गीत।

आत्म-हत्याओं के गीतों में 'याना युमदासी होमङ्टू जाई' (जानी के होमङ्टू वंश की लड़की युमदासी) का गीत प्रसिद्ध है। युमदासी अपनी इच्छा से रत्न सिंह के साथ अूआ गाँव भाग गई थी। रत्न सिंह के यहां एक अन्य पत्नी इससे पूर्व भी थी, अतः सास मां का व्यवहार युमदासी के साथ अच्छा नहीं रहा। युमदासी अपने बच्चे को लेकर जानी चली आई। जानी में भी उसके माता-पिता ने स्वेच्छा से भाग जाने के लिए उसे बुरा भला कहा। इस कारण उसने रात को उठ कर फाँसी लगा ली। युमदासी की मनोदशा लोक-कवि ने बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त की है। उसे न तो ससुराल में और न ही मायके में सुख है।

आत्महत्या से सम्बन्धित बातें किलबा के गीत में भी वर्णित हैं। लछमनदासी तथा उमर पति इस गीत के अनुसार नदी में डूब जाती हैं क्योंकि उनकी सास का व्यवहार उनके साथ अच्छा नहीं था।

हत्या के गीतों में रोघी गाँव की कृष्णमनी का गीत प्रचलित है। गीत के अनुसार क्रोध में आकर उसके पति ने उसे गोली मार दी थी। बन्दरों के द्वारा पत्थर फैंके जाने पर अनेक नायिकाओं की मृत्यु हुई बताई गई है।

मनोवैज्ञानिक कारणों से हत्याओं में बारङ्मोल का गीत प्रसिद्ध है। माता-पिता के व्यवहार से दुःखी हो कर वह गिर पड़ती है और मर जाती है। यहाँ के समाज में स्त्री-पुरुष अत्यधिक भावुक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़े से पारिवारिक झगड़े के कारण आत्महत्या कर लेना, यहां कठिन बात नहीं समझी जाती थी। तभी तो 'ज़िन्दगी रङ् ज़िन्दगी' के गीत में लोक-कवि कहता है :—

मोरछङ्चो दुःखी वो देशा,	आदमियों का दुःख बढ़ जाए तो,
कोय दम तोमाकू,	या तो एक सुट्टा तम्बाकू
कोय बाटीचू सुराफ।	या एक प्याला शराब।

यदि स्त्रियों का दुःख बढ़ जाए तो या तो नाच गा कर उसे हलका किया जाएगा या फिर गंगा पानी में जा कर आत्मा-हत्या की जाएगी।

कोची गीत :

'कोचा' का अर्थ स्थानीय भाषा में किन्नौर के बाहर का व्यक्ति होता है। यहां तिब्बत की ओर के लोगों को कोचा नहीं कहते। उन्हें 'भोट' कहा जाता है। 'कोचङ्' शब्द के यहां दो अर्थ हैं—झाड़ू तथा दिशा। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में जब 'कोच अथवा कूच' वंश के लोगों ने टिहरी गढ़वाल तक का क्षेत्र जीत लिया था, तब समस्त हिमालय में उस जाति का डर उत्पन्न हो गया था। सम्भवतः उसी समय लोगों ने बाहर के सभी व्यक्तियों को 'कोचा' कह कर पुकारना आरम्भ कर दिया होगा। यह भी सम्भव है कि कोचा 'कोचङ्' (दिशा) दूसरी दिशा का रहने वाला शब्द का ही प्रचलित रूप रहा हो। कुछ विद्वान 'कोचा' शब्द को कीचक जनपद के रहने वाले के लिए प्रयुक्त होने वाला मानते हैं[1]।

कोची गीतों में वे सभी गीत आ जाते हैं जो भारतीय क्षेत्र की ओर से इस क्षेत्र में प्रचारित तथा प्रसारित हैं। तिब्बत की ओर के गीतों को यहां कोची गीत नहीं कहा जाता। यहां अब तो हिन्दी नाटियों, फिल्मी गीतों, पहाड़ी गानों तथा नेपाली गीतों का भी प्रचलन हो गया है परन्तु प्राचीन समय से ही यह क्षेत्र बुशहर राज्य का अंग होने के कारण यहां उपरि-महासू के गीतों का बहुत प्रचलन रहा है।

क्योंकि हरिजनों की भाषा किन्नौर के काल्पा व निचार सब-डिवीजनों में हिन्दी-मिश्रित पहाड़ी है अतः वे महासू के इन गीतों को अधिक पसन्द करते हैं। वैसे यहां शिमला क्षेत्र के लम्बे तथा कठिन गीत प्रचलित नहीं हैं। केवल नाटियों का ही प्रचलन अधिक हुआ है। गंगी का गीत, 'कम्पणी दे कामा' आदि गीत इस दिशा में उद्धृत किए जा सकते हैं। कोची गीत निचार सब-डिवीजन में अधिक प्रचलित हैं।

अनहोने विवाह-सम्बन्ध गीत :

इस वर्ग में असमान-विवाह सम्बन्धों के गीत आते हैं। बारङ् मोल, वज़ीरो बेटी के गीत तो इस दिशा में प्रसिद्ध हैं ही, छेयुमपति का गीत भी यहां उद्धृत किया जा

---

1. देखिये हिमप्रस्थ मासिक—अंक 107, फरवरी, 1964, पृ० 7 पर विद्यासागर शर्मा का लेख।

सकता है। छेयुमपति का प्रेम देवीचन्द से हो गया, वह जंगलात विभाग का एक कर्मचारी था परन्तु तबदीली के समय उस ने उसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं बताया। लोककवि का कथन है :—

देवी चन्द बाबू चुगिस ता दौरा,	देवीचन्द बाबू जबान में (तो) दौरा,
मोनङ्स ता जाकाटे रानो।	मन में धोखा दे रहे।
अने ता तबदील हाचो।	खुद तो तबदील हो रहे।

मेरु बेत्ता की पत्नी को राजा ने रानी बना लिया, बेत्ता फरियाद करे तो किस के पास!

प्रताप चन्द और सूरजमणि के गीत में प्रताप चन्द सूरजमणि से विवाह-प्रस्ताव रखता है परन्तु सूरजमणि यह कह कर टाल देती है कि उसके गुरू की आज्ञा नहीं है। बाद में वह अपने गुरू से ही शादी कर लेती है।

नाटियां-शेरों के गीत :

किन्नर-लोक-नाट्य में कायङ्, वाकायङ् तथा शेरों की नाटियों के गीत प्रसिद्ध है। शेरों के गीत अथवा बोर्चो नाटी उस समय प्रदर्शित की जाती है जब कोई व्यक्ति बाघ को मार लेता है। शेर तो यहां नहीं होते हैं परन्तु लोग बड़े बाघ को ही शेर कहते हैं। शेर की खाल में भूसा भर कर उसे ऐसा बना दिया जाता है जैसे वह जीवित ही हो। जिस व्यक्ति ने शेर को मारा हो, उसके सिर पर पगड़ी बान्धी जाती है और गांव के लोग उसे तथा शेर को अपने ही गांव के घरों के आगे नहीं, बल्कि दूसरे गांवों में भी ले जाकर नचाते हैं और अनाज तथा रुपये प्राप्त करते हैं। इस सामग्री को बाद में बांट लिया जाता है।

बोर्चो नाटी में शेरों से सम्बन्धित लम्बे गीत गाए जाते हैं जिनमें यह बताया जाता है कि शेर कहां से चला और उसे किस ने, कैसे मारा।

प्रेम-गीत :

इस प्रकार के गीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। क्योंकि यहां का जन-जीवन प्रेम सम्बन्धों में कम बाधाएं उपस्थित करता है अतः स्वच्छन्द रूप से किशोर किशोरियों में प्रेम सम्बन्ध पनप जाते हैं। शारीरिक सम्बन्धों के अभाव में भी प्रेम के अंकुर फूट पड़ते हैं और प्रेमी तथा प्रेमिका विवाह की सी स्थिति में आते जाते हैं। प्रेमी तथा प्रेमिका द्वारा एक दूसरे को दोहड़ू चोली, जूते भेंट करना तथा शराब की बोतल छुपा कर देना अनेक प्रेम गीतों की प्रसिद्ध पंक्तियां हैं।

यहां प्रेम-स्थिति हो जाने पर विवाह प्रायः निश्चित सा होता है। इस प्रकार के गीतों में 'रिब्बा के भाटूपङ् का गीत' 'भागवती सुन्दरी का गीत', 'बूटिग का गीत', 'कारबा आचो का गीत' तथा 'छेरिङ् वाङ्याल छोड़्पा' के गीत प्रसिद्ध हैं। इन्हें हम सफल प्रेम-गीत कह सकते हैं।

प्रेम गीतों में दूसरा प्रकार उन गीतों का है जो विवाहित प्रेमी तथा प्रेमिकाओं से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार के गीतों में बाबू प्रताप सिंह का गीत, बेलू राम बाबू का गीत, ठाकुरमणि का गीत तथा बिद्याराम माथो का गीत प्रसिद्ध हैं। इन गीतों के नायक अथवा नायिकायें विवाहित हैं परन्तु उनके अन्य व्यक्तियों के साथ प्रेम-सम्बन्ध हैं। बूटिंग के गीत में भी नायक विवाहित बताया गया है।

जाङ्मोपति का गीत अपनी असफल प्रेम-कहानी के लिए प्रसिद्ध है। इस गीत में जाङ्मोपति के प्रेम की असफलता का बड़ा भावपूर्ण वर्णन है। जाङ्मोपति की असफल कहानी तथा उसका अपने प्रेमी को धोखा देकर नरगू सेन से विवाह कर लेना यहां के स्त्री-वर्ग में चर्चा का विषय बन गया है। इस के गीत की अन्तिम पंक्तियों में कवि भावुक हो उठता है और उसे को धोखा देने के लिए बुरा भला कहने से नहीं हिचकिचाता—

जैसे :—

बनठिन जाङ्मोपोति या	सुन्दरी जाङ्मोपति
इमान माइचा राण्डी।	ईमान बिना स्त्री है।
इमान माइचा राण्डी,	ईमान बिना स्त्री,
या बेमानी चा तोचिग्योश।	बेइमान है।

भक्तकली के गीत को भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है।

प्रेम-व्यापार क्योंकि स्वाभाविक तथा सम्पर्क-प्रक्रिया है इस लिए अनेक बार अन-होने प्रेम सम्बन्ध भी किन्नर समाज में मिल जाते हैं।

इस प्रकार के गीतों में 'तेलामा' (बड़े लामा) का गीत उद्धृत किया जा सकता है। प्रस्तुत गीत का नायक किन्नौर के प्रसिद्ध मठ 'लिप्पा' का 'ज्योतिषी लामा' है जिसका समाज में बहुत मान है। गीत में उस के द्वारा अपनी रिश्तेदार लड़की से विवाह-सम्बन्ध के लिए हठ का वर्णन है। 'गोटिला' के गीत में नायक अपनी रिश्तेदार लड़की से विवाह कर लेता है।

राजपूत (खश) की लड़की या लड़के का अपने वर्ग से निचली जाति से प्रेम-सम्बन्ध हो जाना यहाँ असाधारण घटना है और चर्चा की बात बन जाती है। एक गीत 'कुल्लू चामङ् तथा वजीरो बेटी' में वजीर की लड़की कुल्लू के एक हरिजन के साथ विवाह कर लेती है परन्तु बाद के अनुभव उसे अपने विचार को बदलने पर बाध्य कर देते हैं और वह अपने घर लौटती है जहां उसके माता-पिता उसे बुरा भला कह कर अपमानित करते हैं। असाधारण प्रेम गीतों की इस कड़ी में कितने ही और गीत इस क्षेत्र में मिल जाते हैं।

किन्नर-लोक गीतों में प्रयुक्त अभिप्राय :

लोक-गीतों में अभिप्राय (Motifs) प्रायः प्रयुक्त नहीं होते क्योंकि लोक-कवि किसी सामाजिक महत्त्व की घटना को ही सामने रख कर लोक-गीतों का निर्माण करता है। धर्म-गाथा सम्बन्धी लोक-गीतों में ही अभिप्रायों का प्रयोग अधिक होता है। 'अभिप्राय' अथवा 'रूढ़तन्तु' ऐसे सामान्य अथवा विशेष तन्तु होते हैं जो लोक मानस

को समझने में सहायता करते हैं। ये गीत अथवा कथा के छोटे टुकड़े होते हैं। किन्नर समाज क्योंकि देव-प्रधान है अतः यहां के लोक-गीतों में अभिप्रायों का भी प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में स्टिथ थॉम्पसन द्वारा रचित ग्रन्थ 'लोक साहित्य की अभिप्राय-अनुक्रमणिका (Motif Index of Folk Literature)' में दिए गए क्रम के अनुसार कुछ अभिप्रायों को अलग निकाला गया है। जो अभिप्राय अनुक्रमणिका में नहीं दिए गए हैं, उन्हें ग्रन्थ के अनुसार अलग संख्या दे कर आगे लिखा गया है ताकि ऊपरोक्त ग्रन्थ में उन्हें भी सम्मिलित किया जा सके। अभिप्राय-अनुक्रमणिका में आए अभिप्रायों में से निम्नलिखित प्रकार किन्नर लोक-गीतों में भी मिल जाते हैं :—

	अभिप्राय	संग्रह में गीत की संख्या जहां यह अभिप्राय है।	अभिप्राय-संख्या	अभिप्रायों की कुल संख्या
1	चाचा/मामा कहने से प्रसन्न करना।	अ 4, 5, 6, 43, 86	Q 41.1	5
2	भूतों के कार्य।	35	F 402.1	1
3	ईश्वर स्रष्टा के रूप में।	4, 6, 7, 8, 5, 2	A 101.1	6
4	देवताओं के माता-पिता।	3, 13, 14, 15, 16, 17, 19, 20, 21	A 111.	9
5	स्रष्टा के शरीर के अंगों से देवताओं की उत्पत्ति।	अ, 42 4, 5, 15, 6, 7, 8	A 112.3	7
6	राक्षस के लड़के देवता।	13, 14, 15, 16, 17	A 112.4	5
7	राक्षसी की लड़की देवी।	13, 14, 15, 16, 17 19, 20, 21, 42	A 112.4.2	9
8	समुद्र के झाग से देवता की उत्पत्ति।	अ 4, 5, 7, 8	A 114.1	4
9	देवता की दूसरे देवता के पसीने से उत्पत्ति।	अ 4, 5, 7, 8	A 114.1.1.1	4
10	अण्डे से देवता की उत्पत्ति।	अ 4, 5	A 114.2.1	2
11	अन्धकार से देवता की उत्पत्ति।	अ 4, 5, 7	A 115.6	3
12	पृथ्वी से देवता की उत्पत्ति।	अ 23	A 115.2	1
13	स्वयं से देवता की उत्पत्ति।	23, 25	A 118.	2
14	देवता मनुष्य के रूप में।	70, 72	A 125.	2

15	सुन्दरी देवी।	36, 46	A 125.4	2
16	नाग देवता।	29, 31, 32, 33, 38, 88	A 132.1	6
17	देवताओं के अन्य निवास स्थान।	26, 71, 88, 89	A 151.14.	4
18	देवता का ताज (चंवरङ्)।	44, 88	A 156.2	2
19	देवताओं के कपड़े।	36	A 158.	1
20	देवता का विशेष नगारा।	36, 44, 88, 89	A 159 1	4
21	देवताओं के बीच भूमि (सृष्टि) के नियन्त्रण का बंटवारा।	अ 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 42, 45, 71, 88, 89	A 161.1.	12
22	छोटे देवताओं का बड़े देवता के विरुद्ध विद्रोह।	88, 89	A 162.8	2
23	देवताओं का (पाशा) शतरंज खेलना।	26	A 163.1.1.	1
24	देवताओं के बीच बहुपति प्रथा।	24	A 164.5	1
25	देवताओं के नर्तक।	67	A 166.	1
26	देवताओं का परिवार।	अ 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 30, 42, 43, 54, 71	A 168.	12
27	देवताओं का लड़ाई में हस्तक्षेप—मध्यस्थ होना।	47	A 172.	1
28	देवता भविष्यवक्ता।	39, 47, 49, 92, 56, 57	A 178.	6
29	देवता का अवतरित होना।	47, 13, 14, 15, 16, 17, 71	A 179.5	7
30	देवता सहायक के रूप में।	39, 47, 45, 93	N 817.	4
31	देवता मनुष्यों का निर्णायक।	39	A 187.1.	1
32	देवता का स्वर्ग से विदा होना।	34, 35	A 192.2.1.	2
33	देवता का निर्णय बदलना।	32	A 196.2.1.	1
34	गृह–देवता।	44, 49, 50	A 411.	3
35	दुग्धशाला के देवता।	90, 91	A 411.3.	2

36	स्थानीय देवता।	13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 39, 47	A 419.	9
37	एक पर्वत विशेष का (के) देवता।	39	A 418.	1
38	चमत्कार पूर्ण जन्म।	39, 41, 13, 15	T 540.	4
39	सृष्टि की बनावट से पहले का अन्धेरा।	अ 4, 5, 6, 7, 8 1, 2	A 605.1.	7
40	आकाश का उठाना।	2, 4, 5, 6, 7	A 625.2.3	5
41	मिट्टी से मनुष्य बनाया।	अ 5, 6, 8	A 1241.	3
42	मनुष्य की राख से रचना।	अ 4, 5, 6, 7, 8	A 1268.	5
43	देवता का क्रोध।	43, 49, 50	A 102.17.	3
44	देवता को निरादर-सूचक उत्तर से मृत्यु की उत्पत्ति (आरम्भ)।	अ 4, 5, 7, 8	A 1335.6.1	4
45	सृष्टिकर्ता का अण्डे से अवतरण।	अ 4, 5, 6, 7	A 27.	4
46	देवता द्वारा बदला।	अ 85, 36, 43, 44, 87	A 194.2.	5
47	बूढ़े देवता को युवक देवता का कत्ल करना।	अ 85	A 192.1.1.	1
48	देवता के सोने के दांत।	अ 85	A 125.3.	1
49	देवता का हवा से उड़ना।	अ 85, 88, 89	A 171.1.	3

क्रमानुसार अभिप्राय-संख्या

A—176
T—4
N—4
F—1
Q—5

190

ऊपरवर्णित अभिप्राय-संख्या में 'A' अर्थात् देवताओं से सम्बन्धित अभिप्रायों की संख्या 92% के लगभग है जिस से यहां के समाज का देवताओं में असीम विश्वास झलकता है। इस प्रकार के सहस्रों अभिप्राय किन्नर-लोक-गीतों में मिल जाते हैं। इस का कारण यह है कि यहां की संस्कृति में लोक-देवताओं से सम्बन्धित गीतों की संख्या अन्य लोक-गीतों से पर्याप्त अधिक है।

किन्नर लोक-गीतों में पाए जाने वाले नये अभिप्राय जो स्टिथ थॉम्पसन की अभिप्राय-अनुक्रमणिका में नहीं मिलते—

क्रम संख्या	अभिप्राय	अभिप्राय-अनुक्रमणिका के अनुसार दी गई नई संख्या	संग्रह के अनुसार लोक-गीत की संख्या जिसमें यह अभिप्राय आया है।	परिशिष्ट
1.	दो स्रष्टा	A 2.3	अ 4,5,7,3,6,7,8,63	8
2.	स्रष्टा का बुलबुले से उत्पन्न होना।	A 27.1	अ 4,2,5,8,3	5
3.	स्रष्टा का भानजा-सहयोगी के रूप में।	A 38.2	अ 3,4,5,7	4
4.	मनुष्य का स्रष्टा।	A 88	अ 4,5,6,7,8, 3,2,63	8
5.	बाणासुर और हिरमा-देवताओं के माता-पिता।	A 111.0.1	अ 13,15,17,18,42,20, 21,55,58,71,76,77, 78,92,	14
6.	देवी का माता के नाक से उत्पन्न होना।	A 112.7.3.1	15,14,16,18, 71,76,92	7
7.	देवताओं का परमात्मा के हाथों से उत्पन्न होना।	A 112.3.1	अ 3,4,5,7,8,42	6
8.	देवताओं का परमात्मा के सिर व पांव से उत्पन्न होना।	A 112.3.2	अ 4,6,7,8,15	5
9.	देवता के पीले दाँत।	A 125.5	अ 13,17,19,15,42	5
10.	देवता के सुनहरी बाल।	A 123.13	अ 15,17,19,42	4
11.	देवता गोल चेहरे के साथ।	A 123.14	अ 15	1
12.	देवी-व्यापारी के रूप में।	A 125.1.2	अ 42,17,18,42,20, 55,76,92	8
13.	देवी-निर्णायक के रूप में।	A 125.1.4.	अ 13,14,15,16,17, 18,42,20,21,55,92	11
14.	देवता का सिंहासन पालकी में।	A 152.3.1.	अ 94,93,89,88,86, 85,84,67,62,57,56, 11,12,	13
15.	चालमियां—देवता की पालकी उठाने वाले।	A 152.7.1.	अ 56,57,66,84,85, 86,89, च, 19, ज, 15, 32,	10

16.	देवता का भेड़ों का झुण्ड ।	A 155.8	ग्र 39,84,85,88,89,	5
17.	देवता का कपड़ा-खतक ।	A 158.1	ग्र 22,37	2
18.	याक के बाल-देवता के सिर का पहनावा ।	A 158.2	ग्र 45,84,62,93,94, 91	6
19.	छोटे देवताओं का बड़ी बहिन से विद्रोह ।	A 162.9	ग्र 92,71,42,13,18, 15,16,19,20,21	10
20.	देवता कैलाश में पाशा (शतरंज) खेलते हैं ।	A 163.1.2	ग्र 35,80,26	3
21.	देवता देवी को जबर्दस्ती भगाता है ।	A 164.0.1	ग्र 13,15,16,17,18, 42,76,19,20	9
22.	देवी-राक्षस की प्रेमिका ।	A 164.6.1.	ग्र 42,17,18,19,15,13,	6
23.	देवता देवी के भाई के लिए सन्देश वाहक ।	A 165.2.1	ग्र 13,19,15,16,17 18,20,42,76,88,	10
24.	देवता गिद्ध के रूप में ।	A 132.6.2.1	ग्र 11,15,47	3
25.	देवता बन्दर के रूप में ।	A 132.2.1	ग्र 47	1
26.	देवताओं के बालक ।	A 168.1.	ग्र 13,15,16,17,18, 19,20, 42,92,55, 58,71,76,	13
27.	देवताओं की कानी बहिन ।	A 168.2.	ग्र 43,17,20,21	4
28.	देवताओं की गूंगी बहिन ।	A 168.3.	ग्र 20,76	2
29.	बहरे व गूंगे देवता ।	A 128.6.	ग्र 13,15,19,42,92	5
30.	देवता लड़ाई में शत्रु को डराता तथा हस्तक्षेप करता है ।	A 172.1.	क 24,26	2
31.	देवता बिल्ली व चूहा ।	A 132.16.	क 12, ग्र 84,85,88, 44,49,50	7
32.	देवता को देवता द्वारा क्षेत्र में आने की आज्ञा नहीं ।	A 174.	ग्र 44,49,50	3
33.	गृह देवता मध्यस्थ के । द्वारा बोलता है ।	A 182.1.2	ग्र 84,85,88,49,	4
34.	देवता प्राणी को अनु-वादक के द्वारा परामर्श देता है ।	A 182.3.5.1	ग्र 23,24,26,31,38, 47,51,66,84,85, 90.	11

35.	देवता प्राणी को पालकी से सिर हिला कर सलाह देता है।	A 182.3.5.2.	ग्र 84,85,88,89, 93,94	6
36.	देवता को प्रश्नों के उत्तर देने के लिए उठाया।	A 183.2.	ग्र 84,85,88,89, 93,94,क्र 24,26	8
37.	देवता को कठिनाई दूर करने के लिए उठाया।	A 183.3.	क्र 24,26,ग्र 86,93, 94,54,56	7
38.	देवता को बीमारी दूर करने के उपाय के लिए उठाया।	A 183.4.	ग्र 56,57,83,86,93, 94,	6
39.	देवता को भूतों को भगाने के लिए उठाया।	A 183.5	ग्र 80,57,54,35	4
40.	देवता मनुष्य की शादी पर आशीर्वाद देता है।	A 185.5.1	ग्र 91	1
41.	देवी सुन्दर स्त्री के सौन्दर्य से ईर्ष्यालू।	A 189.4.1.	ग्र 36	1
42.	देवता जानवर मारने में शिकारियों की मदद करता है।	A 189.12.1	म 1,2,3	3
43.	देवता शिकारियों की जंगली जानवर मारने में मदद करता है।	A 189.12.2	म 1,2,3	3
44.	देवता शिकारियों की पक्षी मारने में मदद करता है।	A 189.12.3.	ग्र 47,54	2
45.	देवता शिकारियों की बन्दरों व रीछों को खेतों से भगाने के लिए मदद करता है।	A 189.12.4.	ग्र 47,म 1,3	3
46.	देवता मन्दिर में आराम करने के लिए विदा होता है।	A 192.2.5.	ग्र 67,93,86,56, 57	5
47.	देवता सर्दियों में स्वर्ग को विदा होता है।	A 192.2.6.	ग्र 90,80,35,26	4
48.	15 दिन के पश्चात् देवता की स्वर्ग से प्रत्याशित वापसी।	A 192.3.1.	ग्र 80,90,35,26	4

49.	देवता द्वारा वर्षा व बर्फ का नियन्त्रण।	A 197.1.	अ 51,45,26,90,35	5
50.	देवता द्वारा मृतकों के शरीरों का नियन्त्रण।	A 197.2.	अ 35, ब 26,24,25, 30	5
51.	देवता द्वारा फसलों का नियन्त्रण।	A 197.3.	अ 80,90,35,26	4
52.	देवता द्वारा बीमारियों का नियन्त्रण।	A 197.4.	अ 80,90,35,26	4
53.	देवता द्वारा वैवाहिक सुख का नियन्त्रण।	A 197.5.	अ 26,35	2
54.	देवता द्वारा मृत्यु का नियन्त्रण।	A 197.6.	अ 26,35,90,80	4
55.	आंगन के देवता।	A 411.5.	अ 90,91	2
56.	ग्राम-देवता।	A 419.4.	अ 9,10,11,12,13,14,	6
57.	नाग ग्राम-देवता।	A 419.4.1.	अ 5,22,23,24,25,92	6
58.	महेशुर ग्राम-देवता।	A 419.4.2.	अ 13,14,15,16,17, 19,20,	7
59.	नारायण ग्राम-देवता।	A 419.4.3.	अ 13,14,15,16,17,18, 19,20	8
60.	वासुदेव पालतू पशुओं के देवता के रूप में।	A 441.0.1.	अ 14,13,22,24,52, 30,91,90,92	9
61.	सावनी-पर्वतों के फरिश्ते।	A 418.2.	ग 10,11,13,34,35,36, 44,45,46	9
62.	जादुगरनी के द्वारा आसमान ऊपर उठाया गया।	A 625.2.6.	अ 2	1
63.	राक्षसों ने आसमान को ऊपर उठाया।	A 625.2.7	अ 4	1
64.	स्वर्ग के लिए रास्ते का दरवाज़ा।	A 661.0.2	ब 26	1
65.	किन्नरों का स्वर्ग रल्डङ् (कैलाश के समीप)।	A 694.2.	ब 26,24,25	3
66.	सूर्य-चान्द स्रष्टा के पसीने से उत्पन्न हुए।	A 715.7.	अ 4,5,7,8	4
67.	सितारे स्रष्टा के पसीने की बूंदें।	A 764.2.1	अ 3,4,5,6,7,8	6

68.	आदमी आरम्भ में बिना कान (कान दिये गए जब राख से बनाया गया)।	A 1225.3	अ 4,5,6,7,8,	5
69.	आदमी (बिना कान) सोने से बनाया गया।	A 1247.1.	अ 4,5,6,7,8	5
70.	आदमी लोहे से बनाया गया (बिना कान)।	A 1247.2.	अ 4,5,6,7,8,3	6
71.	मनुष्य चान्दी से बनाया गया परन्तु बिना कान।	A 1247.3.	अ 5,6,7,8,2,3	6
72.	देवता द्वारा देवताओं को धोखा।	A 162.0.1	अ 13,15,16,17,18, 42,21,55	8
73.	देवी का भाई बहिनों को धोखा (अपने बालों के नीचे भूमि का टुकड़ा छुपाना)।	A 162.0.2	अ 55,13,15,16,17,18, 42,21,54,55	10
74.	18 भाई बहिन देवता।	A 165.8.	अ 13,15,16,17, 42,54,	6
75.	देवता देवता की आज्ञा मानता है।	A 161.2.1	अ 13,67,63,56,55,51, 45,57,58,38,37,81,8	13
76.	देवता देवी की आज्ञा मानता है और अपने बालों को अनाज के स्थान पर घराट में लगाता है।	A 161.2.2	अ 13,15,17,19,42	5
77.	सिर काटने पर देवता को असंख्य सिर उगना।	A 123.4.1.4.	अ 13,15,17,19,42,	5
78.	देवता स्वर्ग के देवता के रक्षक के रूप में।	A 179.10	अ 38, ब 26	2
79.	देवता बादशाह की आज्ञा मानता है।	A 182.3.4.3.	अ 49,50,84	3
80.	देवताओं के बीच चमत्कारों का मुकाबला।	A 163.0.1	अ 49,50,54,44	4
81.	देवताओं के बीच सम्पत्ति का झगड़ा।	A 162.0.2.	अ 13,14,15,16,17,18, 19,21,42,84	10
82.	देवी व उस के बहनोई में कलह।	A 162.0.3.	अ 13,15,21,17,	4

83.	देवताओं के बीच विशेष त्यौहार मनाने की कलह।	A 162.0.4.	अ 82	1
84.	देवता के क्रोध से मन्दिर हिलता है।	A 102.17.1.	अ 44,50	2
85.	देवता प्रतिवर्ष नई शक्ति प्राप्त करते हैं।	A 191.0.1.	अ 41,35,32	3
86.	देवता सर्दियों में स्वर्ग जाकर नई शक्ति प्राप्त करते हैं।	A 191.0.2.	अ 41,35,32,80	4
87.	देवता अपनी जन्म भूमि में जाकर नई शक्ति प्राप्त करता है।	A 191.0.3.	अ 32,	1
88.	देवता-देवी पानी में डुबोये गए।	A 192.1.3.	अ 84,88,4,5,20	5
89.	देवता हराया और पहाड़ से नीचे गिराया गया।	A 192.1.4.	अ 84,88,4,5,20	5
90.	स्रष्टा अण्डा समुद्र के झाग से उत्पन्न हुआ।	A 27.1.	अ 4,5,6,8,	4
				478

किन्नर-लोक-गीतों में मुख्यतया निम्नलिखित विशेषताएं हैं :—

1. इस क्षेत्र में प्राय: एक व्यक्ति द्वारा गाए जाने वाले गीत नहीं मिलते। समूह-गान के गीत भी लोक-नृत्य के साथ गाए जाते हैं उन्हें एक स्थान पर बैठ कर या खड़े हो कर गाने का प्रचलन बहुत कम है।

2. गीत का रचयिता एक व्यक्ति न हो कर युवक तथा युवतियों का समूह होता है। यदि एक व्यक्ति किसी गीत को बनाए तो भी वह अपने अन्य मित्रों से परामर्श के पश्चात् ही उसे किसी नृत्य-मण्डली के सम्मुख उन के साथ गाता है।

3. यहां विशेष घटनाओं के साथ सम्बन्धित व्यक्तियों के जीवन-काल में ही गीत बना दिए जाते हैं। इस क्षेत्र में ऐसे सैकड़ों नायक-नायिकाएं अब भी जीवित हैं जिन के जीवन की किसी विशेष घटना पर गीत प्रचलित हैं।

4. यहां ऐसे गीत जो देवताओं तथा त्यौहारों से सम्बन्धित न हो कर व्यक्तियों से सम्बन्धित होते हैं, प्राय: अल्पायु होते हैं। देवताओं तथा त्यौहारों के गीत बहुत पुराने समय के भी मिल जाते हैं। यहां गीत की औसत आयु लगभग 100 वर्ष होती है।

5. यद्यपि किन्नर-क्षेत्र में अनेक बोलियां बोली जाती हैं परन्तु अधिकांश गीत एक ही बोली कनौरयानुस्कद में, जो किन्नौर के निचार तथा काल्पा सब-डिवीजनों में बोली जाती है, मिलते हैं। शेष बोलियों के क्षेत्रों में गीत-रचना बहुत कम है। गीतों में पहाड़ी तथा हिन्दी के शब्दों का बाहुल्य रहता है।

6. यहां के गीत जन साधारण के दैनिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं। दर्शन-सम्बन्धी तथा विचार-प्रधान गीतों की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

7. इन गीतों में गेय तत्त्व आवश्यक रूप से विद्यमान रहता है। गीत को जब त्यौहार अथवा अन्य उत्सव के अवसर पर गाया जाता है तो उस में लयात्मकता के लिए आवश्यक परिवर्तन भी कर लिया जाता है। 'ले' 'लों' आदि शब्दों को अनेक बार बाकी शब्दों के बीच मिला कर इस प्रकार गाया जाता है कि साधारण श्रोता को अर्थ निकालने में कठिनाई आ जाती है।

8. यहां आशापरक गीत अधिक प्रचलित हैं। कारण यह है कि देव-संस्कृति-प्रधान क्षेत्र होने के कारण देवता में असीम विश्वास आशावादिता को जन्म देता है अतः साधारण मनुष्य अपने भविष्य के विषय में अधिक चिन्तित नहीं रहता। वैसे निराशापरक गीतों का भी नितान्त अभाव नहीं।

9. बहुपति प्रथा के कारण विरह-गीत इस क्षेत्र में प्रायः नहीं मिलते। बहुपति प्रथा के कारण पत्नी को विरह में रहने का अवसर प्रायः नहीं मिलता अतः विरह के अवसर कम आते हैं, शायद इसी लिए लोक कवि का ध्यान इस ओर नहीं गया है।

10. इस क्षेत्र में एक ही गीत के कई रूपान्तर मिल जाते है। कारण यह है कि प्राचीन काल से प्रचलित लोक धुनों पर ही अधिकांश गीत बनाए जाते हैं और जन-साधारण की भाषा में वर्णित होने के कारण एक ही गीत के कथानक को कई प्रचलित धुनों पर लयात्मक ढंग से गाया जा सकता है, अतः एक ही गीत के अनेक रूपान्तर बना लिए जाते हैं।

11. इस क्षेत्र में कई गीत देवता की आज्ञा अथवा विशेष त्यौहार को छोड़ कर अन्य अवसरों पर गाने का प्रचलन नहीं है तथा गितकारेङ् गीथङ् (पितरों को बुलाने का गीत) किसी विशेष उत्सव के साथ जुड़ा रहता है, यह गीत उसी अवसर पर गाया जा सकता है। अनेक गीत विशेष ऋतुओं में तथा देवता की ही आज्ञा पर गाए जाते हैं, अन्यथा देवता के क्रोधित हो जाने का भय रहता है। 'साङ्गीथङ्' (ब्राह्म मुहूर्त में गाया जाने वाला गीत) केवल ब्राह्म-मुहूर्त में ही गाया जाता है, अन्य अवसरों पर नहीं।

12. अन्य क्षेत्रों के लोक गीतों की ही भांति यहां के लोक गीतों में स्थानीय उपमाओं का प्राधान्य रहता है। प्रमुख उपमाएं निम्नलिखित हैं :—

क पक्की बात जोगठी[1] के धूएं की भांति अमिट होना।

---

1. जोगठी कायल अथवा दयार की लकड़ी होती है, इसे मसाल के रूप में जलाया जाता है, इस का धूंआं बहुत पक्का होता है।

ख मनपसन्द मित्र या साथी कोशू[1] घास की भांति सुन्दर होना।

ग न पसन्द आने वाला पति बिच्छू बूटी[2] की भांति होना।

घ अपना मायका सुनहरी होना।

ङ अपना बुरा ससुराल घराट के ठण्डे पानी की भांति होना।

च खुले मुंह वाला अप्रिय मनुष्य बाचर[3] की भांति होना।

छ अप्रिय पति बिना बरामदे की सीढ़ी जैसा होना।

तथा ज दराट की भांति गर्दन वाला अप्रिय पति। आदि।

13. 'गोली गो होना हाया वे होना,' 'दुङ्गोलेयो दङ्शङ्' अथवा 'वेली वे होना हाया वे होना' की टेक यहां के गीतों की विशेषता है। 'टेक' के शब्दों को हर गीत के आरम्भ में गाया जाता है तथा इनका कोई विशेष अर्थ नहीं होता।

14. किन्नर-लोक-गीतों की भाषा खिचड़ी है। आर्य-भाषा का प्रभाव इन गीतों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

15. वंश—वर्णन इन गीतों का आवश्यक अंश होता है।

16. इन में अधिकांशत: भेंट–वर्णन तथा वस्त्र-वर्णन भी रहता है।

17. इन में सरल तथा प्रचलित भाषा का प्रयोग होता है, स्थलों के वर्णन गीतों को मोहक बना देते हैं।

उपसंहार :

किन्नर-गीतों के सम्बन्ध में राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि 'गीत किन्नर में बहुत बनते हैं किन्तु अधिकांश की आयु दस-पन्द्रह साल से अधिक नहीं होती। जन-गीतों के कवियों का नाम तो दुनिया में सभी जगह प्राय: अज्ञात रहता है, इस लिये यहां भी वही बात हो गई तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्नर-गीतों के देखने से पता लगेगा कि यहां के जन-कवि का मस्तिष्क काफी विकसित है। छन्द बहुत सरल हैं और प्राय: गायत्री छन्द की भांति तीन पाद के होते हैं। छन्द भी वैदिक छन्दों की भांति ही अक्षर-छन्द हैं जहां गायक को ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत करने की पूरी स्वतन्त्रता है। गीत में अन्तिम पद को दुहराते अगले छन्द के प्रथम पाद से जोड़ने का वही ढंग दिखाई पड़ता है जो भोजपुरी आदि के कितने ही जन-गीतों में पाया जाता है'[4]। इसमें सन्देह नहीं

---

1. यह नाले में पाया जाने वाला घास होता है जो छूने व देखने में नर्म व सुन्दर प्रतीत होता है।
2. बिच्छू बूटी पहाड़ों में पाया जाने वाला ऐसा पौधा होता है जिस के छूने से बिच्छू के डंक जैसी जलन होती है।
3. 'बाचर' घर के छत के पास बनाया हुआ ऐसा कमरा होता है जिस में तीन ही दीवारें होती हैं। इस में घास रखा जाता है। इस में दरवाजा लगाने की आवश्यकता नहीं होती।
4. किन्नर-देश, पृ० 318।

कि कथानक सामान्य होने की दशा में लोक-गीत दीर्घायु नहीं होता परन्तु यह बात सब प्रकार के लोक गीतों के सम्बन्ध मे युक्तिसंगत नहीं है। गोरखा बोइरिस का गीत गत 150 वर्षों से तथा त्यौहारों व देवताओं के गीत प्रागैतिहासिक काल से इस क्षेत्र में प्रचलित हैं।

शब्द-रचना तथा छन्द-विधान के अनुसार किन्नर-गीत अद्वितीय होते हैं। लोक-नृत्य के लिये तैयार किए जाने वाले इन गीतों में लोक-कवि मन्थर अथवा द्रुत गति से नाचने के उपयुक्त लय बना लेते हैं। यही नहीं, इन गीतों में अनेक की रचना 'बाकायङ्[1]' के लिए ही की गई होती है। छेरकी कायङ् (द्रुत गति वाला नृत्य) के लिये बनाये गए गीत अपेक्षाकृत छोटे वाक्यों से युक्त होते हैं, यथा :—

तेवे डोम्बर ज्ञान्यामू,	देवता निकालेंगे,
तेवे शिशेरिङ् डोम्बर।	शिशेरिङ् देवता।
तेवे शिशेरिङ् डोम्बर,	शिशेरिङ् देवता,
तेवे डोम्बर ज्ञान्याग्योश।	देवता निकाला।
तेवे डोम्बरिस लोतोश,	देवता ने कहा—
तेवे रई निज़ाकू छाङा।	आठ बीस (के) लड़के।

मन्थर-गति से प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्य में एक अन्य छन्द का प्रयोग किया गया है—यथा,

बनठिन रामदेवीयु ठ कुखिङ् दुग्योश ?	सुन्दरी रामदेवी की क्या गोद थी ?
ठ कुखिङ् दुग्योश ? अनेनु ग्योटङ् पांजी।	कैसी (क्या) गोद थी ? अपनी दो सन्तानें।

जहाँ लय ठीक नहीं जंचती हो वहां शब्दों के बीच 'ले' अथवा 'लू' आदि जोड़ कर उसे नृत्य के उपयुक्त बनाया जाता है, यथा :—

नामङ् लोशिमा नेगी	नाम कहा जाय तो नेगी
रोतोन सिंह।	रत्न सिंह।

को नृत्य के अनुसार ठीक बिठाने के लिये बहुधा इस प्रकार गाया जाएगा—

नामङ् लो ले शिलेमा
नेगी च रो ले तोन सिंह,
इत्यादि।

किन्नर लोक-गीत सामान्यतः क्यों इतने अल्पायु होते हैं, यह प्रश्न विचारणीय है। राहुल सांकृत्यायन[2] इस का कारण बताते हुए लिखते हैं... 'किन्नर जनगीत इतने अल्पायु क्यों होते हैं ? गायकों का यहाँ कोई विशेष वर्ग नहीं है, जवानी ढलने से पहिले प्रत्येक किन्नरी नर्तकी है, वैसे ही वह गायिका भी है। इसी लिये वही गीत गाया जा

---

1. केवल स्त्रियों का नृत्य जो मन्थर गति से चलता है।
2. किन्नर-देश, पृ० 319।

सकता है जो इन नर नारियों के हृदय को आकृष्ट कर सके। जिस गीत ने एक बार उनके हृदय को आकृष्ट कर लिया, वह कुछ ही महीनों में मन्योटी-धार से हङ्रङ् के डांडे तक नदी तटों, जंगलों, खेतों और पहाड़ी डांडों को मुखरित करने लगेगा। यहां किसी गीत को संरक्षण-प्राप्ति या कला की दुहाई दे कर प्रचारित नहीं किया जा सकता'। उनका यह कथन वास्तविकता के अनुभव पर आधारित है।

इन लोक-गीतों के अल्पायु होने के अनेक कारण हो सकते हैं, यथा—

1. यहाँ का लोक-कवि सृजनशील है उसे नये नये विषयों पर गीत-रचना प्रिय लगती है। जो लोक-गीत पुराने हो जाते हैं, उनका स्थान नये गीत ले लेते हैं।

2. सामाजिक घटनाएं लोक-कवियों को नये नए गीत बनाने के लिये आकृष्ट करती रहती हैं। इस क्षेत्र में लगभग 2000 गीत प्रचलित हैं।

3. लोक-गीतों के सम्बन्ध में लोक-मानस की रुचि बदलती जाती है और लोक-कवि नये गीत बना कर मनोरंजन के साधन ढंढता रहता है।

4. क्योंकि लोक-गीतों की रचना युवक तथा युवतियाँ करते हैं अत: निर्माण के पश्चात् अन्य स्थानों के युवक-युवतियां उन्हें शीघ्र ही सीख लेते हैं। आयु तथा रुचि के साथ साथ वे उन्हें भूल भी जाते हैं।

5. लोक-गीत इतनी सरल भाषा तथा लय में तैयार किये जाते हैं कि उनके प्रचार में कठिनाई नहीं होती परन्तु उससे अधिक अच्छे कथानक तथा लोक-धुन पर बनाये गए गीत उनका स्थान लेते हैं।

6. गीतों के अल्पायु होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि इन गीतों की सामान्य बातें, यथा, भेंट का आदान-प्रदान, मन्दिरों का निर्माण, वस्त्रों की पसन्द तथा वंश-वर्णन आदि सभी बातें दूसरे गीतों में ले ली जाती हैं, केवल कथानक ही नवीन रहते हैं।

परन्तु यह निश्चित है कि सभी किन्नर-गीत अल्पायु नहीं होते। यह बात अक्षरश: सत्य है कि—'किन्नर कण्ठ मधुर है, किन्नर गीत मधुर है साथ ही वह अत्यन्त सरल और अकृत्रिम है। उसमें कोई उस्तादी कलाबाजी नहीं है ...जन संगीत में पहाड़ी संगीत मुझे बहुत मधुर मालूम होता है, और उसमें भी प्रथम स्थान में किन्नर सगीत को देता हूं'[1]।

किन्नर-गीतों के प्रणेता :

लोक-कवि प्रसिद्धि की अपेक्षा नहीं रखता। जिस बात को लोग चर्चा का विषय बना लेते हैं तथा जिस से समाज किसी कारणवश प्रभावित होता है, वही घटना लोक-कवि की रचना के अधिक उपयुक्त रहती है। बहुत कम किन्नर-लोक-गीत एक व्यक्ति की रचना होती है, गांवों के युवक तथा युवतियां किसी घटना को लेकर अपनी भाषा में प्रचलित किसी लोक-गीत की धुन के आधार पर लोक-गीत का निर्माण कर लेते हैं। उस गीत को आरम्भ में किसी मेले में दो चार अथवा अधिक युवतियां गाती हैं और

1. किन्नर देश-राहुल सांकृत्यायन—पृ० 316।

सुनने वाले उस की धुन तथा कथानक को हृदयगम कर लेते हैं। दूसरे गांव में जब लोक-गीत को गाया जाता है तो उस में कहीं कहीं रूपान्तर भी होते चले जाते हैं क्योंकि धुन तथा कथानक को ही गायक तथा नर्तक अधिक महत्त्व देते हैं। यही कारण है कि एक ही गीत के अनेक रूपान्तर मिल जाते हैं। युवतियां लोक-गीत रचना में पटु होती हैं।

किन्नर-क्षेत्र में कुछ व्यक्ति ऐसे मिल जाते हैं जो स्वयं ही लोक-गीतों का निर्माण करते हैं और उसे युवावर्ग को सुना कर तथा मेलों में गा कर उन का समारम्भ कर देते हैं। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध गीत 'थारो गीथङ्' के सम्बन्ध में मीरू गांव में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को बताया गया था कि पांगी गांव के एक लोक कवि को मीरू गांव के लोगों ने विशेष रूप से इस गीत की रचना करने के लिए आमन्त्रित किया था और उस ने मीरू गांव के एक व्यक्ति के द्वारा बाघ (शेर) का शिकार करने पर इस गीत की रचना की थी। हङ्रङ् में एक अन्य लोक-कवि 'हङ्पा दिला' नाम का हो गुजरा है। उस ने हङ्रङ् की बोली में अनेक लोक-गीतों का निर्माण किया था।

किन्नर लोक गीत वास्तव में ही उस समाज की आत्मा के उद्‌गार हैं, वे जहां सारे समाज को एकता के सूत्र में बांधते हैं वहां सांस्कृतिक थाती के रूप में विद्यमान रह कर किन्नर-समाज का निश्छल दर्पण हैं।

4 किन्नर लोक कथा साहित्य

लोक-कथा के सम्बन्ध में निम्न उक्तियां अक्षरशः सत्य हैं कि—लोक-मानस ज्ञान को कहानी के रूप में ही स्वीकार करता है। जो ज्ञान कहानी के रूप में सरल नहीं हो पाता वह लोक-मानस में नहीं पचता। मानव-जाति बुद्धि का कितना भी विकास कर ले, वह प्रत्येक नई पीढ़ी में बालभाव से ही जीवन-चक्र का आरम्भ करती है। बाल-भाव की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और विचार का एक मात्र आश्रय कहानी है[1] तथा 'लोक-साहित्य के मौखिक रूप में और लिखित शास्त्रीय से लोक के मौखिक रूप में कहानियों का आदान प्रदान होता रहता है। लोक और शास्त्र इस दृष्टि से एक दूसरे के ऋणी हैं, उनमें विरोध की सम्भावना नहीं माननी चाहिये। वस्तुतः दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध हैं और एक का रस दूसरे को सरसता प्रदान करता है। उदाहरण के लिए रामायण का जो स्वरूप इस समय प्राप्त है वह बाल्मीकि से पूर्व लोक-वार्ता का ही अंग था। जिस समय बाल्मीकि के मन में श्लोक का स्फुरण हुआ और उनके मन में यह संकल्प आया कि नए छन्द को किसी महत् उपाख्यान का साधन बना कर सफल किया जाए तो उन्होंने राम कथा का अन्वेषण लोक से ही किया[2]।'

यही नहीं, अनेक पौराणिक कथाएं लोक में प्रचलित रही हैं और कालान्तर में उन्हें धर्म-कथाओं में सम्मिलित किया गया है। किन्नौर में पाण्डवों की प्रचलित गाथा के अनुसार कौरवों की संख्या साठ बताई गई है और वे कुन्ती की बहिन नाती के पुत्र माने जाते हैं। कुन्ती ने बारह वर्ष तक ऋषि की सेवा की परन्तु वर प्राप्ति के समय उस की बहिन छल कपट से कुन्ती के स्थान पर चली गई।

लोक कथा भले ही अपने में कितनी गहन शिक्षा, कितना महत्वपूर्ण प्रश्न तथा कितना महान् उपदेश लिये हुए क्यों न आए, उसकी बाह्य परत, जिसके साथ लोक-मानस का सम्बन्ध रहता है, बहुत मुलायम तथा सरल होती है। यही कारण है कि लोक-कथाओं का प्रचलन बहुत शीघ्र होता है और जितने ही अधिक गूढ़ तत्व किसी कहानी में विद्यमान हों, वह उतनी ही अधिक लोक प्रिय होती है।

पृथ्वी की आरम्भिक अवस्था के साथ ही आदिम मानव ने कुछ लोक कथाओं की रचना कर ली थी और उन कथाओं पर ही संसार की असंख्य कथाओं की आधार

---

1. भारत की लोक कथाएं—लेखिका सीता, बी० ए०, भूमिका लेखक डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 5।
2. वही, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 5, 6।

मिला है। यद्यपि संसार भर में लाखों लोक-कथाएं प्रचलित हैं परन्तु रूढ़-तन्तुओं अथवा अभिप्रायों के आधार पर आर्ने ने विश्व में प्रचलित कथाओं के 550 प्रकार वर्णित किये हैं[1]। उनका कथन है कि अभिप्राय-अध्ययन के साथ सारे विश्व की लोक-कथाओं को जोड़ा जा सकता है और इन्हें अलग अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। स्टिथ थॉम्पसन के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'लोक साहित्य की अभिप्राय-अनुक्रमणिका' में लेखक ने लोक-कथाओं को अभिप्रायों के आधार पर अध्ययन करने का मार्ग-प्रशस्त किया है। इस से केवल अभिप्रायों का ही अध्ययन नहीं किया जा सकता, बल्कि उनके आवश्यक तन्तुओं के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों का विवेचन भी प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत की लोक-कथाओं में अभिप्राय-अध्ययन सर्व प्रथम रिचर्ड टैम्पल ने आरम्भ किया। उन्होंने प्रकाशित कथा-संग्रहों के आधार पर अभिप्रायों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। आर्ने और थॉम्पसन के अभिप्राय-अध्ययन के आधार पर भारतीय लोक-कथाओं के अध्ययन की एक नई प्रवृत्ति जागृत हुई और सन् 1946 ई० में डॉ० वैरियर एल्विन ने महाकौशल तथा उड़ीसा की लोक कथाओं का इस आधार पर अध्ययन किया[2]।

लोक वार्ता का अध्ययन करते समय लोक कथाओं के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में लोक कथाओं के संकलन संसार भर में प्रचलित लोक कथाओं के आधार माने जाते हैं। वास्तव में हिन्दू धर्म सम्बन्धी सारा साहित्य कथा-साहित्य के रूप में ही विकसित हुआ है।

किसी जाति में प्रचलित लोक-कथायें उस जाति का इतिहास होती हैं। यदि आप किसी जाति को समझना चाहते हैं तो उस के इतिहास को जानना आवश्यक होगा[3]। इस दृष्टि से लोक-कथाओं का अध्ययन आवश्यक रहेगा। लोक कथायें प्राचीन प्रथाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं इस लिये इतिहास से भी महत्त्वपूर्ण होती हैं।

लोक-कथाएं हमें कुछ बातें बताती हैं—इनमें न्याय की सदैव जीत होती है, बुद्धिमान सदैव लाभ उठाते हैं, सद्गुणों वाले पात्रों की ओर श्रोताओं की सहानुभूति रहती है और इन के अन्त में दुरात्माओं की हार बनाई गई होती है[4]। ये सब बातें लोक कथाओं द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षायें होती हैं और सामाजिक सन्तुलन के लिये आवश्यक हैं। पश्चिमी देशों में प्रचलित लोक-कथाओं के मूल में पंचतन्त्र तथा हितोपदेश की कथाएं विद्यमान हैं[5] जिन से पता चलता है कि अति प्राचीन काल में भारत लोक-कथाओं का जनक रहा है। लोक-कथाओं का अध्ययन आदिम लोक-मानस को समझने के लिए महत्वपूर्ण सोपान है तथा अभिप्राय-अध्ययन के द्वारा हम निश्चित निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आरम्भिक मानव की विचारशृंखला किस प्रकार के

1. वही, पृ० 26।
2. Durga Bhagwat– An Outline of Indian Folk lore, Page 3.
3. African Myths together with Proverbs by Carter Godwin Woodson, Page IX.
4. Grimm's Popular Stories, Oxford University Press, 1909, Preface P. X.
5. Macdonell's History of Sanskrit Literature, Page 421.

घटना-क्रम से किस सीमा तक अभिभूत होती थी और जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान वह कितनी चतुराई के साथ निकाल सकता था। वर्तमान समय में प्रचलित सारी लोक कथायें कपोल- कल्पित नहीं हैं बल्कि उनमें से अधिकांश जीवन के वास्तविक रूप के साथ सम्बद्ध रही हैं। कथाओं के तन्तुओं में समानता सांस्कृतिक आदान-प्रदान के महत्त्वपूर्ण संकेत देती है।

किन्नर-क्षेत्र में कितनी ही लोक-कथायें प्रचलित है इनमें से अनेक कथाओं के एकाधिक रूपान्तर सुदूर के गांवों में भी मिल जाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन के सम्बन्ध में 305 लोक-कथाओं को एकत्रित किया गया। यहां प्रचलित लोक-कथाओं को निम्न-लिखित मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है :—

1. धर्म कथायें।
2. पौराणिक कथायें।
3. पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कथायें।
4. राक्षसों से सम्बन्धित कथायें।
5. नीति कथायें।

इस वर्गीकरण को निम्न लिखित सारणि के आधार पर इस प्रकार निबद्ध किया जा सकता है :—

1. धर्म कथायें—

1. लोक देवताओं से सम्बन्धित—
   - अ. लामाओं से सम्बन्धित।
2. बौद्ध-धर्म सम्बन्धी—
   - अ. जातकों की कथाएं।

2. पौराणिक—

- अ. पृथ्वी व मनुष्यों की उत्पत्ति सम्बन्धी।
- आ. विविध (पाण्डव, महाभारत आदि)।

3. पशु-पक्षियों से सम्बन्धित—

1. पशु—पशु—
   - अ. पशु—मित्र।
   - आ. पशु—शत्रु।
2. पशु तथा मनुष्य—
   - अ. सहायक।
   - आ. शत्रु।

4. राक्षसों से सम्बन्धित—

- अ. राक्षस का स्वरूप।

आ. राक्षस का रूप-परिवर्तन ।

इ. राक्षस की विजय ।

ई. राक्षस से लड़ाई व उसकी हार ।

उ. राक्षस की सूझ-बूझ तथा मूर्खता ।

5. **नीति-सम्बन्धी—**

1. उपदेश सम्बन्धी—

अ. मूर्खता का दण्ड ।

आ. बुराई का फल

इ. चतुराई का इनाम ।

ई. अन्य लोगों द्वारा मार्ग-दर्शन ।

2. निर्णयात्मक—

अ. कारण निरूपक ।

आ. विविध ।

प्रस्तुत वर्गीकरण के अन्तर्गत किन्नर-क्षेत्र में प्रचलित सभी प्रकार की लोक कथायें आ जाती हैं । लोक साहित्य में धर्म गाथाओं का विशेष महत्त्व है । डॉ० सत्येन्द्र के शब्दों में—लोक साहित्य का वह अंश जो प्रकटतः कहानी प्रतीत होता हो पर जिसके द्वारा किसी ऐसे व्यापार का वर्णन अभीष्ट हो जो साहित्य-स्रष्टा ने आदिम काल में देखा था तथा जिसमें अब भी धार्मिक भावना का पुट है—धर्म-गाथा कहलाता है[1] ।

किन्नर धर्म-गाथाओं को हम दो मुख्य वर्गों में बांट सकते हैं (1) लोक-देवताओं से सम्बन्धित तथा (2) बौद्ध-धर्म सम्बन्धी ।

लोक-देवताओं से सम्बन्धित धर्म-गाथाएं : किन्नर-ग्रामों के देवता अलग अलग हैं और उनसे सम्बन्धित कथाएं भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित हैं । इन कथाओं से सम्बन्धित गीत भी मिलते हैं परन्तु साधारणतः ये देवता की कीर्ति का बखान करने के लिए गद्य में ही कही जाती हैं । इनके निम्न-लिखित मुख्य प्रकार हैं :—

(अ) विश्व-व्यापी देवताओं से सम्बन्धित कथायें ।

(आ) ग्राम-देवताओं से सम्बन्धित कथायें । प्रथम वर्ग में पृथ्वी की उत्पत्ति, देवताओं का पृथ्वी पर उतरना तथा कार्य की बांट से सम्बन्धित कथायें आती हैं । इस वर्ग में सृष्टि की उत्पत्ति, बड़े देवताओं का पृथ्वी पर अवतरण तथा इन देवताओं के चमत्कार आते हैं । इनमें से अधिकांश धर्म-गाथायें हैं । ईशूरस की गाथा, पृथ्वी तथा मनुष्य का बनाया जाना आदि बातें इन कथाओं में मिल जाती हैं । इनमें देवताओं से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन रहता है तथा इन्हें लोग श्रद्धापूर्वक सुनते हैं ।

(इ) ग्राम देवताओं से सम्बन्धित अनेक चमत्कारपूर्ण वर्णन इस क्षेत्र में प्रचलित

---

1. डॉ० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान, पृ० 193 ।

हैं। ये सब लोक-कथाओं की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

इस वर्ग के दूसरे भाग में बौद्ध-धर्म सम्बन्धी कथाओं का अध्ययन किया जा सकता है। लोचा लामा विशेष स्थानों पर बौद्ध-मन्दिरों से सम्बन्धित रहा है। उस के तथा अन्य अवतारी लामाओं के सम्बन्ध में भी चमत्कारपूर्ण कथायें लोक-प्रचलित हैं। बौद्ध-धर्म कथाओं में जातकों की कथायें भी आती हैं। लामाओं ने किन्नर-समाज में बौद्ध-धर्म की ओर रुझान उत्पन्न करने के उद्देश्य से समय समय पर महात्मा बुद्ध तथा अन्य बुद्धावतारों के सम्बन्ध में वर्णित कथाओं का प्रचार किया है।

इस समाज में जातक कथाओं का प्रचार दो प्रकार से हुआ है :—

(1) नाटकों के द्वारा।

(2) धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा।

बौद्ध-धर्म सम्बन्धी नाटकों का प्रचलन पूह डिवीजन के क्षेत्रों में अधिक रहा है। नाटककार स्थानीय भी होते हैं परन्तु तिब्बत तथा स्पीत्ति के लोक नाटककार जिन्हें 'बूचेन' कहा जाता है, विशेष प्रसिद्ध हैं। 'बूचेन' भारत-चीन सीमा सम्बन्धी विवाद उठ जाने के पश्चात् तिब्बत से नहीं आते परन्तु लामाओं से मिलने के लिये जो लामा दूसरे क्षेत्रों से आते हैं, वे भी समय समय पर जातकों पर आधारित नाटक दिखाते हैं। सम्पूर्ण कथा को ले कर नाटक-रूप में दिखाया जाता है। बनावटी चेहरे लगाना इन अवसरों का मुख्य आकर्षण रहता है। स्पीत्ति-क्षेत्र के 'बूचेन' भाभा घाटी, रोरा घाटी तथा हङरङ् क्षेत्र के गांवों में ये लोक-नाट्य अब भी दिखाते हैं।

लामा धर्म ग्रन्थों में वर्णित कथाओं को समय समय पर लोगों को सुनाते रहते हैं। जिङ् सिङ् रयग्बो की कथा में एक बौद्ध-देवता का जन्म प्रसिद्ध लामा द्वारा दिए गये अनाज के बीज को खेत में लगाने से पौधे में फल के रूप में हुआ। लामा ने उसका नाम सातुग सला सङ्गे (अनाज से उत्पन्न भगवान) रखा। सातुग सला सङ्गे ने बन में दो पक्षी देखे जिनमें से एक श्वेत रंग का तथा दूसरा काला था। उसने काले को राक्षस समझा और मार दिया। इसी प्रकार एक अन्य दिन उसने पहाड़ पर एक काले तथा दूसरे सफेद पुरुष को आपस में लड़ते देखा और वैसे ही सफेद को भगवान तथा काले को राक्षस समझ कर मार दिया। सफेद व्यक्ति ने प्रसन्न हो कर लड़के को अपने देश का राजा होने का वर दिया। भगवान अन्तर्धान हो गया। एक स्त्री के सामने आकाश से सात ओले गिरे जिन्हें खा कर वह गर्भवती हो गई। गर्भ में बालक ने उसे पहाड़ में चलने के लिए कहा। वह चली गई, फिर बालक ने उसे न्योल (गांव के नीचे की भूमि) में चलने के लिए कहा। घर आने पर उस स्त्री के मुंह, नाक तथा कान आदि से 5 बालक उत्पन्न हुए और तत्काल ही भाग गए। केवल एक घोड़ा तथा एक बालक ही उस स्थान पर ठहरे। उस लड़के का नाम 'इटीथपा मीछुङ्' रखा गया। उस ने राजा की लड़की 'चू चू टोकमा' से विवाह किया। इटीथपा मीछुङ् राजा का नौकर था। राज कुमारी ने स्वयम्वर में हार आकाश की ओर फेंक दिया ताकि जिसके गले में पड़े उस से विवाह सम्पन्न हो। हार नौकर के गले में पड़ा। वह नौकर (इटीथपा मीछुङ्) रात को बाहर चला जाता था और राक्षसों को मारता था। एक दिन उसकी पत्नी 'चू चू टोकमा' ने उसकी अनुपस्थिति में उसकी खाल को जला दिया जिसके

कारण वह बहुत सुन्दर व्यक्ति हो गया राक्षसों के साथ 'इटीथपा मीछुङ्' का युद्ध प्रतिदिन होता था। वह हरा कर उन्हें नौकर रख लेता था। एक बार उसने मृत मेमने को जीवित कर दिया। उस का तीर सैंकड़ों मील तक चला जाता था। एक बार राक्षसों के देश में जा कर उसने तीर छोड़ा जो उसके घर के ऊपर से उड़ रहा था। चू चू टोकमा तीर की आवाज सुन कर मक्खन ले कर बाहर निकली जिसके कारण तीर वहीं गिर गया। जिङ् ग्यालबो (जो पहले नौकर था) उड़ कर मण्डी चला गया जहां उसने राक्षसों तथा राजा को मार दिया। वह बौद्ध-धर्म का देवता है।

एक अन्य कथा 'खाशोरे नाशोरे' में भी इसी प्रकार की घटना का वर्णन है। तीन बहिनों के सामने ओले गिरे जिनको खाने से वे गर्भवती हो गईं। दो बहिनों के तो अच्छे बच्चे उत्पन्न हुए परन्तु तीसरी के गर्भ से खाशोरे नाशोरे[1] उत्पन्न हुआ। जंगल में जा कर खाशोरे नाशोरे ने एक पक्षी को तीर मारा। तीर लगने के पश्चात् पक्षी उड़ कर भाग गया। कुछ वर्षों के पश्चात् खाशोरे विवाह के उद्देश्य से एक राजा के देश में गया। वहां उसे पता चला कि उस देश के राजा के शरीर में कई वर्ष पूर्व तीर चुभ गया है जिसे वही व्यक्ति छुड़ा सकता है जिसने उसे मारा हो। खाशोरे भी यत्न करने के लिये वहां गया और उसने तीर को शरीर से निकाल दिया। यह राजा वही पक्षी था जिसके शरीर में उसने तीर मारा था। उस देश में पहुंचने के लिये नायक ने काली सड़क को छोड़ दिया था तथा सफेद का आश्रय लिया था। वापसी पर एक राक्षसी को मारने के पश्चात् उसके पेट से खाशोरे नाशोरे के दो भाई भी जीवित निकले। खाशोरे नाशोरे भगवान था जो बाद में लियो क्षेत्र का राजा बन गया। इन के अतिरिक्त इस वर्ग की कथाओं में उपदेशात्मक कथाएं भी वर्णित हैं, यथा, गूंगे भाई की कथा, दो चोरों की कथा तथा सोद और सोदनिग की कथा, इत्यादि।

जातक-कथाओं में पांगी गांव के सम्बन्ध में प्राप्त कथा 'लाती सेरजङ् तथा हिना डुण्डब' का विशेष महत्व है। यह कथा सारे किन्नर-क्षेत्र में प्रचलित है। इसका विवेचन अगले पृष्ठों में किया गया है।

किन्नर लोक कथाओं का दूसरा प्रकार पौराणिक कथाएं हैं। इनके अन्तर्गत पृथ्वी तथा मनुष्यों की उत्पत्ति से सम्बन्धित कथाएं आती हैं। मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस क्षेत्र में दो प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं। एक वर्ग के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति समुद्र के नीचे से हुई तथा दूसरे प्रकार के अनुसार अति प्राचीन काल में संसार में केवल अन्धेरा ही अन्धेरा था। बाद में भगवान उदय हुए और उन्होंने लाल, काली तथा रेतीली मिट्टी को बारी बारी से फैला कर पृथ्वी का निर्माण करना चाहा परन्तु चिकनी मिट्टी से ही पृथ्वी का निर्माण सम्भव हो सका। इस आशय के गीत भी मिलते हैं, उन का विवरण लोक-गीतों के अध्याय में दिया गया है।

दूसरे प्रकार की पौराणिक लोक-कथाओं के अन्तर्गत पौराणिक पुरुषों के जन्म की कहानियां रखी जा सकती हैं। रामायण की कथा, महाभारत की कथा, नल दमयन्ती की कथा, पाण्डवों की कथा तथा गजेन्द्र हाथी आदि से सम्बन्धित कथाओं का पर्याप्त

---

1. खाशोरे-फटा मुंह, नाशोरे-फटा नाक—अर्थात् फटे मुंह और नाक वाला व्यक्ति।

प्रचलन है। शिक्षा के प्रचलन के साथ इन कथाओं में भी परिवर्तन होता रहा है और वर्तमान समय में पौराणिक आख्यानों से अधिक अन्तर इन प्रचलित कथाओं में नहीं मिलता। एक लोक-गाथा 'सङ्गीथङ्' में पाण्डवों की माता कुन्ती का बारह वर्ष तक ऋषि की सेवा करके वर प्राप्त करना वर्णित है। ऋषि ने कहा—बारह वर्ष तक प्रातः काल नाले से पानी लाना, कण्ठों से सब प्रकार के फूल इकट्ठे करना तथा दान-पुण्य करना तो पुत्र-प्राप्ति होगी। बारह वर्ष पूरे होने पर कुन्ती की बहिन नाती धोखे से उसके कपड़े पहन कर वर-प्राप्ति के लिए चली गई। ऋषि ने एक फल दिया जिस के कारण साठ कौरव उत्पन्न हुए। कुन्ती को जब धोखे का पता चला तो वह बहुत रोई और छल के सम्बन्ध में ऋषि को बताया। ऋषि ने उसे फिर बारह वर्ष तक सेवा करने के लिए कहा और इस प्रकार उसने पांच पाण्डवों का वर प्राप्त किया। कौरवों तथा पाण्डवों के झगड़ों के अनेक वर्णन इस गाथा में आते हैं।

तीसरे प्रकार की कथाओं का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इस में पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कथाएं आती हैं। इस क्षेत्र में प्रचलित लोक-कथाओं में इस वर्ग की लोक-कथाएं राक्षस-कथाओं के पश्चात् दूसरे स्थान पर आती हैं। इन्हें निम्न उप-भागों में रखा जा सकता है।

(1) पशु-पशु। अर्थात् पशुओं के बीच की कथाएं। यथा, बिल्ली और लोमड़ी, एक गीदड़ का बच्चा, शेर और बछड़े की मित्रता, आदि। इन कथाओं में एक जानवर दूसरे जानवर का मित्र अथवा शत्रु होता है और वह उसकी सहायता करता है अथवा दूसरे के मार्ग में अवरोध स्थापित करता है। 'शेर और बछड़े की मित्रता' में एक गाय तथा बाघिन इकट्ठी चरती हैं तथा उन के बेटे अलग रहते हैं। एक दिन भूख लगने पर बाघिन गाय को खा जाती है। बाघ के बच्चे को माता का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता और वह अपनी मां को किसी बहाने ढांक पर ले जाता है तथा धक्का दे कर गिरा देता है। इस के पश्चात् बाघ तथा बछड़ा इकट्ठे चरते हैं। बाघ बछड़े के गले में घण्टी बान्ध देता है ताकि शिकार ढूंढ रहे बाघ को वह घण्टी बजा कर कठिनाई के समय बुला सके। एक दिन जब बाघ दूर चला गया तो बछड़े ने जोर से घण्टी बजाई जिस से वह दौड़ा हुआ आ गया। वापिस आ कर उसने देखा कि बछड़ा सकुशल है और खेत में चर रहा है। बाघ के पूछने पर उसने बताया कि वह तो केवल परीक्षा ले रहा था। बाघ वापिस चला गया। एक दिन फिर उसे घण्टी की आवाज सुनाई दी परन्तु उसने विशेष ध्यान नहीं दिया।

शिकार करने के पश्चात् जब वह वापिस लौटा तो उसने देखा कि कुछ शिकारी बछड़े को मार कर मांस को बांट रहे थे। बाघ को बहुत क्रोध आया और उसने शिकारियों से शिकार को एक स्थान पर इकट्ठा करने के लिए कहा। इस के पश्चात् उसने लकड़ियां इकट्ठी करवाईं और उन में आग लगा कर जल कर मर गया। प्रस्तुत कथा पंचतन्त्र की बछड़े व शेर की मित्रता सम्बन्धी कथा का रूप है और उसमें गडरिये की कथा के अंश भी मिले हुए हैं जिन के अनुसार 'बाघ आया', 'बाघ आया' कह कर गडरिया लोगों को झूठे ही इकट्ठा कर लेता था। कव्वा और कव्वे का बच्चा भी इस क्षेत्र की प्रसिद्ध कहानी है। 'कण्ढे तथा न्योल के टोक्ठ' भी इसी वर्ग की कथा है।

चकोर तथा लोमड़ी की कथा में चकोर लोमड़ी को धोखा देकर उड़ जाता है। जूं तथा पिस्सू की कथा में ये दोनों एक दूसरे के मित्र थे पर बाद में शत्रु हो गए।

दूसरे उपभाग के अन्तर्गत पशुओं तथा मनुष्यों से सम्बन्धित कथाएं आती हैं। इन में भी मनुष्यों के शत्रु तथा मित्रों की कथाएं आती हैं। इन कथाओं के अनुसार अनेक बार जादुई पशु मनुष्यों की मदद के लिए आते हैं। चिनचिन गो घोड़े की कथा में एक जादुई घोड़ा लड़की की मदद करता है और अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में उसे पहले ही बता देता है। वह कहता है कि यदि हंसते हुए उस की खाल को उतारा जाएगा तो वह उतर जाएगी अन्यथा नहीं उतर सकती[1]।

'विश्वासपात्र मेमना' की कथा में एक मेमना अपने मालिक को यह विश्वास दे कर जाता है कि वह मोटा होने पर वापिस घर आ जाएगा और कटने के लिये स्वयं प्रस्तुत हो जाएगा। कण्डे को जाते समय उसे अनेक जानवर ठहरने के लिये कहते हैं पर अपने वचन के अनुसार वह वहां से मोटा हो कर घर वापिस लौटता है जहां उसे उसके मालिक तथा मालकिन काट देते हैं। इसी प्रकार की एक कथा 'एक लड़की तथा खड्डू (मेमना) भाई' भी है। इसमें मेमना लड़की का सहोदर है। उसकी सौतेली मां मेमने को जंगल में चराने के लिए भूखे ही भेज देती है। मेमना अपने सींग के हिलाने से उसे बढ़िया पकवान देता है जिससे लड़की मोटी होती जाती है। सौतेली मां को इस से आश्चर्य होता है, वह अपनी लड़की को कारण जानने के लिए भेजती है। दूसरे दिन से सौतेली मां मेमना चराने के लिए अपनी लड़की को जंगल में भेजती है परन्तु मेमना रोटी देने के स्थान पर उसे मारता है। उस मेमने को अपने काटे जाने का पहले ही पता चल जाता है। वह बहिन को कहता है कि उसके मांस को वह भूमि में दबा दे। बहिन ने ऐसा ही किया और उस स्थान पर मेमने के शरीर से महल, सड़कें तथा बागीचा आदि वस्तुएं बन गईं। चिनचिन गो तथा मेमना भाई की कथा की श्रेणी की एक कथा 'बैल तथा गूंगा भाई' की भी है। इस में गूंगे का रक्षक उस का भाई बैल है। बैल के मांस से भी अनेक वस्तुएं बन जाती हैं। 'मेंढक की कथा' में मेंढक नायक का सहायक है उसके हंसने से घरों में आग लग जाती है और रोने से पानी की नदियां बह निकलती हैं।

इन-कथाओं में पशु-पक्षियों का एक संसार है जो मनुष्यों के रक्षक अथवा शत्रु के रूप में हमारे दैनिक जीवन के साथ सम्बन्धित है। सात बहिनों की कथा में जब राक्षस पांच बहिनों को धोखे से खा लेता है तो एक चूहा दो बहिनों को अपनी बोली में बताता है कि उन्हें भाग जाना चाहिये। यही नहीं, राक्षस को दूर रखने के लिए वह अनेक वस्तुएं, यथा, काई के बीज, तुम्बा तथा कंकड़ भी देता है जिन से राक्षस के रास्ते में कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं। बाद में दोनों बहिनों को एक गाय अपने थन्न तथा नथूने में छुपा लेती है। केवल पशु ही मनुष्यों की मदद करते हों, ऐसी बात नहीं है, अनेक कथाओं में मनुष्य भी जादू के प्रभाव से पशु बन जाते हैं। हिरन राज-कुमारों की कथा में चार राजकुमार एक राक्षसी के श्राप से हिरन बन जाते हैं परन्तु

1. देखिये परिशिष्ट 2।

उनकी बहिन राक्षसी के द्वारा उन्हें फिर मनुष्य बना देती है। तुन तुन दासी की कथा में नायिका चूहे से विवाह करती हैं। 'तीन जामाताओं की कथा' में एक व्यक्ति अपनी तीन पुत्रियों के विवाह क्रमशः भालू, गिद्ध तथा शेर से करता है। तीनों जामाता मनुष्य भाषा में बात करते हैं। शालिक राजा की कथा में गीदड़ राजा का विवाह कराता है। कुटट्न की लड़की की कथा में लोमड़ी कुटट्न की लड़की का मांस ले कर उसके घर जाती है। बन्दरों की कथा में बन्दर मनुष्य के सहायक के रूप मे आते हैं। वास्तव में शत्रु-पशुओं की कथाओं की संख्या बहुत कम है। पशु-पक्षी मनुष्यों के सहायक के रूप में ही अधिक आते हैं। कुत्ते जैसे आदमी की कथा (कुईचगी मीच कौथा) इस सन्दर्भ में उद्धृत की जा सकती है। इस कथा के अनुसार एक व्यक्ति कुत्ते का रूप धारण कर लेता है और पानी की कूहल में बैठ जाता है। लड़कियों द्वारा उठाने पर वह विवाह-प्रस्ताव रखता है। बड़ी बहिन उस का विवाह-प्रस्ताव स्वीकार नहीं करती परन्तु छोटी मान जाती है। वह अपनी वधु को लेकर तालाब में नीचे उतर कर अपने घर चला जाता है जहां वह सुन्दर राजकुमार बन जाता है। कुछ दिनों बाद जब वह लड़की अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा प्रकट करती है तो वे फिर भूमि पर आ जाते हैं। बड़ी बहिन छोटी बहिन के गहनों को देख कर उस से ईर्ष्या करना आरम्भ कर देती है और उसे पानी में गिरा देती है तथा स्वयं उसके कपड़े पहन लेती है। वास्तविक पत्नी पक्षी बन जाती है और अपने पति को सारी बात बता देती है जिस से भेद खुल जाता है। रीछ की कथा में रीछ डॉक्टर का मित्र हो जाता है और अपनी पत्नी की चिकित्सा के उपलक्ष्य में उसे भेंट आदि देता है।

सारांश यह है कि यहां सारे प्राणियों का एक संसार है जिस में सुख दुःख को बांट कर निबाहा जाता है। यदि पशु अथवा पक्षी मनुष्य के शत्रु के रूप में भी आएं तो भी उन्हें अन्त में मित्र बना दिया जाता है।

चौथे वर्ग की कथाएं राक्षसों से सम्बन्धित हैं। इन कथाओं को निम्न उपवर्गों में बांटा जा सकता है :—

1. राक्षस के स्वरूप सम्बन्धी कथाएं।
2. राक्षस के रूप-परिवर्तन सम्बन्धी कथाएं।
3. राक्षस की विजय से सम्बन्धित कथाएं।
4. राक्षस की पराजय से सम्बन्धित कथाएं।

तथा 5. राक्षस की सूझ बूझ तथा मूर्खता से सम्बन्धित कथाएं।

राक्षसों के स्वरूप सम्बन्धी कथाओं में उन के आकार, बातचीत तथा रहन सहन पर प्रकाश पड़ता है। बहादुर लड़का तथा राक्षस की कथा में एक बूढ़ा जंगल में शिकार करने के लिए गया। उसे कोई पशु-पक्षी नहीं मिला और वहीं रात हो गई। एक गुफा में उसे प्रकाश दिखाई दिया। वहां जाने पर पता चला कि यह राक्षस का घर था। राक्षस एक व्यक्ति के रूप में चूल्हे के पास बैठा था उसने बूढ़े की आवभगत की और रात को उसे खा गया। बूढ़े की पत्नी ने दूसरे दिन अपने लड़के को उसे ढूंढने के लिए भेजा। वह उसी गुफा में अपने पिता की बन्दूक पा कर समझ गया कि राक्षस

उसके पिता को खा गया है। उसने राक्षस को मल्लयुद्ध के लिए ललकारा। मल्लयुद्ध करके उसने राक्षस को संक्षिप्त बनाया और एक बैग में बन्द करके रख लिया। घर जाने पर उसने बैग को एक कील से लटका दिया और अपनी माता को उसे न देखने के लिए कहा। माता ने उसे खोला तो मोहित हो गई। राक्षस के कहने पर उसने अपने लड़के को शेरनी, रीछ और बाघिन का दूध लाने के लिए भेजा। अन्त में लड़के ने एक बड़ा राक्षस ला कर उस छोटे राक्षस तथा माता को उसके द्वारा मरवा दिया।

'बूढ़ा तथा बूढ़ी की कथा' में एक राक्षस सब जंगली जानवरों को तीन दिन तक अपने मुंह में छुपा कर उन की रक्षा करता है। 'राक्षसी रानी की कथा' में राक्षसी अति सुन्दर स्त्री के रूप में आती है और राजकुमार के साथ विवाह कर लेती है। 'भाई बहिन की कथा' में राक्षस के आने पर घर के सारे बर्तन नाचना आरम्भ कर देते हैं परन्तु जिस बर्तन के नीचे नायक छुपा है, वह नहीं नाचता। राक्षस अपनी पत्नी को बताता है कि उस का प्राण-पक्षी एक वृक्ष पर एक द्वीप में रहता है। राजा तथा राक्षस की कथा में राक्षस एक पण्डित के रूप में आता है और नि:सन्तान राजा को एक फल दे जाता है जिस से उसके यहां चार बच्चे उत्पन्न होते हैं। राजा फल लेते समय राक्षस को वचन देता है कि वह एक लड़का उसे दे देगा परन्तु बाद में झूठ कह कर छूटना चाहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किन्नर लोक कथाओं में राक्षस का स्वरूप बहुत स्पष्ट है और वह भयानक रूप में प्रस्तुत होता है। राक्षसों के निवास स्थान साधारण-तया गुफायें दिखाई गई हैं।

राक्षस तथा राक्षसियां प्राय: रूप परिवर्तन करके ही मनुष्यों के सम्मुख आते हैं। इन कथाओं के अनुसार राक्षस शीघ्रता से अपना रूप बदल सकते हैं तथा वातावरण के अनुसार वे भयानक अथवा सुन्दर बन जाते हैं। सांप राक्षस की कथा में वह सांप के रूप में होता है और पानी पीने के समय फिर राक्षस बन जाता है। कुट्टन स्त्री की कथा में नायिका एक हिरण को नाले के पास देखती है और अपने पति को उसे मारने के लिए भेजती है। वह हिरण राक्षस होता है और उस बूढ़े को खा जाता है, बाद में उसका लड़का उससे बदला लेता है। एक अन्य लोक-कथा में राक्षस याक के रूप में आता है और सब लोगों को धोखा देता है। अधिकांश कथाओं में राक्षसियों का सुन्दर होना बताया गया है। 'सौद तथा सौदनिग' की कथा में सौदनिग राक्षस के घर से आग मंगवाती है। वह आग के लिए यह शर्त रखता है कि उसे प्रतिदिन रोटी दी जाया करेगी। कुछ दिन सौदनिग अपने वचन को अपनी-रोटी राक्षस को देकर पूरा करती है। जिस दिन सौदनिग उसे रोटी न दे वह कव्वा बन कर उसे चोंच मारता था। बाद में भेद खुल जाता है और सौद (साधु) राक्षस को मार डालता है।

इन लोक-कथाओं में राक्षस के साथ युद्ध होना साधारण घटना मानी गई है। युद्ध के पश्चात् राक्षस की हार हो जाती है और वह वश में कर लिया जाता है अथवा उसे जान से मार डाला जाता है। कुछ कथाएं ऐसी भी हैं जहां राक्षस को बुराई के लिए दण्ड नहीं मिलता और वह भाग निकलता है। 'पांच बहिने और राक्षस' की कथा में राक्षस बारी बारी से चार बहिनों को खा जाता है। छोटी बहिन उसके चंगुल से भाग जाती है। वह उसका पीछा करता है परन्तु वह उस के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती

जाती है। अन्त में वह अपने घर लौट जाता है। हिरन राजकुमारों की कथा में भी राक्षसी का रानी बनना बताया गया है। 'सात राजाओं की कथा' में राजाओं की राक्षस से भेंट होती है और यहां वह कैदी बना लिया जाता है। राक्षस पर विजयों से सम्बन्धित कथाओं की यह विशेषता है कि युद्ध में मनुष्य से राक्षस विजय प्राप्त करते हुए नहीं बताया गया है बल्कि नायक अथवा नायिका का ध्यान राक्षस के क्रिया-कलापों की ओर से हटा दिया गया है अथवा अवरोध उपस्थित होने के कारण राक्षस को निराशा-युक्त स्थिति में अंकित किया गया है।

ऐसी कथाओं की संख्या बहुत अधिक है जिन में राक्षस पर नायक अथवा नायिका की विजय दिखाई गई है। 'राजा के लड़के तथा उसके मित्रों की कथा' में राक्षस के प्राण एक वृक्ष पर पिंजरे में हैं। नायक कठिनाइयों के पश्चात् पिंजरे तक पहुंचने में सफल हो जाते हैं और राक्षस को मार डालते हैं। 'एक के पीछे दूसरा' कथा में तीन भाइयों में से दो को राक्षस खा जाता है परन्तु तीसरा उसे मार डालता है। 'राक्षस और ग्वाला' कथा में ग्वाला रात को बकरियों में छुप जाता है। राक्षस को नायक नहीं मिलता। अन्त में राक्षस की मृत्यु हो जाती है। 'राजा के तीन लड़कों की कथा' में नायक कठिनाइयों का सामना करने तथा प्रजा को सुख पहुंचाने के उद्देश्य से घर से निकलते हैं। वे दूसरे राजा के देश में एक स्थान पर रात को शव का पहरा देते हैं। रात के समय वहां एक राक्षसी आती है उसे नायक मौत के घाट उतार देते हैं तथा प्रजा को राहत पहुंचाते हैं।

लटी सरजङ् और हिना डुण्डुब की कथा में भी राक्षसी रानी की हार दिखाई गई है। सारांश यह है कि लोक-मानस बुराई को पनपने नहीं देना चाहता। क्योंकि राक्षसों के कृत्य बुरे होते हैं अतः लोक-कथाओं में उन के विजय-वर्णन बहुत कम मिलते हैं।

राक्षस की सूझ बूझ तथा मूर्खता से सम्बन्धित अनेकों कहानियां इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। यद्यपि राक्षस शरीर से मोटे होते हैं परन्तु उनमें बुद्धि का अभाव रहता है। बूढ़ा तथा बूढ़ी (रुजा रङ् याङ्जे) की कथा में शलजम का पौधा उखाड़ कर वे दोनों राक्षस के घर में पहुंच जाते हैं। राक्षस रात को अपने घर में आता है परन्तु उसे बूढ़े तथा बुढ़िया का पता नहीं चलता। वह रात को सो जाता है। उसके सो जाने के पश्चात् बूढ़ा रोटियां बनाता है और कुछ रोटी तथा सब्जी राक्षस के मुंह में भी मल देता है। प्रातः जब राक्षस उठता है तो अपने मुंह को बुरा भला कहता है और समझता है कि उसने उसकी आज्ञा के बिना रात को खाना खाया है। वह अपने मुंह को इतने जोर से पीटता है कि अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। 'बान्धो रस्सी, मारो लाठी' कथा में राजा का सब से छोटा लड़का अपने घर से निकाल दिया जाता है। वह एक पत्थर पर सात रोटियां बनाता है और कहता है—सातों को खा लूं। पत्थर के नीचे एक राक्षसी रहती है जिस के सात बच्चे थे। राक्षसी समझती है कि उसके बच्चों को खाने के लिए कहता होगा। वह बाहर निकल कर राजकुमार को एक पतीला देती है जो स्वयं भोजन बनाता था। बाद में इस राक्षसी को डरा धमका कर राजकुमार अमीर हो जाता है और राक्षस के द्वारा दी गई जादुई वस्तुओं से अपना निर्वाह करता है। अनेक

कथाओं में राक्षस को धोखे में डाल कर ढांक से नीचे गिरा दिया गया बताया गया है। 'वीर बालक तथा राक्षस' कथा में नायक राक्षस को आग के पास ले जाता है तथा धोखे से धक्का दे कर मार देता है।

राजा के लड़के तथा उसके मित्रों की कथा में राक्षस की पत्नी उससे पूछती है कि उसकी आत्मा कहां रहती है। वह भोलेपन से सारा भेद उसे बता देता है और मारा जाता है। इस प्रकार की कथाओं में राक्षसों को उन की अधिकृत पत्नियां धोखा देती रहती हैं। यह धोखा अधिकांशतः राक्षसों की पत्नियां आदि देती हैं। 'गूंगा तथा राक्षस' कथा में गूंगा दही फैंक कर यह बताता है कि यह उस का थूक था। राक्षस इस डर से ही भाग जाता है कि उसके शत्रु में न जाने कितनी शक्ति है। राक्षसों की ये डर जाने की आदतें लोक-कथाओं को रोचक बनाती हैं। राक्षस-पत्नियां नायकों को छुपा लेती हैं और झूठी बातें बता कर उनकी रक्षा करती हैं। इस वर्ग की कथाओं की यह विशेषता है कि अधिकांश कथाओं में राक्षस के आने पर घर के बर्तन नाचना आरम्भ कर देते हैं, केवल वही बर्तन नृत्य करता हुआ नहीं बताया जाता जिस के नीचे कोई व्यक्ति छुपा कर रखा गया हो। राक्षसों के प्राण तो अन्य स्थानों पर ही रहते बताए जाते हैं परन्तु फिर भी उन में डर कर रहने की आदत होती है। कुछ कथाओं में यथा, 'शालिक राजा तथा गीदड़' तथा 'राक्षस और लड़के की कथा' में राक्षसों को बहुत डरपोक तथा मूर्ख बताया गया है। लोक-कथाओं में यह प्रचलित बात है कि राक्षसों को समझाने बुझाने का यत्न किया जाता है परन्तु वे परीक्षा में डाले बिना लोगों के उप-देशों को नहीं मानते। हिन्दी-क्षेत्रों में भी लोक-कथाओं की यह प्रवृत्ति इस लोक-साहित्यिक परम्परा के अनुकूल है।

किन्नर-क्षेत्रीय लोक कथाओं का अन्तिम वर्ग नैतिक कथाओं का है। इस वर्ग को दो उप भागों में बांटा जा सकता है—

1—उपदेश सम्बन्धी।

2—निर्णयात्मक।

प्रथम उप-वर्ग की कथाओं के मुख्य प्रकार ये हैं :—

(1) मूर्खता का दण्ड।
(2) बुराई का फल।
(3) चतुराई का इनाम।
(4) अन्य लोगों द्वारा मार्गदर्शन।

'हरामी की कथा' में एक हरामी व्यक्ति के साथ अन्य भी मिल जाते हैं तथा मुफ्त की रोटी खाना आरम्भ करते हैं। परन्तु जब उनकी परीक्षा होनी आरम्भ होती है तो वे सब अपने अपने घरों को दौड़ते हैं। 'कैंथ के वृक्ष का आदमी' कथा में एक कुट्टन स्त्री फलों के वृक्ष से एक लड़के को फुसला कर ले जाती है परन्तु वह खल्टे से रास्ते से ही भाग जाता था जिस से कुटन को बहुत धोखा खाना पड़ता था। अन्त में वह उस लड़के को घर पहुंचा देती है परन्तु वह धोखे से उसकी लड़की को उबलती हुई तेल की कड़ाही में डाल देता है। विश्वासपात्र मेमने को इस लिए काट दिया गया कि वह मूर्खतावश कण्ढे से अपने मालिकों के पास आ गया था। 'नकल करने वाला

बूढ़ा तथा बुढ़िया' कथा में एक बूढ़ा अपनी तीन लड़कियों के विवाह क्रमशः शेर, भालू तथा गिद्ध से करता है। तीनों जामाता अपने सास-ससुर को खाने पीने की वस्तुएं देते हैं और उनके चले जाने पर बूढ़ा उनकी नकल करता है। गिद्ध उन्हें अपने पंखों पर आकाश की सैर कराता है परन्तु उसके चले जाने पर बूढ़ा अपनी पीठ पर सूप बन्धवाता है और अपने जामाता की भांति बुढ़िया को भी पंखों पर बिठाता है दोनों ढांक से गिर जाते हैं और मर जाते हैं। 'शेर तथा बछड़े की मित्रता' सम्बन्धी कथा में बछड़े की मूर्खता के कारण उसकी जान चली जाती है।

बुराई का फल सदैव बुरा होता है। चार भाई अपने छोटे भाई को हानि पहुंचाना चाहते हैं। परन्तु वह अपनी चतुराई से उन्हें नदी से सोना लाने के लिए भेजता है, जिसके कारण वे नदी में छलांग लगा कर मर जाते हैं। कासूराजस अपने भानजा को मरवाना चाहता था परन्तु नारायण ने उसे बुराई का दण्ड दिया। लड़की और खड्ड् तथा कुट्टन की कथाओं में भी बुराइयों का परिणाम बुरा ही निकला है और अनिष्ट चाहने वालों को परिणाम भुगतना पड़ा है।

चतुराई के कारण संसार के सारे कार्य सफल हो जाते हैं। चकोर तथा लोमड़ी की कथा में चकोर लोमड़ी को मोटा होने की सूचना देना चाहता था और लोमड़ी भी इस बात को स्वीकार करती थी कि खाना खा कर चकोर मोटा होता चला जा रहा है, ऐसा करने में उसका उद्देश्य उसे खाने का था परन्तु वह पहले ही भाग गया। चतुराई वाली कथाओं में लोमड़ियों की सब कथाएं आ जाती हैं क्योंकि लोमड़ी को किन्नर-कथाओं में बहुत समझदार जानवर बताया गया है। राक्षसों को मूर्ख बनाना भी चतुराई का कार्य है अतः सभी नायकों को, जिन्होंने सहनशीलता एवं सूझ बूझ से काम लिया है, उसका लाभ प्राप्त हुआ है।

उपदेश सम्बन्धी कथाओं का एक उपभाग अन्य व्यक्तियों (प्राणियों) द्वारा मार्ग दर्शन भी है। राक्षसों से सम्बन्धित कथाओं में इस विधा का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। राक्षस को मारने के तरीकों के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों द्वारा दिए गए सुझाव कथाओं के रोचक अभिप्राय हैं पाण्डवों की कथा में भी एक चिड़िया कुन्ती को सुझाव देती है कि वह कच्चे घड़े में नाले की घास लगा कर पानी भरे। लाती सेरजङ् तथा हिना तोन्दुक की कथा में भी एक चिड़िया ने लाती सेरजङ् को पानी लाने के बर्तन के छिद में अपने बाल लगाने का सुझाव दिया था। चिनचिन गो घोड़ा तथा जादुई मेमने ने भी अपने कृपापात्रों को सुझाव दिया था कि वे उन के मांस को खाएं नहीं बल्कि जमीन में गाड़ दें। बाद में वहां वृक्षादि उग गए थे।

निर्णयात्मक कथाओं के निम्न उपभेद हो सकते हैं :—

1. कारण निरूपक।
2. विविध।

कारण-निरूपक कथाओं में किसी बात का कारण बताया जाता है। 'कुईचगी मीच' कथा में एक बहिन दूसरी को ईर्ष्यावश नाले में धकेल देती है और स्वयं उसके कपड़े पहन कर उसका स्थान ले लेती है। बाद में वास्तविक पत्नी अपनी बहिन का भेद एक चिड़िया बन कर खोल देती है तथा अपने पति को बताती है कि वह उसे सात

दिन तक कच्चे घड़े में बन्द रखे जिससे वह फिर स्त्री बन जाएगी। पति ऐसा ही करता है परन्तु छः दिन बाद ही उसे घड़े से निकाल देता है जिसके कारण हमारी कनिष्ठा उंगली छोटी है। इस कहानी में एक उंगली के छोटा होने का कारण बताया गया है अतः यह कारण निरूपक कहानी है।

लोमड़ी तथा कबूतर की कथा में लोमड़ी को धोखा दे कर कबूतर उड़ गया। बाद में वह उसके घोंसले में गई और क्रोध के मारे उस की बीठ को खाने लगी। उसे उसकी बीठ भी स्वादिष्ट प्रतीत हुई अतः तभी से वह कबूतरों को ढूंढती फिरती है। इस कथा में लोमड़ी के द्वारा कबूतरों को ढूंढने का कारण प्रस्तुत किया गया है।

इस वर्ग के दूसरे उपभाग में हास्य-कथाओं को भी रखा जा सकता है। कुट्टन की दुर्दशा, दो चोर, पांच चोर, गूंगा भाई, लाटाच रङ् साराचू कोथा आदि ऐसी कथाएं हैं जिनमें हास्य की पुट अधिक है। यथा, दो चोरों की कथा में बताया गया है कि एक स्थान पर विवाह के अवसर पर दो चोर किसी व्यक्ति के घर में घुस गए। दोनों ने निर्णय किया कि बारी बारी वे दुसरो (चिमनी) से निचले कमरे में उतरेंगे और मिठाई खा चुकने के पश्चात् दूसरे को संकेत करेंगे जिससे वह ऊपर से रस्से को खींच ले। एक ने दूसरे को नीचे भेज दिया और संकेत की प्रतीक्षा करने लगा। बाद में पहला बाहर आ गया। जब दूसरा व्यक्ति कमरे में मिठाई खा चुका तो उसने रस्से को हिलाया परन्तु ऊपर वाले को शरारत सूझी। उसने शोर मचाना आरम्भ कर दिया और स्वयं भाग गया। घर के लोग उठ गए और कमरे के अन्दर जाने का यत्न करने लगे परन्तु किसी की हिम्मत नहीं होती थी। उधर चोर का डर के मारे बुरा हाल था। अन्त में एक लामा ने अन्दर जाना स्वीकार किया। ज्यों ही उसने दरवाजा खोला, चोर ने अन्दर रखी हुई आटे की बोरी उस पर मार दी, जिससे वह भूरा हो कर बाहर भागा। लोगों ने लामा को ही चोर समझ कर खूब पीटा और असली चोर भाग गया। यह कथा भारत के अन्य भागों में भी प्रचलित हैं। व्रज में इसका पर्याप्त प्रचलन है तथा अन्य पहाड़ी भागों में भी इसकी यात्रा प्राचीन काल से ले कर हुई है।

'बुद्धि, ओकलू मोलङ्' में एक चपड़ासी एक ही वस्तु को भली प्रकार जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से छः बार देखने के लिए जाता है परन्तु वजीर उसे एक ही बार देख कर सारी बात को समझ लेता है।

किन्नर लोक-कथाओं के उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि ऐसी बहुत कम कथाएं हैं जो केवल इसी क्षेत्र में प्रचलित हैं तथा दूसरे भागों से प्राप्त नहीं होतीं। इसका कारण यही है कि अति प्राचीन काल से लोक-कथाओं ने पूर्व से पश्चिम तक बहुत लम्बी यात्राएं की हैं।

इस क्षेत्र में प्रचलित कथाओं के अनेक रूपान्तर मिलते हैं, इस सभी कथाओं को इकट्ठा करने के लिए धैर्य व लग्न की आवश्यकता है।

किन्नर लोक कथाओं में अभिप्राय—

स्टिथ थाम्पसन द्वारा रचित 'अभिप्राय अनुक्रमणिका' के अनुसार—

क्रम संख्या	मुख्य अभिप्राय	अभिप्राय संख्या	कथाओं की क्रम संख्या जिन में यह अभिप्राय है	परिशिष्ट
1	2	3	4	5
1.	राक्षसी अधिकृत को खाने के लिए दांत तेज करती है।	G 83.1	35,76,36,50	4
2.	मृत राक्षस के शरीर से जानवर।	A 1724.	52,53	2
3.	राक्षसों के देश की यात्रा।	F 122.	32,63	2
4.	राजकुमारी की राक्षस से रक्षा।	R 111.1.4	56,80	2
5.	राक्षस के सुन्दर महल	G 111.	31,56,63,62,58	5
6.	राक्षस पशु के रूप में।	F 531.1.8	63,86,98,94,104	5
7.	राक्षसी पालतु पशु के रूप में।	G 211.1.1	102,35,68	3
8.	राक्षसी बकरे के रूप में।	G 211.1.5	31,23	2
9.	रूप परिवर्तन : पक्षी से मनुष्य।	D 350.	100.102	2
10.	मनुष्य का स्नाता स्त्री से प्रेम में पड़ना।	T 16.	134,	1
11.	भौतिक और दैविक जीवों के परस्पर विवाह।	T 111.	119	1
12.	गले की जंजीर बदलने से रूप परिवर्तन।	D 536.	111	1
13.	सुन्दरी जिसकी आवाज से मनुष्य पत्थर हो जाते हैं।	D 581.1	107	1
14.	जादुई सुई सिर पर लगाने से रूप परिवर्तन।	D 582.	37	1
15.	अप्सरा का रूप परिवर्तन।	F 234.0.1	66,76,79	3
16.	राक्षस से जादुई वस्तुओं का प्राप्त होना।	D 812.3	70,78,83	3
17.	हार को उतारने पर जीवित होना (रात के समय)	E 155.3	24	1

18.	मृत पत्नी का सौत (सहपत्नी) के द्वारा बच्चों को तंग करने पर बुरा भला कहने के लिए जीवित होना।	E 221.2	170 से 190	21
19.	मृत माता की द्वेषपूर्ण वापसी।	E 222	170 से 190	21
20.	गीदड़ की भाषा।	B 215.3	1,2,3,4,5,7,8,12	13
21.	राक्षस गीदड़ के रूप में	B 16.2.1	4,56,14,16,17,49,39	2
22.	राक्षसी रानी राजा को दूसरी रानियां निकाल देने को कहती है।	S 413.1	56,91,98,109,111	5
23.	मृत माता का उपदेश।	E 323.4	170 से 190	21
24.	राजकुमार राक्षस को उसे न खाने के लिए कहता है।	K 567.1	78,105,29	21
25.	सात राजकुमार सात राजकुमारियों की तलाश में।	T 69.1.2	58,129,161	21
26.	सात बहिनें।	P 252.3	58,120	2
27.	तीन बहिनें।	P 252.2	79	1
28.	एक बहिन, दो भाई।	P 253.0.2	34,91,118	3
29.	सौतेली मां।	P 282.	170 से 190	21
30.	एक दिन में बहुत अधिक जमीन में हल जोतना।	H 1103.2	28,35	2
31.	जादुई घोड़े पर उड़ान।	B 184.1.6	20,51	2
32.	बोलने वाली बकरी।	B 211.1.2	35,51,31,23	4
33.	बात करने वाला घोड़ा।	B 211.1.3	84	1
34.	बात करने वाली लोमड़ी।	B 211.2.5	1,2,3,4,5	5
35.	बात करने वाला बन्दर।	B 211.2.10	19,18	2
36.	बात करने वाली चिड़िया।	B 211.3.7	100,102	2
37.	बात करने वाला कव्वा।	B 211.3.9	127	1
38.	पक्षियों की बातचीत से भेद का पता चलना।	N 451.	84,55,50	3
39.	राक्षस सहायक के रूप में।	N 812.	29,78,83	3
40.	बुढ़िया सहायक के रूप में।	N 825.3	56,18,32,66	4
41.	राजकुमार राजकुमारी को सन्दूक से बाहर आते हुए देखता है।	N 712.	60,92,110	3

42.	साधु सहायक के रूप में।	N 848.	98,121	2
43.	भविष्य वक्ता घोड़ा।	B 149.1	69,84	2
44.	लोमड़ी सन्देश वाहक।	B 291.3.1	1,2,3,7,8,19	6
45.	सहायक बाघ।	B 435.3	56,25,86	3
46.	सहायक रीछ।	B 435.4	21	1
47.	सहायक गीदड़।	B 435.2	1,2,3,4,8,12,14 16,17,49,39	11
48.	झूठी जूएं निकालने के बहाने धोखा।	K 874	29	1
49.	राक्षसों का विवाह।	E 495.1	32,18,98	3
50.	शरीर के अवयवों से जीवित होना।	E 35.	84,113,34	3
51.	बादशाह की वधु के लिए तलाश।	H 1381.3.1.1	4,9	2
52.	रस्सा काटा गया और अधिकृत को गिराया गया।	K 963	227	1
53.	मृत माता से उपदेश।	E 323.4	170 से 190	22
54.	बाह्य आत्मा को जलाने से राक्षस का वध।	G 512.5	32,18,98,32	4
55.	नेता को छुपाया गया और राक्षस को धोखा (उसकी पत्नी द्वारा) जब वह कहता है कि मनुष्य की गंध आ रही है।	G 532.	56,66,57,78	4
56.	अधिकृत स्त्री राक्षस के घर में नेता की मदद करती है।	G 535.	56,66,57,112	4
57.	धोखा देने वाले बड़े भाई।	K 2211.0.1	57,112	4
58.	शक्तिशाली व्यक्ति शेरनी का दूध लाने भेजा गया।	F 615.2.1	60,35,32	3
59.	जीवन-प्रतीक दूध का लाल होना।	E 761.6 2	72	1
60.	बच्चे राक्षस के घर में घूमते हैं।	G 401	98	
61.	ईर्ष्यालू सह-पत्नी सौत के बच्चों को मरवाना चाहती है।	S 322.3.1	72,170 से 190 तक	22

62.	सबसे छोटा भाई ही बहिन की सहायता करता है।	L 32.	85,55,37,79	4
63.	भूली बहिन की तलाश।	H 1385.6	85,55,37,79,100	5
64.	शेरनी (शेर) के दूध की तलाश।	H 1361.	60,35,32	3
65.	किसी विशेष जानवर का मांस ही केवल दवाई।	K 961.	60,35,32,27,56,	5
66.	चित्र के वास्तविक रूप की तलाश।	H 1213.1.2	226,222,229	3
67.	भाइयों का जान-बूझकर चेतावनी वाले खतरों को ढूंढना।	Z 211.	113	1
68.	राक्षसों का प्रार्थना पर सहायक होना।	H 1233.4.4	111,170 से 190	22
69.	जानवरों का मनुष्य के कठिन कार्यों को पूरा करना।	B 571.	86,87,92,121	4
70.	विजयी सब से छोटा पुत्र।	L 10.	91,92,85,62	4
71.	शेरनी के बच्चे शेर का दूध नायक को देते हैं।	H 1361.0.1	60,35,32,27	4
72.	बाघ के दूध की खोज।	H 1361.1	60,35,32,27	4
73.	भालू के दूध की खोज।	H 1361.2	60,35,32	3
74.	गिद्ध से विवाह।	B 602.1	59	1
75.	गिद्ध द्वारा ले जाया जाना।	J 657.2	59	1
76.	अण्डे में आत्मा।	E 711.1	29,63,18	3
77.	भालू से विवाह।	B 601.1	59	1
78.	चूहे से विवाह।	B 601.3.1	41,40	2
79.	कुत्ते के रूप के मनुष्य से विवाह।	B 641.1	102	1
80.	हार में आत्मा।	E 711.4	24,88,109	3
81.	पक्षियों के पिंजरे में आत्मा।	E 711.15	116,63,56,52	4
82.	पक्षी में अलग आत्मा।	E 715.1	52,31	2
83.	राक्षस (भूत) साधु के रूप में	G 303.3.1.8.2	18,98	2
84.	सूर्य की चोरी।	A 721.1	82	1

85.	किसी सूर्य का न होना।	A 711.4	82	1
86.	सूर्य का सन्दूक में रखा जाना।	A 721.0.3	82	1
87.	सूर्य बहिन और चान्द भाई।	A 736.1.1	82	1
88.	राक्षस को मनुष्य का लड़ाई में हराना।	G 303.9.6.1.1,	56,121	2
89.	धोखेबाज ले जाया जाने के लिए सन्दूक में छुपता है।	K 1892.1.1	113	1
90.	देवताओं में बहुपतित्व।	A 164.3	251,252	2
91.	देवता का समुद्र के झाग से उत्पन्न होना।	A 114.1	208,209	2
92.	सच्ची वधु झूठी वधु के द्वारा पानी में धकेल दी गई।	K 1911.2.2	100,102	2
93.	डूबे हुए व्यक्ति का पक्षी के रूप में पुनर्जन्म।	E 613.0.4	100,102	2
94.	कव्वा सन्देश वाहक के रूप में।	B 291.1.2	84	1
95.	छोटे पत्तों का बड़ा हो जाना।	D 489.1	84	1
96.	वस्तु का रूप परिवर्तन।	D 480.	84	1
97.	बन्दर की मित्रता।	A 2493.14	85	1
98.	शक्तिशाली मनुष्य का पहाड़ी हिलाना।	F 626.1	85	1
99.	शक्तिशाली उठाने वाला।	F 624.	85	1
100.	खोखले वृक्ष में छुपा कर पकड़ना।	K 763.	85	1
101.	सहायक चिड़िया।	B 451.4	85	1
102.	कुट्टन सौतेली मां।	G 205	87	1
103.	जूते से पहचान।	H 36.1.1	87,88	2
104.	असाधारण जूता	F 823	88,87	2
105.	बात करने वाला रीछ।	B 211.2.3	89	1
106.	जादुई वस्तुएं।	D 812.4	89	1
107.	प्रजा की सहायता के लिए व्यक्तिगत कठिनाइयों में पड़ना।	J 221.2	91	1

108.	शक्तिशाली मनुष्य राक्षस को मारता है।	F 628.1.1	91	1
109.	राक्षस का भवन बनाना।	G 303.9.1.13	91	1
110.	साधु से जादुई वस्तुएं प्राप्त करना।	D 812.1	91	1
111.	खाल जलाने से जादुई प्रभाव सदा के लिए समाप्त करना।	D 932	92	1
112.	सात बहिनें।	P 252.3	96	1
113.	कभी दोबारा शादी न करने की प्रतिज्ञा।	M 135	170 से 190	21
114.	राक्षसी सुन्दरी के रूप में मनुष्य को बहकाती है।	G 303.1.12.2	170 से 190	21
115.	पत्नी का पति को खाना।	G 11.6.4	170 से 190	21
116.	बच्चा भविष्यवक्ता के रूप में।	M 301.20	170 से 190	21
117.	राक्षसी खून चूसती है।	G 262.1	170 से 190	21
118.	भूली हुई बहिन की खोज।	H 1385.6	170 से 190	21
119.	दावत का धोखे से भरपूर निमन्त्रण।	J 1577	170 से 190	21

कुछ नये 'अभिप्राय' जिन को मोटिफ इन्डैक्स के अनुसार क्रम-संख्या दी गई है :—

क्रम संख्या	मुख्य अभिप्राय	अभिप्राय संख्या	कथाओं की क्रम संख्या जिन में यह अभिप्राय है।	परिशिष्ट
1	2	3	4	5
1.	मृत माँ का तालाब से आधी स्त्री और आधी मछली के रूप में बहिष्कृत बच्चों की सहायता के लिए प्रकट होना।	E 323.2.1	170 से 190	21
2.	कुट्टन का सहपत्नी की लड़की को मेमना चराने के लिए भेजना।	G 204.1	75	1
3.	कुट्टन की लड़की।	G 206.1	75,35,37	3
4.	राक्षसी पत्नी सहपत्नी के लड़के तथा लड़की का माँस बीमारी से ठीक होने के लिए मांगती है।	K 961.2.3	170 से 190	21
5.	मृत माँ राक्षसी के लिए बच्चों के स्थान पर मछली का कलेजा देती है।	E 222.4	170 से 190	21

6.	मृत मामा का चट्टान फाड़ कर प्रकट होना।	E 229.2	170 से 190	21
7.	मृत मामा गरुड़ के रूप में लौटता है।	E 229.3	170, 171 186 व 190	4
8.	पांच बादशाह।	P 17.5.1.	79,92	2
9.	लड़के के सिर, बाजू से आग का प्रकट होना।	D 1645.10.1.	170 से 190	21
10.	लड़की के शरीर से देवता की सुनहरी मूर्ति प्रकट होना।	D 1645.10.2.	170,178, 188	3
11.	कुट्टन लड़की को छेद वाला बर्तन जोहड़ से पानी लाने के लिए देकर धोखा देती है।	G 299.2.1	170 से 189	20
12.	मृत माता रोते हुए बच्चों को सुला कर वापिस जाती है।	E 323.2.3	170 से 190	21
13.	मृत पत्नी आधा पक्षी तथा आधी स्त्री के रूप में वापिस आती है।	E 322.4.1	170 से 190	21
14.	पिता बजते हुए तूम्बे को हवा में छोड़ कर लड़कियों को धोखा देकर चला जाता है।	S 338.1.	58,120	2
15.	हड्डियों के हार पहन कर भाई की खोज।	H 1385.8.1.	170 से 190	21
16.	राक्षसी छाती पर तीर से मार दिया गया।	G 512.1.1.2.	185 से 190	6
17.	राक्षसी छोस्तेन के नीचे दबा दी गई।	G 512.1.2.2.	170 से 187	18
18.	लाल देवता का चट्टान से प्रकट होना।	A 125.2.1.	175,176,178 189,190	5
19.	देवता के हजार हिस्से तथा हजार आँखें।	A 123.3.1.4. 1.2.	53,55	2
20.	हजार देवता स्रष्टा के हजार हाथों से उत्पन्न हुए।	A 112.3.1	53,55	2
21.	देवता बदले में दो कलेजे देता है।	A 185.2.4	175,176, 188,190	4
22.	भाई बहिन के लिए अपना जीवन प्रस्तुत करता है।	W 28.2.1	170 से 190	21

23.	बहिन स्वयं को पहले कटाने के लिए अपने माँस को मीठा बताकर प्रस्तुत करती है।	W 28.2.2	170 से 190	21
24.	राक्षसी को छाती के आगे शीशा रख कर मारना।	G 512.1.1.3	188,187	2
25.	राक्षसी की पीठ में तीर लगा कर मारा गया।	G 512.1.1.4	185,184	2
26.	बादशाह हाथी के द्वारा हार पहना कर छांटा गया।	H 171.1.2	170 से 186, 188	18
27.	हाथी बादशाह को छांटता है और जिस वृक्ष पर राजा बैठा है उसे हार पहना देता है।	H 171.1.3	172,173, 174,182,183	5
28.	धोखा देने वाली पत्नी सौत के बच्चों के कलेजे दवाई के रूप में बताने के लिए डाक्टरों को रिश्वत देती है।	K 2213.0.2	165,176,185, 177,178,179	6
29.	बूढ़ी स्त्री लड़के को बेच देती है जो उस का नहीं था।	K 282.0.1	170 से 185	16
30.	मृत पत्नी पति को दूसरी शादी के लिए बुरा भला कहने के लिए वापिस आती है।	E 221.2.3	170 से 184	15
31.	राक्षसी की कब्र का समय समय पर हिलना।	G 512.1.2.3	187,188,190 181,183	5
32.	चतुर बहिन छेद वाले बर्तन में बाल लगा कर भाई के पीने के लिए पानी बहना बन्द करती है।	213.8.1	175,180, 184	3
33.	रानी स्वयं साधु बनती है और लड़कों को कत्ल करके माँस रानी की बीमारी पर देने के लिए कहती है।	D 11.1.3	182,188,186, 184,183,176	6
34.	मृत मां सोते हुए बच्चों पर जाते समय पानी छिड़क कर जगाती है।	E 323.4.1	181,183,178, 190	4
35.	स्वर्गीय मां सोते हुए बच्चों पर रेत फैंक कर जाते समय जगाती है।	E 323.4.2	179, 174	2
36.	स्वर्गीय मां जाते समय पत्थरों की आवाज करके सोए हुए बच्चों को जगाती है।	E 323.4.3	170 से 188	19

37. बच्चों के सिरों पर सुनहरी तथा चांदी की किरणें।	D 1645.10.3	173,174, 179,183	4
38. सूखे डण्डे से वृक्ष बनना।	D 2145.2.2.3	173,179	2
39. मृत मां सांप के रूप में अपने बच्चों के सिरों में जूएं देखती है।	E 323.4.4	171 से 185	16
40. तोता उस वृक्ष को हार पहनाता है जहां राजा चुना जाने वाला लड़का बैठा हुआ था।	H 171.2.1	170	1
41. फर्श पर पग-चिन्हों से पहचान।	H 51.2	56,69	2
42. राक्षसी ऊन कातती हुई सुन्दरी का रूप धारण करती है।	F 402.1.4.2	170 से 190	21
43. राक्षसी बादशाह को धोखा देने के लिए सुन्दरी परी का रूप धारण करती है।	F 402.1.4.0.1	171,174, 176	3
44. राक्षसी संकेतों तथा पत्थरों से ध्यान आकर्षित करती है।	G 653.0.1	171,172	2
45. दण्ड—राक्षसी की हड्डियां पीस कर मूर्ति बनाना।	Q 469.3.1	188,183	2
46. दण्ड—मृत राक्षसी की मूर्ति को लोहे की जंजीरों से बांधना और जमीन के नीचे दबाना।	Q 469.3.2	188,183	2
47. राक्षसी की कब्र के पास की भूमि कांपती है और कभी कभी प्रकाश होता है।	E 410.2	188,183	2
48. लाल मिट्टी का सिरहाने के रूप में बदलना।	D 452.1.9.1	172,174	2
49. राक्षस जंगली बकरे के रूप में चांदी के सींगों तथा टांगों से युक्त।	G 303.3.3.2.11	60	1
50. गिद्ध का नायक को बचाने के लिए गांव वालों से कपड़े इकट्ठे करना।	B 542.1.4	32	1
51. गिद्ध नायक को बचाने के लिए चोटी से शेर का बच्चा/मेमना फेंकता है।	B 542.1.5	32	1
52. फरिश्ता भौतिक (नश्वर) प्राणी के शरीर पर स्वप्नावस्था में किरणें छोड़ता है।	V 235.0.3	53,54,55	3

53.	राक्षसी याक के रूप में।	G 303.3.3.2. 0.1	35,56	2
54.	तीन मार्गों में से केवल बीच का मार्ग स्वीकार करना।	C 614.0.1	68,76	2
55.	फलों से युक्त वृक्ष का वर्णित मार्ग पर दिखाई देना।	C 917.2	68,76	2
56.	वर्जन को तोड़ने वाले व्यक्ति की वृक्ष से गिरकर तत्काल मृत्यु।	C 921.0.1	68,76	2
57.	मेंढक का मेमने के रूप में परिवर्तन।	D 440.0.1	71,68,76	3
58.	मेमने भाई का बहिन का सहायक होना।	D 311.2	68,76	2
59.	भविष्यवक्ता मेमना।	B 140.0.1	68,51	2
60.	सहायक मेमना।	B 412.0.1	75,68,51, 26,4	5
61.	गीदड़ बादशाह को अपनी लड़की चरवाहे के साथ ब्याह करने के लिए मनवाता है।	B 582.1.1.2	4,9	2
62.	मेमना लड़की को उसकी मृत्यु के पश्चात् शिकार न खाने के लिए कहता है।	B 560.0.1	68,75,26	3
63.	मेमना लड़की को अपना शिकार जमीन में गाड़ने के लिए कहता है।	B 560.0.2	68,75,26	3
64.	गीदड़ कुट्टन के पास उसकी लड़की का मांस मनुष्य की सहायता के परिणाम-स्वरूप ले जाती है।	B 570.1	2,7,14	3
65.	मेंढक के रोने से जादुई नदी का बन जाना।	D 915.1.0.1	45,94	2
66.	जादुई मेंढक के हंसने से आग जलती है।	D 1566.1.8	94	1
67.	दो रास्तों पर चलने से टांगों का (वर्जन को तोड़ने के कारण) फट जाना।	C 929.7.	68,76	2
68.	शक्तिशाली मनुष्य को रीछ को दूहने के लिए भेजा गया।	F 615.2.1.0.1	60,35,32	3
69.	मेमने के जादुई सींग से भोजन प्राप्त किया।	D 1472.1.0.1	68,75,26	3
70.	मेमने का जादुई सींग।	D 1011.1.1	68,75,26	3
71.	राक्षस का लुहार के पास दाँत तेज करने के लिए जाना।	G 83.2	68,63,29	3

72.	राक्षस का 5 बहिनों को बारी बारी से खाना।	G 86.2	5,96	2
73.	चूहे का लड़कियों को राक्षस के पास से भागते समय जादुई वस्तुएं ले जाने का परामर्श देना।	B 569.3	5,96	2
74.	चूहे द्वारा भोजन देने के लिए लड़कियों का कृतज्ञ होना।	B 391.5	5,95	2
75.	सोने वाले की आत्मा को चमड़ा जला देने के कारण वापिस होने से रोकना।	E 721.1.2.3.2.	102	1
76.	आदमी का सफेद पक्षी को देवता तथा काले को राक्षस मानना।	D 1825.3.2.1	54,55,56	3
77.	मनुष्य का सफेद आत्मा को देवता तथा काली आत्मा को राक्षस के रूप में देखना (अनुमान लगाना)।	D 1825.3.2.2	54,55,56	3
78.	कत्ल किए हुए राजकुमारों के सिरों का अधिकृत राजकुमार को देख कर हंसना।	E 632.4	29	1
79.	धोखा देने वाली मां विजित राक्षस से प्रेम करती है और अपने लड़के को कठिन कार्य पूरा करने के लिए दे जाती है।	S 121.2	121	1
80.	भूखी मरने वाली माताओं को सूखे कुएं में रोका जाना और उन का अपने बच्चों का मांस बांट कर खाना।	G 72.2.1	37	1
81.	बहिन का भाई को खाना।	G 73.3	35,59	2
82.	लड़के का मां को राक्षस के पास खिलाने के लिए ले जाना।	G 75.1	29,32	2
83.	राक्षस का राक्षस को खाना।	G 79.3	29,32	2
84.	राक्षसी का सुनार के पास दांत तेज करने के लिए जाना ताकि लड़के को खा सके।	G 83.2	29,32	2
85.	नायक का दियासलाई में छुपना और राक्षस को उसकी पत्नी का धोखा देना।	G 532.2	28,56, 58,63	4
86.	नायक को राक्षस-पत्नी का मक्खी बना कर छुपाना और राक्षस को धोखा देना।	G 532.3	58,123	2
87.	कुट्टन (मानव-भक्षी डायन) वृक्ष के फल खाती है और लड़के को खाने के लिए घर ले जाना चाहती है।	G 85.1	35,51	2

88. राक्षसी का भाई के साथी कुत्ते का सिर पहाड़ पर से बहिन को डराने के लिए फैंकना।	G 86.3	32,49	2
89. मानव-भक्षी कुट्टन अपनी बहिन का माँस खा कर पागल हो जाती है।	G 91.1.2	131	1
90. राक्षस का जंगल में बागीचे व महल का मालिक होना।	G 111.1	116,56	2
91. राक्षस का जंगल में शलजम के पेड़ के नीचे महल रखना।	G 111.3	70	1
92. राक्षस की लम्बी नाक।	G 124.1	29,56	2
93. कुट्टन की लड़की बिल्ली के रूप में।	G 211.1.7.1	87,	1
94. कुट्टन असाधारण रूप से खुले मुंह के साथ।	G 214.5	170,179,	2
95. कुट्टन के उल्टे पांव तथा सिर।	G 219.10	174 से 189	6
96. मनुष्य तीन मील पीछे की ओर को पैदल चलने पर डायन की शक्ति प्राप्त करता है।	G 224.8.1	80,56	2
97. पति की बहिन को जीवित जलाकर माँस खाना।	G 252.2.1	92,110, 120	3
98. राक्षस का आकार प्रकार बदला और उसे बैग में डाल लिया।	G 302.3.0.2	29,32	2
99. राक्षस रात को उन घरों में आते हैं, जहां कुत्ते नहीं होते।	G 502.5.4	18	1
100. राक्षस रात को उन घरों में आते हैं जहां माथे पर सफेद दाग वाले कुत्ते होते हैं।	G 502.5.5	49,52	2
101. लड़की तथा राक्षस के बीच यौन-सम्बन्ध।	G 302.7.1.1	66,56	2
102. लड़का जीवनदान की शर्त के कारण राक्षस का भोजन बनाना स्वीकार करता है।	M 211.10.	29	1
103. राक्षसी सुन्दर-स्त्री के रूप में अपने आप को परी कहती है।	G 303.3.1. 12.0.1.	52,55,57	3
104. राक्षसी सुन्दरी के रूप में मनुष्य से बात नहीं करना चाहती।	G 303.3.1. 12.0.2.	170,66	2
105. राक्षसी सुन्दरी के रूप में मनुष्यों द्वारा छुआ जाना वर्जित समझती है।	G 303.3.1. 12.0.3.	170,171	2
106. राक्षसी सुन्दरी के रूप में अपने सुनहरी बालों को साफ करके मनुष्यों को आकर्षित करती है।	G 303.3.1. 12.0.4.	170 से 190	21

107.	बिना चान्द व सूर्य का देश।	A 711.5.	82	1
108.	सूर्य और चान्द आसमान में एक लम्बे डण्डे से रखे गए।	A 714.2.1	82	1
109.	सूर्य और चान्द एक काले सन्दूक में राक्षसों के देश में रखे गए।	A 714.2.2	42	1
110.	सूर्य और चान्द राक्षसों के देश से एक नायक के द्वारा लाए गए।	A 714.2.3.	82	1
111.	राक्षस भगाई हुई लड़की को प्रसन्न करके सेवा करने का वचन देता है।	G 303.9.5.1.3.	91,121	2
112.	राक्षस को व्यक्ति द्वारा सेवा करने के लिए इनकार करने पर लड़ाई में हराना।	G 303.9.6.1.3.	91,121	2
113.	शैतान देवता से व्यक्ति-विशेष की आयु की अवधि पूछता है।	G 303.9.8.9.1.	121,91	2
114.	शैतान देवता से मनुष्य की आयु एक दिन कम या अधिक करने के लिए कहता है।	G 303.9.8.9.2.	121,91	2
115.	राक्षस हार के पश्चात् नायक की सेवा के लिए मान जाता है।	G 303.10.16.1	121,91	2
116.	राक्षसी अपनी सात लड़कियों के साथ।	G 303.11.5.2	220,58	2
117.	राक्षस किसी को भी अधिकृत राजकुमारों के कमरों में जाने की आज्ञा नहीं देता।	G 335.1	58,220,229	3
118.	राक्षसी का दिन के समय बकरी के रूप में होना।	G 351.4.1	35,51,23	3
119.	राक्षसी दिन में बकरी के रूप में अपने आप को कील से बांधती है।	G 351.4.3	35,51,23	3
120.	राक्षस के घर में आग भाई-बहिनों को धोखे में डालती है।	G 402.3	56,58,62	3
121.	गीदड़ का राक्षस के घर तक पथ-प्रदर्शन।	G 443	9,4	2
122.	राक्षस के जीवन-पक्षी को मारने पर राक्षस मर गया।	G 512.6.2	29	1
123.	राक्षस को उसका जीवन-वृक्ष काटने पर मारा गया।	G 512 6.3	52,63,79	3
124.	राक्षस जीवन-पक्षी के रक्षक गिद्ध की सहायता से मारा गया।	G 512.9.3	86,121,94	3
125.	राक्षस देवता के मन्दिर में कैद किया गया।	G 514.2.2	227	1
126.	राक्षस (भूत) पकड़ा गया और दोबारा गांव में न आने के वचन पर छोड़ा गया।	G 514.2.3	225	1

127. राक्षस को नायक ने धोखे से परिक्रमा कराते समय उबलती हुई कड़ाही में फैंक दिया।	G 526.1	94,94	2
128. राक्षस को नायक ने धोखे से जादुई स्तम्भ में बन्द किया।	G 526.2	98,110	2
129. राक्षस को जलती हुई आग में डाला गया।	G 526.4	124	1
130. राक्षस द्वारा अधिकृत स्त्री नायक को बर्तन के नीचे छुपाती है।	G 535.1	124,125, 142	3
131. अधिकृत स्त्री न नाचने वाले बर्तन के सम्बन्ध में झूठी बात राक्षस को बताती है।	G 535.2	147,163, 166	3
132. अधिकृत स्त्री बने स्थान पर पत्थर तथा लकड़ी रखने के पश्चात् राक्षस के कमरे से भागने का सुझाव देती है।	G 535.3	147,161	2
133. राक्षस को जादुई दानों से जंगल उपजा कर दूर रखा गया।	G 571.1	5,69,	3
134. राक्षस को जादुई नदियां बनाकर दूर रखा गया।	G 571.2	5,96	2
135. राक्षस को ऊँचे पहाड़ बना कर दूर रखा गया।	G 571.3	5,96	2
136. राक्षस को गाय के नथुनों तथा थनों में छुपने के पश्चात् दूर रखा गया।	G 571.4	96	1
137. राक्षस को हराने के पश्चात् गोबर की रोटियां दी गई।	G 510.6	96	1
138. कुट्टन को धोखा दिया गया और वह खल्टे से बहते पानी को लड़के का पेशाब समझती रही।	G 279.3	220,35	2
139. कुट्टन (डायन) थैले के पत्थरों को अधिकृत लड़के की हड्डियां समझती रही।	G 279.4	220,35,68	3
140. राक्षस को तेज कुल्हाड़े की परीक्षा के बहाने मार दिया गया।	G 510.6	121	1
141. राक्षस को जंगल से लकड़ी लाने की प्रार्थना के कारण धोखा देकर कैदी मुक्त हो गया।	G 561.1	83,76	2
142. राक्षस को बन्दर की सहायता से मारा गया।	G 512.9.5	18	1
143. राक्षस लड़के के पेशाब को आसमान का तेल समझते हैं।	G 279 5	125	1
144. तीर चलाने वाला ही राक्षस के शरीर में घुसे तीर को निकाल सकता है।	H 31.12.2	149,53, 54,55	4

145. हार को वर-उम्मीदवारों के सामने आसमान की ओर फैंकने पर वर का चुनाव।	H 35.6	55	1
146. बड़े राक्षस के जीवन-वृक्ष के रक्षक चार राक्षसों को प्रसन्न करके बड़े राक्षस की मृत्यु।	H 973.4	9	1
147. मृतक के शरीर की हड्डियों को मन्त्र से मिला दिया गया और मृतक को जीवित कर दिया गया।	E 31.1	20,167	2
148. मृतक की एक हड्डी को राक्षसों से चुरा कर पुनर्जीवन।	E 332	222	1
149. घड़े के छेद को बन्द करने के लिए पक्षी की सलाह।	H 1023.2.1.4	170 से 190	21
150. दो स्रष्टा।	A 2.3	207,208	2
151. स्रष्टा की बुलबले से उत्पत्ति।	A 27.1	207,208	2
152. देवता कैलाश में शतरंज खेलते हैं।	A 163.1.2	279	1
153. असली वधु (मृत्यु के पश्चात्) एक कुएं में वृक्ष पर गाती है।	K 1911.2.2.3	102	1
154. पक्षी के रूप में सच्ची वधु का झूठी वधु के धोखे के सम्बन्ध में सूचना देना।	K 1911.3.1.2	102	1
155. जन्म के समय बच्चों का पत्थरों के साथ बदल दिया जाना ताकि उत्तराधिकारी न हों।	K 1847.2	66	1
156. मनुष्य का कैल (कायल) के वृक्ष के रूप में परिवर्तन।	D 215.9	55	1
157. चिड़िया का लड़की के रूप में परिवर्तन।	D 354.3	1022,104	2
158. मेमने का मनुष्य बन जाना।	D 334.1		
159. हत्या की गई लड़की का पक्षी बनना तथा कच्चे घड़े में छः दिन रखे जाने के पश्चात् फिर लड़की बन जाना।	E 696.2	102,104	2
160. जादुई सुई को निकालने से पक्षी से लड़की बन जाना।	E 696.3	102,104	2
161. जादुई धागे को गर्दन से निकालने पर पक्षी से लड़की बन जाना।	E 696.4	104	1
162. आभूषणों के रूप में अवतरण।	E 649.6	69	1
163. एक व्यक्ति में दो व्यक्तियों की शक्ति।	F 610.4	54,55,56	3
164. शक्तिशाली मनुष्य की कार्य-शर्त : एक ही दिन में हजारों व्यक्तियों का खाना बना सकता है।	F 813.5	55	1

165. देवताओं का प्रतिवर्ष सर्दियों में स्वर्ग जा कर नई शक्ति प्राप्त करना। A 191.0.2 279 1

'लटी सरजङ् और हिनाडुण्डुब' की कथा को इस क्षेत्र की सर्वाधिक प्रचलित कथा कहा जा सकता है। इस के अनेक रूपान्तर हैं। प्रस्तुत अध्ययन के लिए आपस में पर्याप्त दूरी पर बसे हुए 25 गाँवों में प्रचलित कथा-रूपों को इकट्ठा किया गया और उनके अभिप्रायों का अध्ययन किया गया। यह कथा यद्यपि तिब्बती बौद्ध-धर्म ग्रंथों में वर्णित है परन्तु इस क्षेत्र के एक गाँव पाँगी के साथ सम्बन्धित है। इसका एक प्रचलित रूप संक्षेप में इस प्रकार है :—

पर्याप्त समय पहले की बात है कि पाँगी नगर में शर नाम का एक राजा रहता था। उस की रानी का नाम लेकेमा था। रानी बड़ी धर्मात्मा व ज्ञानी थी। समयानुसार उन के घर में एक लड़की व एक लड़के का जन्म हुआ। लड़की का नाम 'लटीसरजङ्' व पुत्र का नाम हिनाटन्डुब/हिनाडुण्डुब रखा गया। एक दिन रानी बीमार हो गई। राजा ने डॉक्टरों, वैद्यों व लामाओं द्वारा काफी इलाज करवाया परन्तु निराशा का सामना करना पड़ा। एक दिन रानी ने एकान्त में राजा से कहा-मैं अब अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकूंगी, परन्तु मेरी एक हार्दिक अभिलाषा है, जिसे, यदि आप वचन दें तो व्यक्त कर सकूं व आराम से मर सकूं। राजा रानी को बहुत चाहते थे। उन्होंने कहा—आप की जो भी इच्छा है, प्रसन्नता से कहें, मैं वचन देता हूं, उसे पूरा करूंगा। रानी ने कहा—मेरे ये दो बच्चे हैं आप को दूसरी शादी नहीं करनी होगी व इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचे, इन्हें यह महसूस न हो कि हमारी माता जीवित नहीं है। माता का अभाव इन्हें कदापि न खटके। राजा के वचन देते ही रानी प्रसन्नता से मूर्छित हो गई तथा उसी समय स्वर्ग सिधार गई। राजा बहुत दुःखी हुए, इसी दुःखी मन से उन्होंने रानी का क्रिया-कर्म पूरा किया।

राजा अच्छे शिकारी थे अतः स्वभावानुसार अपने कुछ नौकरों के साथ प्रतिदिन शिकार खेलने जाने लगे। जब भी वह शिकार खेलने जाते रास्ते में एक पत्थर पर एक सुन्दर स्त्री, जो सुनहरी बालों वाली थी, बैठी रहती और राजा से कभी वाणी से कभी कंकड़-पत्थर मार कर छेड़खानी करती परन्तु राजा अपनी चिन्ता में मग्न इस ओर कोई भी ध्यान नहीं देते थे। समय आया, एक दिन राजा के मन में भी पाप समा गया तथा उस ने इस स्त्री से हंस कर बात की और कहा—आप कौन हैं जो प्रतिदिन मुझे तंग करती रहती हो! मेरी रानी का कुछ दिन पूर्व देहान्त हो गया है अतः मुझ से शादी कर लो। उस स्त्री ने हंस कर कहा-मैं आप से कैसे शादी कर सकती हूँ, मैं तो इन्द्रलोक की रहने वाली परी हूं यदि मैं मृत्युलोक के किसी प्राणी से शादी करूं तो भस्म हो जाऊंगी। राजा ने कहा-मैं भी राजा हूं, साधारण मनुष्य नहीं हूं। मुझ से शादी कर लो, ऐसा नहीं होगा। यह स्त्री तो चाहती ही थी, साथ चल पड़ी। वह स्त्री-वेश में एक राक्षसी थी।

इधर हिनाडुण्डुब व लाती सेरजङ् अब कुछ बड़े, अर्थात् खेलने योग्य हो गए थे। वे प्रतिदिन महल में खेलते रहते। शाम के समय जब राजा को दूर से आते देखते तो दौड़ कर महल के दरवाजे पर चले आते तथा अपने पिता की गोद में बैठ कर प्यार

करते। राजा भी अपने दोनों बच्चों को देख कर प्रसन्न होते और प्यार करते थे। प्रतिदिन की भांति उस दिन भी वे दोनों दौड़ कर महल के फाटक पर आए और पिता से बातें करने लगे। जब उस राक्षसी ने उन दोनों बच्चों को देखा तो अपने मन में सोचा-ये तो मेरे लिए कष्टकारक हैं, इन्हें किसी प्रकार खत्म करना चाहिए। राजा ने अपने बच्चों से कहा—आज तक मैंने तुम्हारी माता के वचन पर दूसरी शादी नहीं की थी, आज तुम्हारी दूसरी माता लाया हूं, इसे अपनी पूर्व-माता के समान ही समझना। उसने साथ ही रानी से कहा—ये दोनों मेरे बच्चे हैं इन से ऐसा प्यार करना जिस से ये आपको अपनी पहली सगी मां की तरह ही समझें। बाल-स्वभाव वश तत्पश्चात् दोनों बच्चे उसे अपनी सगी मां की तरह प्यार करने लगे परन्तु इसके विपरीत वह राक्षसी प्रतिदिन इसी उधेड़ बुन में रहती कि किस प्रकार उन्हें खत्म करे। उस शहर में एक अच्छा ज्योतिषी था जिसके पास सभी लोग हर प्रकार की बीमारी का ज्योतिष लगवाने के लिए जाते थे। सोचते सोचते उस स्त्री ने मन में ठाना और एक दिन जब राजा शिकार खेलने गए हुए थे, उस ज्योतिषी को महल में बुलाया। उसने उस से कहा—मेरी एक कामना है यदि उसे पूरा करोगे तो मैं बहुत धन दूंगी नहीं तो मैं तुम्हें खत्म भी करवा सकती हूं। धन के लोभ में तथा मौत के भय से उस ने 'हां' कर दी। रानी ने कहा—मैं आज बीमार बनूंगी शाम को जब राजा तुम्हारे पास आदमी भेजेंगे, तो कहना कि जब तक राजकुमार व राजकुमारी को मार कर उनके कलेजे तथा फेफड़ों का शिकार न खिलाया जाए तब तक रानी कदापि ठीक नहीं होगी। ऐसा ही हुआ और राजा इस बात को सुन कर हैरान हो गए तथा उस दिन उन्होंने इस बात को सुनी अन-सुनी कर दिया। अगले दिन भी राजा पूर्ववत् शिकार खेलने चले गए। उस दिन पुन: वह रानी झूठ-मूठ रोती-चिल्लाती सिर पटकती रही। शाम को राजा ने जब उसकी यह दुर्दशा देखी तो मजबूर हो कर अपने आदमी उस ज्योतिषी के पास भेजे। उस ने वही बात दोहराई तो राजा बड़ी दुविधा में पड़ गए। अन्त में पाप की विजय हुई। राजा ने अपने जल्लादों को बुला कर कहा—कल प्रात: मेरे दोनों बच्चों को जंगल में ले जा कर मार कर इन के कलेजे निकाल कर लाना। जल्लाद दूसरे दिन राजकुमार व राजकुमारी दोनों को पकड़ कर ले गए और जब वे शहर से थोड़ी दूरी पर एक छोटी सी ढांक के पास उन दोनों को मारने लगे तो अचानक दैवी प्रकोप से वह ढांक थोड़ी सी फट गई और उस में से उन बच्चों के मामा निकले। मामा ने जल्लादों को डांट कर कहा कि राजा तो बेइमान हो कर अपने बच्चों को मरवा रहा है परन्तु तुम नमक-हरामी न बनो। ऐसा कह कर वह पुन: अन्तर्धान हो गए। उन में से एक मूर्ख जल्लाद था। उस ने कहा कि राजा की आज्ञा मानना आवश्यक है इस लिए चलो इन्हें थोड़ा आगे ले जा कर मारें, यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो राजा हमें भी जान से मार डालेगा। इस बात पर पुन: वे सब उन बच्चों को पकड़ कर और आगे ले गए और एक तालाब 'कुरक्सोरङ्' के पास पहुंच कर उन्हें मारने के लिए तैयार हो गए। उसी समय उस तालाब से उन बच्चों की 'मां' प्रकट हो गई और अपने बच्चों को गोद में उठा कर उन जल्लादों से बोली—राजा तो बेईमान हो कर अपने बच्चों को मरवा रहा है, परन्तु कम से कम तुम तो इन मासूम बच्चों को मत मारो। दैवी प्रकोप से डरो। अपनी स्वर्गीय रानी की शिक्षाप्रद बातों को सुन कर जल्लादों ने रानी से क्षमा मांगी और राजकुमार और राजकुमारी से कहा—आप दोनों इस देश को छोड़ कर कहीं और चले

जाओ तथा पुन: इस शहर में न आएं नहीं तो राजा आप दोनों के साथ ही हमें भी जीवित नहीं छोड़ेगा। इस बार हम कुत्ते आदि के कलेजे को निकाल कर ले जाएंगे। ऐसा कह कर वे जल्लाद तो वापिस चले गए तथा दोनों बच्चे अपनी मां की गोद में सिर रख कर सो गए। क्योंकि मृत प्राणी पुन: जीवित नहीं हो सकता, अत: रानी ने जब देखा कि दोनों बच्चे सो गए हैं तो उन्हें धीरे से नीचे रखा और स्वयं उस तालाब में समा गई। जब बच्चों की नींद खुली और उन्होंने अपनी माँ को नहीं पाया तो खूब रोए और मन मसोस कर आगे की ओर चल पड़े। चलते चलते जब वे एक जंगल में पहुंचे तो हिनाड्न्डुब को बहुत प्यास लगी और वह अपनी बहिन से बोला—बहिन ! मुझे प्यास लगी है कहीं से पानी पिलाओ। बहिन लाली सेरजङ् पानी की तलाश में गई। जब उसे गए हुए काफी समय बीत चुका और वह नहीं लौटी तो कुमार विवश हो कर उस की तलाश में निकला। चूंकि जंगल बड़ा था, दुर्भाग्यवश दोनों भाई-बहिन एक दूसरे से बिछुड़ गए और परिणाम यह हुआ कि वे एक दूसरे को ढूंढते हुए भटकते रहे। जाते जाते कुमार जंगल के पास एक बूढ़े व बुढ़िया की कुटिया के पास पहुंचे। बूढ़ा और बुढ़िया बच्चे की सुन्दरता को देख कर बहुत प्रभावित हुए व उन्होंने उसे खाना पीना खिला कर अच्छे कपड़े पहनाए। ठीक उसी दिन उस शहर में एक राजा का चुनाव होना था, क्योंकि उस शहर का राजा निस्सन्तान मर गया था। शहर के वजीरों ने आपस में यह निश्चित किया कि राजा का तोता, जो सिखाया हुआ था, सभा में जिस किसी को भी फूलों की माला पहनाएगा उसे राजा बनाया जाएगा। बूढ़े ने बच्चे की योग्यता से प्रभावित हो कर उसे अच्छे कपड़े पहना कर महल के निकट एक खोखले पेड़ में ले जा कर छुपा कर रख दिया। निश्चित समय पर सभा हुई और तोते को फूल की माला दे कर छोड़ दिया गया। हजारों आदमी बैठे थे। हर एक की यह उत्कंठा थी कि देखें तोता किस के गले में माला पहनाता है। तोता सीधा उड़ कर उस खोखले पेड़ के सिरे पर फूलों की माला चढ़ा कर वापिस लौट आया।

यह देख कर सब परेशान थे और उत्सुकतावश उस पेड़ के पास गए। उन्होंने उसमें उस सुन्दर राजकुमार को देखा तो सब बड़े प्रसन्न हुए और उसी समय ले जा कर उसे राजगद्दी पर बैठा दिया। राजकुमार राजा बन कर अपनी बहिन को नहीं भूला और उधर राजकुमारी अपने भाई की तलाश में भूखी प्यासी दर दर भटकती फिरती रही। रोते पीटते उसका बुरा हाल था। जहां भी वह किसी हड्डी को देखती उसे अपने भाई की हड्डी समझ कर माला में पिरो कर गले में पहन लेती। काफी समय के बाद वह भी उसी शहर में पहुंची परन्तु उसे इस बात का पता नहीं था कि उसका छोटा भाई ही वहां का राजा बना है। वह सन्यासिनी बन कर गाते-बजाते दर दर फिरती रहती थी। वह अपने भाई के वियोग में दु:ख भरे गाने गाती रहती। उस के गले में इतनी मिठास थी कि जो भी गाना सुनता वही उसकी सराहना करने लगता। उस सन्यासिनी की खबर राजा तक भी पहुंच गई और उसने दूसरे दिन उसे अपने महल में बुलवा भेजा। जब नीचे आंगन में उसने गाना गाया तो ऊपर मधुर ध्वनि सुन कर राजा को अचानक अपनी बहिन की याद आई। उसने एक बर्तन में आटा दे कर एक नौकर को नीचे भेजा और कहा कि उस लड़की के दोनों पांवों के निशान निकाल कर ऊपर लाए। जब राजा ने अपनी बहिन के पांवों के निशानों

को पहचाना तो वे दौड़े दौड़े नीचे आए व अपनी बहिन को गले लगा कर दोनों ने आनन्दाश्रु बहाए। तत्पश्चात् राजा ने अपनी बहिन को ऊपर ले जा कर खिला पिला कर अच्छे कपड़े पहनाए तथा काफी समय तक मजे से राज चलाते रहे।

पर्याप्त समय के बाद एक दिन हिनाडुन्डब ने अपनी बहिन से कहा—बेशक हमारे पिता ने हमें बहुत दुःख दिया फिर भी मेरी इच्छा होती है कि एक बार उन्हें देख कर आएं तथा उस दुष्टा राक्षसी को सजा दें। बहिन के न मानने पर भी वे दोनों अपनी थोड़ी सी सेना ले कर अपने पिता को देखने चल पड़े। वहाँ पहुंच कर जब वे महल में अपने पिता को देखने गए तो उन की दुर्दशा देख कर उन का मन पसीज गया। जब पिता ने उन दोनों की आवाज सुनी तो नाम पुकार कर कहने लगे—क्या तुम मेरे बच्चे तो नहीं हो ! राज कुमार ने कहा—पहले आपने हमें अपने बच्चे नहीं समझा और मारने के लिये कहा। आज उसी राक्षसी के कारण आप का मन संतप्त है। अपने पुत्र और पुत्री को अन्तिम बार देख कर राजा ने प्रसन्नता से अपने प्राण छोड़ दिए।

जब राजकुमार अपने पिता का दाह-संस्कार करने के लिए महल से बाहर निकल रहे थे तो देखा कि वह राक्षसी एक कुत्ते को मार कर कंधे पर उठाए महल की ओर आ रही थी। जब उसने राजकुमार को देखा तो कुत्ते को फैंक कर उसे खाने के लिए आगे बढ़ी। राजकुमार ने तीर छोड़ कर उसका अन्त कर दिया। तत्पश्चात् अपने पिता की अन्त्येष्टि करके उस राक्षसी के शव को भी गाँव के पास एक टीले पर दफना दिया। कुछ दिन वहां रहने के पश्चात् वे दोनों वापिस अपने राज्य में चले गए तथा प्रसन्नता पूर्वक कई वर्षों तक राज्य करते रहे। उधर वह राक्षसी मरने के बाद भी गाँव वालों को यदा कदा तंग करती रही। अन्ततः मजबूर हो कर गाँव वालों ने उस के शव पर एक कंकणी (स्तूप) का निर्माण कराया जो अब भी पांगी गाँव में अवस्थित है।

प्रस्तुत लोक-कथा का अध्ययन ऐतिहासिक-भौगोलिक पद्धति द्वारा निम्न-लिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है :—

	कथा के विभिन्न नाम	गाँव	नामों की समानता का प्रतिशत
1.	नती सरजोम उला डण्डुब।	मूरङ्	4%
2.	उर्नादण्डुब।	पांगी	4%
3.	लाटी सेरजाम इन्ना डण्डुब।	यूला	4%
4.	यूला डण्डुब।	कानम	8%
5.	हिरातोन्दुग रङ् लाछीभ सेरजङ्।	मीरू	4%
6.	लाती सरजङ् यूला डुण्डुब।	स्पीलो	4%
7.	हिना तन्दुप लाचे सेरजङ्।	पूर्वणी	4%
8.	हिना तन्धुप लाती सेरजङ्।	काल्पा	8%
9.	हिना तन्दुप लाती सेरजुङ्।	चीनी	8%
10.	हिना तोन्दुब लछी सनम।	रारङ्	4%
11.	हिना डण्डुब लाटी सेरजङ्।	साङ्ला	4%

12. जीला दोण्ड्प लाची सेरजोम	हाङ्गो	4%
13. जीला दोण्ड्प लाची सेरजोम।	चूलिङ्	4%
14. हिना टण्डुब रङ् लाती सेरजङ्।	रोघी	4%
15. हिना तोन्दुक रङ् लाटी सेरजाङ्।	चगाँव	4%
16. लती सरजङ् यूला डुण्डुब।	ठङ्गे (कानम व स्पीलो को मिला कर)	12%
17. लती सरजङ् यूला डुण्डुब।	सापनी	4%
18. लाची सेरजोम हिला डोण्डुब।	पूह	12%
19. लाची सेरजोम हिला डोण्डुब।	डबडलि	4%
20. लाची सेरजोम विला डुण्डुब।	रोपा	4%
21. हीरा तुन्दुक नाकीच सरजङ्।	जंगी	4%
22. हिना डुण्डुब लाटी सेरजाम।	रिस्पा	4%
23. लटी सोरजम यूना डुण्डुप।	नेसङ्	4%
24. लटी सरजङ् हिना डण्डुब।	मेबर	4%
25. लाची सारजङ् रङ् हिना तोन्दुक[1]।	उरनी	8%

कथा की तीलियों का विश्लेषण :—

	अभिप्राय	अभिप्राय संख्या	कथाओं की संख्या जिनमें ये अभिप्राय मिलते हैं।	कथा-खडों का प्रतिशत।
1.	एक राजा, एक रानी।	F 17.	1 से 25	100%
2.	राजा की दूसरा विवाह न करने की प्रतिज्ञा।	M 135	1 से 25	100%
3.	रास्ते में राजा को सुन्दरी (राक्षसी) का मिलना।	H 919.6	1 से 25	100%
4.	रानी का बीमारी का बहाना, सह पत्नी के बच्चों के कलेजे मांगना।	S 322.4.1	1 से 25	100%
5.	नदी से मृत मां का आधा मनुष्य तथा आधी मछली के रूप में प्रकट होना तथा राजा को बुरा भला कहना।	E 221.2.1	1 से 13	52%

1. प्रस्तुत अध्ययन के लिए एलन डण्डिस द्वारा रचित ग्रन्थ 'दी स्टडी आफ् फोक लोर' में वर्णित 'दी स्टार हस्बैंण्ड टेल' तथा लोक साहित्य विज्ञान (डॉ० सत्येन्द्र) में वर्णित 'लोक-कहानी का अध्ययन, पृ० 300' को आधार माना गया है।

6. रानी द्वारा मछली का कलेजा राजा को देना।	E 222.4	12	48%
7. बच्चों का सो जाना तथा माँ का पानी में छलांग लगाना।	E 323.4	16	64%
8. जल्लाद को दया आना तथा उसका कुत्ते का मांस ला कर देना।	K 512.2	11	44%
9. लड़के के सिर से जलते हुए दीपक निकलना।	D 1645.10	2	8%
10. लड़की के सिर से भगवान की सोने की मूर्ति का निकलना।	D 1645.10.2	2	8%
11. बुढ़िया का (बहिन को) छेदों वाला थैला पानी लाने के लिये देना।	G 299.2.1	18	72%
12. बुढ़िया का लड़के को बेच देना।		14	56%
13. बहिन का दुःखी हो कर भाई की तलाश करना।	H 1385.8.	11	44%
14. राज कुमार के तीर से राक्षसी का मर जाना।	G 512.1.1.2	19	76%
15. राक्षसी को छोस्तेन के नीचे दबाना।	G 512.1.2.2.	25	100%
16. राक्षसी को उसकी छाती के पास शीशा रख कर मारना।	G 512.1.1.3.	1	4%
17. व्यापारियों का राजकुमार को वृक्ष के तने में (खोखले स्थान पर) छुपाना।		18	72%
18. तोते का उस वृक्ष को ही (राजा चुने जाने के लिए) हार डालना।	H 171.2.1	3	12%

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर आरम्भिक कथा का जो रूप हमारे सामने प्रकट होता है, वह संक्षिप्त रूप में इस प्रकार होगा :—

कहानी का आरम्भिक नाम 'लती सरजङ् तथा यूला डुण्डुब' अथवा 'लाची सेरजोम तथा हिला डुण्डुब' प्रतीत होता है। राजा रानी से आरम्भ हो कर राक्षसी रानी द्वारा बच्चों का कलेजा मांगने तक की कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। नदी से माँ का प्रकट होना भी निश्चित है। बहिन को बुढ़िया का पानी लाने के लिए छेदों वाला थैला देना तथा उसके भाई को बेच दिया जाना भी कथा की आरम्भिक घटनाओं की पुष्टि करता है। राक्षसी को छोस्तेन के नीचे दबा दिया जाना तथा राजकुमार को वृक्ष के खोखले तने में छुपाना और हाथी अथवा तोते द्वारा वृक्ष के ऊपर हार पहनाना भी अभिप्रायों के अध्ययन के आधार पर सिद्ध हो जाते हैं।

कहानी का कथा–मानक रूप (TALE TYPE) :

1. एक राजा और रानी में बहुत प्रेम है। उनके यहां एक पुत्र तथा एक पुत्री है।

2. रानी की मृत्यु-शैया के पास दूसरा विवाह न करने की प्रतिज्ञा करने पर भी राजा एक राक्षसी-सुन्दरी के साथ विवाह कर लेता है।

3. राक्षसी रानी अपनी सौत के बच्चों को मरवा डालने के उद्देश्य से बीमारी का बहाना करती है और उनके कलेजे दवाई के रूप में मांगती है।

4. राजा पुत्र तथा पुत्री को जंगल में मार डालने के लिए ले जाता है।

5. जंगल के तालाब से माता—

   1. आधी स्त्री तथा आधी मछली के रूप में निकलती है।
   2. आधी स्त्री तथा आधे साँप के रूप में निकलती है।
   3. स्त्री रूप में केवल उपरि भाग में निकलती है।
   4. पक्षी के रूप में निकलती है।

6. मृत माता राजा को दूसरा विवाह करने तथा अपने बच्चों को तंग करने के कारण बुरा भला कहती है।

7. माता राजा को बच्चों के जीवन-दान के लिए :—

   (1) कुत्ते का कलेजा देती है।
   (2) मछली का कलेजा देती है।
   (3) किसी और जानवर का मांस देती है।

8. माता बच्चों को :—

   (1) अपनी गोद में सुलाती है।
   (2) पत्थर पर सुलाती है।
   (3) मिट्टी के सिरहाने पर सुलाती है।

9. दूसरी बार मारने के लिए लाए गए बच्चों को बचाने के लिए :—

   (1) उनका चाचा ढांक फाड़ कर निकलता है।
   (2) उनका मामा ढांक फाड़ कर निकलता है।

10. तीसरी बार बच्चों को जल्लादों के साथ जंगल में भेजा जाता है।

11. जल्लादों को दया आती है, वे :—

   (1) बच्चों को छुपा देते हैं।
   (2) दूसरे स्थान पर भाग जाने के लिए कहते हैं।

12. एक बुढ़िया बहिन को पानी लाने के लिए छेद वाला बर्तन देती है वह उसे :—

(1) अपने बालों को लगा कर ठीक करती है।

(2) चिड़िया के कहने पर बालों को लगा कर ठीक करती है।

13. राजकुमार को व्यापारी एक वृक्ष के खोखले तने में छुपा देते हैं।

14. तिब्बत में राजा का चुनाव होता है :—

(1) पक्षी (तोता) की चोंच में हार डाल कर उपयुक्त राजा का चुनाव किया जाता है।

(2) हाथी की सूण्ड में हार डाल कर उपयुक्त राजा को पहनाया जाता है।

15. हाथी ! तोता वृक्ष को हार डालता है। खोखले से राजा निकलता है।

16. बहिन भाई को ढूंढ लेती है।

17. भाई अपनी सौतेली मां से बदला लेने के लिए अपने गांव आता है।

18. (1) राक्षसी रानी उस से विवाह करना चाहती है।

(2) उसे भोजन का निमन्त्रण देती है।

19. राज कुमार उसे तीर से मार डालता है।

20. राक्षसी का छोस्तेन (स्तूप) बनवाया जाता है जिस के नीचे उसकी हड्डियां दबाई जाती हैं।

21. छोस्तेन अभी भी कभी कभी हिलता है।

किन्नर लोक–कथाओं के कुछ मानक–रूप :

लोक-साहित्य में कथा-मानक-रूपों का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब पाश्चात्य विद्वानों ने देखा कि उन के यहां प्रचलित कथाओं में बहुत कुछ ऐसा है जो संस्कृत साहित्य में मिल जाता है तो इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि लोक कथाओं के कथा-खण्डों के आधार पर मानव-लोक को प्रभावित करने वाले कुछ ऐसे सार्वभौम लोक-मानस द्वारा स्वीकृत टुकड़े भी निकाले जा सकते हैं जो समस्त संसार की लोक-कथाओं के मूल में विद्यमान हों[1]। इस दृष्टि के आधार पर अभिप्राय-अध्ययन की भांति प्रसिद्ध विद्वान स्टिथ थॉम्पसन तथा उनके सहयोगियों ने भारतवर्ष में प्रचलित लोक-कथाओं के अलग मानक-रूप प्रस्तुत किए हैं परन्तु[2] क्योंकि इस देश में प्रचलित कथाओं पर अधिक कार्य नहीं हुआ है अतः इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किए गए ग्रन्थ केवल दिशा दर्शक का ही काम करते हैं।

---

1. लोक साहित्य विज्ञान, पृ० 219-265।
2. Types of Indic Oral Tales (India, Pakistan and Ceylon)—Stith Thompson and Warren E. Roberts, 1960.

किन्नर लोक-कथाओं का एक अन्य वर्गीकरण कथाओं की संख्या के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

1. राक्षसों की कथाएं।

2. पशु-पक्षियों की कथाएं :—

(क) जादुई पशु-पक्षी।

(ख) साधारण पशु-पक्षी।

इन में गीदड़ों की कथाएं सर्वाधिक हैं।

3. मनुष्यों से सम्बन्धित कथाएं।

इस वर्ग में मनुष्यों की वीरता, छल कपट, त्याग, परिश्रम तथा शक्ति आदि से सम्बन्ध रखने वाली सारी कथाएं आ जाती हैं।

इन कथाओं में देव-कथाओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इनकी संख्या राक्षसों की संख्या से कम तथा पशु-पक्षियों की कथाओं की संख्या से अधिक है।

यों तो प्रचलित कथाओं के असंख्य मानक-रूप हैं परन्तु ग्रन्थ के कलेवर को देखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में केवल कुछ ही मानक-रूपों को लिया गया है :—

1. लोमड़ी ग्वाले के द्वारा भोजन किये जाने पर कृतज्ञ होती है तथा उसकी सेवा करती है।

(क) ग्वाले का विवाह कराने के प्रयत्न।

(ख) ग्वाले के लिए घोड़ा लाने के प्रयत्न तथा बरात का प्रबन्ध।

2. लोमड़ी राजा की सहायता करती है तथा राक्षस को राजा की शक्ति के सम्बन्ध में बता कर डराती है।

3. लोमड़ी सत्तू का गोला पानी में गिरा देने के कारण अपनी पूंछ को काटती है।

4. लोमड़ी न्याय माँगने के लिए राजा के पास जाती है।

5. लड़का लोमड़ी को पूंछ मरोड़ने की शर्त पर रोटी देता है।

6. लोमड़ी राक्षस की दुम में लोहे का घन बांधती है जिस से वह कष्ट उठाता है।

7. ईमानदार मेमना अपने वचन के अनुसार कण्ठे से मोटा हो कर अपना शिकार मालिकों को खिलाने के लिये लौट आता है।

8. लोमड़ी सभी प्राणियों से उनकी भाषा में बात कर सकती है और उनकी सहायता करती है।

9. अपने जामाताओं (शेर, बाघ तथा गिद्ध) की नकल करने वाला बूढ़ा अंत में बुढ़िया को भी ढांक से गिरा देता है।

10. देवता अपने चमत्कार से रूप-परिवर्तन कर लेता है तथा अपने शत्रु देवता को हराता है।

11. जादुई घोड़ा अपने मालिक को ले कर हवा में उड़ता है और आकार में घटता बढ़ता है।

12. मृत घोड़े की खाल शरीर से छुड़ाने के लिए हंसने की आवश्यकता रहती है तथा माँस से महल, बगीचे तथा सड़कें बन जाती हैं।

13. एक स्त्री ओलों के खाने से गर्भवती हो जाती है, उसके नाक, मुँह तथा आंखों से बच्चे उत्पन्न होते हैं जो पैदा होते ही भाग जाते हैं।

14. नायक अपनी खाल को उतारने पर बहुत सुन्दर पुरुष बन जाता है। पहले वह—

(1) गन्दे मनुष्य के रूप में रहता है।

(2) कुत्ते के रूप में होता है।

(3) साँप के रूप में होता है।

(4) कीड़े के रूप में होता है।

15. नायिका को उसकी बहिन धोखे से मार देती है और स्वयं उसके कपड़े पहन लेती है।

16. बहिन द्वारा गिराई गई छोटी बहिन चिड़िया बन जाती है और उसकी दुष्टता का सारा भेद खोल देती है।

17. नायक दुष्ट व्यक्ति को हल के फेरे के नीचे से निकालता है और मल्लयुद्ध करके मार देता है।

18. राक्षस के मार्ग में अवरोध के लिये—

(1) कंकड़ पहाड़ बन जाते हैं।

(2) तूम्बे का पानी नदी बन जाता है।

(3) स्पियुग झाड़ियाँ बन जाती हैं।

(4) कंघी का जंगल बन जाता है।

(5) तकली की दीवार बन जाती है।

(6) ऊन का घास बन जाता है।

19. पिता बन में पुत्रियों को धोखा देने के लिए वृक्ष से तूम्बा बान्ध देता है जिसके हवा में हिलने के कारण आवाज होती रहती है जिससे पुत्रियों को पिता की उपस्थिति का भ्रम होता रहता है।

20. नायक राक्षस की नौकरी करता है और उससे परमात्मा के घर से अपनी आयु का पता लाने की प्रार्थना करता है।

21. नायक राक्षस को एक थैले में बन्द करके घर ले जाता है जहां उसकी माता का उससे प्रेम हो जाता है।

22. माता पुत्र को राक्षसों के देश में भेजती है—

(1) जहाँ से वह राक्षसों की वस्तुएं लाता है।

(2) राक्षस को मार देता है।

23. अन्य प्राणी मनुष्य की मदद करते हैं—

(1) मेंढक कान में आ जाते हैं तथा हंसने और रोने से आग व पानी छोड़ते हैं।

(2) सांप तथा बन्दर भी नायक की सहायता के लिए आते हैं और उसके थैले में बैठ जाते हैं।

24. चोर द्वारा आटा फेंके जाने पर लामा को लोग चोर समझते हैं तथा असली चोर के स्थान पर पीटते हैं।

25. नायक को राक्षसी की मूर्खता के कारण जादुई बकरी, पतीला, रस्सी तथा डण्डा मिलता है।

26. रानी की आत्मा हार में—

(1) हार के पहनने पर जीवित हो जाती है तथा,

(2) उसे छोड़ देने पर मृत्यु हो जाती है।

27. नायिका चूहे से विवाह करती है और उसे लस्सी लाने के लिए भेजती है।

28. नायक अपने भाइयों को धोखे से नदी में डुबो देता है—

(1) नायक भाइयों से बदला लेने के लिए अपने घर में आग लगा देता है जिससे भाइयों के घर भी जल जाते हैं।

(2) नायक अपनी पत्नी के गले में खून की पोटली बान्ध देता है तथा भाइयों के आने पर उसे काट देता है जिससे वे उसे मरा हुआ समझते हैं और घर जा कर अपनी पत्नियों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं।

29. एक गूंगा तथा बैल सगे भाई होते हैं। बैल गूंगे की मदद करता है।

(1) मेमना तथा लड़की भाई बहिन होते हैं। मेमना अपने जादुई सींग से बहिन को रोटी देता है।

30. नायक के बाजा बजाने पर नायिका मोहित हो जाती है और उसके पीछे चलती है—

(1) नायक मार्ग में शेर का रूप धारण करके नायिका की परीक्षा लेता है।

(2) नायक परीक्षार्थ नायिका से रहस्यपूर्ण बातें पूछता है।

(3) नायक नायिका को प्रभावित करने के लिए दूध तथा शराब का पानी बना देता है।

(4) नायक नायिका को मार्ग में छोड़ कर चला जाता है।

किन्नर-लोक-कथाओं के मानक-रूपों के आधार पर हम इनमें निम्न लिखित विशेषताएं पाते हैं :—

1. जैसा कि पिछले पृष्ठों में बताया गया है, ये कथाएं सारे प्राणी वर्ग के साथ सम्बन्धित हैं। इन में घोड़ा, गधा, चूहा, बिल्ली, राक्षस, देवता तथा पक्षी एक दूसरे की बातें समझते हैं। भाषागत भिन्नताएं इन पात्रों को अलग नहीं करतीं। यहां सारी सृष्टि के जीवों का एक परिवार माना गया है।

2. इस क्षेत्र की अनेक कथाओं में नायक नायिका से प्रश्न पूछता है—'क्या मुझ से विवाह करोगी ?' यही बात लोक-गीतों में भी मिलती है।

3. यहां लामाओं अथवा बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित लोक-कथाएं भी प्रचलित हैं जिन में नायकों द्वारा राक्षसों तथा दुरात्माओं को हराना दर्शाया गया है।

4. अधिकांश कथाओं में राक्षसों से युद्ध, उनकी मूर्खता तथा नायकों द्वारा उन्हें हराना वर्णित होता है। बुराई पर अच्छाई की विजय दर्शाना इन कथाओं का प्रमुख उद्देश्य रहता है। हास्य-रस की कथाओं में इस प्रकार का प्रयोजन नहीं मिलता।

5. इस क्षेत्र की लोक-कथाओं पर अन्य पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों की कथाओं का भी पर्याप्त प्रभाव है जिस का कारण कथाओं की फैलने की प्रवृत्ति तथा यहां के लोगों का भेड़ बकरियां ले कर दूसरे स्थानों पर जाना हो सकता है।

6. यहां पौराणिक कथाएं भी प्रचलित हैं पर उनकी संख्या अधिक नहीं है। रामायण व महाभारत की कथाओं के अधिकांशतः जो रूप यहां मिलते हैं वे प्राचीन काल से प्रचलित प्रतीत नहीं होते क्योंकि उन पर धर्म-ग्रन्थों में लिखी गई वार्ताओं का पर्याप्त प्रभाव है।

7. यद्यपि हरिजन व स्वर्णों की बोली में तथा अनेक गांवों की बोलियों में पर्याप्त अन्तर है पर कथाओं के कथानकों में वर्ग-विशेष व स्थान-विशेष में अन्तर नहीं मिलता।

8. अनेक कथाओं में पक्षियों की भाषा काव्यमय तथा हरिजन बोली में है जो यह दर्शाती है कि कुछ कथाएं आरम्भ में हरिजनों में ही प्रचलित रही होंगी, बाद में उन्हें स्वर्णों ने भी अपना लिया पर विशिष्ट वाक्यों को वैसे ही रहने दिया गया।

9. कथाओं में अनेक स्थानीय वर्णन यथा, ढांक से गिराना, न्योज़े के वृक्ष पर चढ़ना, फुआलों से मिलना, भेड़ों का भगाना अथवा चराना, गिमटे[1] बनाना व खाना

---

1. बकरे तथा मेमने की आन्तों को साफ करके उन में बलि-पशु का रक्त आटा मिला कर भर दिया जाता है तथा उसे उबाल कर खाया जाता है। इसे गिमटे अथवा गीमा कहा जाता है।

आदि बातें मिलती हैं जो कथाओं के वर्णन की रोचकता है।

10. यहां जाति-पाति सम्बन्धी कथाएं बहुत कम प्रचलित हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि यहां जातिगत उपवर्गों का प्रभाव बहुत कम रहा है।

किन्नर लोक कथाएं जन-समाज के आभूषण हैं। सर्दी की लम्बी रातों में ऊन कातना घर के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। श्रम के प्रति आदर-भावना के अन्तर्गत पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों को भी घर में ऊन कात कर कम से कम अपने गर्म कपड़ों का प्रबन्ध करना पड़ता है। माता-पिता बच्चों को ऊन कातने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं तथा कथा-कहानियों द्वारा उन्हें अपने कार्य हेतु रात तक जागते रहने के लिए मनोवैज्ञानिक ढंग से तैयार करते हैं। इस प्रकार जहां कपड़े बनाने की सुगमता होती है वहां लोक-कथाएं भी सामाजिक पृष्ठभूमि का आवश्यक अंग बन गई हैं। श्रम के साथ लोक साहित्य का इस प्रकार का मेल अन्यत्र दुर्लभ है।

लोक-कथाओं ने जितनी यात्रा की है उसके आधार पर यह कहना कठिन है कि उनके मूल रूप क्या रहे होंगे परन्तु यह निर्विवाद है कि जब तक समाज रहेगा, लोक-कथाओं का अस्तित्व अमिट तथा अबाध रूप से अपना आकर्षण बनाए हुए हैं। लोक-कथाओं का इतिहास मानव-इतिहास के साथ ही नहीं जुड़ा है बल्कि यह सृष्टि के इतिहास का एक अंग है। लोक-कथाएं लोक-मानस के साथ सम्बन्धित है अतः यह कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती कि मानस के बिना शरीर की स्थिति सजीव नहीं मानी जाती।

5 कहावतें तथा लोकोक्तियां

कहावत सूत्र रूप में प्रयुक्त किया गया अनुभव-सिद्ध वाक्य होता है जिसके द्वारा संक्षिप्त तथा स्पष्ट रूप में सत्य का प्रतिपादन किया जाता है[1]। सर्व प्रथम अरस्तु ने कहावतों का वैज्ञानिक अध्ययन किया। उसने यूनानी तथा लेटिन भाषाओं में प्रयुक्त होने वाली कहावतों का संकलन प्रस्तुत किया। भारतीय साहित्य में सुभाषित तथा सूक्ति शब्दों के प्रयोग कहावतों के अर्थ में हुए हैं। संस्कृत में इसके लिए लोकोक्ति शब्द भी प्रयुक्त किया जाता रहा है[2]।

लोक-मानस जिन भावों को नितान्त निजी तथा गहन समझता है, उनकी अभिव्यक्ति गद्य में नहीं होती तथा उनके प्रकटाव के लिए लोक-गीतों तथा कहावतों का आश्रय लिया जाता है[3]। कहावतें मानव-स्वभाव और व्यवहार-कौशल के सिक्के के रूप में प्रचलित होती हैं और वर्तमान पीढ़ी को पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती हैं। पथ-प्रदर्शन की दृष्टि से भी उनकी उपादेयता सहज ही समझ में आ सकती है[4]। कहावतें भाषा का शृंगार होती हैं और भाषा-विज्ञान के अध्येता के लिये भी ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, उन में ऐसे शब्द भी सुरक्षित रहते हैं जो साधारण बोल-चाल की भाषा में अप्रचलित हो गए हों[5]। कहावतों का अजस्र भण्डार हमारे चारों ओर बिखरा पड़ा है और किसी भी स्थान के कहावत साहित्य का पूरा लेखा-जोखा लेने के लिये जीवन-व्यापी श्रम और साधना की आवश्यकता है[6]।

किन्नर बोली में प्रचलित कहावतें तथा लोकोक्तियां प्रचुर संख्या में मिल जाती हैं। पहेलियां तो यहां हजारों की संख्या में कही व सुनी जाती हैं। सर्दी की ऋतु में जब खेतों में कार्य नहीं होता तथा बर्फ के कारण घरों के बाहर निकलना कठिन होता है, किन्नर लोग अपने घरों में बैठ कर ऊन कातते हैं और कथा-कहानियां तथा पहेलियां कहते तथा सुनते हैं। डॉ० सत्येन्द्र[7] प्रत्येक प्रकार की उक्ति को लोकोक्ति मानते हैं। उनके मतानुसार पहेली तथा कहावतें लोकोक्ति के अंग होते हैं।

कहावतों को पहेलियों की भांति सप्रयास नहीं कहा जाता बल्कि बातचीत के समय स्वयमेव उनका प्रयोग हो जाता है। यद्यपि दोनों ही उक्तियां लोक में प्रचलित

---

1. Durga Bhagwat—An outline of Indian Folk lore, page 46.
2. Ibid, Page 46.
3. Marion H. Duncon—Love Songs and Proverbs of Tibet, page 8.
4. डा० कन्हैया लाल सहल—राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन, पृ० 1।
5. वही, पृष्ठ 3।
6. श्री कृष्णानन्द गुप्त—बुन्देली कहावत-कोश, पृ० 5।
7. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० 493-94।

होती हैं परन्तु इन के प्रयोग में समय तथा वातावरण का अन्तर रहता है। भाषा की दृष्टि से दोनों ही महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक हैं। लोकोक्ति तथा मुहावरे में अन्तर स्पष्ट करते हुए डॉ० कन्हैया लाल सहल[1] लिखते हैं,—'लोकोक्ति मुहावरे की भांति निरा कार्य-व्यापार नहीं है, उसका रूप कुछ ऐसा होना चाहिये जो नीतिपरक हो अथवा लोक-व्यवहार की कुछ मर्यादा बांधता हो। लोकोक्ति साहित्य, यदि एक दृष्टि से देखा जाए, तो नीति साहित्य ही है। मुहावरों में नीतिपरकता का प्रश्न उपस्थित नहीं होता, वहां प्रयोग की लाक्षणिकता तथा ध्वन्यात्मकता अनिवार्य रहनी चाहिये।'

किन्नर-भाषा में प्रयुक्त कहावतों का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. **सामाजिक सत्य सम्बन्धी—**
   - अ. सामाजिक नियमों पर आधारित।
   - आ. लेन देन सम्बन्धी।
2. **प्रवृत्ति सूचक।**
3. **शकुन—अपशकुन सम्बन्धी।**
4. **ज्ञानसूचक—**
   - अ. अनुभव सूचक।
   - आ. साधारण ज्ञान का अभाव बताने के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने वाली।
5. **परिस्थिति सूचक।**
6. **स्नेह-सम्बन्ध सूचक।**
7. **हास्यरस सम्बन्धी।**

सामाजिक सत्य सम्बन्धी कहावतों के वर्ग के अन्तर्गत वे सभी प्रकार की कहावतें आती हैं जो सामाजिक नियमों तथा आदान प्रदान के सम्बन्ध में प्रयुक्त होती हैं। जिस प्रथा अथवा परम्परा का समाज में प्रचलन है यदि उसके विपरीत अथवा अनुकूल विशेष रूप से उल्लेखनीय कोई कार्य किया जाए तभी उसे लाक्षणिक ढंग से व्यक्त करने की आवश्यकता रहती है। इस वर्ग के अन्तर्गत दो प्रकार की कहावतें उपलब्ध होती हैं—

अ—समाजिक नियमों पर आधारित :

यथा :— लाटेसू नार चेई कू बोरे—गूंगे की स्त्री सब की भाभी।

भोले व्यक्ति की स्त्री के साथ सभी लोग कोई न कोई सम्बन्ध जोड़ लेते हैं क्योंकि उन्हें पता होता है कि यहां झूठे सम्बन्ध से भी कोई विशेष हानि नहीं होती। यह कहावत उस समय कही जाती है जब दो व्यक्ति किसी तीसरे भले मानस व्यक्ति की तो प्रशंसा करना चाहते हों परन्तु उसकी पत्नी की बुराई को जानते हों।

2. चोरेसू मौलिङ् डेन। अथवा—चोरेसू वाले मे।

---

1. राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन, पृष्ठ 25।

चोर की चोटी खड़ी। अथवा—चोर के सिर पर आग।

चोरी करना अपराध है। चोर का पता लगाने के लिए कुछ तो पूछना ही पड़ेगा। अत: यह बताया गया कि जो कोई भी चोर है, उसकी तो चोटी खड़ी दिखाई दे रही है। चोर ने सिर पर हाथ फेरा और पकड़ा गया।

प्रस्तुत कहावत हिन्दी की प्रसिद्ध कहावत 'चोर की दाढ़ी में तिनका' का किन्नौरी रूपान्तर है।

3. मी ज़िगित्चू बातङ् तेग।
   आदमी छोटा बात बड़ी।

यह कहावत हिन्दी की 'ऊंची दुकान फीका पकवान' का किन्नौरी रूपान्तर है।

4. ई राण्डीयू ताङे संसारु राण्डी बदमाश।
   एक बुरी औरत के लिए संसार की सब स्त्रियां बदमाश।

जैसा कोई व्यक्ति स्वयं हो संसार के सब व्यक्तियों को वह उसी रूप में देखता है। एक मछली सारे पानी को गन्दा कर देती है।

5. मतो गोरबोनू लाइक, मतो संसारू लाइक।
   न तो घर के योग्य, न संसार के योग्य।

6. मे गुचू गुचू ग्यव्व,
   नार गुचू गुचू हार।
   आग को बार बार छेड़ें तो बुझ जाती है,
   स्त्री को बार बार तंग करें तो भाग जाती है।

—किन्नौर में 'हार' अथवा 'हारी' की प्रथा है। जब विवाहित स्त्री का मन ससुराल में नहीं लगता हो तो इस प्रथा के अन्तर्गत वह स्वेच्छा से दूसरे घर में विवाह कर सकती है। ऐसी दशा में नए पति द्वारा पहले पति को पूर्व-विवाह का सारा खर्च देना होता है।

स्त्री को ससुराल में बार बार तंग किया तो वह भाग जाती है ठीक वैसे ही जैसे चूल्हे की आग को छेड़ते रहने से उसके बुझ जाने का भय रहता है।

7. बनठिन तो तो ठी लानतोंई, गर पीगरे दुओ।
   सुन्दरी होने से क्या करना, जब दांत पीले हों।
   (सुन्दरी हुई तो क्या हुआ, दांत तो पीले हैं।)

चगांव गांव की सुन्दरियों के दांत पीले हैं। यह उन पर छींटाकशी है। दांतों के पीलेपन का कारण शायद वहां का पानी है।

8. बाहो मायच गौरचङ् पोशो लिसती देस।
   ती मायच गौटङ् देस।

बिना पसन्द ससुराल (पराये के घर जाना) बिस्तरे में (गिरे) ठण्डे पानी जैसा (तथा) पानी के बिना घराट जैसा। बिना पसन्द का ससुराल किन्नर-बालाओं के लिए बिस्तर में ठण्डे पानी तथा बिना पानी के घराट की भांति है, फिर वे वहां क्यों रहें!

9. रिण्डो खोटनो, सादू मोखनो। मूर्ख का किया हुआ (बुरा काम) साधु भुगतता (है)।

10. इम्या चोरेस, राया चोरेस।
एक दिन का चोर, सौ (दिन) का चोर।

11. उनचिद् मीयू बोक दू[1]।
मांगने वाले व्यक्ति का हलवा (सदा ही) गर्म।

—जो व्यक्ति मांग कर खाता है वह दूसरों के यहां से उतनी ही वस्तु प्राप्त कर पाता है जितनी उसे खानी होती है। उसे बासी रखने का उसके पास प्रश्न ही नहीं उठता।

12. दम मीरङ् ख शेन्नो ले बीमिग, मारी मी रङ् जामो ले मा बीमिग।

अच्छे आदमी के साथ शौच-निवृत्ति के लिये भी जाना, बुरे आदमी के साथ खाना खाने के लिए भी नहीं जाना (चाहिये)। अर्थात् भले के साथ घटिया कार्य के लिये जाना भी बुरा नहीं होता परन्तु बुरे व्यक्ति के साथ भला कार्य करने के उद्देश्य से कहीं जाने पर भी लोग अच्छा नहीं समझते। हिन्दी–भाषी क्षेत्र में इस प्रकार के भावों को व्यक्त करने वाली एक कहावत प्रसिद्ध है—बुरी संगति से अकेला भला।

13. कागिस डालङों, प्यूस डावरङों।
कव्वे (ने) डाल पर, चूहे (ने) बिल में। अर्थात् सब लोगों को अपना ही घर प्रिय होता है।

14. कामङ् वेरङ् तारयाशिमिग, जामिगू वेरङ् गोरयाशिमिग।
काम करते समय लड़ना झगड़ना, खाते समय प्रेम करना।
खाना बहुत प्रेम से खाना चाहिए, काम के समय भले ही झगड़ा हो जाए।

15. झी चो चो बीतो, जातिङ्, चो चो मा बी।
गन्दगी धो कर जाएगी, जाति धो कर नहीं जाएगी।

16. कर मा चास्तङ् , जोल चम।

खड्डू (मेमने) के नाचने तक रानों की ऊन (नाचती है)। इसका भावार्थ यह है कि मेमने के नाचने से पहले ही उसकी रानों (पिछले भाग) की ऊन नाचना आरम्भ कर देती है। बड़े व्यक्ति द्वारा कार्य करने से पूर्व ही उसके अनुयायी उस जैसा करना आरम्भ कर देते हैं।

17. कुयोरी वास्कयङ् नियोरी दम।
दूर के सम्बन्धी की अपेक्षा समीप का सम्बन्धी अच्छा।

जैसे घर जमाई अच्छा भी हो तो भी उससे अपना बुरा लड़का ही अधिक भला है। प्रस्तुत कहावत अंग्रेजी की कहावत Blood is thicker than Water का किन्नौरी रूप है।

18. कौद नीमा होद, मानीमा ठ होद ?
खाद हो तो चिल्टा, न हो तो क्या चिल्टा ?

---

1. नमकीन हलवा।

यदि खर्च (परिश्रम) किया जाए तभी लाभ है, नहीं तो क्या लाभ ?

19. खस रङ् बीमा पावङों, बाखौर रङ् बीमा डोकङों ।

भेड़ों के साथ जाए तो कण्ढे के समतल स्थान में, बकरियों के साथ जाए तो ढाँक में ।

डरपोक व्यक्ति के साथ जाएं तो खतरा नहीं, वीर व्यक्ति के साथ जाएं तो खतरा मोल लेना पड़ता है अथवा जैसे लोगों के साथ सम्पर्क हो उसी प्रकार रहना पड़ता है ।

20. अफरो चीज ला कुने मर ना बोलदो ।

अपनी चीज को कोई बुरा नहीं कहता ।

21. जाई घोर न रून्दी, बन्दर खेच् न रून्दो ।

लड़की घर नहीं रहती, बन्दर खेत में नहीं रहते ।

पुत्री अपने माता-पिता के घर नहीं रहती और न ही बन्दर खेत में रहते हैं ।

22. गस मा नीमा कपड़ाओ गस[1] ।

जामो मा नीमा रल कोनिकङ् ।

ऊनी कपड़ा न हो तो सूती कपड़ा, खाने को न हो तो चावल कँगनी ।

अर्थात् यदि मनुष्य परिश्रम करे तो ऊन के बने कपड़े न होने की दशा में सूती कपड़े खरीद सकता है तथा यदि स्थानीय भोजन प्राप्त न हो तो चावल-कंगनी आदि खरीदे जा सकते हैं ।

23. मी छोत छिकसुम ताछोत गुन्फा सुम ।

आदमी का पता तीन बातों से, घोड़े का पता तीन कदमों से ।

24. पेटिङ् ताङेस ज्वापरिङ् ।

—पेट के लिए मौत के मुंह में ।

अर्थात् जो व्यक्ति अपने पेट की ओर अधिक ध्यान देगा, वह मौत के मुंह में पड़ेगा अथवा इस पेट की खातिर बहुत खतरे मोल लेने पड़ते हैं ।

25. बल नीमा ठेपिङ् फोक्शिद् चो ।

—सिर हो तो टोपी पहनते हैं ।

अर्थात् आवश्यकता होने पर सब कुछ करना पड़ता है ! यदि मुख्य वस्तु हो तो सहायक जुटाई जा सकती हैं ।

26. हालेस कङ् जङ्प्या देसकी खप्या ।

—जैसी सोने की चिड़िया वैसी ही गन्दगी की चिड़िया ।

जब कोई बिना सोचे विचारे दूसरों का अनुकरण करे तब कहा जाता है ।

27. 'थारा' लोस्तो 'थर' ले वतो ।

—'ठहर' बोलते समय शेर भी आ जाएगा ।

---

1. 'गस' का अर्थ कपड़ा होता है परन्तु 'कपड़ा गस' का अर्थ सूती कपड़ा माना जाता है । हिन्दी व किन्नर-भाषा के मेल का यह सुन्दर उदाहरण है ।

अर्थात् ठहरने के लिए कहना बहुत हानिकारक होता है अतः कार्य शीघ्रता से करना चाहिए।

28. दम म्यू बोङ् राशङ् मारम्यू छङ् राशङ्।

—अच्छे आदमी का कूड़ा करकट, बुरे (निर्धन) व्यक्ति के बच्चे।

अर्थात् अमीरों के घर में कूड़ा अधिक होता है और निर्धनों के बच्चे अधिक होते हैं।

आ—लेन देन सम्बन्धी कहावतें :

इस प्रकार की कहावतों की संख्या अधिक नहीं है। ये भी सामाजिक सत्य को प्रस्तुत करती हैं, यथा—

1. मा राम्रिग मी पङ् यूशिद् कुलशिद् माय। नहीं देने के व्यक्ति को पीसा हुआ, कूटा हुआ नहीं है, अर्थात् जो व्यक्ति दूसरे को कुछ नहीं देना चाहता वह पीसे तथा कूटे के लिए भी इनकार कर देता है। याचक भले ही उससे किसी भी प्रकार की वस्तु मांगे, वह 'नहीं' ही कहता जाता है।

2. सो सोरो सूनो खोटुई पिछू
आइकिला क्यू खोट्यानो।

—अपना सोना खोटा, बाद में दूसरे को क्यों खोटा बताना !

इत्यादि।

प्रवृत्ति सूचक कहावतें :

इस वर्ग में वे सभी प्रकार की कहावतें रखी जा सकती हैं जिन के द्वारा किसी व्यक्ति की कोई विशेष प्रवृत्ति प्रदर्शित हो। यथा—

क. लङ्शा तङ् तङ् दाङी ज़ोकोर।

गौ मांस देख कर तुरन्त झपटना।

अर्थात् निषिद्ध वस्तु को देख कर भी लाभ उठाने के उद्देश्य से अपने अधिकार में रखने की चेष्टा करना। यह कहावत विशेषतया उस समय कही जाती है जब कोई व्यक्ति अपने रक्त-सम्बन्ध वाले परिवार में ही अच्छी लड़की देख कर रिश्ते को भूल कर विवाह कर लेता है। गाय का मांस वर्जित है परन्तु यदि उसे मोटा देख कर किसी के मुंह में पानी आ जाए तो यह विशेष घटना हुई।

ख. आनु ई शेखी शेन्नो।

—अपनी ही शेखी लगाना।

जब कोई व्यक्ति अहम् की प्रवृत्ति से वशीभूत होकर अपनी ही शेखी बघारता रहे और दूसरे की बात न सुने तो यह कहावत कही जाती है।

ग. कोलस शाओ खुर।

—नर्म मांस में छुरी।

जहां से कुछ पाने की आशा हो वहीं मांगना उचित होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जहां से कुछ पाने की आशा हो, लोग वहीं बेझिझक मांगते हैं।

जाहि ते कछु पाइये करिये ताकी आस ।
सूखे सरवर पे गये कैसे बूझत प्यास ।।

घ. खाकङो कागे, मोनङो सङ्को ।

मुंह में अखरोट की गिरी मन में खोट (शंका) । मुंह से तो मियां मिट्ठू, मन में बुराई ।

शकुन, अपशकुन सूचक :

यथा,

1. अरक बोगना तेमरेल,
चा बोगना कुनमस तोग ।

शराब गिरना अच्छा शकुन,
चाय गिरना अपशकुन ।

शकुन तथा अपशकुन आदिम समाजों के व्यक्तियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं । यदि किसी व्यक्ति से शराब गिर जाए तो वह शुभ शकुन माना जाता है परन्तु चाय बहना अपशकुन माना जाता है । इन दोनों वस्तुओं को शकुन तथा अपशकुन के साथ किस प्रकार जोड़ दिया गया, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता ।

2. जाई रो मोना भाई दे, घरी के खौर ना राजदो ।
लड़की का मन प्रसन्न न हो तो मेड़ में घास भी नहीं उगता है ।

इस क्षेत्र में लड़कियों को प्रसन्न रखने के अनेक यत्न किये जाते हैं क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि यदि विवाहित अथवा अविवाहित लड़की प्रसन्न हो तो घर में सुख-समृद्धि आती है, यदि वह अप्रसन्न हो जाए तो अनिष्ट की आशंका बनी रहती है । प्रस्तुत कहावत हरिजन बोली में है ।

3. छङ् पोना तेमरेल ।
चा पोना खोङ्न ।
शराब गिरना अच्छा शकुन । चाय गिरना अपशकुन ।

4. फ्याये टिखङ्से कुई नीमा राक्सस सारयातो ।
माथे पर टीके वाला कुत्ता राक्षस को बुलाता है ।

ज्ञान सूचक :

इस वर्ग की कहावतों को दो भागों में बांटा जा सकता है—

प्रथम—वे कहावतें हैं जिनके द्वारा भौगोलिक अथवा नीति सम्बन्धी ज्ञान का पता चलता है, यथा,

1. हाण्डी फिरी वाङ्तू ।
घूम फिर कर वाङ्गतू ।

बाङ्गतू सतलुज नदी के किनारे एक ऐसा स्थान है जहां से गुज़रे बिना किन्नर-क्षेत्र में प्रवेश सम्भव नहीं है। भले ही कोई व्यक्ति सारे किन्नौर में घूमता रहे परन्तु उसे बाङ्गतू तो आना ही पड़ेगा।

प्रस्तुत कहावत 'दुनिया गोल है' का किन्नौरी रूपान्तर है।

2. खुरङों जोरमे पाण्ठुङों शीशी।
खुड्ड में जन्म लेकर कमरे में मर गए।

किन्नर-क्षेत्र में यह प्रथा है कि प्रसव के समय स्त्री को प्रायः पशु बांधने के कमरे (खुड्ड) में रखा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का जन्म खुड्ड में ही होता है। जब बच्चा तीन अथवा चार दिन का हो जाए तो माता व उसे घर के दूसरे कमरे (पण्ठुङ) में लाया जाता है। ज्ञानार्जन किए बिना जो व्यक्ति अपने घर में निर्वाह करता है उसके सम्बन्ध में अनेक बार कहा जाता है कि वह खुड्ड में उत्पन्न हो कर कमरे में मर गया।

प्रस्तुत कहावत हिन्दी में प्रचलित 'कूप मण्डूक' का स्थानीय रूपान्तर है।

3. काग वास्क्यङ् काग छङ्।
काग (कव्वा) की भांति कव्वे का बच्चा।

इस कहावत को उस समय कहा जाता है जब किसी दुष्ट व्यक्ति का कोई मित्र अथवा सम्बन्धी भी उसके समान दुष्टता करे।

4. काग सूशिस ले रौक, मा सूशिस ले रौक।
कव्वा नहा कर भी काला, बिना नहाए भी काला।
दुष्ट व्यक्ति तीर्थ यात्रा करने के पश्चात् भी दुष्ट ही रहता है।

5. मर भेरी रौ गाबलो भलो थागदो।
बुरी भेड़ का मेमना भला (अच्छा) होता है, अर्थात् बुरी मां के भी कई बार अच्छे बच्चे होते हैं।

6. मन्त्रिये बीश मारेन्दे।
चतुर (समझदार) बीसों को मार देता है।

7. ज़ितासू चिमे सदा ई जी जी।
अमीर की लड़की को हमेशा 'जी', 'जी' (कहना पड़ता है)।

इस कहावत का अर्थ है कि यदि अमीर की लड़की से विवाह किया जाए तो उसे 'जी' कह कर आदर-खुशामद से पुकारना पड़ता है, इससे अच्छा है कि अमीर की बेटी से विवाह न किया जाए और अपनी सामाजिक स्थिति का ध्यान रखा जाए।

8. मर मानुश शेखिये बोदी थगदी।
खराब आदमी को शेखी बहुत होती है।

9. कू मानुश रो कचेलटङ्।
बुरे मनुष्य का बुरा लड़का।

10. खुलचू जोगस छूरिद पौरिच् ।
खल्टे (खाल) के योग्य धागा मिल जाता है ।
लड़का या लड़की सुन्दर न हों तब भी उनके योग्य रिश्ता मिल जाता है ।

11. बात शोठ्यानो सोंगी ना शोठ्यानो ।
मार्ग छोड़ दो, साथी मत छोड़ो ।

12. गौम्पा क्या क्या युनमिग ।
कदम देख देख कर चलना ।

13. चामङ्स गस अनु बिलङी डाबच् ।
जुलाहा कपड़े को अपनी ओर ही खींचता है । इसका सामान्य अर्थ यह है कि हर व्यक्ति अपना ही लाभ सोचता है ।

14. चामङ्, डागी लोन्मू ली सुखङ् ।
चामङ् (चमार), डागी कहना ही सरल (होता है) । अर्थात् दूसरे को घटिया बताना ही आसान होता है ।

15. चांल्याल्या तुशङ् खन खन दोशङ् ।
(आटा) छान कर बूरा, प्रश्न (ज्योतिष) लगाने पर दोष (देवता या भूत का खोट) निकलता है, अर्थात् जब आटा छाना जाता है तो बूरा अवश्य निकलता है और प्रश्न लगाने से खोट जरूर निकलता है ।

16. माटी टैमाइन्दे हाण्डनो ।
मिट्टी दबा कर चलना ।
अर्थात् मनुष्य को घमण्डी नहीं होना चाहिये ।

17. छेओरी टौनको देखो, कुत्ती जुलको देखो ।
स्त्री सुन्दर कपड़ों (पहनावा) वाले को देखती है तथा कुत्ता फटे पुराने कपड़ों वाले को देखता है । अर्थात्—स्त्री तड़क भड़क वाले कपड़ों की ओर आकर्षित होती है तथा कुत्ता फटे पुराने कपडे पहने हुए व्यक्ति की ओर काटने के लिए दौड़ता है । प्रस्तुत कहावत हरिजन-बोली में है ।

18. मर मानुसी सौङ्गी न बनयानो ।
बुरे व्यक्ति को साथी न बनाओ ।

19. जामिग गाटो, कोष्टङ् बोदी ।
खाना कम, कष्ट अधिक ।
थोड़े से भोजन के लिये मनुष्य को उपलब्धि की अपेक्षा कष्ट अधिक करना पड़ता है ।

20. जितासू रङ् डालङेसू बङ् ।
अमीर का घोड़ा, निर्धन की टाँगें[1] (समान होते हैं) ।
अर्थात् निर्धन व्यक्ति अमीर के घोड़े की भांति पैदल सफर करता है ।

21. डाब्मा डाब्मा वशली सरतो ।
खींचते खींचते रस्सी भी टूट जाती है ।

---

1. बङ्—टांग अथवा पैर ।

22. देओरो खोटिन्दे आऊन्दी राज़ारो खोटिन्दे ऊन्जी ।
देवता की नौकरी करने से निर्धन, राजा की नौकरी करने से धनवान ।

अर्थात् देवता की नौकरी मुफ्त की होती है जबकि सरकारी नौकरी से पैसे मिलते हैं ।

23. गस ज्ञोरङों शरे ।
छेचस आहे शरे ।
कपड़ा रस्सी पर ही सजता है, स्त्री ससुराल में सजती है ।

24. प्रोशिमा डेङाली बन्ठेस नीच् ।
सजाने पर डण्डा भी सुन्दर होता है ।

25. ककड़ी चोरो चोरो बकरी मारो ।
ककड़ी (खीरे) का चोर अन्त में बकरी की चोरी तक पहुंच जाता है ।

26. माइच मी पङ् केतक मा लोशो ।
न होने वाले (अभावग्रस्त) व्यक्ति को 'दूंगा' नहीं कहना चाहिये ।

27. राण्ड छेच़मी पङ् 'फीच़क' मा लोशो ।
विधवा स्त्री को 'ले जाऊँगा' नहीं कहना चाहिये ।

28. हाइसङ् मोन्यातो, होदो पङी खुङतो ।
जो कोई भी मनाएगा, उस पर ही भूत लगेगा ।

अर्थात् विश्वास पर ही देवता-भूत का प्रभाव होता है ।

29. लाङों रोशङ् राचू देन ।
गाय का क्रोध बछड़े पर ।

30. छेचोनू बातङ् तेरई मा क्युग ।
स्त्रियों की बातें कभी समाप्त नहीं होतीं । इत्यादि ।

द्वितीय—इस वर्ग में अज्ञान को प्रदर्शित करने वाली सारी कहावतें आ जाती है । यथा,

1. कागू शोनङ् खओ, पाखङ् रिगे ।
कव्वे की चोंच शौच में, पँख ऊपर ।

सूझबूझ का अभाव होना परन्तु फिर भी शेखी बघारना ।

2. फोचू कानङों जङ् ।
गधे के कान में सोना ।

मूर्ख को अच्छी व बुरी वस्तु में कोई भेद नहीं दिखाई देता, अथवा मूर्ख अपने मस्तिष्क का उपयोग नही कर सकता । यदि गधे के कान में सोना डाल दें तो भी उसे क्या लाभ !

3. श्यालस अनो क्यङ्सी छ्वा ।
गीदड़ अपने डर से ही बोलने लग जाता है ।
मूर्ख बिना पूछे ही बात कर देता है ।

4. याना च़ग, उरा छङ् मा प्यक्च ।
   जानी का जौ, उरनी का लड़का—नहीं पकते ।

अर्थात् उरनी गांव का लड़का और जानी गाँव के जौ पकते नहीं हैं । जानी गाँव में सर्दी अधिक होती है तथा उरनी गाँव के लोगों के लड़के बुद्धि में पीछे रहते हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है, पता नहीं कब यह कहावत प्रचलित हो गई ।

5. फोचू पच़निङ् ने रिन्मा ली रिन बडीनच़ ।
   गधे की पूंछ नापने पर एक हाथ (ही होती है) ।

अर्थात् दुष्ट की दुष्टता सदैव अपने साथ रहती है, कम नहीं होती ।

परिस्थिति सूचक :

1. श्रौन ऐमगे श्पौन ऐम !
   भूख मीठी हो तो जूता (भी) मीठा ।

अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर भले बुरे का भेद मिट जाता है ।

2. मो जङ् खोटेस हातू खोट्यामग !
   अपना सोना खोटा है (तो) किसको खोटा कहें ?

अर्थात् जब अपनी ही परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं तो दूसरों को दीन नहीं कहा जा सकता ।

3. आजस बार खोङ्ग्यो, बाखोरेस जाग्यो ।
   बकरे ने टहनी झुकाई, बकरी ने (घास) खाया ।

बकरा काम करता रहा परन्तु लाभ बकरी को हुआ । पश्चिमी पहाड़ी में भी इस आशय की एक कहावत है—

मार खाओ डबोक, मजे लुट्टो लोक ।

अर्थात् मार तो सीधे साधे व्यक्ति पर पड़े परन्तु लाभ दूसरे लोग उठाएं ।

यह मुहावरा 'खीर खाए ब्राह्मणी, फाँसी चढ़े शेख' का स्थानीय रूपान्तर है ।

4. ओम इद काजङ् निश ।
   रास्ता एक काम दो ।

अर्थात् 'एक पंथ दो काज' ।

5. किमशू मा खोटेस्मा, रिमशू मा खोटेस ।
   घर का देवता (जब तक) (काम) नहीं करता, खेत का देवता भी नहीं करेगा ।

अर्थात् जब तक घर के लोग काम नहीं करते, नौकर भी काम पर नहीं जाते ।

6. कुइयू कू कू, रगस् चिलयाम ।
   कुत्ते को बुला कर पत्थर मारना ।

दुष्ट व्यक्ति को किसी प्रलोभन द्वारा आकर्षित करके ही उससे बदला लिया जा सकता है ।

7. घाटेसू बेरङ् लासो जल ली डेन ।
   कठिनाई के समय कीचड़ में छड़ी भी खड़ी ।

कठिनाई के समय छोटा व्यक्ति भी सताता है।

8. पपाचारसू शी शी ले डानङ्,
   शङ्गी ले डानङ्।
   पपाचारस का मृतक का भी जुर्माना (दण्ड), जीवित का भी दण्ड।

प्राचीन समय में पपाचारस नाम का एक डाकू चगाँव गाँव का निवासी था। उससे लोग बहुत दुःखी थे। राजा के आदेश पर लोगों ने उसे रेत में घसीट कर मार दिया परन्तु जब राजा को उसकी मृत्यु का समाचार मिला तो उसने हत्यारों को भारी जुर्माने किए तथा सजाएं दीं। तभी से यह कहावत चल पड़ी कि पपाचारस के जीवित रहने पर भी सुख नहीं तथा मृत्यु के पश्चात् भी कठिनाई।

जब किसी व्यक्ति द्वारा लोग बहुत सताये जा रहे हों तब इस कहावत का प्रयोग करते हैं।

9. मिरखिङ् पामरासो खाकङ् खेर।
   मीरू के पमरस का मुंह टेढ़ा।

पमरस नाम का टेढ़े मुंह वाला एक व्यक्ति मीरू गांव में रहता था। वह भले ही कितना यत्न करता पर उसका मुँह सीधा नहीं होता था। जब कोई व्यक्ति बहुत सेवा के पश्चात् भी प्रसन्न न हो तो कहा जाता है कि उसकी दशा तो पमरस की भांति है, उसका मुंह सीधा नहीं होता अर्थात् वह कभी प्रसन्न नहीं होता।

10. मुं मा पिज्यामू पुंछिङ् पिज्यामू।
    मुँह नहीं पूजना, पूँछ पूजना।

पहले तो सीधे मुंह बात नहीं करना परन्तु परिस्थितियां विपरीत होने पर चाटुकारिता करना तथा रिश्वत देना।

11. गुदो दू मानिमा, हायसी मा ताङ्खिद्।
    हाथ में नमकीन हलवा न हो तो कोई भी नहीं देखता।

अर्थात् जब रुपये-पैसे पास न हों तो कोई मित्र नहीं होता।

12. ओम्स मी खुङ्मो निम्स शू।
    पहले मनुष्य का दोष (क्रोध) बाद में देवता का।

अर्थात् मनुष्य का क्रोधित होना देवता के क्रोध से भी बुरा है।

13. शुपा रानी सोम फलानी।
    शाम को 'रानी' प्रातः अमुक (अपरिचित)।

परिचित व्यक्तियों को परिस्थितियों के सुधरने पर भुला देना।

14. फोचो राम राम।
    गधे को 'राम राम' कहना।

परिस्थितियों के अनुकूल बात करना। जहाँ गधे को मामा कहने से कार्य सफल होता हो, वहाँ वैसा ही कहना।

स्नेह-सम्बन्ध सूचक :

1. तङ्शी मिग नेरङ्स छुक्शी मिग वरकिस। जोन्मिग्या सोङ्गी ! किनू सुनचेश्रा चिकती यूर मा ब्यो।

   देखने (दृष्टि) में समीप, मिलने में दूर ! ऐ पसन्द के साथी ! आपको याद करे तो (आपकी याद आने पर) ठण्डा पानी भी नीचे (गले से) नहीं जाता है।

यह कहावत विरह-भावना को व्यक्त करती है।

2. किन छङ् यबा ताई, अङ् छङ् तोल्याई।

   आपका (अपना) लड़का नीचे रखो, मेरा लड़का उठाओ।

अर्थात् अपना बच्चा अधिक प्यारा होता है।

3. अफरो मोठले छोटू सेब का भलो देखदे।

   जमीन के साल आइकिरो भलो देखिन्दो।

   अपनी गोद में बच्चा सब से अच्छा दिखाई देता है।

   जमीन में फसल दूसरे की अच्छी दिखाई देती है।

इत्यादि।

हास्य रस सम्बन्धी कहावतें :

इस क्षेत्र में कुछ कहावतें ऐसी भी प्रचलित हैं जिन के सुनने से हंसी आ जाती है। इस प्रकार की कहावतें संख्या में अधिक नहीं हैं परन्तु जो कुछ भी हैं उनसे यहां के सामाजिक जीवन पर हास्य का प्रभाव स्पष्ट होता है।

1. अशरङ् शुना, मेल्लम मुशान, रीदङ् राक्सस, गीनम श्याली।

   अशरङ् (गांव) का भूत, रामणी का मशान (प्रेत), रिब्बा का राक्षस तथा मूरङ् का गीदड़।

किसी स्थान पर रात के समय अशरङ् के शुना वंश, मेल्लम के मशान वंश तथा रिब्बा के राक्षस वंश के तीन व्यक्ति इकठ्टे हो गए। इनमें चौथा गीदड नाम वाला था जो गीनम (मूरङ्) गांव का निवासी था। परिचय के समय सब ने अपने अपने सम्बन्ध में बताया। एक दूसरे की बात सुन कर सब सारी रात भर डरते रहे परन्तु प्रातः पता चला कि शुना, मशान, राक्षस तथा गीदड़ वंशों तथा मनुष्यों के नाम थे।

2. देशङो नामङ् अकपा, पोशेनमिग पाक्पा, जाम्मिग थुक्पा, गाछयामो थाक्पा, बिज्टू नामङ् डाक्पा।

   'पा' वाले शब्दों को इस मुहावरे में इकट्ठा किया गया है, अर्थ है—

गांव का नाम अकपा, बिछाने को खाल, खाने को लपसी, गाची (कमर बन्ध) के लिए रस्सी, वजीर का वंश डाक्पा (है)। ये सभी बातें एक ही गांव अकपा में हैं।

3. अङ् केमा माथस, अङ्‌ मा केमा छ माथस !

   मुझे दे तो मेहता (अमीर), मुझे न दे तो क्या मेहता !

मेहता ग्राम-देवता का कारदार होता है। कहावत में बताया गया है कि स्वयं को लाभ न पहुंचने की दिशा में लोग दूसरों को बड़ा नहीं समझते।

4. टुक्पाऊ टुग तिङ् शूअङ्पाऊ शुम तिङ्।

टुकपा[1] (परगना) वालों के छः दिल तथा शूआ (परगना) वालों के तीन दिल होते हैं।

अर्थात् टुग्पा परगना के लोग अधिक वीर होते हैं। 'टुक्पा' तथा 'शूआ' का प्रयोग अंकों के अर्थ बताने के लिये किया गया है जो हंसाने वाला है। किन्नर-बोली में 'टुग' का अर्थ छः तथा 'शुम' का तीन होता है। टुग्पा व शुआ दो परगने हैं परन्तु उनके नाम किसी अन्य कारण से रखे गए हैं, वीरता व कायरता के कारण नहीं।

5. चोरस व्यङ्स जाखङों स्तिश चोरा।

चोर के डर से झाड़ियों में छिपते समय सात चोर।

अर्थात् जिस बात का डर था, उससे भी अधिक डरावने अनुभव हुए।

इत्यादि।

मुहावरों तथा कहावतों को स्थानीय बोली में 'स्यानो चीठी' कहा जाता है। ये जन-विश्वास के अनुसार बुद्धिमानों द्वारा कही गई बातें होती हैं।

कहावतों के अन्य वर्गीकरण स्थानीय बोलियों के अनुसार भी किये जा सकते हैं। यहां प्रचलित बोलियों में कहावतों तथा पहेलियों का अक्षय भण्डार है। ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो मुहावरों से भरपूर भाषा में बात चीत करते हैं और अपने वार्तालाप को रोचक बना देते हैं।

इस अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कहावत वह शब्द-समूह है जो अपने में किसी घटना के साथ सम्बन्धित तथ्य को इस प्रकार छुपाये रहता है कि पाठक अथवा श्रोता स्वत: ही उसके द्वारा प्राप्त होने वाले उपदेश को समझ लेते हैं और उन पर इसका प्रभाव अपेक्षाकृत चिरस्थायी रहता है। संक्षिप्तता कहावत का आवश्यक अंग है, श्रोता के मस्तिष्क-तन्तुओं को जागृत करना इसकी विशेषता है तथा बनावटी भाषा से दूर रहना इसका गुण है। कहावत वह सूत्र-वाक्य होता है जो देखने में छोटा होता है परन्तु जिसका प्रभाव गम्भीर होता है।

किसी बोली में जितने अधिक मुहावरे होंगे, वह उतनी ही अधिक सशक्त होगी। मुहावरों अथवा कहावतों का निर्माण साहित्यकारों द्वारा नहीं किया जाता बल्कि जन-साधारण के अनुभव इनकी आधार-शिला होते हैं। कहावतें लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं की अपेक्षा लोक में प्रचलित होने के लिये अधिक समय लेती हैं क्योंकि लोक-मानस उन्हें अपनाने में जल्दबाजी का आश्रय नहीं लेता। साथ ही इन के प्रचार-प्रसार में लोक-मानस की रुचि का होना आवश्यक है। एक बार प्रचलित हो जाने पर वे स्थायी हो जाती हैं और भाषा का अभिन्न पर अंग बन जाती हैं।

---

1. टुग-छः, पा-वाला, अर्थात् छः वाला। यह किन्नर-क्षेत्र का एक परगना है।

यहां प्रचलित कुछ अन्य कहावतें इस प्रकार हैं—

1. नोऊ पीयू नाचेचे दू ।
   इसको चूहे नाच रहे हैं, अर्थात् भूख लगी है ।
2. मीगौनो स्कारो ज्ञरोत ।
   आंखों में तारे निकले । क्रोध आ गया ।
3. मी जिगिच् ख तेग ।
   आदमी छोटा टट्टी बड़ी । ऊंची दुकान फीका पकवान ।
3. ती बास्क्याङ् वाइच् क्रा बास्क्यङ् नाकिच् ।
   पानी की भांति पतला, बाल जैसा बारीक । किसी व्यक्ति अथवा वस्तु को पतला तथा बारीक बताने के लिए प्रयोग किया जाता है ।
5. पश्मू निपी लाब्मो हामी मा ब्योच ।
   बीजने के बाद काटने को कहीं भी नहीं जाता । किए हुए काम का फल जरूर मिलता है या बुराई करने के बाद भुगतना तो पड़ता ही है ।
6. आदाङ् बौस्त स्काद बोदी ।
   आधी चीज शब्द अधिक । अधजल गगरी ।
7. दामासिस शौ खोल खौल अनु बाले ।
   बैल (ने) मिट्टी (जमीन) खोद कर अपने सिर पर । मूर्ख आदमी अपने को ही नुकसान पहुंचाता है । मूर्ख का गढ़ा अपने लिए ।
8. मनो हिसाब माइच् सरसाईयू हिसाब ।
   मनों का हिसाब नहीं, सरसाई का हिसाब । जहां हिसाब रखना हो, वहां नहीं रखना । बड़ी वस्तु का हिसाब न रखना और छोटी गिनना ।
9. दूओच छोब बोदी ।
   दू (नमकीन हलवा) से शोरबा अधिक । बुरा करने के विचार वाले का अधिक बुरा हो जाना ।
10. माइमू रङ् शीमू ब्रोबली ।
    न होना और मरना बराबर । जब चीज पास न हो तो समझ लो कि आदमी मर गया ।
11. युग बाङोई माट्ू ।
    नीचे पांव ही नहीं हैं । घमण्ड इतना हो गया है कि पांव जमीन पर नहीं हैं ।
12. प्राच् रन्मा ख्यूची जरब ।
    अंगुली दे तो बाजू खींचना । थोड़ा उपकार करने पर अधिक की आशा, अनधिकार चेष्टा करना ।

13. फोचो वेरगा शेल। गधे को डण्डा ही दवाई। खराब आदमी मार पड़ने पर ही मानता है।

14. मिग जुब स्तारा डेन। आंख नीचे निगाह ऊपर। देखने में भला, कार्य खराब।

15. गरतक चाल्मा, डोकाङो मा ब्योशो।
गिरूंगा सोचे तो ढांक में नहीं जाना (था)। यदि परिणाम से डरते हो तो, खतरा नहीं मोल लेना था।

16. आऊ मनो सासङ् हेदू मनो ग्रासङ्।
अपनी मां का सांस, दूसरी मां का ग्रास। बच्चा अपनी मां से ही पलता है। अपनी मां की आशीष दूसरे की मां के ग्रास से बड़ी होती है।

17. चामाङ्स गस अनुकोचङी ताग्च।
हरिजन (जुलाहा) कपड़े अपनी तरफ को ही बुनता है। अपनी ही तारीफ करना, अपना लाभ सोचना।

18. चोक्तीस गर मा बङ्च।
टपकते पानी से घड़ा नहीं भरता। मांग कर कारोबार ठीक नहीं हो जाता।

19. प्रायी छाङ्स थुम्म मा बङ्च।
प्राये बच्चे से गोद नहीं भरती। अपना ही बच्चा सन्तोष देने वाला होता है।

20. कुमो नंगी बैरिङ अङ्गी।
अन्दर खाली बाहर पूरा। अधिक दिखावा पर अपने पास कुछ नहीं।

21. प्रच मलमा स्वी मा द्वक्च।
अंगुली काटे तो खून नहीं निकलता। इतना अधिक कंजूस कि यदि अंगुली भी काट दें तो खून देने के लिए वह भी तैयार नहीं।

22. प्रायी आशास सोदा बेरु। दूसरे की आशा से हमेशा धक्के। दुराशा से निराश भले।

23. फो डोकाङो पाती ओम्स।
हिरण ढांक में मांस का बंटवारा पहले। चीज के बिना हाथ आए ही हिस्से बांटना।

24. फ्या माएच मी पङ् सरगा[1] ब्योमा ले जागा माएच।
माया (किस्मत) नहीं तो आदमी को स्वर्ग जाने पर भी जगह नहीं।
बद किस्मत आदमी को दरार पड़ने पर भी जगह नहीं या स्वर्गङ्-स्वर्ग (आकाश) जाने पर भी स्थान नहीं।

---

1. सरगा—स्वर्ग, दरार या आकाश।

25. लोक्सू तुम्बियो ले मिगो ।

लोगों के सिर के पीछे भी आँखें हैं । लोगों को भोला मत समझना ।

26. दम मी रङ् उशरा ले ब्योशो, मार मी रङ् जामू मा ब्योशो ।

अच्छे आदमी के साथ शौच भी जाना चाहिए, बुरे आदमी के साथ खाने को भी नहीं जाना चाहिए ।

27. फोचो बालङ् फाङ्स ।

गधे को अच्छा घास बरबाद (बुरा) । बालङ्—बटा हुआ घास । बुरे आदमी को अच्छा करना भी बुरा होता है ।

28. गोब जातक गाव । ज्यादा खाऊंगा करके कुछ भी नहीं मिलना-ज्यादा लालच बिल्कुल हानिकारक ।

29. तेते हुमा साँगाचो योछङ् । दादा की लाठी सीढ़ी के नीचे-बुढ़ापा सब को आता है ।

30. प्रायी पिश्टिङे नगार । दूसरे की पीठ पर बोझ । दूसरों पर अपने काम थोंप देना ।

31. जान तङ् तङ् चोरस । चिथड़े देख कर चोर (समझना) । खराब कपड़े देख कर ही बुरा आदमी समझ लेना ।

32. यवा माइचो थ्वा । नीचे नहीं ऊपर । नीचे न देख कर ऊपर देखना, घमण्ड करना ।

33. तेलङो दोर ती ।

तेल में पानी । घाव में नमक छिड़कना ।

34. फोचो छोतरी रिन्मा ले होदे ची ।

गधे की पूंछ नापे तो भी उतनी ही होगी—शैतान की खुशामद से लाभ नहीं ।

35. राङो देन युने ।

डूबता सूर्य कण्ढे (चोटी) पर का सूर्य—बुढ़ापा ।

36. हेदो लाटासो बन्नो सो माऊ लाटासो काम्मो ।

औरों के बहरे को हंसाना, अपने बहरे को रुलाना । अपनों की परवाह न करना दूसरों को खुश रखना ।

37. रागोन दोर तोबाङ् ।

पत्थरों में तूम्बा । पत्थरीले रास्ते पर तूम्बे की तरह लुढ़कना (बार बार गिरना) ।

38. हुजू थुग थुग दुक्ती छोब ।

मुसीबत पड़ कर गुठलियों को पीस कर शोरबा। मुसीबत में आकर घटिया चीज को अच्छा समझना।

39. कुईरन दोर ग्राटाङ्।

कुत्तों के बीच पत्थर। कुत्ते 'हूं हूं' करते समय जब पत्थर से पीटे जाते हैं तो वे पत्थर दूसरे ने ही मारा होगा, ऐसा सोच कर खूब लड़ते हैं। दो आदमियों के बारे में तीसरे आदमी का चुगली लगाना।

40. अङ् शेखीस ग ई ब्राल्तक।

मेरी शेखी से मैं ही गिरूंगा। शेखी को अच्छा न समझना।

41. दाम चाल्मा आऊ, मार चाल्मा शूना।

अच्छा सोचे तो अपना, बुरा सोचे तो राक्षस (भूत)। जब अच्छा काम हो गया तो मैंने किया, बुरा हुआ तो भूत ने।

42. कन फ्यारो बोस्पा।

तेरे माथे में राख। तेरी किस्मत में कुछ भी नहीं।

43. त्योंग पीशे जाब्शीमा पीयू मा जाच।
ज्यादा बिल्लियां इकट्ठी हों (तो) चूहे नहीं खातीं। ज्यादा आदमियों में लाभ कम।

लोकोक्तियों का गहन अध्ययन करने पर किसी समाज का लोकवार्तापरक अध्ययन सुगम हो जाता है परन्तु सत्य यह है कि मुहावरे व लोकोक्तियां संकलित करने में समय तथा सुविधा का होना आवश्यक है।

किन्नर-पहेलियां

किन्नर पहेलियों को निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

1. वस्तु सम्बन्धी।
2. जीव सम्बन्धी।
3. फल सम्बन्धी।
4. घर सम्बन्धी।
5. प्रकृति सम्बन्धी।

1. **वस्तु-सम्बन्धी—**

1. ठैन ठैन रानियू सान्तनि बाबू। ठक ठक की आवाज करने वाला बनावटी बाबू। चिमटो—चिमटा।

2. ओमुनेस्लो चकरी मद।

रास्ते के किनारे चकोर के पांव के निशान। छुम्मो मद—लाठी के निशान।

3. कोटिचो मागोलस तुबचो गोलच ।
सन्दूक में नहीं आता है पर मुट्ठी में आ जाता है । तुपुक—बन्दूक ।
4. ओमो यङ् थङ् जन जनी मोद् ।
रास्ते के दोनों ओर पाँव के निशान । छुम्मो मद—लाठी के निशान ।
5. युगती खवाचो थुग मे बारो ।
नीचे पानी उबल रहा है, ऊपर आग सुलग (जल) रही है । चिलम—हुक्का ।

2. जीव-सम्बन्धी—
1. ओरू पोरू गाजना मजे वाना युनतिङ् ।
इधर उधर से गाँठ वाला और बीच से पतला । कोंकोणे—चिऊंटी ।
2. पाङ्चू योठङ् डिमारिच ।
पत्थर के नीचे बिल्कुल चुप । सौको—बिच्छू ।
3. अरु परू गाजुल्ठ्या माजो पेरे जुन्ठङ् ।
इधर उधर से गाँठ वाला और बीच से पतला । कोंकणे—चिऊंटी ।

3. फल सम्बन्धी—
1. आँयाँ रस खुरोङों चूते जोल्याशिम ।
अन्धेरे खुड्ड में कोयल लटक रहे हैं । दाखङ्—अंगूर ।
2. पोमरऊ देन फारोट चाम ।
बर्फ वाले पहाड़ पर चीरी हुई लकड़ी नाचती है । डङ्खरु पुग—तुलसी की मोड़ी[1] ।

4. घर सम्बन्धी—
1. ठोग अज ती तुइङ्च्यो श्वीग अज ती तुङ् तुङ् बच् ।
सफेद बकरी पानी पीने जा रही है और लाल बकरी पानी पी कर आ रही है । पोले लानो—पोल्टू बनाना ।

एक पोल्टू को तेल में डाला जाता है, उस समय वह कच्चा व सफेद होता है तथा दूसरे को कड़ाही से निकाला जाता है, वह लाल हो गया होता है ।

2. आन्ते तेयो राल्डङ् मिग ।
मेरे दादा की आँख स्वर्ग (की तरफ) । दुस्सरङ्—चिमनी[2] ।

5. प्रकृति सम्बन्धी—
1. नारो नारो नारशिम माश्कोच ।
गिन गिन कर भी गिरना कठिन । कारो (स्कारो)—आकाश के तारे ।

---

1. भुना हुआ अनाज ।
2. छत पर धूआं निकलने के लिए बनाई गई चिमनी ।

2. हो हो शब्दङ् खस खुलू बदरङ् ।

'हो हो' के शब्द से मिलता जुलता आया । रीशुर—ग्लेशियर ।

इत्यादि ।

अति प्राचीन काल से विश्व की सब संस्कृतियों में बुद्धि-चातुर्य को विशेष उपलब्धि समझा जाता रहा है । हम प्रति दिन जिन वस्तुओं को देखते हैं उनके नामों से उन्हें जानने के यत्न भी करते हैं परन्तु पहेली अथवा प्रहेलिका में किसी साधारण बात को इस ढंग से पूछा जाता है कि श्रोता अथवा पाठक के मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और गणित के प्रश्न की भाँति उसका उत्तर ढूंढने के लिये वह अपने ज्ञान-चक्षुओं को खोल कर शीघ्रातिशीघ्र समाधान प्राप्त करने की चेष्टा करता है।

पहेली को किन्नर समाज में बुद्धि-परीक्षा की दृष्टि से आवश्यक माना जाता है । बच्चे तथा बूढ़े पहेलियां कहने तथा सुनने में बहुत रुचि लेते हैं । यही कारण है कि यहां हजारों पहेलियां प्रचलित हैं तथा उनमें सन्तोषजनक रूप से वृद्धि भी होती जा रही है । लोकोक्ति अथवा मुहावरे की भाँति पहेली भी संक्षिप्त वाक्य होता है परन्तु उसमें लाक्षणिकता नहीं होती । वह प्रश्न के रूप में पूछी जाती है तथा श्रोता को यथा-शीघ्र उसका उत्तर देना पड़ता है ।

किन्नर बोली में पहेली को 'स्यानो चीठी' की भांति 'शस्त्रङ्' कहा जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द 'शास्त्रङ्' से संक्षिप्त होकर बना है । शिमला जिला के उपरि क्षेत्रों में इसे 'बूझगे की कौथा' कहा जाता है । किन्नर-लोग 'शास्त्रङ्' को मनोरंजन का बहुत बड़ा साधन मानते हैं और रात को अंगीठी के पास बैठ कर पर्याप्त समय तक इन्हें कहा सुना जाता है । लोकोक्तियों तथा कहावतों की भाँति शास्त्रङ् भी यहां के लोक-साहित्य का आवश्यक अंग है ।

हमने पहेलियों को लोकोक्ति साहित्य के अन्तर्गत इस लिए रखा है कि बुद्धि-परीक्षा का माध्यम होने के साथ ही इनका लोकोक्ति साहित्य में अपना स्थान है। शास्त्रङ् का प्रयोग शास्त्रार्थ की भाँति किया जाता है । पहेली पूछने वाला श्रोता को हराना चाहता है और श्रोता अपने ज्ञान के आधार पर उत्तर दे कर प्रश्नकर्ता से नई पहेली पूछता है । इस क्षेत्र में हजारों की संख्या में पहेलियाँ प्रचलित हैं वर्गीकरण के उद्देश्य से केवल कुछ का वर्णन प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत किया जा सका है । आशा है पुस्तक के कलेवर को दृष्टिगत रखते हुए विद्वान पाठक इसे अपर्याप्त नहीं समझेंगे । लोकोक्ति साहित्य की सरिता समाज में अबाध गति से बह रही है । इसकी सीमा-रेखा निर्धारित करना न ही तो सम्भव हुआ है और न होगा । निश्चित रूप से यह साहित्य हमारे मौखिक 'शास्त्र' हैं जिन्हें जन-वाणी रूपी स्रोतस्विनी का संरक्षण प्राप्त है।

6 त्यौहार–उत्सव

वर्गीकरण :

किन्नर-समाज बहु-त्यौहार-प्रधान है। यहां वर्ष भर में पचास से भी अधिक त्यौहार मनाए जाते हैं। इस क्षेत्र में मनाए जाने वाले त्यौहारों को संस्कारों की दृष्टि से तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. हिन्दू-धर्म सम्बन्धी त्यौहार।
2. बौद्ध-धर्म सम्बन्धी त्यौहार।
3. आदिम जातीय/प्रागैतिहासिक त्यौहार।

हिन्दू धर्म सम्बन्धी त्यौहार इस क्षेत्र में दो प्रकार से मनाए जाते हैं :—

प्रथम—वे उत्सव जिन के नाम भारतवर्ष के शेष भागों में मनाए जाने वाले त्यौहारों के अनुरूप हैं, यथा—दीवाली, फागुली, बीशू, शिवरात्रि आदि।

द्वितीय—वे उत्सव जिनके नाम संस्कृत के नामों के अपभ्रंश हैं, यथा—दकरैणी (दक्षिणायन), शोणेचङ् (श्रावणी), अश्लेचङ् (आषाढ़ी) आदि।

बौद्ध-धर्म सम्बन्धी त्यौहार उन क्षेत्रों में ही प्रचलित हैं जहां लामाओं का प्रभाव अधिक है। इनमें प्रमुख त्यौहार 'लोसर' होता है।

प्रागैतिहासिक/आदिम जातीय त्यौहारों में फुल्याच, चैंत्रोल, शूपितङ् हुराङ् तथा रागुल आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

इस वर्गीकरण को निम्न प्रकार से भी स्पष्ट किया जा सकता है :—

त्यौहार–उत्सव

1. **हिन्दू-धर्म सम्बन्धी** :—
   1. वार्षिक :—
      - अ. चैंत्रोल।
      - आ. बीशू।
      - इ. ज्येष्टङ्।
      - ई. अश्लेचङ्।
      - उ. शोनेचङ्।
      - ऊ. दीवाली।
      - ए. जाग्रो।

ऐ. फागुली।
तथा ओ. शिवरात्रि।
2. मासिक :—
अ. साजो।
आ. पौणासिङ् (पूर्णमाशी)।
3. अनिश्चित् :—
क. पौरिष्टाङ् (प्रतिष्ठा)।
आ. जातरङ् (यात्रा)।
तथा इ. होमङ् (होम-हवन)।

1. **बौद्ध-धर्म सम्बन्धी** :—
1. वार्षिक :—
अ. लोसर।
आ. रमदँस।
इ. लामोच्।
ई. शिरकिन।
उ. ञिने।
ऊ. कुमञोद।
तथा ए. छ्याङ् कुल्मा।
2. आवश्यकतानुसार :—
अ. रमनस।
आ. गोम्पा ञाल्खा।
इ. कङ्ग्युर ञाल्मा।
तथा ई. पजा।

3. **आदिम जातीय/प्रागैतिहासिक** :—
1. फूलों से सम्बन्धित :—
अ. फुल्याच, उख्याङ् अथवा फुलाइच।
आ. ऐराटङ् अथवा ऐराचङ्।
इ. नमङ्न।
तथा ई. छोटा फुल्याच।
2. देवताओं तथा भूत-प्रेतों से सम्बन्धित :—
अ. माहङ् सोङा (साङा)-पन्द्रह माघ।
आ. खेपा।
इ. चैत्रोल।
तथा ई. शू पितङ् हूराङ्।
3. पितरों से सम्बन्धित :—
अ. डकरेणी/दकरेणी/दक्खणेणी।
आ. दीवाल—बड़ा व छोटा।
इ. खेपा।

तथा ई. सुस्कर।

इस क्षेत्र में मनाए जाने वाले त्यौहारों का एक और वर्गीकरण क्षेत्रों के आधार पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है :—

1. सारे किन्नौर में मनाए जाने वाले त्यौहार।
2. क्षेत्र विशेष—में मनाए जाने वाले त्यौहार।
3. गांव—विशेष में मनाए जाने वाले त्यौहार।

इस वर्गीकरण को इस प्रकार अधिक स्पष्ट किया जा सकता है :—

त्यौहार
↓

सारे क्षेत्र में मनाए जाने वाले।	क्षेत्र-विशेष में मनाए जाने वाले।	गांव-विशेष में मनाए जाने वाले त्यौहार।
उख्याङ् फागुली डकरेणी।	दीवाल, लोसर, माहङ् साङा, खेपा, बल, छोटा दीवाल।	शिरकिन, कन्ज्युर जाल्मा, लामा जुल्खा, ऐराटङ् उख्यानिङ्, पीटग पूजा आदि।
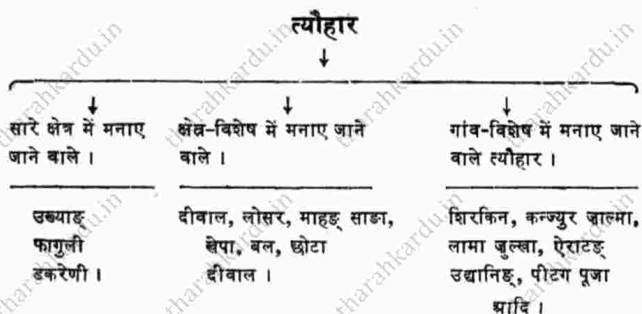
किन्नर-त्यौहारों का एक अन्य वर्गीकरण अनुष्ठान से सम्बन्धित भी हो सकता है, यथा—

त्यौहार
↓

मासों से सम्बन्धित।	देवी-देवताओं से सम्बन्धित	भूत-प्रेतों से सम्बन्धित	पितरों से सम्बन्धित
चैंत्रोल, बीशू, ज्येष्टङ्, अश्लेचङ्, शोनेचङ्, फागुली।	शू जब, रागुल, माहङ् साङा, फागुली, शूसारिङो फीमिग।	फुल्याच, चैंत्रोल, कुमजोद, नमङ्न।	दकरेणी, उख्याङ्।
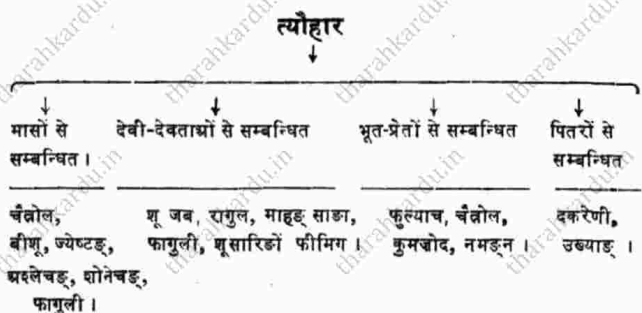
इस अध्याय में वर्ष भर के त्यौहारों का अध्ययन मासिक क्रम से प्रस्तुत किया गया है।

त्यौहार तथा उनके मनाने के ढंग :

चैंत्रोल :

चगांव गांव में चैंत्रोल के त्यौहार में एक विशेष परिवार का व्यक्ति अपने सिर

पर 'खोर'[1] लगाता तथा देवता के कपड़े पहनता है। उसकी गर्दन के पास लकड़ी का बना हुआ 'लिंग' लटका दिया जाता है तथा पेट से नीचे एक छुनछुनी बांध दी जाती है। युवक इन दोनों वस्तुओं को हिलाते तथा 'खोन'[2] को तंग करते हैं। ग्राम-युवक लिंगाकार लम्बी लकड़ियां ले कर अश्लील शब्द बोलते हैं। 'खोन' का गिरना तथा हंसना अपशकुन माना जाता है। 'खोर' को वर्ष में इसी दिन देव-मन्दिर से निकाला जाता है तथा प्रातः से पूर्व फिर वहीं रख दिया जाता है।

इस अवसर पर गांव का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति सिरे से मोटी तथा गोल लिंगाकार लकड़ी सन्थङ् में लाता है। इस लकड़ी को 'चैंत्रोल शिङ्'[3] कहा जाता है। इस रात सभी व्यक्तियों को अश्लीलता-प्रदर्शन तथा अश्लील-भाषण की छूट रहती है।[4] सभी लोग 'चैंत्रोल-शिङों' से खोन को चारों ओर से घेर लेते हैं। खोन को बहुत धीमी गति से 'सन्थङ्' में आगे तथा पीछे चलना पड़ता है। चैंत्रोल-शिङों वाले व्यक्ति

---

1. खोर—यह ब्रेकलिङ् नामक लकड़ी का बनाया गया राक्षस का प्रतीक चेहरा (मुखौटा) है। 'खोन' इसे अपने सिर पर पहनता है। यह एक ओर से टूटा हुआ है। कहते हैं कि इसे प्राचीन समय में 'खोन' अपने मुंह के आगे पहनता था पर एक बार यह गिर गया था। ब्रेकलिङ् की अब केवल झाड़ियां ही मिलती हैं इतने बड़े वृक्ष नहीं कि उनसे इस प्रकार का नया मुखौटा बनाया जा सके।
2. खोन—राक्षस, खोर पहनने वाला व्यक्ति 'खोन' कहलाता है। यह देवता के कपड़े पहनता है। इसे राक्षस का प्रतिनिधि माना जाता है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में 'राक्षस' गांव में आकर ग्रामीणों को खा जाया करता था परन्तु बाद में ग्राम-देवता ने उसके साथ समझौता किया था जिस के अनुसार वह अब गांव में नहीं आता।
3. चैंत्रोल शिङ्—चैंत्रोल की लकड़ी। यह लकड़ी किसी भी वृक्ष की हो सकती है परन्तु इस का सिरा मोटा होना आवश्यक माना जाता है। कहा जाता है कि कुछ वर्ष पहले तक लोग इन लकड़ियों को रंग बिरंगा बना कर लाते थे। ये लकड़ियां लम्बी तथा टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं तथा 'शिश्न' का प्रतीक मानी जाती हैं।
4. ऐसा प्रतीत होता है कि यह नग्नता-प्रदर्शन का ही एक रूप है। ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं :

   In India the ceremonial use of Nudity is especially prevalent in North-East where the population is largely of Tibeto—Burman origin. For instance in Ram pur—a Bengal district bordering on Assam—in time of draught, the women set up by night a plaintain tree in honour of a non-Aryans god named Hudum Deo, and dance round it naked singing obscene songs. Mr. Penzer refers to a similar custom among the Meithei Women of Mani Pur, who also are not of Aryan stock, and in Assam and parts of Bengal, when one person wishes to insult another, he makes himself naked before him.

   —George A. Grierson, Forward of Vol. II of the Ocean of Story by N. M. Penzer, Page XII.

युवतियों के साथ भी अश्लील मजाक करते हैं, वे इसका बुरा नहीं मानतीं। सन्थङ् से निकल कर 'खोन' वादकों के साथ सारे गांव का चक्कर लगाता है। इस अवसर पर शोकपूर्ण ढंग से शंख[1] बजाए जाते हैं। गाँव का चक्कर काटने का अभिप्राय यह बताया जाता है कि प्राचीन समय में राक्षस इस रात गाँव में आते थे और निवासियों को खा जाते थे। बाद में देवता ने उन से यह समझौता किया कि वे गाँव में नहीं आएंगे। उसी समझौते की याद में यह उत्सव मनाया जाता है।

गाँव का चक्कर लगा चुकने के पश्चात् 'खोन' अपने घर वापिस चला जाता है। 'सन्थङ्' में हरिजनों द्वारा 'होरिङ् फो[2]' का लोक-स्वांग निकाला जाता है। इस स्वांग में दो युवक 'होरिङ् फो' बनते हैं। एक युवक दूसरे सीधे खड़े व्यक्ति की पीठ से अपना सिर लगा लेता है। उस पर तथा खड़े युवक पर दोहड़ू या कोई अन्य वस्त्र ओढ़ा दिया जाता है। खड़ा व्यक्ति सहारे के लिए अपने हाथों में दो लाठियां ले लेता है, उन्हें भी कपड़े से ढक दिया जाता है, ताकि वे लोगों को न दिखाई दें। आगे रहने वाले इस व्यक्ति के सिर पर दो बड़े बड़े सींग लगा दिये जाते हैं। ये सींग बनावटी होते हैं। इस व्यक्ति के मुख को बनावटी चेहरे से ढक दिया जाता है। अब यह आकृति एक विचित्र प्रकार के जानवर की सी लगती है। ढोल की आवाज से 'होरिङ्फो' आगे व पीछे चलता जाता है। 'होरिङ्फो' की पत्नी भी होती है जो कभी भूमि पर लेट जाती है और 'होरिङ्फो' उस पर लेट कर विचित्र सी हरकतें करता है[3]। उसकी पत्नी का स्वांग दूसरा मनुष्य करता है।

जब 'खोन' वापिस आता है तो उसके साथ कुल्हाड़ों (डंगरों) वाले दो व्यक्ति मशालें ले कर आते हैं। ये विचित्र पहनावा पहने तथा बनावटी चेहरे लगाए होते हैं। इन्हें 'सिहा' कहा जाता है। इनका कार्य अंगारे झाड़ कर सोये हुए व्यक्तियों को जगाना होता है। इसके पश्चात् खोन गांव के एक अन्य मार्ग से दर्शकों के साथ अपने घर तथा देवता की कोठी[4] में लौट जाता है जहां से साधारण कपड़ों में मेला (नृत्य) के लिये वापिस आता है। मेले में 'खोन' धुरी में तीन चक्कर लगाने के पश्चात्

---

1. किसी की मृत्यु के समय बजाए जाने वाले शहनाई की भांति लम्बे यन्त्र को स्थानीय भाषा में 'बुखरिङ्' कहा जाता है। यह ताम्बे की तूरी होती है।
2. होरिङ्—लकड़ी का ठेला, फो-जंगली जानवर (हरिण)। यदि शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो 'लकड़ी के ठेले की भाँति का जानवर' होगा। स्वाँग को देख कर यह नाम सार्थक भी प्रतीत होता है। यह प्रसिद्ध किन्नर-लोक-नाट्य है।
3. यह प्रदर्शन भी नग्नता-प्रदर्शन का रूप है जो राक्षसों को भगाने के उद्देश्य से किया जाता है। आश्चर्य नहीं कि लोग प्राचीन काल में नग्नता-प्रदर्शन भी करते रहे हों। श्री ऐन० ऐम० पेंजर नग्नता-प्रदर्शन के निम्न कारण बताते हैं :—

   1. Dread of Pollution, 2. Abnormal things, 3. Submission to the Spirit power, 4. To Shock the Spirits, 5. Clothes as Taboos and 6. Belief in the apotropaeie powers attributed to the sexual organs.
   —Ocean of Story, Vol. II, Page 117.
4. देवता का भण्डार।

मेले[1] को विसर्जित कर देता है। 'खोन' को वर्ष भर में देवता की अन्य कोई बेगार नहीं देनी पड़ती। ग्राम-देवता की पालकी को इस मेले के अवसर पर नहीं निकाला जाता।

पांगी गांव में भी चैत मास में ही चैत्रोल मनाया जाता है पर उस में केवल नृत्य-गायन का ही कार्य क्रम रहता है।

कामरू गांव में चैत्रोल चैत्र मास के नवरात्रों में मनाने की प्रथा है। उस दिन घरों की दीवारों पर जानवरों, फसलों तथा मनुष्यों के चित्र बनाये जाते हैं ताकि वर्ष में इन सब की वृद्धि हो। इस दिन प्रातःकाल गाय को दूहना शुभ माना जाता है।

बूआ गांव में भी 'चैत्रोल शिङ्' बनाने की प्रथा प्रचलित रही है। यहां भी तिथि देख कर चैत मास में मेला मनाया जाता है। प्रथम दिन घरों की सफाई की जाती है। दूसरे दिन 'हालेसों'[2] को पकवान दिए जाते हैं। तीसरे दिन घरों की दीवारों पर मनुष्यों, पशुओं तथा अनाज की बालियों आदि के चित्र बनाए जाते हैं। देवता को गांव के खेतों के रास्ते नीचे सड़क के किनारे अपने खेत में ले जाया जाता है। लोग इस अवसर पर अपने खेतों में पोल्टू[3] बनाते हैं तथा देवता को धूप देते हैं। सतलुज के किनारे के अपने खेत में पहुंच कर देवता को खेत के बीच बिठा दिया जाता है और सब लोग नमकीन हल्वा (दू) तैयार करने में लग जाते हैं। सड़क के पास पहुंचने पर पुजारी देवता की जटाओं से भूत–प्रेतों तथा जादू का प्रभाव दूर करने के लिए कांटेदार झाड़ियों से उसके रथ को बार बार झाड़ता है। सायंकाल गांव में लौट कर लोग गांव के बाहर हाण्डियां फोड़ते हैं। हाण्डी फोड़ने से भूत-प्रेतों को घर से भगाने का अर्थ लिया जाता है।

मेबर गांव में चैत्रोल चैत मास में शुक्ल पक्ष की निश्चित् तिथि को मनाया जाता है। घरों की दीवारों पर चित्र बनाए जाते हैं। यहां चैत्रोल को 'चित्रों का त्यौहार' माना जाता है। दूसरा दिन 'हन फुसमिग' अथवा 'खोङ् फुसमिग'[4] कहा जाता है। तोड़ी जाने वाली हाण्डी पर भी चित्रकारी की जाती है। हाण्डी में अनाज के छिल्के, जोगठी, पकवान तथा विशेष झाड़ी डाल कर उन्हें आग लगा दी जाती है। हाण्डी तोड़ने पर पोल्टुओं से खेलने की प्रथा भी प्रचलित है। घरों में आटे के बकरे अथवा मेमने[5] बना कर कोनों में रखे जाते हैं और प्रातःकाल सब से पहले इन मूर्तियों के

---

1. स्थानीय भाषा में मेले को 'कायङ्' कहा जाता है। 'मेला' विशिष्ट शब्द है इस का अर्थ त्यौहार अथवा नृत्य-गायन का कार्यक्रम होता है।
2. खेती के कार्य में सहायक हरिजनों को 'हालेस' कहा जाता है। इस का अर्थ 'हल चलाने वाला' होता है।
3. पूरियों की भांति तैयार किया जाने वाला पकवान खेतों में पोल्टू बनाने की प्रथा प्रायः प्रत्येक गांव में है, ऐसा विश्वास किया जाता है कि इससे फसल के तथा ग्राम-देवता प्रसन्न होते हैं।
4. हन या खोङ्-मिट्टी का बर्तन, फुसमिग-तोड़ना।
5. मेमने के लिए यहां दो शब्द प्रचलित हैं—'खड्डू' तथा 'हुल'। खड्डू छोटा मेमना होता है और हुल (कर अथवा कार) बड़ा।

दर्शन किये जाते हैं। इस कार्य को 'मिश्तो कारच'[1] कहा जाता है। प्रातः ही कुत्ता व कव्वा देखना अशुभ माना जाता है। बुरे तथा अभागे मनुष्यों के दर्शन भी अशुभ माने जाते हैं। रोपी गांव में भी चैत्रोल के दिन हाण्डी फोड़ने की प्रथा है। साङ्ला घाटी के गांवों तथा ठङ्गे आदि अनेक स्थानों में चैत्रोल में मेला नहीं लगाया जाता, लोग अपने घरों में पोल्टू आदि बना कर खाते हैं।

बीशू :—

बीशू किन्नर-क्षेत्र के अनेक गाँवों में मनाया जाने वाला वैशाख मास का प्रसिद्ध त्यौहार है। जिन गांवों में चैत्रोल नहीं मनाया जाता वहां बीशू ही वर्ष का पहला त्यौहार होता है।

चगांव—

देवता सजाया जाता है। देवता के कारदारों का कार्य-काल समाप्त हो जाता है और नये कारदार कार्य-भार सम्भाल लेते हैं। देवता के मुखड् (धातु के चेहरे) आदि की भी सफाई की जाती है। प्रत्येक चौथे वर्ष बीशू के दिन 'बल' मनाया जाता है जिस में देवता के मन्दिर से सब पुराने हथियारों को निकाल कर साफ किया जाता है। बाद में गाँव के पुरुषों के दो दल हो जाते हैं और आपस में उन हथियारों से कृत्रिम युद्ध करते हैं। देवता उस दिन सारे गाँव के गिर्द घुमाया जाता है। 'बल' में परिक्रमा करते समय देवता की पालकी को अनेक बार अदृश्य भूत-प्रेत घेर लेते हैं। बताया जाता है कि जब भूत-प्रेत देवता को रोक लेते हैं तो पालकी का भार बढ़ जाता है। इन ऐतिहासिक हथियारों से स्थान स्थान पर नृत्य किया जाता है[2]।

पांगी—

ऊपरवर्णित क्रम से कार्यक्रम मनाये जाते हैं। युवक तथा युवतियां एक बांस की भांति की लकड़ी 'स्कन' की पिचकारियां बनाते हैं। इन्हें स्कन टिपिक्च' कहा जाता है। इन से हवा भर कर कान में पिचकारी मारने से दर्द होता है।

मूरङ्—

चगांव गाँव के सम्बन्ध में वर्णित क्रम के अनुसार मेला लगता है। देवता चारों दिशाओं की ओर पूजा करता है ताकि राक्षसों का भय समाप्त हो जाए।

कानम—

लोग नदी में नहाते हैं। रात को सन्थङ् में मेला होता है। देवता को दूसरे दिन

---

1. मिश्तो–दर्शन, कारच्-मेमना, मेमने के दर्शन करना।

2. हिमाचल प्रदेश के शिमला ज़िला के अनेक स्थानों पर पुराने हथियारों को ले कर बीशू के दिन दो दलों में बंट कर लोग युद्ध करते हैं तथा जीता हुआ दल विजय-गान करता हुआ अपने गाँव लौटता है।

सजाया जाता है। मेले में सारी स्त्रियां सुन्दर कपड़े तथा गहने पहन कर आती हैं वरन् देवता की ओर से जुर्माना किया जाता है।

लिप्पा—

लोग एक विशेष स्थान से पानी लाने के लिये प्रातः काल ही घरों से निकल पड़ते हैं। इस पानी को गंगा जल के साथ मिला कर वर्ष भर के लिये रख लिया जाता है। देवता के मन्दिर की सफाई की जाती है, चमरङ्[1] धो कर सुखाया जाता है। अगले दिन डाचोम्पा ढांक के अन्दर बनी हुई पद्मसम्भव की मूर्ति को देखने के लिये युवक-युवतियां जाते हैं। यह स्थान दुर्गम है।

ग्याबुङ्—

ऊपरवर्णित कार्यक्रम यहां भी होता है परन्तु लोग पद्म-सम्भव की मूर्ति के दर्शनों को नहीं जाते।

मेबर—

मंगल या शनिवार को बीशू मनाया जाता है। देव-मन्दिर तथा मुखङ् आदि की सफाई की जाती है। माटिङ्[2] छाङा की पत्थरों को छोटी छोटी गोलियें को, जिन्हें दो अलग अलग स्थानों पर पांच व सात की संख्या में गत वर्ष के बीशू मेले के दिन गाड़ा गाया होता है, ढूंढा जाता है[3]। इन्हें साफ किया जाता है तथा मेमने की बलि दी जाती है और कच्चे अनाज से पूजा जाता है। अधपका मांस लोगों में बांट दिया जाता है। सब गोलियों को इकट्ठा रख कर बारी बारी से निशाना लगाया जाता है। जिस व्यक्ति के निशाने के द्वारा सारी गोलियां तितर बितर हो जाएं उसे सौभाग्यशाली माना जाता है। 'माटिङ् छाङा' को इस प्रकार जगाना पृथ्वी को सुसुप्तावस्था से जगाना माना जाता है। फुआल लोग 'पथरिङ्' तथा 'शुलू' नाम के फूल देवता को चढ़ाते हैं। चौथे वर्ष 'बल'[4] का मेला होता है। चगांव गांव में किये जाने वाले 'बल' सम्बन्धी सारे कार्यक्रम यहां भी किये जाते हैं। प्राचीन काल में 'बल' के दिन एक सूअर, एक मेमना, एक कव्वा, एक मुर्गा तथा एक बकरा बलि देने की प्रथा थी। प्राचीन काल के हथियारों को भी मेमने की बलि दी जाती है ताकि वे नुकसान न पहुंचाएं।

भावा घाटी—

कटगांव में बीशू में 'दू' (नमकीन हलवा) बनाया जाता है। महासू देवता का 'को'[5] देव-मन्दिर से निकाला जाता है तथा मेले में तीन फेरों में नचाया जाता है।

---

1. देवता की जटाएं जो याक के बालों की बनाई गई होती हैं।
2. माटिङ्-मिट्टी, छाङा–लड़के, मिट्टी के लड़के। ये कई गांवों में गृह-देवता माने जाते हैं।
3. ऐसा विश्वास है कि अनेक बार ये गोलियां अपने आप स्थान परिवर्तन कर लेती हैं तथा संख्या में बढ़ भी जाती हैं। इन का कम होना अपशकुन तथा बढ़ना शुभ शकुन माना जाता है।
4. 'बल' का अर्थ कुछ लोग 'बलि' लेते हैं। अब भी कई गांवों में इस दिन बलियां दी जाती हैं। इसका सम्बन्ध 'राजा बलि' से भी सम्भव है।
5. यह देवता का पवित्र लोटा होता है।

विश्वास किया जाता है कि 'क्रो' को नृत्य हेतु न निकालने से गांव में जंगली जानवर आ जाते हैं।

रारङ् गांव—

देवता की पालकी के साथ गाँव वाले सारे गाँव की परिक्रमा करते हैं।

रोपा गांव—

बीशू 20 बैशाख को मनाया जाता है। इस दिन देवता को नहीं निकाला जाता। पहले दिन चूली के वृक्ष का फल देवता को भेंट किया जाता है। फसल के सम्बन्ध में देवता के कारदारों से भविष्यवाणी करने को कहा जाता है। लोग फसलों के खेतों के बीच नृत्य करते हुए सन्थङ् में आते हैं। इससे अधिक फसल होने की आशा की जाती है।

सुङ्नम गांव—

देवता को नृत्य कराया जाता है। मन्दिर में 'प्रञ्जा'[1] (Pranjan) पहनाया जाता है। 'प्रञ्जा' को सन्थङ् से दूर नीचे फैंक दिया जाता है ताकि भूत-प्रेत प्रसन्न हों और फसल अच्छी हो जाए। गाँव के प्रत्येक घर से एक पत्था आटे की रोटियां तथा एक एक बोतल शराब मन्दिर में भेंट स्वरूप लाई जाती है। लोग इन वस्तुओं को बाँट कर खाते हैं।

जंगी—

देवता के साज-सामान को साफ किया जाता है। तीतुङ् की झाड़ियों से पिच-कारियां बना कर युवक-युवतियां खेलते हैं।

किन्नर-क्षेत्र में सुङ्रा गांव का बीशू बहुत प्रसिद्ध माना जाता है। यह बैशाख के दूसरे व तीसरे प्रविष्टे को मनाया जाता है। पहले दिन गाँव के बीच मन्दिर 'थानङ्' में मेला लगता है। इस समय एक स्वाँग निकाला जाता है जिसे देखने के लिए दूर दूर के लोग आते हैं। इस स्वांग में चगाँव गांव के चैखोल मेले की भांति 'खोन' निकलते हैं। ये संख्या में पाँच होते हैं।

सब से आगे चलने वाले 'खोने'[2] में तीन मनुष्य कार्य करते हैं। एक पुरुष खड़ा रहता है तथा दो उसकी पीठ के साथ सिर लगाते हैं। खड़े मनुष्य की पीठ के साथ एक ही मनुष्य का सिर लगता है तथा दूसरा उसके साथ उसके पीछे झुक कर उस की कमर पकड़ कर चलता है। इन तीनों मनुष्यों को कपड़े से ढक दिया जाता है ताकि लोग इन्हें पहचान न सकें। आगे के मनुष्य को बनावटी चेहरा जिसे आधा काला तथा आधा सफेद रंगा गया होता है, लगा दिया जाता है। तीन व्यक्तियों के इस राक्षस को 'मङ ख्वालस' कहा जाता है।

दूसरा एक अन्य व्यक्ति इस राक्षस की एक पत्नी बनाई जाती है, जिसे स्थानीय

---

1. प्रञ्जा जौ के सत्तू का बनाया जाता है। इस का आकार ऐसा होता है कि आटे के तीन कोण एक ही शृंखला में बनाए जाते हैं तथा उन में घी के टीके लगाए जाते हैं। यह लामाओं द्वारा बताई गई पूजा-विधि है।
2. चगाँव में इसे 'खोन' कहा जाता है।

वस्त्र, दोहड़ू व गहने आदि पहना कर बनावटी (काले तथा गोरे रंगे का) चेहरा लगा दिया जाता है। इसे 'छेच खोन'[1] अर्थात् 'स्त्री राक्षस' कहा जाता है। इसके बनावटी मुँह में एक बच्चा दिखाया गया होता है। यह इस बात का प्रतीक है कि यह राक्षसी बच्चों को खाती थी।

इस के बाद 'थर खोन'[2] अर्थात् 'बाघ राक्षस' बनाया जाता है। यह 'मङ-ख्वालस' राक्षस को भगाने के लिए होता है।

इनके पीछे 'होम खोन'[3] तथा 'कुई खोन[4] होते हैं। इन सब को भी बनावटी चेहरे लगाए गए होते हैं। बाघ, भालू तथा कुत्ता राक्षस, 'मङ् ख्वालस' तथा 'छेच्खोन' के पीछे सारे संथङ् में भागते हैं। वे मुंह बनाते तथा भद्दी हरकतें करते हैं। उपस्थित जन-समुदाय के लोग भी जी भर कर अश्लील बातें ऊंचे स्वर से बोलते जाते हैं। मेशुर व नारायण देवताओं को भी सजा कर सामने बिठा दिया जाता है। ये 'खोन' जब चक्कर लगाते हुए उन के पास से गुज़रते हैं तो बहुत भद्दी हरकते करते हैं। इन बनावटी चेहरों को 'रव्वर' कहते हैं। बताया जाता है कि कुछ वर्ष पूर्व तक 'चेत्रोल शिङ्' की भांति की लिंग-प्रतीकात्मक लकड़ियां यहां भी इस मेले में लाई जाती थीं परन्तु अब इन्हें बन्द कर दिया गया है।

इस प्रदर्शन के समाप्त होने पर 'खोने' रव्वरों को सिरों पर रख कर नाचते हैं। इन के नृत्य की पद-चाप शेष समय के नृत्य से भिन्न होती है। यह राक्षस-नृत्य समझा जाता है। इस समय कुछ 'खोने' 'होइशिया गो[5]' तथा दूसरे 'गिदादा'[6] कहते जाते हैं। इस स्वाँग के सम्बन्ध में भी बताया जाता है कि प्राचीन समय में राक्षस इस गाँव में आते थे और वे भाई-बहिन होते थे। उन्हें भगाने के लिए ही यह आयोजन किया जाता है। 'छेच खोन' को यद्यपि अब राक्षस-पत्नी माना जाता है परन्तु यह वास्तव में राक्षस-भगिनी का प्रतीक है जिस के सामने ऐसे शब्द बोले जाते हैं जिन्हें भाई-बहिन नहीं सुन सकते। जब 'खोने' सन्थङ् में घूम रहे होते हैं तो ताम्बे की तूरी 'बुखरिङ्' बजाई जाती है। इसे किसी की मृत्यु के समय ही बजाया जाता है। यह शोक-वादन होता है। यहां राक्षसों की मृत्यु की सूचना सम्भवतः इस के बजाने से दी जाती है। चगाँव में चैत्रोल के अवसर पर इसी प्रकार के वाद्य-यन्त्रों को बजाया जाता है।

जब 'खोने' अपना राक्षस-नृत्य समाप्त कर चुकते हैं तो वे अपने 'रव्वर' उतार कर मन्दिर के पास ही एक ऊंचे पत्थर पर चले जाते हैं। 'छेच-खोन' अपना दोहड़ू ऊपर व नीचे करके अश्लील-संकेत करती और पीठ के बल पत्थर पर लेट जाती है। बाद में 'खोने' में से एक पुरुष जा कर वैसी ही हरकतें करके उस के ऊपर लेट जाता है। इस

---

1. छेच्-स्त्री, खोन-राक्षस, स्त्री राक्षस।
2. थर-बाघ, खोन-राक्षस—बाघ राक्षस।
3. होम-भालू।
4. कुई-कुत्ता।
5-6. स्थानीय भाषा में इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है यह राक्षस-भाषा मानी जाती है।

प्रकार वे सब के सामने यौन-कार्य का बनावटी प्रदर्शन करते हैं। सब लोगों के सामने एक और 'युगल' भी इसी तरह कर प्रदर्शन करता है और इस के पश्चात् मेला समाप्त हो जाता है। 'खोने' केवल पुरुष ही बनते हैं, स्त्रियां नहीं।

कामरू गांव का बीशू एक अन्य विशेषता लिए हुए है। इस दिन देवता अपने ग्रोक्च के द्वारा सब लोगों को हल चलाने का मुहूर्त्त बताता है। हल चलाने के मुहूर्त्त को 'ऐटङ्'[1] कहा जाता है। हल एक विशेष वंश के खेत में चलाया जाता है। देवता का 'माली' पहले ही बता देता है कि दिन चढ़ने के कितनी घड़ी के बाद हल चलाने का मुहूर्त्त है। घड़ी गिनने का तरीका इस प्रकार है——एक बड़े बर्तन में पानी डाल दिया जाता है। इस बर्तन के पानी में कटोरा, जिस में छेद होता है, रख दिया जाता है। धीरे धीरे इस छेद से वह भर जाता है। ब्राह्म मुहूर्त्त में ही यह कार्य आरम्भ हो जाता है और प्राय: दिन चढ़ने तक समाप्त हो जाता है। नई फसल के लिए हल चलाने का यह प्रथम अवसर होता है। यह छेद वाली कटोरी हल चलाने वाले इस वंश के घर में ही रहती है। मेट द्वारा गाँव में यह सूचना दी जाती है कि अमुक व्यक्ति के घर पर कटोरी (घोरिङ्)[2] रखी गई है। शेष दो दिनों में केवल नृत्य-गान का कार्य-क्रम रहता है।

छित्कुल गाँव के बीशू में देवी को वर्ष में प्रथम बार निकाला जाता है और गाँव के लोग एक दिन मेले में नाचते हैं।

रिब्बा गाँव में भी बीशू वर्ष का प्रथम त्यौहार है। यह प्रथम वैशाख को मनाया जाता है। पहले दिन को 'बड़ा बीश' कहा जाता है। इस दिन देवता को सजा कर बारह बजे से पहले स्किबा गाँव ले जाया जाता है। पहले वहाँ रिस्पा गाँव का देवता भी लाया जाता था परन्तु अब नहीं लाया जाता है। अब स्किबा गांव की योगिन देवी का मूहरा भी निकाला जाता है। रिस्पा में 'माटी कुल्यो' देवता है। गाँव में दुर्गा है जिस की कोठी कम ही खुलती है। एक बार रिस्पा गाँव के लोग कहीं निचले प्रदेश से आते हुए अपने गाँव की देवी के साथ रिब्बा में ठहरे। रात को उन की वह देवी दुर्गा वहीं जमीन में धंस गई। रिब्बा के देवता ने तब दुर्गा को तो नहीं निकलवाया पर उन्हें नया देवता 'माटी कुल्यो' स्वयं बना कर दे दिया। स्किबा में मेला लगता है फिर शाम को 3,4 बजे देवता को वापिस ले जाते हैं। यह दिन बड़ा बीशू या 'जनता का बीश' माना जाता है।

इस त्यौहार का दूसरा दिन 'राजो बीश' कहा जाता है। इस दिन गांव के नौजवान 'केत' नाम की घास जो 'न्योल' में होती है, को ढांकों से 3,4 बोझ ला कर उस पत्ती के सब बोझों को इकट्ठा करके पालकी के साथ एक देवता बनाते हैं। फिर उसे देवता के मन्दिर में ले जा कर तथा असली देवता को मन्दिर में ही रख कर उस पत्तियों के देवता को नचाते हैं। नाचती बार ही युवक-युवतियां उस देवता को नोच कर टहनियां निकाल कर एक दूसरे को मारते हैं। इस प्रकार वह देवता समाप्त हो जाता है। बाद में वे पत्तियां वहीं फेंक दी जाती हैं। इस प्रकार पत्तियों का देवता बना कर नचाना और

1. 'ऐटङ्' निकालने का कार्य किल्बा से मेबर तक के गाँवों में अर्थात् उस सम्पूर्ण 'थोड़ी' में होता है।

2. घड़ी।

फिर उसे नष्ट कर देना मनुष्य की देव-संस्कृति पर विजय की भावना प्रकट करता है। यह आदिम संस्कार है।

इस क्षेत्र के प्रथम गांव कफौर में बीशू के त्यौहार के दिन मेला लगता है। त्यौहार प्रायः सारे गाँवों में बैशाख के प्रथम सप्ताह में मनाया जाता है।

ऐराटङ् :

चगांव—

केवल इसी गांव में मनाया जाता है। यह 25 ज्येष्ठ को होता है। लोग प्रातः चाय व सतू खाते हैं। कण्ठे से चुने हुए व्यक्ति शुर शुर[1] के फूल लाते हैं तथा मोलास्टिङ् के स्थान पर देवता को भेंट करते हैं। फूल लाने वाले लोगों के साथ आए अदृश्य भूतों को भगाने लिए लोग अश्लील बातें करते हैं। फूल हरिजनों को आरम्भ में नहीं छूने दिए जाते। नाले में लड़के-लड़कियां देवता व लोगों पर पानी फैंकते हैं। देवी का 'छत्रङ्' (छत्र) निकाला तथा नचाया जाता है।

फूलोरिङ् :

पांगी—

केवल पांगी गाँव में ही बैशाख मास में मनाया जाता है। दयार की सड़ी हुई लकड़ी को पीस कर कर बुरादा (स्पीठा) बना लेते हैं। 'स्पीठा' को लड़के रात के समय जोगठियों (मशालों) पर फैंकते हैं जिस के कारण चिंगारियां उठती हैं। कई लोग 'स्पीठा' में दारू भी मिलाते हैं जिस के कारण कपड़े आदि जलने का भय रहता है। स्पीठा आग लगाकर लोगों पर फैंका जाता है। इससे 'तिड़ तिड़' की आवाज होती है।

ज्येष्टङ् :

मुरङ्—

बीशू के अगले दिन मनाया जाता है। देवताओं के माली खेलते हैं तथा सेब, पालू, चूली और यल्ल के फूलों को देवता पर चढ़ाया जाता है। देवता को शुर और पौस का धूप दिया जाता है। देवता अपने भण्डार से लोगों में सत्तू बांटता है।

दकरेणी :

दकरेणी अथवा डकरेणी का त्यौहार श्रावण मास के आरम्भ में मनाया जाता है। यह किन्नौर का बहुत प्रसिद्ध मेला है। यह शब्द संस्कृत शब्द 'दक्षिणायन' का अपभ्रंश है। सूर्य-पूजा इस क्षेत्र में प्रचलित नहीं है परन्तु 'दक्षिणायन' का त्यौहार इस जाति का प्राचीन इतिहास ढूंढने में बहुत महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस त्यौहार के मनाने की तिथियां अलग अलग गाँवों में अपनी इच्छा तथा प्रथानुसार हैं।

पांगी गांव—

लोग लगभग 16,000 फुट ऊंची चोटी पीरी पर जाते हैं। एक बड़े मैदान के कोनों पर पूर्व-निश्चित अश्लील लोक-गीत गाया जाता है। लोक-गीत के बन्द होने पर लोग अश्लील बातें कहते हैं। लोग रात को बनस्पति के अभाव में धूप की लकड़ी जलाते हैं जो हरी होने के कारण बहुत धूंआं छोड़ती है। विशिष्ट गीतों की समाप्ति

---

1. एक प्रकार की पत्ती होती है, इस में सुगन्ध होती है। लोग इसे फूल कहते हैं।

पर ही भोजन किया जाता है। पत्थरों के चबूतरों (कोटङ्)[1] पर वर्ष भर में मृत परिजनों के नाम पर लोग झण्डे तथा खाने पीने की वस्तुएं चढ़ाते हैं। झण्डों के डण्डे मृतक की आयु के अनुसार लम्बे व छोटे होते हैं। 'ॐ मणि पद्मे हुं' के छपे हुए मन्त्र कपड़ों पर लगाए जाते हैं। एक ही परिवार में गुज़रे दो या अधिक व्यक्तियों के लिए एक ही कोटङ् पर एकाधिक झण्डे लगा दिए जाते हैं। हरिजनों के लिए अलग कोटङ् निश्चित हैं। ये सवर्णों के कोटङों से दूरी पर हैं। यहां मानव-बलि का स्थल भी है। इस स्थल पर एक चबूतरा तथा एक कोटङ् है। नर बलि अपरिचित व्यक्ति की दी जाती थी। मनुष्य व स्त्रियां अलग अलग समूहों में इस मैदान के दो किनारों पर चले जाते हैं। पुरुष अश्लील गायन तथा बारी बारी से दो दो के रूप में यौन-प्रदर्शन का स्वांग करते हुए स्त्रियों के समूह की ओर बढ़ते हैं। वे एक दूसरे से गुत्थम गुत्था हो कर मैदान में नीचे की ओर को लौटते जाते हैं। इसके पश्चात् डकरेणी का विशिष्ट गीत गाया जाता है। गीत में सभी दर्शकों का सम्मिलित होना आवश्यक माना जाता है। उपस्थित व्यक्ति सत्तू का आटा दूसरे लोगों के मुंह पर मलते हैं। दकरेणी के गीतों में सावणी देवियों की प्रार्थना तथा अभ्यर्थना होती है। पानी के अभाव में लस्सी के साथ खाना खाया जाता है। पीरी के लिए रास्ता अत्यन्त विकट है। पीरी में शराब पीने की मनाही होती है, अन्यथा देवता के अप्रसन्न हो जाने का भय रहता है। दिन में किन्नर-क्षेत्र में प्रचलित विवाह-पद्धति का स्वांग निकाला जाता है। विवाह-सम्बन्धी स्वांग

---

1. यहां मृतकों के नाम पर पत्थरों के चबूतरे बनाए जाते हैं, जिन पर विशेष उत्सवों के अवसरों पर झण्डियां चढ़ाई जाती हैं। इन चबूतरों को शकरी, शेखर, कोटङ् अथवा शखरि कहा जाता है। यह प्रथा समूचे किन्नर-क्षेत्र में विद्यमान है। ऐसी प्रथा लाहुल में भी है। रैरेण्ड ऐ० ऐच० फ्रैंके अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'A History of Western Tibet' में लिखते हैं :

There is a Certain ancient Custom which is observed now-a-days only in Manchat and which probably goes back to old Mundari times. It is custom of putting up a slab of stone by the road-side in Commemoration of a deceased person. These may be seen near every Village in Manchat. Those erected more recently have a spot sweared with oil in the Middle. Many of the stones are quite plain, but there are some which have a rock carving representing a human figure in the Centre, and others again have a sculpture representing the deceased person, in relief. — Page 187-188 Appendix II.

सतपुड़ा भीलों में भी इस प्रथा का प्रचलन है—

Luard has noted the speciality of Funerary movements of Satpura Bhils. They do not end with the erection of a stone about 3 ft. high with the effigy of the dead person carved on it. In front of such an effigy, two wooden posts, four and a half feet high are placed aport a cross bar is made and in this Cross bar again two pins in, their holes being sufficiently large for the pins to be operated as a swing, —Census of India, 1931, Vol. I, Part III, Page 50 & 54.

इस प्रथा के सम्बन्ध में यथा स्थान विचार किया गया है।

अनेक पर्वत चोटियों पर इस प्रकार के चबूतरे (कोटड़, शेखार अथवा मकरि) पितरों की याद में बनाए जाते हैं। उत्सवों के अवसर पर इन में झण्डे चढ़ाने की प्रथा है।

दकरंणी उत्सव के अवसर पर कोटड़ (मृतकों की याद में बनाए गए चबूतरे) पर दिवगत व्यक्तियों की याद में पकवान भेंट करने तथा झण्डे चढ़ाने की प्रथा है। सबसे बड़ा झण्डा सब से कम उम्र के व्यक्ति की याद में तथा सब से छोटा वृद्धों की याद में होता है।

में लड़की को भगा कर ले जाया जाता है। बिश्टू (माजोमी) समझौता कराता है। डोलङ्चिम (सास के पांवों पर झुकना) में रुपयों की बजाए पत्थरों के सिक्के दिए जाते हैं। स्वांग के दुल्हा दुल्हन बाद में अनेक बार वास्तविक दुल्हा-दुल्हन बन जाते हैं। स्वांग के लिए पांगी के लोगों के दो दल बन जाते हैं। दोनों के द्वारा विवाह-पद्धित का प्रदर्शन तथा लड़की को भगा कर ले जाने का यत्न किया जाता है। जवाङ् फूल को गांव में वापसी पर लोगों द्वारा लाया जाता है। पीरी से लौटे सभी लोग देवता की पालकी के नीचे से गुजरते हैं। पालकी के नीचे से गुजरने का यह अर्थ होता है कि यदि भूत-प्रेत कण्डे से आए हों तो वापिस लौट जाएं। मन्दिर में तीन घेरे मेला लगाया जाता है। देवता को तीसरे वर्ष काशङ् कण्ढा 'सतङ् ग्रामा' के स्थान पर ले जाया जाता है। तीन दिन तक कण्ढे में मेला लगता है।

मूरङ् गांव—

फुआल लोगों का कण्ढे से जोङ्जोर, रास्कल, खस्वल, सुशिलङ् तथा पाऊ फूल देवता की भेंट के लिये लाना, फूलों दो मण्डलियों द्वारा लाया जाना, दूर के कण्ढे वाली मण्डली का सायंकाल वापिस आकर फूलों को एक वृक्ष पर टांग देना, समीप के कण्ढे की टोली का दिन के समय वापिस आ जाना। एवं लामा द्वारा अन्न की वृद्धि के लिए एक मन्त्र द्वारा सब देवताओं का आह्वान इस मेले के मुख्य आकर्षण हैं। दूसरे सायं काल मेला समाप्त हो जाता है।

कानम गांव—

दकरेणी 13 सावन को होता है। इस दिन तेल व घी खाने की प्रथा है। तथा मेले में नाचने का कार्य-क्रम होता है।

लिप्पा—

कण्ढे के एक तालाब 'रोनम सोरङ्' के समीप नृत्य-गायन का कार्यक्रम।

कामरु—

देवता को 'जे विजे' तथा 'जोङगर' फूलों को भेंट किया जाता है। युवक-युवतियां कण्ढे में चोटी पर निकलते हैं।

मेबर गांव—

प्रथम श्रावण को मनाया जाता है। फुआल लोग 'जे विजे' फूल देवता को भेंट करते हैं। घर में लोग इस दिन घी, दूध तथा मक्खन खाते हैं। फुआलों का कण्ढे में भेड़ बकरियों के साथ प्रस्थान होता है।

वाङ्पो घाटी—

नृत्य गायन का कार्य-क्रम नहीं। लोग घरों में दीपक जलाते हैं तथा मन्दिर में ज्योति जलाई जाती है।

साङला गांव—

त्यौहार में घी, तेल तथा मक्खन खाना आवश्यक मानते हैं। चूली पकने की प्रसन्नता में त्यौहार का आयोजन किया जाता है।

चगांव—

साङ्ला के सम्बन्ध में वर्णित बातें यहां भी होती हैं।

रारङ्—

कण्डे में पितरों व सावनी देवियों की पूजा की जाती है। कण्डे में देवता के लिए फूल लाते हैं। अच्छा खाना खाते हैं।

सुङ्नम—

रात के समय मेले का आयोजन किया जाता है। भेड़, बकरी तथा गाय के बच्चों को माताओं का इस दिन से दूध पिलाना बन्द कर दिया जाता है। इन बच्चों को अलग खुड्ड में बान्धा जाना आरम्भ होता है।

जंगी गांव का यह त्यौहार शेष गांवों के त्यौहारों से नवीनता लिए हुए है। यह यह त्यौहार यहां श्रावण मास में मनाया जाता है। इस दिन लोग जंगल में जा कर लकड़ी के डण्डे लाते हैं फिर उन में रंग आदि चढ़ा कर उन्हें सुन्दर बनाया जाता है। शाम के समय दो लड़कों के शरीरों के साथ सब ओर घास लपेट दी जाती है। उन के पेट से नीचे थोड़े भाग में छाल बान्ध दी जाती है। इस छाल पर क्रमश: पुरुष व स्त्री के गुप्तांगों के चिन्ह बनाए जाते हैं।[1] गांव के पास ही 'अलङ्तीच' नामक पानी वाले स्थान से वे (लड़का तथा बनावटी लड़की) 'होरिङ्फो' के साथ सन्थङ् की ओर जाते हैं। लोगों द्वारा लाए गए तथा रंगे गए डण्डे भी इनके साथ ले जाए जाते हैं। डण्डे संख्या में अधिक नहीं होते पर पर्याप्त लम्बे होते हैं। और उन्हें दो, चार व्यक्ति खड़ा करके उठा कर 'सन्थङ्' के तीन चक्कर लगाते हैं। 'होरिङ्फो' लड़के व लड़कियों के पीछे दौड़ते तथा उन के साथ शरारतें करते हैं। डण्डों के साथ तीन चक्कर पूरा होने पर उन्हें फेंक दिया जाता है। उन डण्डों के सिरों को हरा घास बान्ध कर 'शिश्नमुण्ड' की भांति मोटा बनाया जाता है तथा उन को फेंकने पर उनके सिर टूटना आवश्यक है नहीं तो अपशकुन माना जाता है। इन डण्डों को 'शोशोल पशा'[2] कहा जाता है। 'होरिङ्फो' आपस में भी स्त्री-पुरुष संगम की सी शरारतें करते हैं। जब डण्डे फेंक दिए जाते हैं तो उन (लड़के व लड़की) को भी घास आदि से मुक्त कर दिया जाता है। इस के पश्चात् मेला होता है। लोग रात भर नाचते रहते हैं। 'होरिङ्फो' के मुंह पर एक विशेष कपड़ा 'राणी' जो देवता के यहां से मिलता है, लगाते हैं ताकि उन्हें (युवकों को) पहचाना न जा सके। डण्डे 20 या 25 फुट लम्बे होने चाहिएं। संख्या में इन का विषम होना तथा मन्दिर की ऊंचाई तक पहुंचना आवश्यक है नहीं तो देवता 'छेत्पा[2]' लगाता है।

सुङ्रा गांव में दकरेणिङ् का त्यौहार बड़े सादा ढंग से मनाया जाता है। यहां नृत्य और गायन के कार्यक्रम के अतिरिक्त और कोई आयोजन नहीं रहता। निचार गांव में घरों में रहने वाले पुरुषों की इस गांव के फुआलों के साथ जलती हुई मशालों के साथ लड़ाई होती है। मशालों की लड़ाई के इस मेले को 'हू हू' मेला भी कहा जाता

---

1. शोशोल—रंग बिरंगा, पशा-डण्डा।
2. बिरादरी अथवा देवता द्वारा किया गया जुर्माना।

है। इस मेले में फुग्राल लोग फूल लगा कर आते हैं और गांव वालों के दल के पास फूल नहीं होते। छित्कुल में यह त्योहार छित्कुल माथी की लड़की का विवाह कामरू देवता के साथ होने की प्रसन्नता में मनाया जाता है।

रकछम गांव में देवता के आदेश पर युवक कण्ढे से मेले के लिए फूल लाने जाते हैं। गांव की युवतियां युवकों को कण्ढे में ही भोजन बना कर खिलाती हैं। युवक उन्हें इस के बदले में अपनी इच्छानुसार पैसे देते हैं। लड़कियां अपनी ओर से देवता तथा लोगों को फूल देती हैं। देवता लड़कियों को कण्ढे से फूल लाने नहीं भेजता।

रिब्बा में इस मेले के लिए फुग्राल लोग कण्ढे से 'तीघुर' तथा 'ग्यलछो' फूल लाते हैं। मेले में लोग खूब नाचते हैं। कफौर गांव में भी इस मेले में लोग केवल नाचते तथा अच्छा खाना खाते हैं। रोघी गांव में पितरों की पूजा का विधान है। यहां यह उल्लेखनीय है कि पूह से परे के क्षेत्र में अनेक गांवों में दकरेणी का त्योहार नहीं मनाया जाता।

ऊपरवर्णित बातों को देखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दकरेणी एक बहुत प्राचीन त्योहार है। पांगी गांव में जो प्राचीन काल का नृत्य व गायन का कार्यक्रम पीरी नामक स्थान में होता है वह सिद्ध करता है कि यहां के आदि वासी वन-देवियों और ग्राम-देवताओं की प्रसन्नता के लिए नर-बलि का भी प्रयोग करते रहे हैं। वन-देवियों तथा भूत-प्रेतों को भगाने के लिए एक ओर तो सामाजिक रूप से अश्लील प्रदर्शन किए जाते हैं और दूसरे गीतों में उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे प्रसन्न हों और ग्रामीणों को कोई हानि न पहुंचाएं तथा पशु धन और धन-धान्य का लाभ प्रदान करें। आदिम मनुष्य के मन में दृश्य तथा अदृश्य प्राकृतिक वस्तुओं तथा वातावरण से जो डर का भाव झलकता था वह इन प्रदर्शनों तथा त्योहारों में स्पष्ट हो जाता है।

यदि इन अश्लील प्रदर्शनों को किन्हीं शरारती लोगों द्वारा प्रचारित की गई प्रथाएं मान लिया जाए तो हम आदिम मानव के मानसिक धरातल तक नहीं पहुंच सकते। यहां हर देवता इस लिए नहीं पूजा जाता कि वह सुख समृद्धि दे सकता है बल्कि इस लिए पूजा जाता है कि यदि उसकी पूजा न की गई तो वह अप्रसन्न हो कर मनुष्यों को कष्ट पहुंचाएगा। जंगी गांव में डण्डों की प्रथा भी केवल स्वांग मात्र नहीं है बल्कि उन भूत-प्रेतों को भगाने का ही एक ढंग है तथा इसी लिए देव-मन्दिर की ऊंचाई के समान लम्बे डण्डे बनाए जाते हैं।

क्योंकि बहुत से गांवों में इसी दिन पशुओं को कण्ढे में चार मास के लिए ले जाया जाता है अतः इस त्योहार को वन-देवताओं की पूजा के साथ अधिक सुगमता से जोड़ा जा सकता है। यहां यह सामान्य विश्वास है कि मृतकों की आत्माएं ऊंचे पहाड़ों पर ही निवास करती हैं अतः पितरों के लिए खाने पीने की सामग्री व झण्डे आदि पर्वत-शिखरों पर ही दिए व बनाए जाते हैं। इन सभी बातों को देखते हुए हम इस त्योहार को आदिम त्योहारों की श्रेणी में रख सकते हैं।

शोरंगटङ् :

इस त्योहार को 'शोणेचङ्' भी कहा जाता है। यह श्रावण मास में मनाया जाने वाला त्योहार है। अनेक गांवों में इसे मनाने की प्रथा नहीं है।

मेबर—

15 सावन को मनाया जाता है। फुश्राल लोग, 'रोडोर', 'लौस्करच', 'बछाऊ', 'शपाऊ' और 'शुशले श्रङ्' आदि फूल देवता को भेंट करते हैं। हवन भी किया जाता है।

कटगांव—

तिथि देख कर मेला होता है। शाशुर, शपौ, याङ् ऊ आदि फूल देवता द्वारा चुने गए लोग कण्ढे से लाते हैं। फूल लाने वाले दल का वापिस आने पर स्वागत किया जाता है। दल के लोग कायल व दयार के सूखे छिलके ले कर आते हैं। लोग अश्लील बोलते हैं। देवता को दूसरे दिन याङ्पा गांव ले जाया जाता है। वहां 'ओगोर' फूल की माला भेंट की जाती है। शोणेचङ् का गीत केवल इसी अवसर पर गाया जाता है।

रकछम—

शोणेटङ् 20 श्रावण को मनाया जाता है। ग्राम-देवता शमशीर को गांव की सारी जमीन में घुमाया जाता है। देवता सावनी देवियों को बकरे की बलि देता है।

पीटग पूजा[1] :

यह त्यौहार मूरङ् गांव में जौ की फसल पकने के समय मनाया जाता है। इस में मेला नहीं मनाया जाता परन्तु हलवा, फूल व दूध से देवता की पूजा की जाती है। सन्थङ् में केवल पुरुष ही इक्ट्ठे होते हैं।

रमदैस :

मेबर गांव में ज्येष्ट मास में पूर्णिमा के दिन अथवा किसी अन्य अवसर पर बारङ् गांव से लामा को बुलाया जाता है फिर सत्तू के आटे को गून्थ कर उसकी बत्तियां जैसी बना कर एक त्रिकोनाकार 'तोरमा' बनाया जाता है। इसके पश्चात् बौद्ध-धर्म की पोथियां पढ़ी जाती हैं। छः छः छटांक सत्तू प्रत्येक घर से इकट्ठे किए जाते हैं फिर उनके गोले बनाए जाते हैं। ये गोले सांयकाल सब लोगों में बांटे जाते हैं। यह सारा कार्य मन्दिर में ही होता है। ग्राम-देवता महेशुर भी इस कार्य में रुचि लेता है। यह बौद्ध-धर्म का त्यौहार है।

ऊख्याङ् :

'ऊख्याङ्'[2] का अर्थ है, 'फूल का देखना' अथवा 'फूल का मेला'। यह त्यौहार किन्नर-देश के प्रमुख त्यौहारों में से एक है। यह इस सारे क्षेत्र में मनाया जाता है। इसे फुलायच, नमङ्न, उखिङ् तथा मिन्थोको नामों से भी पुकारा जाता है।

पांगी गांव—

देवता की आज्ञा से 4 व्यक्ति कण्ढे से 'लोस्कर' तथा 'जोमर' फूल लाते हैं। फूल

---

1. पी-पीला, ट्ग या चग-जौ, पीटग का अर्थ 'पीला जौ' हुआ।
2. ऊ-फूल, रव्याङ्-देखना तथा यदि 'ऊ कायङ्' से बिगड़ कर यह शब्द बना हो तो इस का अर्थ 'फूलों का मेला' होगा।

लाने वाले एक रात फूलों के पास गाँव के बाहर ठहरते हैं। एक 'गितकारेस' के साथ गाते हुए ये लोग गाँव के सन्थङ् में प्रवेश करते हैं तथा घुरी में नाचते हैं। गाँव वाले इस दल का स्वागत करते हैं। इसके पश्चात् दो दिन तक सन्थङ् में मेला होता रहता है।

मूरङ्—

गाँव में 31 भादों से मेला होता है। पितरों के नाम पर घरों में पोल्टू बना कर उनके परिजन गाँव से ऊपर जंगल में ले जाते हैं। ग्रोक्च[1] बताता है कि श्राद्ध अच्छा हुआ अथवा नहीं। जिन के घर में वर्ष भर में किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई हो, उन्हें मेले में फूल तथा चूली के फल की गुठलियों की मालायें भेंट की जाती हैं और शोक समाप्त करवा दिया जाता है। तीसरे दिन युवक तथा युवतियां पहाड़ों की चोटियों से फूल लाने जाते हैं। वहां जो भी व्यक्ति तीन डालियों वाला 'ज़ोङन' फूल ढूढता है उसे दल का नेता मान लिया जाता है। ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार का केवल एक ही फूल मिलता है। देवताओं के ग्रोक्च अपने होंठों तथा गालों में सुइयां चुभा कर देवताओं की शक्तियों का प्रदर्शन करते हैं। नारेनस का ग्रोक्च एक व्यक्ति द्वारा उठाए गए 'तूरङ्' वाद्ययन्त्र पर दौड़ कर चढ़ता है और अपने गाल में सुई चुभाता है। राजाओं के शासन काल में राजा के कोष से दो दो रोटियां सब व्यक्तियों को इस मेले में मिलती थीं, अब देवता की ओर से दी जाती हैं। मेले में भूल करने वाले व्यक्ति को चौथे दिन देवता की ओर से 'छेत्पा' किया जाता है तथा जो व्यक्ति भेंट देना चाहे उसकी भेंट भी स्वीकार की जाती है। इस दिन मेले में अश्लील अवाजें भी लगाई जाती हैं। पांचवें दिन देवता द्वारा चारों दिशाओं में पूजा की जाती है। लोग तथा देवता गाँव में लौट आते हैं। ढाल, खुखरी तथा बर्छियों से सन्थङ् में मेला होता है। ग्रोक्च 'मङ्कुमचो'[2] देखता है। जो व्यक्ति इसमें दिखाई दे उसकी मृत्यु निकट समझी जाती है। शिकार देखना तथा तलवार से बकरे काटे जाते दिखाई देना बीमारी के सूचक माने जाते हैं। यदि फसल अच्छी होने की सम्भावना हो तो किसी व्यक्ति के हाथ में थाली अथवा चांदी दिखाई देती है। हाथ में खप्पर दिखाई देना भी बीमारी का सूचक है।

कानम, लिप्पा तथा लबरङ्—

'फुल्याच' का नाम मिन्थोको है। यह 18,19 भादों को होता है। 18 भादों को लोग लिप्पा के ऊपर एक स्थान 'चङमङ्' में जाते हैं। लिप्पा से वेर्जी वंश का एक व्यक्ति घोड़े पर लाया जाता है और वह घुरी में नाचता है। इसी मेले को 'चङमङ्' का मेला भी कहा जाता है। लिप्पा गाँव में फुल्याच का मेला कार्तिक मास में होता है, इसमें वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त हुए व्यक्तियों के नाम पर दान-दक्षिणा दी जाती

---

1. ग्रोक्च-देवता का कृपापात्र जिस के द्वारा देवता अपनी बात को लोगों को बताता है। ग्रोक्च पर देवता की शक्ति आती है।

2. मङ् कुमचो—एक प्रकार की भविष्यवाणी होती है जिस के अनुसार ग्रोक्च आंखें बन्द करके यह देखता है कि उसे क्या दिखाई देता है। यह स्वप्नावस्था सी होती है।

है इस दिन देवता को 'श्याम-सेरिङ्' स्थान पर ले जाया जाता है तथा उसे 'ब्रोङोर' तथा 'रुस्कुल' फूल भेंट किये जाते हैं।

हाङ्गो —नमङ्न, भादों, तिथि देख कर :—

डबला तथा अन्य ग्राम देवताओं की मूर्तियां नचाई जाती हैं। युवक युवतियां घोड़ों पर हङ्ला दर्रे पर जाते हैं। रात को सभी लोग शिमचालङ् स्थान पर ठहरते हैं। मृत व्यक्तियों (पितरों) के नाम पर उन की पसन्द की वस्तुएं भेंट की जाती हैं। किमशू, पाले ग्यलबो, दिग्दुम आदि देवताओं के माली खेलते हैं और चमत्कार से विभिन्न प्रकार के अनाज अपनी मुट्ठियों से तथा मिट्टी से निकालते हैं। एक बार एक माली (ग्रोकच) चमत्कार से सेब लाया था। गांव में मेला 3 दिन तक चलता है।

सुङ्नम, शावुङ्—नमङ्न, तिथि देख कर :—

स्थान के अतिरिक्त सभी अनुष्ठान प्रायः ऊपरवर्णित प्रकार के ही होते हैं।

लियो—नमङ्न 18 भादों :—

लोग घोड़ों तथा याकों पर ठुम ठुम थरङा स्थान पर जाते हैं। दूसरे दिन हांङ्गो की चोटी पर जाते हैं। वहां 'लदरा' फूल ढूंढने के लिये सब लोग जाते हैं। फुआल (गड़रिये) लोगों को शराब (छङ्) पिलाते तथा खाना खिलाते हैं। 'शङी दोघरी' में तीन वर्ष तक के शोक वाले परिवारों के लोग मिलते हैं। पितरों के लिये पत्थरों पर 'दरकाह'[1] में उनकी पसन्द की वस्तुएं सजाई जाती हैं। बाद में ये वस्तुएं लुहारों तथा हरिजनों को दे दी जाती हैं। घुड़ दौड़ होती है और लोग गांव के नम्बरदार के घर पर इकट्ठे होते हैं। इसके पश्चात् सब लोग 'हङ्स्पा' वंश के घर में जाते हैं। और वहां उस परिवार के लोगों के सिरों पर फूल मालाएं पहनाते हैं।

चांगों—नमङ्न :—

पितरों को दरकाह पर भोजन नहीं दिया जाता। शेष बातें सामान्य हैं।

कामरू—फुल्याच, 20 भादों :—

गांव की दो टोलियों को बारी बारी से कण्डे से फूल लाने के लिये जाना पड़ता है। फूल इकट्ठे करने से पहले सोनिग (सावणियों) की पूजा की जाती है तथा बलि दी जाती है। रसकरच, डोङ्गर, काचङ्स आदि फूल लाए जाते हैं तथा रात को गांव से बाहर रखे जाते हैं। बीस भादों को कोटङ् के पास पितरों को पोल्टू आदि बांटे जाते हैं। इस गांव में 'दङ् कायङ्' का त्यौहार देवता द्वारा तिथि निश्चित करने पर असौज में मनाया जाता है। दङ्-समाप्ति, उख्याङ्-फुल्याच अर्थात् फुल्याच की समाप्ति।

मेबर—फुल्याच, 18 भादों :—

क्योंकि गांव छोटा है अतः एक एक व्यक्ति प्रत्येक घर से फूल लाने के लिये जाता है।

---

1. किन्नौर के निचले भागों में इन्हें कोटङ्, खेखार, शकरी अथवा 'शकुरि' भी कहते हैं। ये पत्थरों के चबूतरे से होते हैं।

मेबर—फुल्याच 18 व 19 भादों :—

देवता को सजाया जाता है। इस दिन को 'ऊ श्रो' कहा जाता है। फूल (डोङगोर, लोस्करच, बछाऊ, जोल्छी, काचङस) लाने के लिये चुने हुए व्यक्ति कण्डे में भेजे जाते हैं। कुछ लोग 'ऊ श्राक्ठ' (फूलों की गुफा) में विश्राम करते हैं शेष (विषम संख्या में) फूल ढूढने जाते हैं। फूलों वाले स्थानों में जाने की श्राज्ञा इस से पूर्व मनुष्यों तथा पशुश्रों को नहीं होती। जो लोग 'फूलों की गुफा' में बैठते हैं वे फूलों को नहीं देखते और फूल वालों के श्राने पर छुप जाते हैं, नहीं तो अनिष्ट की आशंका रहती है। फूलों से देवता के लिए हार बनाए जाते हैं। हार तथा फूल वालों के गाँव के पास लौटने पर दोनों श्रोर से अश्लील शब्द बोले जाते हैं। 20 भादों को फूलों का देवता 'ऊ शेत[1]' गाँव के देवता के साथ भेंट करता है। इस दिन को 'रङ् टङ् (कण्डे पर चढ़ने का दिन) कहा जाता है।

21 भादों :—

ब्राह्ममुहूर्त्त में महासू देवता की पूजा की जाती है। दोपहर को देवता को सजा कर 'संथङ्' में निकाला जाता है। इस दिन को 'शङ्तरिङ् (श्रृंगार) का दिन' कहा जाता है।

22 भादों :—

'ऊ शेत' को तथा देवता को नचाया जाता है। बारा सौनिगे[2] की पूजा की जाती है तथा उन्हें वापिस कण्डे में भेजा जाता है। ऊ-फूल तथा 'ऊ शेत' एक डण्डे में लपेटे गए फूल। 'ऊ शेत' से फूल अलग करके लोगों में बांटे जाते हैं। यह दिन 'ऊ शेत बोजङ्' (कालियों अथवा फूलों की देवियों की विदाई की पूजा अथवा भोजन) कहा जाता है।

23 भादों :—

सायंकाल देवता 'काली पोदेन' (दयार का वृक्ष जहाँ काली का निवास माना जाता है) जाकर वापिस जाता है। वहां पोल्टू बनाए जाते हैं। बलि दी जाती है। वापिस जाने पर मेला लगता है। इस दिन को 'दङ् उल्याङ्' (समाप्ति का फुल्याच) कहा जाता है।

वाड़पो घाटी—फुल्याच, 10 कार्तिक :—

'छण्ट्यामो'[3] किया जाता है।

11,12 कार्तिक :—

कट्गांव के अतिरिक्त अन्य गाँवों के मृतकों के परिवार छण्ट्यामो करते हैं।

11 कार्तिक :—

महेशुर देवता को काफनू गाँव ले जाते हैं।

---

1. 'ऊ शेत' एक डण्डा होता है जिस पर फूल लपेटे गए होते हैं। इसे देवता के साथ नचाया जाता है।
2. वन देवियां अथवा काली देवियां। इनका निवास पर्वत-चोटियों पर माना जाता है। इन्हें साऊनिगे, सावनी, सावणी तथा साऊणी कहा जाता है।
3. 'छण्ट्यामो'-क्रिया कर्म। यहां मृतकों का क्रिया-कर्म पोल्टू आदि बांट कर फुल्याच के दिन किया जाता है। इस दिन मृतकों के परिवार वाले मन्दिर में लोगों को पोल्टू, शराब तथा मिठाइयां बांटते हैं।

14 कार्तिक :—

महेशुर देवता को याङ्पा गांव ले जाते हैं ।

15-16 कार्तिक :—

कावा व कटगांव में देवता लाया जाता है ।

17 कार्तिक :—

महासू देवता का छत्र एवं को मन्दिर से निकाले जाते हैं तथा ग्रोक्च देवता की शक्ति दिखाने के लिए अपने कपोल में सूई चुभाता है, इससे रक्त नहीं निकलता । सूई को चुभाकर ग्रोक्च अन्य लोगों के साथ तीन चक्कर मेला लगाता है । तीन चक्कर पूरे होने पर वह कम्बल ओढ़ कर कर सूई को अपने गाल से निकाल देता है । बाद में ग्राम-देवता से प्रदर्शन की सफलता के सम्बन्ध में पूछा जाता है ।

पांगी गांव—फुल्याच्, दशहरा के आस-पास :—

चार व्यक्ति कण्ढे से फूल लाते हैं । रात को फूलों के साथ गांव से बाहर ठहरते हैं । ये एक गितकारेस के साथ गाते हुए फूलों को सिरों पर लगा कर 'उख्याङ् संथङ्' में प्रवेश करते हैं । लोग मेले में अश्लील बातें बोलते हैं । तीसरे दिन 'उख्याङ् सन्थङ्[1]' से लोग गांव के मन्दिरों में आ जाते हैं ।

रारङ् :—

पितरों के नाम पर दान दिया जाता है ।

रोपा—ऊख्याङ्[2], 7 कार्तिक :—

हर घर के दरवाजे के पास एक बकरा काटा जाता है । यह भूतों को भगाने के लिए किया जाता है । पहला दिन 'खुरा' कहलाता है ।

8 कार्तिक :—

नृत्य तथा गायन का कार्यक्रम । दूसरा दिन 'जुग कायङ्' कहलाता है ।

9 कार्तिक :—

स्त्रियां आभूषण आदि पहन कर मेले में जाती हैं । वादक विशेष धुनें बजाते हैं । इस दिन को 'माजङ् कायङ्' (मध्य का मेला) कहा जाता है । हरिजन देवदार तथा न्योज़ों के वृक्षों से निकले सिन्दूर[3] को सब के मुंहों व सिरों पर मलते हैं । रात को भी मेला होता है । इस रात को 'माजङ् रातिङ् (मध्य की रात)' कहा जाता है ।

10 कार्तिक :—

मेला होता है । शादियां होती हैं । यह दिन दङ् कायङ्-समाप्ति का मेला कहा जाता है । पुत्रोत्पत्ति वाले परिवार सम्मिलित रूप से देवी के लिए एक बकरा भेंट करते हैं । बकरा भेंट किए जाने पर देवता 'टा शू लुख बेरखा'[4] के प्रतिनिधि भोज पत्र

---

1. उख्याङ् सन्थङ्-फुल्याच् का आंगन ।
2. उच्चारण का शुद्ध रूप 'उख्याङ्' है, 'ऊ' का अर्थ फूल होता है ।
3. लाल रंग का बुरादा जो वृक्षों में फल आने के समय झड़ता है ।
4. टा-लड़का, शू—देवता, लुख—शरीर के ऊपर चढ़ाना (मलना), बेरखा—डण्डा अर्थात् पुत्रोत्पत्ति पर देवता के डण्डे से मलना ।

के 'टाणू पर लुख बेरखा' से। पिताओं के कन्धों को बारी बारी से कपड़े हटा कर मलते हैं और ऊपर से शराब फैंकते हैं। हर पिता को छङ्[1] पिलाई जाती है। बकरे के माँस की छड़ों से गांव के लोग इस क्रिया के समय, शिशु (पुत्र) के पिता को पीटते हैं, बकरे के काटे जाने से पूर्व पुत्रों की माताएं बकरे के दोनों पांवों (खुरों) पर फूंक मारती हैं। मांस की छड़ें शाउ बेरखा (माँस का डण्डा) कहलाती हैं।

सुङ्नम्—उखिङ्, 19 भावों :—

युवक युवतियां घोड़ों पर चढ़ कर 'नालन्द' स्थान पर जाते है। नालन्द में पोल्टू सत्तू तथा शराब से सावनियों की पूजा की जाती है। बकरे की बलि दी जाती है।

20 **भावों** :—

'शकरी' पर पितरों का तर्पण किया जाता है। शकरियों पर 'शुरकू' धूप चढ़ाया जाता हैं। गाँव के पास लौटने पर आधे बजन्तरी दूसरों से वाद्य-वादन का मुकाबिला करते हैं। शौकीन लोग घोड़े दौड़ाते हैं। यहां देवता की शक्ति ग्रोक्च् पर आ जाती है। इस अवस्था को 'सङ् शिवङ्' कहा जाता है। 'चलान लोवङ्' के समय ग्रोक्च दान की सफलता अथवा असफलता पर अपने विचार व्यक्त करता है। सङ्-घुसना, शिव ङ्-देवता। चलान लोवङ्-दैवी शक्ति से बोलना। पहली बार आए हुए व्यक्ति से वादक रुपये पैसे मांगते हैं और फूल भेंट करते हैं। 'गुन्तापङ्' वंश के घर आटे की छोटी सी मनुष्य-मूर्ति बना कर तेल में तली जाती है और उसके काला होने पर ग्रोक्च् उबलते हुए तेल से निकालकर देवता की शक्ति से निचोड़ता जाता है पर उसे गर्मी अनुभव नहीं होती।

उस आटे के छोटे छोटे टुकड़े निकाल कर वह अनेक बार अपने मुंह में भी रखता जाता है पर उसका मुंह नहीं जलता। इस मूर्ति पर, तेल में उबलते समय शराब डाली जाती है, शराब से वह काली होती जाती है। ग्रोक्च् देवता की शक्ति आने पर खम्भे से जोर जोर की तीन टक्करें मारता है परन्तु उसे चोट नहीं लगती। 'छोङ् पापङ्' वंश के घर में भी यह कार्यक्रम दुहराया जाता है।

21,22,23 **भावों :—**

देवता को नृत्य कराया जाता है। मेला होता है।

सुन्नम—उखिङ, 24 भावों :—

देवता ओगला व फाफदा की फसल की रक्षा के लिए भेंट प्राप्त करता है।

जंगी—फुल्याच, भावों :—

पितरों के नाम पहाड़ पर भेंट दी जाती है। ढोबर कायङ् (ढोबर-दोपहर से पहले का समय तथा कायङ्-मेला) पहाड़ पर होता है। लोक कण्ढे से फूल लाते हैं।

पूह, फुल्याच :—

बकरे को फूल मालाएं पहनाई जाती हैं तथा उसे पितरों के नाम पर बलि दिया

---

1. न कशीद की हुई शराब। इसे किन्नौर के निचले भागों में छुदङ् कहा जाता है।

है। बाद में इन मालाओं को मृतक के सगे सम्बन्धी पहन लेते हैं।

सुकरा, फुल्याच, 12, 13 **असौज** :—

मृतकों के लिए पोल्दू दान दिये जाते हैं। 'चालिङ्' नृत्य में विशेष वंशों के लोग नृत्य करते समय शोकपूर्ण मुद्रा में रहते हैं तथा हंसते नहीं हैं। हंसने तथा बात करने पर अनिष्ट का भय रहता है। चालिङ् या चालङ् का अर्थ मेला लगाने अथवा नृत्य की गति होता हैं। यह विशेष प्रकार का नृत्य होता है। अन्य व्यक्ति अश्लील बातें करते हुए नर्तकों को हंसाने का यत्न करते हैं। यह नृत्य निश्चित समय पर आधी रात के समय आरम्भ होता है।

14 **असौज** :—

तीसरा दिन राक्षस नृत्य का दिन होता है। प्राचीन समय में 'बोरण्टू' वंश का एक व्यक्ति 'थानङ्' स्थान में नृत्य करने वाले भूत-प्रेतों से एक खण्डा (गुर्ज) ले आया था, उसे देवता की कोठी से निकाल कर तीन चक्करों के लिए उसी वंश के व्यक्ति को नृत्य के लिए दिया जाता है। शेष व्यक्ति इस समय 'ओ होई सियागो[1] कहते जाते हैं। अश्लील बातें करते तथा 'डङ्रे' कन्धे पर रखते हैं। इस नृत्य को 'गृदा' अर्थात् राक्षस-नृत्य कहा जाता है।

15 **असौज** :—

महासू कायङ् में 'क्रो' निकाला जाता है। दङ्कायङ् में केवल नृत्य-गान होता है।

रक्छम, फुल्याच, 20 **भादों** :—

कण्डे से फूल लाए जाते हैं। बजन्तरी फूल लाने वालों का स्वागत करते हैं।

21 **भादों** :—

लड़कियां तथा लड़के स्वेच्छा से फूल लाने के लिए कण्डे में जाते हैं। वे दो अलग दलों में बंट जाते हैं। 'थिवाङ्' पर पितरों के नाम पर पोल्टू आदि चढ़ाते हैं। थिवाङ्-कोटङ् (मृतकों के नाम पर बनाया गया चबूतरा) पर लड़कों के दो अलग दल हो जाते हैं। चार लड़के 'सोरो' कण्डे से फूल लाते हैं। लड़कियों के भी दो दल हो जाते हैं। एक दल फूल लाता है तथा दूसरा उपरवर्णित चार लड़कों की भलाई की कामना के गीत गाता है। वन-देवियों को बकरे की बलि दी जाती है। फूल लाने वालों के गाँव के समीप पहुंचने पर लोग उनका स्वागत करते हैं। घास के 8 पुतले बनाए जाते हैं जिनमें से एक ग्राम-देवता, सौनिगे तथा एक अन्य उसके रक्षक का प्रतीक होता है। फूल लाने वाले मृतकों के घरों से लाई गई वस्तुओं को खाकर उन्हें शोक-मुक्त करते हैं। इसे ऊ चव (फूल लाने) का दिन कहा जाता है। गाँव से बाहर ही फूल लाने वाले नाचते तथा ढलान से नीचे की ओर तीन बार पत्थर फेंकते हुए अश्लील वाक्य बोलते हैं।

22 **भादों** :—

चुने उखिङ् सब से बड़ा मेला होता है।

---

1. विशेष विवरण के लिए देखिये इसी ग्राम के बीशू त्योहार का वर्णन।

23 भादों :—

यर उखिङ् इस मेले का चौथा दिन होता है। यर—शेष, उखिङ्—फुल्याच।

24 भादों :—

यह दिन 'जम्म' कहा जाता है (जम्म का अर्थ गांव में उतरना होता है।) इस दिन भी मेला होता है। इस दिन सब लोग गाँव में वापिस आ जाते हैं।

कफौर—फुल्याच, 20 असौज :—

दो व्यक्ति बोझ बना कर कण्ढे से फूल लाते हैं। फूल लाने वाले 'ऊ पाला' कहे जाते हैं। कोटङ् अथवा शकरी नहीं होते परन्तु संथङ् में मृतकों के नाम पर पोल्टू बांटे जाते हैं। फूल लाने वालों को शराब पिलाई जाती है।

ठर्ड—उख्याङ् 31 भादों :—

मेले से 18 दिन पहले से देवता की पूजा नहीं की जाती क्योंकि विश्वास किया जाता है कि वह इन्द्रलोक चला जाता है। इस दिन देवता को 18 प्रकार के वाद्य-यन्त्र बजा कर इन्द्रलोक से वापिस बुलाया जाता है। एक विशेष गीत गाया जाता है।

एक मन्त्र, 'नङ् जोलोव जङ् जोलोव हो हो पादुमे मुलालाठी बौरेये लाठी जङ् जोलोव हो हो' कहा जाता है, जिसका अर्थ है—'इधर इधर जितने भी राक्षस हमारे (इस देवता के) पीछे आकर घूमते हैं उनका नाश भोजपत्र को आग लगाने की भांति कर दिया जाए।' पुजारी अपने गाल तथा जीभ में सुई चुभाता है। वह दोनों कन्धों में भी सुइयां चुभाता है। वह अपने सिर को जोर जोर से पत्थर से टकराता है, खाली बोतल में फूंक मार कर शराब भर देता है और अपने मुंह से नौ कोनों वाले मोती की भांति चमकते हुए सफेद पत्थर निकाल कर लोगों में बांटता है। सुई चुभोने को 'शोलङ् शेन्मिग' (सलाई लगाना) कहा जाता है। पुजारी कण्ढे से लौटने वाले लोगों के बाहर से पानी की लकीर लगाता है ताकि भूत-प्रेत उन के साथ सन्थङ् में न आ सकें। 'माजङ् उख्याङ्' के दिन फूल लाने वाले लोग प्रत्येक निवासी के घर जाते हैं और छतों पर खड़े हो कर घरों के अन्दर की जा रही बातों को सुनते हैं। यदि बुरी बात सुनाई दे तो अपशकुन समझा जाता है। त्यौहार के पांचवें दिन पुराने हथियारों के साथ नृत्य किया जाता है। इस दिन लोग अश्लील बातें भी बोलते हैं ताकि सावनी देवियां भाग जायें। इस त्यौहार के अवसर पर नंगा जौ तथा मक्खन से 'डकरेणी' पक्षी बनाया जाता है और मेले के पांचों दिन पूजा जाता है। मेले के छठे दिन 'किमशुआ जाग्रो' का नृत्य होता है। किमशू—गृह देवता। जाग्रो-मेला, पूजा।

रोघी—फुल्याच :—

कण्ढे से फूल लाए जाते हैं तथा पितरों के नाम पर दान आदि दिया जाता है। फूल लाने वाले सब लोगों के घर जा कर वंश की प्रशंसा तथा त्यौहार के गीत गाते हैं। गृह-स्वामी उन्हें पोल्टू तथा शराब भेंट करते हैं।

तरण्डा—फुल्याच, भादों :—

मेले के तीसरे दिन ग्राम-देवी चित्ररेखा अपने चमत्कार से खाली 'क्रो' को शराब से भर देती है[1]।

साङ्ला—फुल्याच, 20 भादों :—

कण्ढे से फूल लाए जाते हैं। पितरों के नाम पर दान-दक्षिणा दी जाती है।

कूनो, चारङ्—फुल्याच, 20 भादों :—

ऊपरवर्णित की भांति। ग्रोक्च् देवता की शक्ति से यह बताता है कि फूल लाने वालों को दो डण्ठलों वाला 'रोङोल' फूल कहां प्राप्त होगा? इस दिन की 'यरती ऊ दियूसङ् (यरती स्थान के फूल का दिन)' कहा जाता है।

फूलों की पूजा करके बिना मरोड़े तथा सफाई से तोड़ना पड़ता है नहीं तो सावनी देवियां ओले बरसाती हैं। ग्रोक्च् देव-शक्ति से फूल लाने वालों के साथ घटी घटनाओं का वर्णन करता है। ग्रोक्च् गाल में सलाई चुभा कर देवता को शक्ति का प्रदर्शन करता है। उसके मुंह से रक्त नहीं निकलता तथा पीड़ा का अनुभव नहीं होता। तीसरे दिन युवक तथा युवतियां अपनी इच्छानुसार कण्ढे से फूल लाते हैं। चौथे दिन बजन्तरी लोग उन्हें स्वागत करके सन्थङ् में वापिस लाते हैं। पांचवें दिन मृतकों के परिवारों को शोक-मुक्त किया जाता है। वे पोल्टू बांटते हैं।

चगांव—उख्याङ् 27 असौज :—

सारे घरों में पोल्टू बनाए जाते हैं।

28 असौज :—

आठ गितकारेस मोलास्टिङ् स्थान पर एक विशेष गीत गाते हैं। इस गीत के अनुसार आत्मा को रल्डङ् से दान प्राप्त करने के उद्देश्य से वापिस बुलाया जाता है। युवक रात को लोगों के घरों में जा कर शराब पीते हैं और प्रातःकाल मोलास्टिङ् स्थान में पहुंचते हैं। रल्डङ् किन्नर-कैलाश के समीप का पर्वत भाग है। यह किन्नरों का स्वर्ग है।

प्रातः काल देवता के एक छोटे से 'क्रो' के लिए लोग आपस में झगड़ते हैं। इस 'क्रो' को गितकारेसों तक पहुंचाने वाला व्यक्ति बहुत वीर समझा जाता है। देवता के नाम पर एक मेमने की बलि दी जाती है। देवता के क्रो से गिराए गए पानी को लोग अपने सिरों पर फैंकवाते हैं, यह सौभाग्य का चिन्ह समझा जाता है। दयोराटङ् में रात को लोग जोगठियां हाथ में ले कर नाचते हैं। इसे दयोराटङ् कायङ् कहा जाता है।

29 असौज :—

ग्राम-देवता मोलास्टिङ् में लाए जाते हैं। नारायण देवता का पुजारी एक दुपट्टा जोड़ कर कण्ढे की देवी 'नागिन' बनता है। उसके हाथ में 'क्रो' होता है और वह उस से पानी गिराता जाता है। गिरने वाले पानी से अपने सिरों को भिगोने के लिए लड़के एक दूसरे को धक्के दे कर नागिन के पास बढ़ते जाते हैं। नागिन के प्रतिनिधि को धुरी में नृत्य कराया जाता है। अश्लील आवाजें लगाई जाती हैं ताकि वह कण्ढे में

---

1. कुछ वर्ष पूर्व देवी इस सम्बन्ध में सफल नहीं हो सकी और कई लोग अब इसे सत्य पर आधारित नहीं मानते। विश्वास है कि देवी की परीक्षा नहीं ली जा सकती।

वापिस चली जाये। इस दिन को शू जब—देवता का आना या उतरना कहा जाता है।

30, 31 असौज :—

मेले का पांचवां दिन 'द्योगलङ् कायङ्' तथा अन्तिम दिन 'दङ् कायङ्' कहा जाता है। दयोगलङ् स्थान का नाम है।

फुल्याच त्यौहार की विशेषताएं :

1. इस त्यौहार में कण्ढों से ग्राम-देवताओं की भेंट के लिये फूल लाने की प्रथा है। यह इस क्षेत्र के प्राय: प्रत्येक गांव में प्रचलित है।

2. मृतकों के नाम पर शिखरों पर झण्डे चढ़ाये जाते हैं तथा दान देने की प्रथा है।

3. सावणी (सौनिगे) देवियों की पूजा की जाती है परन्तु उनका गांवों में प्रवेश रोकने के लिये ऊंचे स्वर से अश्लील बातें कही जाती हैं और यह विश्वास किया जाता है कि वन-देवियां अपने भाइयों के साथ गांवों में प्रवेश चाहती हैं तथा इस प्रकार के अश्लीलता भरे प्रदर्शन से लज्जा के कारण वापिस चली जाती हैं।

4. इस त्यौहार के अनेक गीतों में इस क्षेत्र में नर-बलि के प्रचलन के वर्णन भी मिलते हैं। ठङ्गे गांव में बैल की बलि के सम्बन्ध में भी किम्वदन्तियां तथा गीत प्रचलित हैं।

5—इस त्यौहार के दिन शोक-मुक्ति के लिये सन्थङ् में पोल्टू व शराब आदि बांटने की प्रथा है।

छोटा फुल्याच् :

यह त्यौहार सब ग्रामों में नहीं मनाया जाता। मूरङ् गांव में इस त्यौहार को शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को असौज अथवा कार्तिक के महीने में मनाया जाता है। इस में नाग-गृह-देवताओं को सुलाया जाता है। ग्रामङ् गांव में पत्थर का एक छोटा सा घर है उसके दरवाजे बन्द कर दिए जाते हैं और नाग-देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि वे सुसुप्तावस्था में भी ग्राम-वासियों तथा फसल आदि की रक्षा करें। इस में सावणी तथा की नागों की पूजा की जाती है।

कामरु गांव में मेले के अतिरिक्त कोई अनुष्ठान नहीं होता। सांगला में इस मेले में महासू देवता की अभ्यर्थना की जाती है। महासू देवता का माली एक ऊंचे डण्डे (टहनी) पर चढ़ जाता है और जलती हुई आग (अंगीठे) में छलांग लगाता है। टहनी को लोग पकड़े रहते हैं। वह देवता की शक्ति के कारण आग में नहीं जलता। इस टहनी को 'पोरायङ्'[1] कहा जाता है। बाद में टहनी को प्राप्त करने के लिए दो दलों का संघर्ष होता है। दूसरे दिन फुआल लोग याका[2] की कालिख को स्त्री-पुरुषों के मुखों पर मलते हैं। रक्छम गांव से भी इस त्यौहार के दिन ओकूच् आग में छलांग लगाता

---

1. कार्य पूरा होने का स्तम्भ।
2. गेहूं व जौ क काला दाना जो खराब हो गया होता है।

है। वहां भी इस दिन महासू देवता तथा सावनी देवियों की पूजा की जाती है। यह त्यौहार मेबर में भी मनाया जाता है। वहां भी सावनी देवियों तथा महासू देवता की पूजा का प्रचलन है।

शुकमङ् :

यह त्यौहार केवल मूरङ् गांव में ही मनाया जाता है। इसमें रात को हवन किया जाता है। यह छोटे फुल्याच् के 10,12 दिन के पश्चात् बुद्धवार, शुक्रवार, अथवा शनिवार को मनाया जाता है।

ऊ ओ[1] :

फूल लाने का यह त्यौहार रोपा घाटी में ही मनाया जाता है। इस घाटी में रोपा, ग्याबुङ्, छयाशो, सुन्नम तथा रुस्कुलङ् गांव हैं। इस में शकरियों पर पोल्टू आदि चढ़ाए जाते हैं। रोपा गांव में 'ऊ ओ' का त्यौहार 20 भादों को मनाया जाता है। कण्ढे से फूल लाए जाते हैं। फूल लाने वाले व्यक्ति बहुत लम्बे डण्डों को ऊपर से काट, चीर कर उन में फूल फंसा कर लाते हैं। कण्ढे में दो भौरों को फूलों में जीवित पकड़ा जाता है। इन भौरों तथा फूल लाने वालों के स्वागत के लिये गांव के लोग तथा देवी चण्डिका और युल्सा के ग्रोक्च् खड़े रहते हैं। ग्रोक्च् एक कांटेदार झाड़ी 'चोशुलिक' की टहनियां फैला कर खड़े होते हैं।

भंवरे लाने वाले दो व्यक्ति दायें तथा बायें कानों पर धागों से बन्धे, भंवरों वाले फूलों को लगा कर उन कांटों के नीचे से गुज़रते हैं। उस समय दोनों ग्रोक्च् एक एक फूल कानों पर से उठा लेते हैं और भंवरों के साथ ही शीघ्रता से उन्हें खा लेते हैं। सम्भवतः यह इस लिये किया जाता है कि फूल को जूठा करने के अपराध में भंवरे को दण्ड दिया जा सके। जब भंवरों को फूलों में बन्द किया जा रहा हो तो यदि वे उड़ जाएं तो गांव पर किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका रहती है। बाद में सभी व्यक्तियों को लोचा रिछेन जम्पो (रत्न भद्र-ग्याहरवीं शताब्दी) के मन्दिर की तीन परिक्रमाएं करनी आवश्यक होती हैं। इस के पश्चात् सब लोग सन्थङ् में चले जाते हैं और तीन फेरे मेला लगाते हैं।

21 भादों को कण्ढे में पिछले दिन गई हुई युवतियां युवकों को एक मकान में चाय पिलाती हैं।

22 भादों को 'युल्सा देवता का शोलङ्' लगाना कहते हैं। इस मेले में यदि 21 वर्ष से अधिक आयु के स्त्री व पुरुष सम्मिलित न हों तो उन्हें देवता की ओर से छेत्पा (जुर्माना) किया जाता है। युल्सा का ग्रोक्च् इस मेले में अकेला नाचता है और जो व्यक्ति उसे अच्छा लगे उस के सामने 'को' से पानी फैंकता है जिस का अर्थ देवता की कृपा होना समझा जाता है। इस से पहले वह देवता की शक्ति दिखाने के लिए अपने मुंह में एक कपोल से दूसरे कपोल तक सूई चुभाता है जिस से लहू नहीं निकलता। लोग नाचते हैं।

---

1. ऊ—फूल, ओ—लाना।

रङ्कोरङ् चिम[1] :

पर्वत-चोटियों पर चढ़ना किन्नरों की रुचि का विषय है। 'रङ् कोरङ् चिम' का उत्सव सब ग्रामों में नहीं मनाया जाता परन्तु जहां इस त्यौहार का प्रचलन है वहां युवक और युवतियां पहाड़ों पर चढ़ते, सावणी देवियों की पूजा करते तथा चोटियों के पास मेलों का आयोजन करते हैं। यह उत्सव जुलाई मास में मनाया जाता है।

जंगी गाँव में इस मेले के लिये देवता अपने कोष से सावणी देवियों की भेंट के लिए, बकरा खरीदने के लिए, गाँव वालों को पैसे देता है। शकरी पर पिछले वर्ष चढ़ाई गई झण्डियों को बदला जाता है।

ठङ्गे गांव में 'रङ् कोरङ् चिम' में फूल इकट्ठे करते समय जो आवाजें कण्ढे में सुनी जाती हैं, उन के आधार पर ग्रोक्च यह भविष्यवाणी करता है कि वर्ष भर में गाँव में क्या क्या घटनाएं होंगी। इस दिन कोई भी स्त्री मेले में घुरी में नृत्य कर सकती है। इस क्षेत्र में घुरी में नृत्य का अधिकार स्त्री को प्राप्त नहीं है। इस मेले में वही युवक तथा युवतियां जा सकते हैं जो सावन मास में पन्द्रह दिन मेला लगाते रहे हों। मेबर तथा साङ्ला गांवों में भी इस त्यौहार को प्राचीन काल से मनाया जाता रहा है। साङ्ला घाटी में इस प्रथा का प्रचलन अभी कुछ वर्ष पूर्व तक रहा है। अभी भी देवता इसे बन्द करने के पक्ष में नहीं हैं और जिन गांवों में इसे बन्द कर दिया गया था, उन में से भी अनेक में फिर आरम्भ कर दिया गया है। मेबर गाँव में भी यह उत्सव कुछ वर्ष के लिये बन्द रहा परन्तु देवता ने इसे फिर आरम्भ करवा दिया।

दीवाल :

दीवाल के त्योहार का दीवाली अथवा दीपावली से बहुत प्राचीन सम्बन्ध प्रतीत होता है। यह वर्तमान दीपमाला का प्रागैतिहासिक रूप है। नामकरण तथा मनाने के मास में दोनों त्यौहारों में बहुत अधिक साम्य है परन्तु उत्सव के अन्य अनुष्ठान दीपमाला से नहीं मिलते। इस त्यौहार का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। पूह डिवीजन के कुछ भागों को छोड़ कर यह सारे किन्नर-क्षेत्र का त्यौहार है। इस में साङ्ला आदि कुछ गांवों को छोड़ कर दीपक जलाने की प्रथा नहीं है।

साङ्ला, कामरु :—

यह त्यौहार दीपमाला के दिन मनाया जाता है। आंगन के कुछ भाग को लीप कर वहां नर्म अखरोटों के छिलकों के दीपक बना कर जलाते हैं। गोयने (गृह स्वामिनियां) वहां बैठे बच्चों को ओगले के चिल्टे बांटती हैं। लड़के-लड़कियां 'गाटो दीवाल तेग दीवाल बंट्टी कुल्ला बाहू' अर्थात्-छोटा दीवाल (और) बड़ा दीवाल प्राचीन काल से मनाए जाते हैं। तीन बार कहते हैं। उस रात परिवार का भोजन शलगम की सब्जी तथा चिल्टे होता है।

---

1. रङ्—पर्वत, कोरङ् चिम—भेंट करना। अर्थात् 'पर्वत के दर्शन करना'।

बगांव :—

घर के आंगन में पत्थर पर दीपक जलाये जाते हैं। हवन करना शुभ माना जाता है। इसे 'साङ् छामो' (जोगठी जलाना) कहा जाता है। 'राका राका दीवाले बाहू' अर्थात् 'दीवाल ऊपर जाओ' कहा जाता है।

पांगी :—

प्रथम रात्रि में 5 व्यक्ति 'खोन' बनते हैं। वे अलग अलग प्रकार के चेहरे (मुखौटे) लगाते हैं। यहां यह त्यौहार शेष भारत में मनाए जाने वाले दीपमाला के त्यौहार से 10,15 दिन बाद मनाया जाता है। 'खोन' अश्लील प्रदर्शन करते हैं और मेले में तीन फेरे नाचते हैं। तीसरी रात को फिर खोन निकलते हैं।

मूरङ् :—

मग्घर मास में दीवाली का त्यौहार मनाया जाता है। मृतकों के घरों से लाग सेब तथा अखरोट सन्थङ् में ले जा कर बांटते हैं।

लिप्पा :—

देवता को इस दिन रात को खेतों में घुमाया जाता है। इस के पश्चात् देवता की पालकी को लोसर तक खोल कर रख दिया जाता है।

मेबर, दीवाली मग्घर अमावस्या :—

घर के सब से नीचे के कमरे में अखरोट, मूड़ी[1] तथा वेहमी आदि से पूजा की जाती है। प्रथम दिन 'साङ्पन्च' अर्थात् जोगठी जलाने का दिन होता है तथा गेहूं आदि की मूड़ी से देवता की पूजा की जाती है। दूसरा दिन 'शू दातिङ्' अर्थात् देवता को दान करना कहा जाता है। मृतकों के नाम पर मूड़ी बांटी जाती है। तीसरा दिन 'शी दातिङ्[2]—मृतकों को दान का होता है।

सुङ्रा दीवाली, मग्घर :—

जोगठियां जलाई जाती हैं। देवता की ओर से लोगों में 'शुदङ्' बांटी जाती है। इस शुदङ् को 'बस फासुर' (शहद की शराब) भी कहा जाता है।

रखछम दीवाल :—

विश्वास किया जाता है कि यह त्यौहार 'बाणासुर' राक्षस को समाप्त करने की प्रसन्नता में मनाया जाता है। इस में दीपक नहीं जलाये जाते।

रिब्बा, कफौर, रोघी तथा मीरू दीवाल :—

नृत्य-गान का ही कार्यक्रम होता है।

छोटा दीवाल :

इस त्यौहार का प्रचलन साङ्ला घाटी के गांवों में सब से अधिक है। यह साधारणतया बड़े दीवाल अथवा दीवाली से एक मास पश्चात् मनाया जाता है।

---

1. भुना हुआ अनाज।
2. शी—मृतक, दातिङ्—दान अर्थात् मृतकों को दान।

साङ्ला छोटा दीवाल, दीपमाला से एक मास पश्चात् :—

चार व्यक्ति चार वंशों से देवता द्वारा चुने जाते हैं। ये मेले के प्रबन्धक होते हैं। इन्हें 'पोटोमङ्' कहा जाता है। तीन अन्य व्यक्ति पाँच या छः वर्ष की अवधि के लिये मनोनीत किये गए होते हैं। इन्हें 'जेठेरस' कहा जाता है। जेठेरस देवता के भण्डार से शराब तथा अन्य वस्तुएं देते हैं। पोटोमङ शुदङ् (न कशीद की हुई शराब) बनाते हैं। पोटोमङ् मेले से झाड़ियों के अजगर को काटने के उद्देश्य से देवता की स्वीकृति से दो 'सिहा' मनोनीत करते हैं। ये देवता के प्रतिनिधि माने जाते हैं। इनसे छूना अथवा बात करना अपराध माना जाता है। सिहा को 'जोल्या' भी कहा जाता है। सिहा को गहने तथा लाल चोगे पहनाए जाते हैं। श्बन नामक वृक्ष की छड़ियों से एक बहुत लम्बा अजगर जिसे 'बाणा' कहा जाता है, बनाया जाता है। परम्परा है कि प्राचीन समय में माँ-बेटा अजगर इस घाटी को निगलने के लिये आये थे। इन टहनियों से हरिजन बास्पा नदी के उस ओर साँप बनाते है। 'बाणा' लगभग दस-पन्द्रह हाथ लम्बा होता है। हरिजनों को बाद में शूकिम (शू–देवता किम–घर) स्थान पर शुदङ् पिलाई जाती है। शूकिम में जाने से पहले हरिजन 'बाणा' को बास्पा नदी पर ले जा कर पानी पिलाते हैं। इस सांप को सिर की ओर से हरिजन तथा पूंछ की ओर से सवर्ण पकड़ते हैं और जोलारिङ् स्थान पर ले जाते हैं। रास्ते में दोनों दल इसे अपनी अपनी ओर को खींचते हैं। जोलारिङ् में इस बनावटी साँप को कुण्डल बना कर रखा जाता है तथा एक बहुत अश्लील गाना गाया जाता है। साँप को सीधा करके दोनों सिहां तथा पुजारी उसे डंगरे से काट देते हैं। गाँव के लोग उन तिनकों को प्राप्त करने के लिये झपटते हैं। सांप के सिर को देवता के मन्दिर में ले जाया जाता है। बाद में सिहां सब के घरों में जाते हैं। दूसरे दिन गाँव के लड़के मिल कर उसी प्रकार एक छोटा साँप बनाते हैं और जोलारिङ् में काटते हैं। उन का कोई सिहां नहीं होता। यहां यह उल्लेखनीय है कि सिहां का पहनावा विचित्र होता है और वे लम्बी अचकनें पहने होते हैं।

निरमण्ड (जिला कुल्लू) बही :—

कुल्लू क्षेत्र के निरमण्ड गाँव के त्यौहार से इस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। निरमण्ड (नृमुण्ड) गाँव सांगला से लगभल 70 मील के अन्तर पर है। दोनों स्थानों में मनाए जाने वाले इस त्यौहार के अनुष्ठानों में अद्भुत समानता है।

इस गाँव में यह त्यौहार दीपमाला के ठीक एक मास पश्चात् आने वाली अमावस्या के दिन मनाया जाता है। रात को 8, 9 बजे से दस नामिया अखाड़ा, जहां परशुराम ऋषि का धूना है, में आग जलाई जाती है। लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठे इकट्ठे करके अंगीठा जला कर उसकी पूजा की जाती है। पूजा करने वाले कविराज[1] ब्राह्मण होते हैं। धूने के इर्द गिर्द केवल ब्राह्मण जाति के लोग नाचना तथा गाना आरम्भ करते हैं। इन गानों को स्थानीय भाषा में 'कण्डी' कहते हैं। इन में महाभारत तथा रामायण के युद्धों का वर्णन आता है।

---

1. ब्राह्मणों के इस वर्ग का कार्य पूजा-पाठ तथा नृत्य-गायन ही होता है।

आधी रात के समय 'गड़िए' राजपूत जो गाँव के एक भाग 'कोठी कण्ढी' में रहते हैं, आ कर नृत्य में शामिल हो जाते हैं। ये बड़ी तेजी से आते हैं जैसे किसी पर आक्रमण कर रहे हों।

ब्राह्म मुहूर्त में हरिजन 'देरच[1]' ले कर अखाड़े में आते हैं। इस मशाल को धूने में जला कर वे अखाड़े से बाहर निकलते हैं। इसके साथ सब हरिजन पुरुष गाँव के गिर्द चक्कर लगाते हैं। ये सभी गम्भीर आवाज में 'दयावलिए, दयावलिए' कहते हैं। इस चक्कर (परिक्रमा) को 'सिख फेर'[2] कहा जाता है। बाद में लौट कर वे बड़ी शीघ्रता से अखाड़े में प्रवेश करते हैं। इसके पश्चात् राजपूत व हरिजनों में 'देरच' के लिए छीना झपटी होती है।

ब्राह्मण लोग उसी समय हट कर एक ओर जाते हैं और राजपूत हरिजनों के साथ 'देरच' के लिए झगड़ते तथा कई राजपूत उसके कई भाग छीन लेते हैं। कुछ वाद्य-यंत्र तथा पजोहर[3] लेकर हरिजन लोग अखाड़े में आते हैं, इन के लिए भी छीना झपटी होती है। प्रातः काल होते ही मेला समाप्त हो जाता है। बाहर वाले लोग ब्राह्मणों के घर में खाना खाते हैं। गांव में हरिजनों के दो दल हैं, जिन्हें 'कोठकी शाट' (देवी की कोठी के साथ रहने वाले) तथा 'डमाकी शाट' (मन्दिर के साथ रहने वाले) कहते हैं। ये दोनों दल अपने अपने घरों से मूजी (मूज) लेकर एक खाली स्थान भोट पर अपने अपने रस्से बनाते हैं। अपने अपने रस्से ला कर दोनों दल बाजार में आते तथा नाचते हैं। वे इन रस्सों के साथ अढ़ाई अढ़ाई फेरे नाचते हैं। नाचकर रस्से (दोनों शाट) परशुराम के मन्दिर के प्रोल[4] के सामने रख देते हैं। फिर वे अपने घर जाकर खाते पीते हैं।

इन रस्सों के पास 'कविराज' आकर उन की पूजा करते हैं। ये रस्से सांप की कुण्डली की भांति रखे गए होते हैं। एक रस्से को ब्राह्मण आदि कोठी के बाहर निकालते हैं और परशुराम के धूने के पास से ले आते हैं। वे इसे परशुराम की कोठी के पिछली ओर 'ब्राह्मण' खेत में ले जाते हैं और वहां नाचते हैं। रस्से को कन्धे पर व हाथ में पकड़ कर नृत्य किया जाता है। वहां फिर रस्से वाला हरिजनों का दल कोठकी शाट (जो बड़ी मानी जाती है) आता है और वहां पजोहर से बजाते हुए अढ़ाई फेरे बिना रस्से से ब्राह्मणों के दल के सामने नाचता है। अढ़ाई फेरे लगा चुकने के पश्चात् बाजा बन्द हो जाता है और कथण्डा गांव के राजपूतों में से दो व्यक्ति तलवार ले कर उन के इर्द गिर्द नाचते रहते हैं। आध घण्टे के पश्चात् वे राजपूत ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे किसी को काटने ही वाले हों। नाचते नाचते वे उस बाहंड[5] पर टूट पड़ते हैं और उस को तीन टुकड़ों में काट देते हैं। इन टुकड़ों को ब्राह्मण, जिन की उन्हें ले जाने की

---

1. एक प्रकार की मशाल।
2. ग्रह—निवारण।
3. पांच वाद्य-यन्त्र—दो बांसुरियां, मांदवी (लम्बोतरा ढफाल), एक शंख तथा एक छैना।
4. मुख्य द्वार।
5. इस रस्से को 'बाहण्ड' कहा जाता है।

बारी होती है, अपने मुहल्लों में ले जाते हैं। टुकड़े बड़े अथवा छोटे भी हो सकते हैं। रस्सा 30 हाथ तक लम्बा तथा 6 इंच के लगभग मोटा होता है। प्राचीन समय में यह लम्बाई व मोटाई दोनों में अधिक होता था। इस के पश्चात् ब्राह्मण लोग इस मूंज को बांट लेते हैं।

बाजे वाले व ब्राह्मण 'शनाह' नामक खुले स्थान में इस के पश्चात् नाटी लगाते हैं। लोग तमाशा देखते हैं। यह नाटी सूर्यास्त तक चलती है। रस्सा ले जाने वाले तथा दूसरे ब्राह्मण भी नाचते हैं। रात को साधारण स्वांग आदि भी होते हैं, फिर सब लोग आराम करते हैं।

दूसरे दिन उसी समय दूसरे 'बाहंड' की पूजा होती है। दो मुहल्लों के लोग पिछले दिन की भांति इसे दूसरे स्थान 'ब्राह्मण' पर ले जाते हैं और उस के साथ वैसे ही नाचते हैं। इस दिन हरिजन नहीं नाचते। रस्सा काटा जाता है। फिर पिछले दिन वाली ही बातें दुहराई जाती है। ब्राह्मणों के पांच मुहल्लों में से एक मुहल्ला 'स्वाणू' के ब्राह्मण जो भिक्षु 'पुरोहित' माने जाते हैं, रस्से के टुकड़े किसी भी वर्ष नहीं लेते हैं। वे केवल दान लेने वाले माने जाते हैं।

यह रस्सा राक्षस या नाग का प्रतीक माना जाता है जो किसी समय जनता को हानि पहुंचाना चाहता है।

इस मेले में तलवारों वाले जो दो राजपूत होते हैं उनके साथ बातचीत हो सकती है। साङ्ला में वे सिहां कहलाते हैं। वे 'गाची' 'तथा चबगला छुबा' (जिसे छुम्बा कहते हैं) पहने होते हैं।

दोनों स्थानों के त्यौहारों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं :—

(1) दोनों स्थानों की प्रथाओं में समानता इस बात की सूचक है कि कभी प्राचीन काल में दोनों स्थानों के लोग एक ही स्थान पर रहते थे अथवा उन के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क बहुत घनिष्ट थे।

(2) साङ्ला के दीवाल के गीत में भी नागों का निरमण्ड से आना वर्णित है।

(3) 'बाणा' वे नाग हैं जो साङ्ला में राक्षसों के भेष बदल कर आए। इन 'बाणास' को यहां के नाग-देवताओं ने मार गिराया था। बाणा शब्द 'बाणासुर' से सम्बन्धित हो सकता है। किन्नौर के कई अन्य ग्रामों में भी बाणासुर की आत्मा सांप के रूप में निवास करती हुई मानी जाती है परन्तु निरमण्ड में इन रस्सों को 'बाहण्ड' कहा जाता है अतः बहुत सम्भव है कि 'बाणा' का बिगड़ कर 'बाहण्ड' बन गया हो।

(4) अब भी साङ्ला में चेथा आदि ऐसे वंश हैं जो अपने आप को निरमण्ड से आया हुआ बताते हैं परन्तु दीवाल के गीत के अनुसार 'बाणा' केवल साङ्ला ही गांव में नहीं गए बल्कि पांगी तथा अन्य गांवों से भी गए। दीवाल में सांप बनाकर काटने की प्रथा शेष गांवों में अब नहीं मिलती है। ऐसा प्रकट होता है कि निरमण्ड किसी समय

सांस्कृतिक गढ़ था जहां से अनेक प्रथाएं किन्नौर तथा अन्य स्थानों में फैलीं। सांप के रूप में राक्षस का जाना, नृतत्त्वशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण घटना है।

जाग्रो :

इस त्यौहार को 'जगरना' तथा 'जागङ्' भी कहा जाता है। यह मुख्य रूप से महासू देवता की पूजा का त्यौहार है।

मुरङ् गांव में यह त्यौहार जन्माष्टमी से चार दिन पूर्व होता है। इस में देवता अपनी कोठी के अट्ठारह चक्र लगाता है और अट्ठारह प्रकार के वाद्य-यन्त्रों से उस का स्वागत किया जाता है। इस में ग्राम-देवता की ओर से गांव की सुख-समृद्धि सम्बन्धी भविष्यवाणी की जाती है।

कामरु में 'जाग्रा' के अवसर पर 'ग्रोक्च' अंगीठे के बीच छलांग लगाकर उसे पार करता है परन्तु देवता की शक्ति के कारण नहीं जलता। वहां यह त्यौहार देवता के इन्द्रलोक से वापिस आने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। देवता भविष्वाणी करता है।

रिब्बा में देवता के लौटने पर 20 माघ को भी मेला होता है परन्तु जाग्रो वहां देवता की इन्द्रलोक को विदाई के सम्बन्ध में मनाया जाने वाला त्यौहार है। यह 16 व 17 माघ को मनाया जाता है।

साजो :

देवताओं की विदाई से सम्बन्धित एक अन्य त्यौहार है। इसे साजो (संक्रान्ति) कहा जाता है। लिप्पा गांव में इस दिन देवता की पालकी को खोल दिया जाता है और विश्वास किया जाता है कि वह इन्द्रलोक चला गया। मन्दिर के फर्श को लीपा जाता है तथा आशा की जाती है कि देवता स्वर्ग से लाई जाने वाली धन-सम्पदा का कुछ अंश उस फर्श पर फेंक देगा। इस दिन से मन्दिर को बन्द कर दिया जाता है।

कामरु गांव में यह नये वर्ष का त्यौहार माना जाता है। इस दिन पकाई जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में विश्वास किया जाता है कि वे वर्ष भर प्राप्त होती रहेंगी। इस दिन देवता 15 दिन के लिये 15 माघ तक इन्द्रपुरी चला जाता है। माहङ् सोङा (माघ पन्द्रह) को ग्रोक्च इन्द्रपुरी में देवता की उपलब्धियों के सम्बन्ध में लोगों को बताता है।

रक्छम गांव में 'साजो' का त्यौहार 28 माघ से 5 फाल्गुन तक मनाया जाता है। परम्परा है कि इस क्षेत्र में इन दिनों में जब देवता स्वर्ग चला जाता था तो प्राचीन समय में गांव में राक्षस आते थे। इस कठिनाई से बचने के लिए देवता ने 'महासू' तथा 'रङ्नू' गृह-देवताओं के ग्रोक्चों को अपनी अनुपस्थिति में गांव की रक्षा का भार सौंपा। ये दोनों ग्रोक्च अपने चेहरों पर राख मल कर खाल की टोपियां पहने दिन रात सारे गांव में घूमते रहते हैं। इन्हें 'साजी जारो' कहा जाता है। वे किसी घर से जो वस्तु मांगें, घर वालों को देनी पड़ती है। अन्त में राक्षसों को प्रसन्न करने के लिये बकरे की बलि दी जाती है। साङ्ला गांव में इस त्यौहार के दिन 'जूवा

फण्टिङ्' नाम का तरल पदार्थ जौ व चीने आदि को कूट कर तैयार किया जाता है। इसे ठण्डा होने के लिये रख दिया जाता है। यदि इस में ठण्डा होने पर अधिक दरारें पड़ें तो विश्वास किया जाता है कि वर्ष अच्छा बीतेगा पर यदि कम दरारें पड़ें तो अपशकुन माना जाता है।

इस अवसर पर जितने भी पकवान पकाए जाते हैं उन सब से देवी देवताओं की पूजा की जाती है। पूजा-मन्त्र स्थानीय भाषा में कहा जाता है, जो इस प्रकार है :—

'शू परा किमरा किमणू तोरो ना युङ बोशङ जूगो। कीनूना हुयु युङ् बोशो दाम साल फसल बच ज्ञा रिङों पजयामो मोनया जो। ग्रौ, ब्राग, हङ्, ओवली ना दूर ला ला कानारे ना ऊ खाको ना गीथङ् रङ् हरेक बातङ् ताङेस आमदनी बरगती खीन चया रीङ्। दुश्मनू खाको ना छार पङ्पङ्रारीङ्। जमीनू साल बुटी तोवयो दोरीङो चो दुग्यो, खुरो नोर चांग बुग्यो, पानठङो पेरा दुग्यो, बातङ् ताङेस ना नव निधि सर्व सिद्धि खिचेचा तारीङ'।

अर्थ—ऐ घर के देवी देवता! आज नए वर्ष का शुभागमन हुआ। आज इस नव वर्ष के स्मरण से हमारे खेतों (जमीनों) से अच्छी फसल हो इसी हेतु आप की सेवा में यह भेंट चढ़ाई जा रही है। ग्रह, भाग्य, जादू, भूत-प्रेतों को दूर करके, कानों में फूल लगा कर, मुंह में गीत के साथ, आय में बरकत हो। दुश्मन के मुंह में राख भर (कर) देना। जमीन के अन्दर (जितनी भी) पैदावार हो (है) और खेत की मेड़ में घास हो, खुड्ड में पालतू पशु हों, घर के भीतर परिवार हो, हर विषय के सम्बन्ध में सर्व सिद्धि नव निधिवान बना देना।

जातरङ् :

'बग्ग जातरङ्[1]' केवल ठङे गांव में मनाया जाता है। इसमें गांव की बीमारियों को दूर करने के लिए लामा लोग प्रातः से सायंकाल तक जप करते हैं। जप के पश्चात् आटा, मक्खन, मिट्टी तथा लकड़ी आदि वस्तुओं से भूत की मूर्ति बनाई जाती है। दो व्यक्ति 'बग्ग' पहन कर उस मूर्ति को देवता के साथ मन्त्र जपते हुए कयारुकू स्थान से बाहर ले जाते हैं। 'बग्ग' निकलते समय किसी व्यक्ति का सामने मिल जाना बुरा समझा जाता है। यदि ऐसा हो तो बीमार हो जाने का भय रहता है।

जाश्रा का त्यौहार महासू जिला का त्यौहार है परन्तु उस में भूत की मूर्ति नहीं बनाई जाती।

शुक्तोक :

यह मेला नमगिया में 14 भादों से आरम्भ हो कर 16 भादों तक रहता है। इसी का नाम अन्य क्षेत्रों में मिन्थोको, फुल्याच और नमङन है :

पहले दिन स्वेच्छा से युवक व युवतियां रात को दोघरी में पहुंच जाते हैं। खाना

---

1. 'बग्ग' का अर्थ स्थानीय भाषा में बनावटी चेहरा (मुखौटा) होता है। अनेक स्थानों पर इसे 'खोर' अथवा 'रव्वर' कहा जाता है।

खाते तथा रात भर नाचते हैं।

15 भादों को प्रातः खाना खाते हैं फिर 'याङ्कोकसा' चोटी पर चढ़ते हैं। वहां तोङ्गोरो और लादरा फूल इकट्ठे किये जाते हैं और उन्हें वे सिरों पर लगाते हैं तथा दूसरों के लिए इकट्ठे करके लाते हैं। जो व्यक्ति वहां प्रथम बार जाता है उसे दो फूल भेंट किये जाते हैं और उससे पांच या दस रुपये भेंटस्वरूप लिए जाते हैं जिन्हें सारे दल की सम्पत्ति समझा जाता है। बाद में वहां कुछ देर मेला लगता है। मेले का विशिष्ट गीत स्थान स्थान पर गाया जाता है और फिर लोग गाँव में वापिस आ जाते हैं। यहां मन्दिर से परे देवता के एक वृक्ष के पास 'सिमछोङो' में, जिनके घर से कोई गुजरा हो, वे मृतक के लिए उसकी पसन्द की वस्तुएं एक मेज पर सजाते हैं। देवता का ग्रोक्च बाद में एक एक मेज के पास जाता है और भरे हुए बर्तन प्रायः आधे हो जाते हैं। दूध, लस्सी, चाय व चखटी के सम्बन्ध में यह बात पूरी उतरती है कि उसे कोई अदृश्य शक्ति पी जाती है और माली उसे अपनी केतली से फिर भर देता है।

मृतक की याद आने पर इस समय घर वाले बहुत रोते पीटते हैं। वहां एक 'शुक्पा' का पेड़ है। उस पर बेसारा देवता का ग्रोक्च तीन बार सिर टकराता है। वह इतनी जोर से टक्कर लगाता है कि सारा वृक्ष हिल जाता है परन्तु फिर भी माली को कोई चोट नहीं आती। वहां से लोग सन्थङ में आते हैं, फिर मेला लगता है।

तीसरे दिन सब लोग इकट्ठे हो कर छङ् पीते और नृत्य करते हैं। शुक्तोक का त्यौहार पूह में भी मनाया जाता है। यह भादों में होता है, इस मेले में गाँव के सब लोग एक ऊँची चोटी 'हाङ्ला' पर जाते हैं। यह मेला वहां एक दिन तथा एक रात होता है। वहां एक चश्मा है, जहां से लोग एक 'क्रो' भर कर पानी लाते हैं। सब स्त्रियां व पुरुष उस चोटी पर से फूल व धूप जमा करके लाते हैं। यह फूलों का मेला होता है। थोड़े से फूल तथा 'क्रो' ऊपर नाले में रख देते हैं। इन्हें पानी में मिला दिया जाता है। इस नाले में पानी कम है, लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से पानी की कमी नहीं होती।

हङरङ में अनाज अच्छा होता है और पूह की जमीन इतनी अच्छी नहीं है। पूह की देवी (डबला) हाङ्गों के देवता (डबला) की बहिन है। इस मेले में बहिन अपने भाई से फल, फूलों तथा अनाजों की बरकत माँग कर लाती है और इसी लिए, लोग विश्वास करते हैं कि पूह में भी फसल अच्छी हो जाती है।

फागुली :

इस त्यौहार को सुस्कर भी कहा जाता है। पाँगी गांव में यह फागुन मास में मनाया जाता है। इस में अतिथि बुलाए जाते हैं।

कामरु गाँव में बसन्त पंचमी के दिन 'फारूली' (छोटी फागुली) का त्यौहार मनाया जाता है। उस दिन कागज पर रावण का चित्र बना कर उसे गाँव वाले बाणों से निशाना लगाते हैं। इसे 'लंका मारना' कहते हैं। रावण के चित्र को बड़ी कठिनाई से निशाना लगता है तत्पश्चात् लोग मेला लगाते हैं।

फागुली का त्यौहार इस गांव में 5 दिन मनाया जाता है। यह 'फागुली' से अलग होता है। पहले दिन पुजारी और दो चरवा कैलाश से आने वाली खड्ड गंगारङ् में जा कर नहाते हैं और वहां से पानी लाते हैं। तीन दिन तक वे शेष व्यक्तियों से अलग रहते हैं। जब भी उन्हें काम करना होता है, उन्हें नहाना पड़ता है। वे किले में बन्द रहने वाले देवता नारायण तथा लक्ष्मी को उस दिन निकालते हैं। इन मूर्तियों को पुराने समय के कपड़े पहना कर तीन दिन शूकिम मन्दिर में रखा जाता है। देवताओं तथा उन लोगों को कोई भी छू नहीं सकता। इस त्यौहार का पहला दिन 'शू जाम्मिग' कहा जाता है। दूसरा दिन 'नाशिम' कहा जाता है। इस दिन देवता बन्द होते हैं। यह आराम का दिन है, इस दिन कोई हलचल नहीं होती।

त्यौहार का तीसरा दिन 'माजोजिङ्' कहा जाता है, इस दिन देवताओं को मन्दिर से बाहर निकाला जाता है। पूजा की जाती है। सिन्दूर लगाया जाता है। नैवेद्य चढ़ाते हैं तथा उनका अभिनन्दन किया जाता है।

चौथा दिन इस मेले का महत्त्वपूर्ण दिन है। वही 3 व्यक्ति देवताओं को उठा कर दूर मन्दिर में ले जाते हैं। बड़सेरी, चांशू तथा साङ्ला से लोग 'डिवन्देन' में इकट्ठे होते हैं और देवताओं को डोली में चढ़ा कर दर्शन कराते हैं। उस दिन के त्यौहार का नाम 'डिवन' है। उसी दिन वापसी होती है और किले में आ जाते हैं।

पांचवें दिन 'परबोरायस' देवता को बाहर निकालते हैं, उस के साथ दो व्यक्ति (कर्मचारी) भी होते हैं जिन्हें 'सिहां' कहा जाता है। ये कर्मचारी 'परबोरायस' की निगरानी करते हैं। दो और व्यक्ति भी उनके साथ होते हैं जिन्हें 'चारस' कहते हैं। ये देवता को उठाते हैं। चार व्यक्ति बजन्तरी कालट्या, साङ्रेट्या होते हैं, वे बाजा बजाते हैं। कुल पन्द्रह व्यक्ति होते हैं और कुछ गाना गाने वाले भी साथ होते हैं।

बाद में उस देवता को मन्दिर में लाते हैं फिर जो चाहे उसे अपने घर में ले जा सकते हैं, वहां मेला लगता है और फागुली मनाई जाती है।

इसमें सावनियों की पूजा होती है परन्तु कोई विशेष मेला नहीं लगता। इस त्यौहार में रंग भी खेला जाता है।

मेबर गांव में फागुली फागुन के महीने में मनाई जाती है। यह त्यौहार रोहिणी तारे के उदय होने के समय मनाया जाता है।

पहला दिन 'शू जब' अर्थात्, देवियों के आगमन का दिन कहा जाता है। इस दिन पोल्टू आदि बना कर छतों पर उन की पूजा की जाती है। दूसरा दिन 'नाशिमिग'[1] कहा जाता है। इस दिन भी पूजा की जाती है। तीसरा दिन 'माज्याशिमिग' अर्थात् सफाई का दिन कहा जाता है।

त्यौहार का चौथा दिन 'डिवन्देन' कहा जाता है। उस दिन मौन रहना पड़ता है।

---

1. आराम करना।

पोल्टू बनाए जाते हैं। ऊन नहीं कातते तथा अन्य कार्य भी नहीं किया जाता है। मेला लगाया जाता है पर शोर नहीं किया जाता।

पांचवा दिन 'कल्थानङ् अलीलङ्' 'ब्राह्ममुहूर्त्त का खाना' कहा जाता है। इस में ब्राह्ममुहूर्त्त में उठ कर खाने पीने की चीजों से छत पर पूजा की जाती है।

सुस्कर का त्योहार कोठी गांव में बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

प्रथम दिन—घरों की सफाई की जाती है।

द्वितीय दिन—सावनी देवताओं के नाम लिए जाते हैं तथा उन का स्वागत किया जाता है।

तीसरा दिन—चीनी गांव से एक व्यक्ति जिसे 'डबलूच' कहा जाता है, कोठी गांव जाता है। यदि इस व्यक्ति को कोई अन्य व्यक्ति मार्ग में मिल जाये तो उस का अनिष्ट होना माना जाता है।

चतुर्थ दिन—'शुमरापा' कहा जाता है। इस दिन सावनी देवियां कोठी देवी के मन्दिर में ठहरती हैं। चान्दनी में एक छोटे से जलकुण्ड 'चौकेगुथू' में उन व्यक्तियों की परछाईं दिखाई देती है जो अभागे होते हैं। परछाईं देवी के मुख्य कारदार ही देख सकते हैं।

पांचवां दिन—तेले कायङ् में तेलङ्गी में मेला होता है। इस दिन देवी का प्रतिनिधि 'तेगे' तेलंगी गांव जाता है।

छठा दिन—लोक-नाट्य का आयोजन किया जाता है।

रोपा गांव में सुस्कर का त्योहार फाल्गुन मास में मनाया जाता है :—

प्रथम दिन—सावनियों की पूजा की जाती है।

द्वितीय दिन—प्रत्येक गृहस्थी में दूध, दही व लस्सी से छत पर पूजा की जाती है।

तृतीय दिन—गीत गाया जाता है। छोटे बड़ों को बर्फ के गोले मारते हैं।

चतुर्थ दिन—'चोशुलिक' के कांटे घर तथा खुड्ड में रखे जाते हैं ताकि भूत-प्रेत हानि न पहुंचा सकें। शेष दिनों में मेला होता है। सातवें दिन सावनियों को वापिस भेज दिया जाता है।

इस त्योहार का पूर्ण विवरण इस प्रकार है—सुस्कर से दस दिन पूर्व एक ढांक फुरङ् पर रावण का चित्र कागज पर बना कर एक तख्ते पर लटका दिया जाता है। तीरों से इस चित्र पर प्रति दिन निशाने लगाए जाते हैं। यह इस लिए किया जाता है कि यदि स्वर्ग में देवता जीत रहे हों तो विश्वास किया जाता है निशाना जल्दी लग जाता है अन्यथा निशाना नहीं लगता। उन दिनों में, जब देवता स्वर्ग गए हों तो शोर इस लिए नहीं मचाया जाता कि कहीं देवता अपने कार्य से विचलित न हों, पहले तो इन दिनों में मृतक के लिए भी शंख बजाने की प्रथा नहीं थी। प्रातः काल लोग लकड़ियां लाते हैं। इन्हें 'सुस्कर होरिङ्' कहा जाता है। ये लकड़ियां वंश-विशेष प्रतिवर्ष लाते हैं। इन्हें ऊषा मापा[1] कहा जाता है। इस लकड़ी को शाम को जलाया

1. देवता का वर्षभर का कार्य सम्भालने वाले।

जाता है और प्रातः सुस्कर को (फू) में ले जाते हैं।

सुस्कर के दिन एक गुफा 'सुस्कर फू' में चर्बी लगाते हैं और उस के नीचे जो भूनते हैं। ये जौ उछल कर चर्बी में लगने चाहिए। यह सौभाग्य का चिन्ह समझा जाता है। बाद में बजन्तरियों का दल गांव वापिस जाता है, इन के साथ तीन नर्तक होते हैं। सब से आगे छुरी वाला, बीच में जौ भूनने के लंका वाला तथा अन्त में किल्टे वाला 'दू' के साथ होता है। लंका' वाला अगले वाले को 'लंका' से कालिख मलता जाता है। मन्दिर माजङ् सन्थङ् में वे तीन फेरे नृत्य लगाते हैं। उन के पूरा होने पर 'दू' वाले से दू छीनने के लिए सब लोग झपट पड़ते हैं और पशुओं को खिलाने के लिए ले जाते हैं।

सुङ्रा गांव में फागुली सावणियों का त्योहार है। प्रथम दिन से लेकर सातवें दिन तक उन के लिए भोजन परोसा जाता है। पहले दिन को सफाई (छलकिमो) का दिन कहा जाता है। दूसरे दिन लोग अपने अपने घरों में मूड़ी भूनते हैं। इस दिन को पौक्स तोमो' (पुग-मूड़ी, तोमो-भूनना) कहा जाता है। तीसरा दिन नर किम (नर-गिनना, किम-घर) अर्थात् अच्छा खाने का दिन कहा जाता है।

चौथा दिन 'पौललान' अर्थात् पौलटू बनाने का दिन समझा जाता है। पांचवें दिन सायंकाल प्रत्येक घर से एक एक हण्डी चौराहे पर ले जा कर फोड़ी जाती है। इसे 'हंट फोल' (हंडी फोड़ना) कहा जाता है। इस में पोल्टू, सुनपोले, नमक, राख व फूल आदि रखे जाते हैं तथा आग भी फैंकी जाती है जो अन्दर रखी हुई जोगठियों में जल जाती है। पोल्टू बांटे जाते हैं और उन से लड़ाई होती है, लोग एक दूसरे पर पोल्टू फैंकते हैं, उन्हें खाया नहीं जाता।

कफौर गांव में फागुली में रंग खेलने की प्रथा नहीं है। इस दिन घरों की सफाई की जाती है। घरों की दीवारों पर जानवरों आदि के चित्र बनाए जाते हैं।

यह त्योहार 6 दिन तक रहता है :—

प्रथम दिवस—पुक्स्तोम–मूड़ी भूनना।

द्वितीय दिवस—नारकिम-अच्छा खाना।

तृतीय दिवस—पोललानमो-पोल्टू बनाना।

चौथा दिन—हांट् फोल्मो-हाण्डी फोड़ना।

इस हाण्डी में अनाज डाले जाते हैं, राख भी डाली जाती है। और हाण्डी के बाहर चित्र बनाए जाते हैं। बुगड़ फूल जो इन दिनों कण्डे से लाया जाता है, को हाण्डी में डाला जाता है फिर उस के बाहर से गेहूं का चिलटा हाण्डी के मुंह पर सब ओर पहनाया जाता है। इस हाण्डी को चौराहे पर ले जा कर फोड़ा जाता है। फोड़ने के पश्चात् इस के बीच का अनाज उठा कर ले जाते हैं, फिर उसे पशुओं को खिलाया जाता है। हाण्डी फोड़ने के समय फागुली का गीत गाया जाता है।

पांचवां दिन—वासिङ्-समाप्ति।

छठा दिन— जात्रु

सातवां दिन —जात्रु इन दिनों में मन्दिर में मेला लगता है।

आठवां दिन—जात्रु

हाण्डी फोड़ने के सात दिन बाद 'स्तीय'—सातवां होता है, उस दिन सावनियों को पोल्टु तथा हलवा आदि से पूजा करके वापिस भेजा जाता है। 'स्तीया' के दिन तथा कभी कभी फागुली के दिनों में भी 'होरिङ्फो' का स्वांग दिखाया जाता है। 'होरिङ्फो' के साथ दो तीन 'खोन' भी निकलते हैं। इस समय अश्लील प्रदर्शन तथा भाषण बुरे नहीं माने जाते। फुल्याच में भी यहां अश्लीलता दोष नहीं है।

1. चगांव में फागुली फाल्गुन मास का प्रसिद्ध त्योहार है। यह सात दिन तक मनाया जाता है। मुख्य विवरण इस प्रकार है :—

प्रथम दिन—छलम्या—सफाई का दिन।

द्वितिय दिन—तेपुग-बड़ी मूड़ी। इस दिन गेहूं, नंगा जौ, बरठ, मक्की तथा तुलसी आदि के अनाज खाने के लिए भूने जाते हैं। इसे बड़ी मूड़ी का दिन इस लिए कहा जाता है कि इस दिन बड़ी मात्रा में मूड़ी भून ली जाती है। सायंकाल मूड़ी से पूजा की जाती है।

तृतीय दिन—ऐटङ् छन्मो—ब्राह्ममुहूर्त्त में उठ कर चिल्टे बनाना। इस दिन चिल्टों की भी पूजा की जाती है।

चौथा दिन—पोलम्मो पोल्टू बनाना। इस दिन सायंकाल पोल्टू बनाए जाते हैं। दिन में जन्जरे बनाते हैं। जन्जरे फाफरे के आटे का पतला घोल होता है जिसे हाथ पर मल कर दीवार पर सारे हाथ का चिन्ह अंकित किया जाता है। इस निशान को शकुन अथवा अपशकुन की दृष्टि से देखा जाता है। यदि चिन्ह में हथेली का स्थान खाली हो तो अधिक अनाज होना माना जाता है। यदि पूरे हाथ का निशान लग जाए तो फसल कम होना माना जाता है। यदि 'छपा' (निशान) लगाते समय आटे की धार दीवार के साथ नीचे तक बह जाए और नीचे इकट्ठी हो जाएं तो बहुत अच्छा शकुन माना जाता है। जन्जरे आटे को तवे पर फैला कर एक ही ओर से पकाने को कहा जाता है। इस प्रकार की रोटी फाफरा के आटे से बनाई जाती है। क्योंकि ये रोटियां पतली होती है अत: एक ही ओर के सेंक से भी पक जाती हैं। इन्हें सायंकाल खाया जाता है।

पांचवां दिन—हुण्ट्ङमो-हाण्डी तोड़ने का दिन। हाण्डी तोड़ने की प्रथा का वर्णन अन्य गांवों की प्रथाओं के सन्दर्भ में हो चुका है। यहां इतना ही उल्लेखनीय है कि चौबाटे (चौराहे) के पास हण्डिया को फोड़ते समय यह मन्त्र कहा जाता है—'डाये, शूना तोशा उयू हाण्डो कोमो वीच् ग्यामिग। मादेव खाण्डीस उनू हाण्डू कोमो मा वीमा मादेव खाण्डी छिनिङ् मीनिङ् शेचिस।'—अर्थात् डायन और भूत होगा तो हण्डिया के अन्दर जाना चाहिए। इस हण्डिया में न जाए तो महादेव का खण्डा काट डालेगा।

अगले दिन सावणी (सावनी) देवियों का विश्राम करने का दिन माना जाता है। चौथे दिन ब्राह्ममुहूर्त्त में उन की पूजा की जाती है। इस अवसर पर आटे के बकरे की पूजा

की जाती है। कुछ समय पहले सारे गाँव के लोग अपने अपने छतों पर एक ही समय में पूजा हेतु निकलते थे परन्तु अब ऐसा नहीं होता। फागुली त्यौहार के चौथे दिन से गूंगे व बहरे सावणी देवी-देवताओं के लिए खाना परोसने की भी प्रथा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फागुली अथवा सुस्कर वन-देवियों का त्यौहार है। किन्नौर के ऊपरि भागों में इन वन-देवियों को 'लामोच्' अथवा 'लामोचे' भी कहा जाता है। इस नाम का एक त्यौहार भी इन क्षेत्रों में प्रचलित है। फागुली में शकुन, अपशकुन तथा भविष्यवाणी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे नए वर्ष का त्यौहार भी माना जा सकता है क्योंकि अनेक गाँवों में नए वर्ष की सुख-सम्पदा के सम्बन्ध में इसी त्यौहार से अनुमान लगाए जाने आरम्भ हो जाते हैं।

लामोच् :

लामोच् वास्तव में फागुली अथवा सुस्कर का ही दूसरा नाम है। लिप्पा गाँव में यह त्यौहार फाल्गुन शुक्ल पक्ष की छठी-सातवीं तिथि को मनाया जाना आरम्भ होता है।

प्रथम दिन छत पर लिपाई करके देवियों की पूजा की जाती है और उन के लिए छत पर से पोल्टू फैंके जाते हैं।

घर के दरवाजों पर कांटे लगाए जाते हैं ताकि ये देवियां अपने साथ घर की किसी सम्पति को न ले जा सकें। ये कांटे पहरेदार समझे जाते हैं। इन दिनों के बाद सावणी आगे चले जाते हैं और सारे किन्नौर का भ्रमण करते हैं। वे पूर्णमाशी से एक दिन पूर्व वापिस लौटते हैं। उस दिन भी घरों में पूजा पाठ किया जाता है परन्तु मेला नहीं होता। यह मेला इस प्रकार चार दिन होता है और दो भागों में बंट गया है। प्रतिपदा को इस मेले का अन्तिम दिन होता है। उस दिन सावणियों का गूँगा माली[1] उठता है। यह माली फलों आदि के सम्बन्ध में गाँव को वर देता है।

प्रातः काल लोग सावणियों को वादकों के साथ गांव के दूर ऊपर खेत तक पहुंचाते हैं। बाद में ये लोग अपने घर वापिस आ जाते हैं और ऐसा विश्वास किया जाता है कि सावणी लौट कर कण्ढे में चले जाते हैं।

हङ्रङ् क्षेत्र के चूलिङ् गाँव में भी लामोच् का त्यौहार मनाया जाता है। ऐसा विश्वास है कि इन दिनों में सावणी (लामोच्) देवता बस्तियों में यह देखने के लिए आते हैं कि लोग उनको भी याद करते है, या नहीं! लिप्पा की भाँति यहां भी मेले के दो भाग हो जाते हैं। यह पोह के पहले चार दिन तथा चार दिन छोड़ कर फिर मनाया जाता है। पहले चार दिन में लबरा (छतों के ऊपर बौद्ध-धर्म सम्बन्धी स्थापना) पर पोल्टुओं से पूजा की जाती है।

लामोच् का त्यौहार जंगी गांव में वर्ष में दो बार मनाया जाता है—एक बार माघ मास में तथा दूसरी बार फाल्गुन मास में। विश्वास किया जाता है कि पहले मेले 'छोड़्

---

1. यह व्यक्ति बोलने वाला तो होता है परन्तु जब इस पर सावणी देवियों की शक्ति आती है तो इसका मुँह बन्द हो जाता है क्योंकि कुछ वन-देवियां गूंगी तथा बहरी हैं।

लामोच्' में देवता नीचे की ओर आते हैं तथा दूसरे में ऊपर वापिस जाते हैं। यह 'रिङ्' 'लामोच्' कहा जाता है।

'शोङ् लामोच्' दो दिन मनाया जाता है। पहले दिन अपने घर में सारे बर्तन व कमरा आदि साफ करते हैं। छत पर सफाई के लिए गोबर का लेपन किया जाता है। फिर सायंकाल तीन बजे के लगभग ओगला की छोटी छोटी रोटियों से छत पर पूजा की जाती है। इन रोटियों को 'पोथेच्' कहा जाता है। दूसरे दिन भी इसी प्रकार दोहराया जाता है।

'रिङ् लामोच्' भी दो दिन मनाया जाता है। पहले दिन 'शोङ् लामोच्' की भांति कार्य होता है लेकिन दूसरे दिन 'पोथेच्' के स्थान पर पोल्टू बना कर पूजा करते हैं। ब्राह्म-मुहूर्त में अगले दिन चावलों के साथ पूजा करते हैं। चावलों में पूजा करने के पश्चात् चावलों में 'लहसुन' लगाकर खाया जाता है। लोग अपने अपने गलों में लहसुन की मालाएं पहनते हैं।

लहसुन को अशुभ वस्तु माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि सावनी लहसुन से दूर भाग जाते हैं। चावलों के साथ लहसुन को मिलाकर पूजा करने का तथा गलों में लहसुन की मालाएं डालने का अर्थ सावनियों से छुटकारा पाना है। यदि ऐसा न किया जाए तो यह डर रहता है कि कहीं सावनी देवता सब से सुन्दर स्त्री-पुरुष व वस्तु को अपने साथ ही न ले जाएं। सावनियों द्वारा साथ ले जाने का अर्थ उस व्यक्ति की शीघ्र मृत्यु हो जाना माना जाता है। सायंकाल सभी लोग सन्थङ् में पूजा करने के लिए अपने घरों से पोल्टू लाते हैं। वहां 'ग्रोक्च्' पर देवता की शक्ति आ जाती है और वह गांव को सावणियों द्वारा दिए गए वरदान के सम्बन्ध में बताता है।

इस दिन को 'साऊणी पीयूशेन'[1] कहा जाता है। इस दिन सावणियों को विदा करने के लिए गांव के बाहर तक जाते हैं। कोई भी स्त्री उन के साथ नहीं होती परन्तु गांव की स्त्रियां इन पुरुषों को पीछे से बर्फ के गोले मारती हैं। बर्फ के गोले मारना भी सावणियों को फिर गांव में आने से डराना है।

नमगिया गांव में 'लामोचे' त्यौहार 6 पोह से आरम्भ होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन दिनों में गांव में भूत-प्रेत बहुत अधिक आते हैं। यह लोसर के 6 दिन पश्चात् होता है। इस में पहले दिन 'छरमा' नामक कांटे की छोटी छोटी टहनियां निकाल कर दरवाजों के पास लगा देते हैं ताकि डर के मारे भूत घर से बाहर रहें।

इस त्यौहार में तीसरे दिन से ले कर नवें दिन तक प्रतिदिन तीर खेले जाते हैं। गांव के युवकों के दो दल हो जाते हैं तथा वे मिट्टी के निश्चित चिन्ह पर तीर का निशाना लगाते हैं। 11 पोह को लामा रात भर जप करते रहते हैं क्योंकि इस दिन राक्षसों व भूतों का अधिक भय रहता है। इस दिन को 'हारमोछ' कहा जाता है।

नवें दिन पराजित दल विजयी दल को चाय-पान कराता है और लोग रात भर नाचते रहते हैं। इस त्यौहार के दिनों में घरों के छतों पर पूजा की प्रथा है।

---

1. साउणियों की विदाई।

खेपा :

'खेपा' का त्यौहार किन्नर-क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण आदिम जातीय त्यौहार है। यह सारे किन्नौर में नहीं मनाया जाता। केवल कुछ ही गांवों में इसके मनाए जाने की प्रथा है। कामरु में इस दिन लोग नहाते धोते तथा शलगम की लफ्फी बनाते हैं। छत के सभी कोनों पर एक कांटेदार झाड़ी 'चो' या 'ब्रेकलिङ्' लगाते हैं। इसे घर के अन्दर कोनों में भी रखा जाता है। शलगम में चीने तथा जौ का आटा लगा कर 'सिग्रे' बनाया जाता है। सिगरे में कांटे लगाए जाते हैं। खेपा दो तरह का होता है, एक में तो शलगम की लफ्फी तथा 'चीने' के साथ 'सिग्रे' बनाते हैं दूसरे में, जो दूसरे दिन मनाया जाता है और 'मुल खेपा' के नाम से प्रसिद्ध है, बकरों के सिर तथा पोल्टू पकाये जाते हैं और पकने के पश्चात् बकरे के कान भी पोल्टू, तथा 'सिग्रे' के साथ ब्रेक्लिङ् के खड़े किए हुए कांटे के द्वारा डण्डे में लटकाए जाते हैं। सिग्रे के बाहर केवल कांटे ही रोपे जाते हैं। सिग्रे ब्रेकलिङ् के साथ घर के अन्दर लगाए जाते हैं। ब्रेकलिङ् के साथ इन चीजों को एक दो दिन उसी स्थान पर रहने दिया जाता हैं। पकवान रिश्तेदारों में बांट दिये जाते हैं।

खेपा का त्यौहार बाङ्पो घाटी के गांवों में भी मनाया जाता है। इस मेले में ब्रेक्लिङ् (अथवा ब्रेकलिङ्) छत के चारों कोनों पर लगाई जाती है।

दूसरे दिन बकरे के सिर का शिकार बना कर खाया जाता है और सींगों को जलाया जाता है ताकि भूत-प्रेत धूंएं की दुर्गन्ध से भाग जाएं। बकरे के कानों को ब्रेकलिङ् के पास घर के कोने में भीतर रखा जाता है।

तीसरे दिन अन्दर रखे गए उस कांटे को चौराहे पर रखा जाता है। सांगला में भी यह त्यौहार मनाया जाता है।

वहां यह त्यौहार पौष मास में देवता के आदेशानुसार मनाया जाता है। इस दिन शलगम को छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर आटे की भांति महीन पीसा जाता है और एक बड़े बर्तन में पकाया जाता है। पक चुकने के पश्चात् जौ के आटे के छोटे छोटे गोले बना कर उसमें डाल दिए जाते हैं।

एक बर्तन में भेड़ या बकरी का सिर छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर पका लेते हैं। ब्रेकलिङ् की टहनियों को घर के भीतर व बाहर लगा दिया जाता है ताकि भूत-प्रेत किसी प्रकार की हानि न पहुंचा सकें। एक टहनी को गृह-देवता के पास रख दिया जाता है। इसके कांटे के साथ काटे गए मेमने अथवा बकरे या बकरी के कान लटका दिए जाते हैं। एक पोल्टू तथा एक सिग्रे (शलगम और जौ का गोला) भी वहां रखा जाता है। इसकी कंगनी के अनाज के कूटे हुए दानों से पूजा की जाती है। दोघरियों पर भी ऐसा ही किया जाता है।

इसके पश्चात् पूजा के लिए ब्रेकलिङ् के पास रखे गए पोल्टू आदि दानों के साथ 'कुमो माथरचू बैरिङ्यो' (अन्दर न आने वाले देवताओं को बाहर अर्पित) कह कर बाहर की ओर फेंक देते हैं। इस अवसर पर मेला नहीं होता।

खेपा का अर्थ 'आटे का सिद्ध' होता है। यह भूत-प्रेतों को भगाने का त्यौहार है।

शू पितङ हूराङ् :

सारे किन्नर-क्षेत्र के देवी देवता माघ तथा पौष के महीनों में अपनी प्राचीन मान्यताओं के अनुसार इन्द्रपुरी चले जाते हैं। यह कैलाश भी कहलाता है। इसे स्थानीय भाषा में 'रल्डङ्' कहते हैं और इसकी स्थिति किन्नर-कैलाश की पर्वत माला में काल्पा के सामने तथा साङ्ला के ऊपर की ओर स्थित पहाड़ पर मानी जाती है। वहां देवी-देवताओं तथा मृतक आत्माओं का निवास माना जाता है।

देवताओं को स्वर्ग भेजने तथा अन्य देवताओं से अधिक धन-सम्पदा लेकर आने व स्वर्ग से भी गाँव की रक्षा करने के सम्बन्ध में अनेक गीत व लोक-साहित्यिक विश्वास इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। मूरङ् गाँव में 'शू पितङ् हूराङ्' का त्यौहार पौष मास में पूर्णमाशी के दिन मनाया जाता है। उस दिन पूजा करके देवताओं की पालकियों को खोल दिया जाता है और मूर्तियों को अलग कर दिया जाता है, देवता से प्रार्थना की जाती है कि वह जीत कर लौटे। 'शू पितङ् हूराङ्' का अर्थ देवता के दरवाज़े की चिटकनी होता है।

जन-विश्वास के अनुसार देवता 'स्वर्गङ्' में जाता हैतथा वहां पाशङ्योचो (पाशा-जूआ) खेलता है और अच्छी चीजें जीतने का यत्न करता है। इसके पश्चात् तीन सप्ताह तक हरी लकड़ी में कुल्हाड़ी नहीं चलाई जाती। मिट्टी भी नहीं खोदी जाती तथा पत्थे से कोई वस्तु नहीं तोली जाती। लोग कथा सुनना, सुनाना, दान-धर्म करना, हिंसा न करना ठीक समझते हैं। तीन सप्ताह के पश्चात् देवता को खोला जाता है और कारदार लोग सतलुज पर स्नान करके वहीं 'मङ् कुम चिम' करते हैं। वहां से फिर वापिस जाते हैं। इससे पूर्व तीन सप्ताह तक अन्य लोग नदी के किनारे ही रात काटते हैं। प्रातः बाजे बजाते हुए दुर्ग में आते हैं। दुर्ग में देवता को बन्द करते समय फर्श पर लगाए गए गोबर पर पड़ी हुई वस्तुओं को ध्यान से देखते हैं। गोबर पर देवता की शक्ति से वे वस्तुएं स्वयमेव पड़ जाती हैं जो वर्ष भर में अच्छी उत्पन्न होंगी।

जब देवता बन्द होता है तो उसी दिन एक मिट्टी के बर्तन में जौ भिगोने के लिए डाल दिए जाते हैं, यदि इस दिन तक इन में लम्बी पत्तियां आ जाएं तो समझा जाता है कि फसल पर्याप्त होगी, अन्यथा नहीं।

दरवाज़ा खोलने के अगले दिन मचामेच तिब्बती देवी निकलती है। इसे भी सम्पत्ति की देवी माना जाता है। तीसरे दिन देवता के कारदार फिर नदी पर जाते हैं तथा रात को वहां ठहरते हैं। फिर प्रातः काल कुलदेव की पालकी को सजाया जाता है। रात्रि के समय हर घर में जोगठी जलाई जाती है। इन्हें 9,7,5 या 3 की संख्या में अपने अपने घरों के बाहर जलाया जाता है। ऐसी प्रथा है कि इन्हें सारे घरों के बाहर एक ही साथ जलाया जाता है।

कूनो गाँव में 'तेखर' नाम से यह त्यौहार 20 माघ को मनाया जाता है। इस दिन देवता इन्द्र-लोक चले जाते हैं। यहाँ देवता केवल 8 दिन के लिए 'स्वर्गङ्' में जाते हैं। स्थानीय बोली में देवता के ऊपर जाने को 'ग्यागर' कहते हैं। उनकी अनुपस्थिति

में गाँव की रखवाली करने वाला कोई नहीं होता और इसी लिए रात को घर से बाहर घूमना खतरनाक समझा जाता है। जब देवता ऊपर जाते हैं तो पूजा की जाती है। कूनो गाँव के ऊपर पत्थर की एक छोटी सी सुरंग है। उस दिन धूप उस सुरंग में से गुजरती है और तभी वह मेला लगाया जाता है।

घर व गाँव की रखवाली के लिए देवता की अनुपस्थिति में पत्थरों पर कोयलों से आदमी की मूर्तियां बनाई जाती हैं और उन के हाथ में तलवारें दिखाई जाती हैं। फिर उन पत्थरों को घर के चारों ओर खड़ा किया जाता है। उन मूर्तियों को स्थानीय भाषा में 'खिमरी' कहते हैं। प्रत्येक घर के चारों ओर कम से कम चार पत्थर ऐसी मूर्तियों वाले रखे जाते हैं, अधिक भले ही कितने हों।

जब देवता इन्द्रलोक जाता है तो अधिक शोर नहीं किया जाता, बाजा नहीं बजाया जाता, लकड़ी नहीं फाड़ी जाती तथा कोई गीत भी नहीं गाया जाता।

रागुल :

चगाँव में यह त्यौहार जनवरी के पूर्वार्द्ध या दिसम्बर के उत्तरार्द्ध में मनाया जाता है। इस दिन देवता को गाँव के लोग मिल कर 3,5 या 7 बार आकाश की ओर उछालते हैं और यह विश्वास करते हैं कि देवता की आत्मा इन्द्रलोक में जा रही है। इन्द्रलोक में सभी देवता जाते हैं और वर्ष भर के लिए धन-धान्य तथा खुशहाली, जो उनकी बांट में आती है, ले आते हैं। विश्वास किया जाता है कि चगाँव का महेशुर उन सभी चीज़ों को बांटने वाला या बांटने वाली सभा का सदस्य है और कई बार तो ये बुरी बीमारियां तथा मृत्यु आदि अपने लिए ही ले आता है। इस गीत में देवता से प्रार्थना की गई है कि वह लोगों की इन्द्रपुरी से भी रक्षा करता रहे और वहां से अच्छी अच्छी वस्तुएं मांग कर प्रजा के लिए लाए तथा दूसरे देवताओं को हरा कर आए।

कहा जाता है कि रागुल में उछाली जाती बार जब देवता की पालकी को नीचे आने पर लोग थामते हैं, उस समय वह जिधर को झुकती है उधर के खेतों में फसल अच्छी होने की आशा की जाती है। यदि देवता बुरी चीज़ें अपने साथ लाया हो तो उन्हें लोगों को नहीं दिखाया जाता। यदि अनाज आदि हों तो सब को दिखाए जाते हैं। रागुल के दिन 'लफ्फी' प्रिय भोजन होता है।

देवता, वापिस आने पर सब से पहले लोहार (डोमड़) के घर आता है। उस दिन लोहार को घण्टी व पोल्टू आदि से देवता के बजन्तरियों का सत्कार करना पड़ता है फिर दूसरे दिन बाजे आदि के साथ देवता की आत्मा को सन्थङ् में ले जाया जाता है। देवता फागुल को वापिस आता है। जब देवता फागुल के पहले दिन वापिस आता है तो 4 लड़कियां देवता के 'खोलो' (शिवलिंग) को धुपाङ (धूप) देती हैं यह धूप सुबह दिया जाता है फिर देवता को खोल दिया जाता है। जो लड़कियां वहां धूप देती हैं, उन्हें देवता की ओर से दो समय का भोजन (अनाज) दिया जाता है और वे एक घर में इकट्ठे बैठ कर खाती हैं।

जिस प्रकार चगाँव में 'रागुल' का त्यौहार मनाया जाता है, वैसे ही कटगाँव में भी इसे मनाने की प्रथा है। इसे वहां 'याबुल' कहा जाता है। जब देवता निश्चित

अवधि में स्वर्ग से वापिस लौटता है तो उसे 'शू जब' कहा जाता है। वैसे तो 'शू जब' थोड़े बहुत रूप में सारे ग्रामों में देवता के वापिस आने के दिन मेले व देवता की पालकी को सजाने के रूप में मनाया जाता है, परन्तु कफीर गाँव में यह 20 माघ को मनाया जाता है—इस दिन लोग सन्थङ् में इकट्ठे होते हैं तथा घरों में पकवान पकाये जाते हैं। यह बहुत प्रसन्नता का दिन माना जाता है।

लोसर :

लोसर[1] तिब्बत का महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। इस के मनाने के पश्चात् नये वर्ष का आगमन माना जाता है। किन्नर-क्षेत्र में भी बौद्ध-धर्म के आगमन के साथ इस त्यौहार का प्रचलन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापारिक सम्बन्धों तथा धार्मिक विचारधारा के फैलाव के कारण यह प्रथा इस क्षेत्र में प्रचलित हुई। यही कारण है कि यह त्यौहार किन्नौर के उपरि क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया। जहां लामाओं का प्रभाव अधिक है, वहां इस त्यौहार को मनाने वालों की संख्या भी शत प्रति शत है। यह दिसम्बर मास के अन्त में मनाया जाने वाला त्यौहार है। क्योंकि इस दिन से नए वर्ष का आरम्भ माना जाता है अतः लोसर से एक दिन पूर्व उत्पन्न हुआ बच्चा भी इस दिन के पश्चात् दूसरे वर्ष में प्रवेश किया हुआ मान लिया जाता है।

मूरङ्—पौष मास में शुक्ल पक्ष की 5वीं, 7वीं अथवा 9वीं तिथि को :—

किमशू (गृह-देवता) के पास दीपक जलाया जाता है। आटे की मूर्तियां बनाई जाती हैं। कोई भी व्यक्ति दोपहर से पूर्व घर से नहीं निकलता क्योंकि वर्ष के प्रथम दिन दूसरों से मिलना सारे वर्ष के लिये सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य का चिन्ह माना जाता है। दारछोद-धार्मिक झंडा होता है जिस पर तिब्बती भाषा में मन्त्र छपे रहते हैं। हरिजनों तथा कुत्तों का मिलना अशुभ माना जाता है। चूहा देखना, मेमना देखना तथा गधे की आवाज सुनना शुभ चिन्ह हैं। रात को तड़के उठ कर छत पर 'दारछोद' गाया जाता है।

कानम वही :—

ऊपरवर्णित विवरण की सभी बातें होती हैं। प्रातःकाल हरिजन हार ले कर सवर्णों के घरों में आते हैं और 'लो सोमा टाशी'[2] कहते हैं। उत्तर में केवल 'टीशा' कहा जाता है। लोग मेमने को खुड्ड से पकड़ कर दर्शन के लिये लाते हैं। लामा व जोमो भी इस मेले में नाचते हैं। सत्तू का चार कोनों वाला गोला (ब्रङ्ग्यस) बनाया जाता है। इसके चारों ओर परात में अन्य मूर्तियां तथा पोल्टू आदि रखे जाते हैं। आटे का हिरन, घोड़ा, जो (बैल के स्थान पर हल में जोता जाने वाला याक का बच्चा), मेमना तथा बकरा आदि भी आटे के बनाए जाते हैं और 'ब्रङ्ग्यस' के साथ रखे जाते हैं। प्रातः उठ कर इन्हें देखना शुभ माना जाता है। ये वस्तुएं विषम संख्या में अच्छी मानी जाती हैं।

---

1. लो—वर्ष, सर—नया, अर्थात् नया वर्ष।
2. लो—वर्ष सुमा—सौ, टाशी-जीवित रहें, अर्थात (आप) सौ वर्ष जीवित रहें।

किन्नर लोक-देवता शीत ऋतु में स्वर्ग जाते हैं। ग्राम-वासी एक ग्राम-देवता को 'रागुल' त्योहार में इन्द्र-लोक भेज रहे हैं।

कोटगाव में देवता का ओबिच विशेष उत्सव पर अपने गालों में से एक मोटी सलाई आर पार करके देव-पात्र (क्रो) हाथ में लेकर धरी में नृत्य करते हुए।

लिप्पा, वही :—

त्यौहार का प्रथम दिन 'मिस्तो' (दर्शन) कहा जाता है। मिस्तो का अर्थ 'दर्शन करना' होता है।

हाङ्गो, 7 पौष :—'

मूरङ् गांव के त्यौहार की सारी बातें। प्रथम दिन—थप्प कहा जाता है। 'शूपा' नामक झाड़ियों के पत्तों को छतों पर रखा जाता है। हरिजन हार ले कर नहीं आते। दूसरा दिन—मिस्तो। 'ब्रङ्ग्यस' बनाया जाता है। नमला देवता का प्रोक्च स्वांग निकालता है।

लियो, पौष :—

लबरा (छत पर बनाया गया चबूतरा) से पुराना धूप (शुरगू) बदल दिया जाता है! प्रथम दिन--थब। सत्तू के आटे का 'डङ्गे' बनाते हैं उसे पशुओं की मूर्तियों के साथ पूजा जाता है। डङ्गे तीन कोनों वाली सत्तू की मूर्ति होती है। 'डङ्गे' को पूजा करके तीन दिन के लिए कोठार में रखते हैं। तीन दिन तक कोई भी वस्तु कोठार से नहीं निकाली जाती। तीसरे दिन को 'छ्याङ्मा सुन' कहा जाता है। तीसरे दिन अतिथि बुलाये जाते हैं।

चांगो, पौष :—

भूखे पेट पूजा नहीं की जाती। घी तथा सत्तू खाए जाते हैं। शुरगू धूप दूसरे दिन (छत पर से) बदला जाता है।

नमगिया, पौष :—

लियो की भांति सारी बातें होती हैं। त्योहार का पहला दिन 'गुतुङ्' कहा जाता है। इसका अर्थ है कि पौष अमावस्या (30) के दिन एक पकवान बनाया जाता है जिस में 9 प्रकार की वस्तुएं डाली जाती हैं[1]। यह खिचड़ी की भांति तैयार किया जाता है। त्यौहार का दूसरा दिन 'छे' कहलाता है। 'छे'—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि। धूप (शुरकू) बदल कर नया शुरकू चढ़ाया जाता है। डङ्ग्या को न्योजे का हार पहनाया जाता है। सब परिजनों को भी हार भेंट किये जाते हैं। ऊंची आवाज सुनना, ऊंचे बोलना, गाली देना, घोड़े की आवाज़ (हिनहिनाना) सुनना आदि बातें अच्छी नहीं मानी जातीं। चूहा दिखाई देना, गधे की आवाज सुनना, मुंह में आटा मलना आदि अच्छे शकुन माने जाते हैं। रात को गांव के लोग इकट्ठे होते हैं तथा दो दलों में बंट कर एक दूसरे को खाना व शराब देते हैं। मेला होता है।

सुङ्नम्, पौष :—

मिस्तो होता है। यह मेले का दूसरा दिन होता है। इसमें सत्तू के आटे की त्रिकोण मूर्ति 'प्रंजस' बनाते है तथा उसमें घी के टीके लगाते है। 'मिस्तो' तथा 'मिश्तो' में केवल उच्चारण सम्बन्धी भिन्नता है। आटे का हिरन बना कर छत पर शराब के साथ पूजा की जाती है। प्रात: 'प्रंजस' को देखना शुभ माना जाता है। मेमने के सिर

---

1. गु—नौ, तुङ्—तीस।

पर शराब उंडेला जाता है। यदि शराब पड़ने से मेमना हिल जाए तो शुभ माना जाता है। सम्बन्धी लोटे में लस्सी तथा न्योजे की मालाएं ले कर मिलने के लिए आते है। चूहा, कुत्ता तथा हरिजन देखना शुभ माना जाता है। 'लो सुमा टाशी' अर्थात् 'आप सौ वर्ष तक जीवित रहें' कहा जाता है। तीसरे दिन 'प्रंजस' को तोड़ते हैं और सारे परिवार वाले बांटते हैं। छोटे छोटे लड़के आटे के हिरन (फो) को मांगने के लिये गलियों में 'फोयो' की अवाज लगाते हैं। इस प्रकार 'फो' को इकट्ठा करके वे खेलते, तथा आपस में बांटते हैं। देवता को एक निश्चित् परिवार के घर में ले जाया जाता है।

चूह, पौष :—

हार भेंट किए जाते हैं तथा 'लोसो मङ्गसी[1]' कहा जाता है। एक दूसरे को माथे पर टीके लगाने की प्रथा है। लोसो मुङ्गसी का अर्थ है— नया वर्ष अच्छा हो। त्यौहार के अन्तिम दिन कोई भी वस्तु घर से बाहर नहीं दी जाती।

रिख्बा 25 माघ :

घरों की चित्र कारी की जाती है। मेमने के दर्शन किये जाते हैं।

कूनो—चारङ्, पौष :

प्रथम दिन 'तोङ्थुक' कहा जाता है। इस दिन अनेक प्रकार के (चावल, जौ का आटा, गेहूं का आटा तथा शिकार आदि) पदार्थों को मिला कर पकाया जाता है। इसे 'थुक्पा' कहा जाता है। मिगथो—देखना, दर्शन करना। दूसरा दिन 'मिक्थो' कहा जाता है। इस दिन प्रातः सोना आदि बहुमूल्य धातुओं से युक्त पानी से मुंह धोते है। साल भर में खाए जाने वाले सारे पदार्थ इस दिन बनाए जाते हैं। यदि इस दिन घर में अतिथि हो तो सब लोग तड़के से उसे देखना पसन्द करते हैं। मेमना पकड़ कर दर्शन किए जाते हैं। मेमने का रंग सफेद होना चाहिये। मेमना सम्भवतः इस लिए लाया जाता है कि खड्डू (मेमनों) से खुड्ड भरा रहे। 'समाखा' नामक फूल परिवार के प्रत्येक सदस्य तथा मेमने को दिये जाते हैं। जो व्यक्ति घर पर न हो उसके लिए भी खाना परोसा जाता है तथा फूलों का गुच्छा रखा जाता है। बहिनों को आवश्यक रूप से खाना भेजा जाता है। बिल्ली, बीमार, खाली बर्तन तथा किल्टा देखना अशुभ माना जाता है।

शिरकिन :

इस त्यौहार का नाम शिरगिन भी है। 5 कार्तिक को कानम व लबरङ् गांव में शिरकिन का मेला मनाया जाता है। परम्परा है कि पहले कानम के ऊपर 'कमका' नामक स्थान पर मेला लगता था। इसमें नर बलि भी दी जाती थी। इस मेले में कानम के 'खड्सार' वंश का एक व्यक्ति धुरी में नाचता था। इस मेले में शुमछो (कानम, लबरङ् तथा स्पीलो) के लोग इकट्ठे होते थे। यह स्थान कानम के समीप था, परन्तु धुरी में नाचने वाले व्यक्ति को एक बार सूझा कि मेले को लबरङ् गांव के समीप

---

1. नया वर्ष शुभ हो।

लाना चाहिए। अतः वह धुरी में नाचते हुए नर्तकों को नचाते नचाते लवरङ् के पास ले गया। लोगों को बाद में उसकी इस चाल का पता चला और वे बड़े क्रोधित हुए परन्तु अब कुछ नहीं हो सकता था। तब से इसी स्थान पर मेला लगता है। लोग शाम को वापिस आते हैं और अपने अपने गाँवों में भी मेला लगाते हैं।

जंगी गाँव में इस मेले को शुरग्वान (धूप काटना) भी कहते हैं यह मेला 10 कार्तिक को मनाया जाता है। यह दो दिन तक रहता है। इस दिन मेले के बाद रात को लड़के लड़कियां गाँव में न्योजा मांगने के लिए जाते हैं।

दूसरे दिन शाम के समय लोग अपने घोड़ों पर चढ़ कर कूटङ् नामक कण्ढे में जाते हैं, वहाँ मृतकों के नाम पर दान दिया जाता है।

नमगिया गाँव में शिरकिन काफी लम्बा व महत्वपूर्ण त्यौहार होता है। 7 कार्तिक को पोल्टू बनाकर देवता की पूजा की जाती है। 8 कार्तिक को देवता को सजाया जाता है। जिस घर में लड़का उत्पन्न हुआ हो वह देवता को बकरा भेंट करता है। सब बकरे उसी दिन काटे जाते हैं।

नौ कार्तिक को देवता को नचाते हैं एक बकरा भेंट किया जाता है। 10 कार्तिक को भी देवता को नचाया जाता है और एक बकरा भेंट किया जाता है।

11 कार्तिक को देवता को लम्बे समयके लिए खोल दिया जाता है।

सुङ्नम गाँव में शिरकिन का त्यौहार असौज या कार्तिक में तिथि देख कर मनाया जाता है। प्रथम दिन देवता को कोठी से बाहर निकाल कर नचाते तथा मेला लगाते हैं।

दूसरे व तीसरे दिन भी गाने व नृत्य का ही कार्यक्रम चलता है। इसके पश्चात् फुआल भेड़ बकरियां लेकर निचले भागों में चले जाते हैं। उन की विदाई के लिए खूब नाच-गान किया जाता है तथा उनकी घरों में खूब आवभगत की जाती है।

पूह गांव में शेरगन मेला 4, 5 कार्तिक को मनाया जाता है। यह पांच दिन तक चलता है। प्रथम दिन मेले के गीत गाए जाते हैं। यह त्यौहार युल्सा ठोमोमिन देवी के नाम पर मनाया जाता है। बहुत प्राचीन समय मे यहां 'नार के सेरगेन्सा' में हर वर्ष आठ वर्ष का बच्चा व तीन वर्ष का बैल एक गढ़े में इस मेले के दिन फैंक दिए जाते थे। जब यहां 'युल्सा ठोमोमिन' गिद्ध बन कर आयी और इस गांव में निवास करने लगी तो उस ने इस प्रथा को बन्द करवा दिया। यह गिद्ध गांव के आस पास चार स्थानों पर बैठा। अब उन सभी स्थानों को पवित्र माना जाता है। यह देवी बौद्ध-धर्म मानने वाली है। अब 'सिर गिन्सा' में उस बच्चे व बैल कोहवन कुंड में डालने के स्थान पर एक छेली (बकरी का बच्चा) की बलि दी जाती है। छेली को 'टासी लुक' कहा जाता है। बैल की बलि के स्थान पर पांच समयों का दूध देवी के नाम पर जमा किया जाता है। इस दूध को मथ कर मक्खन निकाला जाता है तथा लस्सी का पनीर बनाया जाता है। यह सब देवी को पूजने के लिए ले जाया जाता है। फिर वहां जिस घर से 'टासीलुक' आया है

उस लड़के के बाप को उस मक्खन का टीका लगाया जाता है और छेली का एक फर दिया जाता है। जिस वर्ष किसी के यहां पुत्रोत्पत्ति हुई हो उसी वर्ष 'टासीलुक' दिया जाता है। सिरगिन्सा में जाकर लोग खूब नाचते हैं। उन्हें यथा सम्भव भोजन आदि भी कराया जाता है। इस मेले के दिनों में बहुत से लोग भेड़ बकरियां लेकर मण्डी, बिलासपुर के क्षेत्रों में घर से बाहर चले जाते हैं इस लिए यहां उदासी छाई रहती है। इस अवसर के गीत भी उदासी भरे हैं।

गांव-विशेष में मनाए जाने वाले कुछ अन्य त्योहार :—

लियो—रेयाचेन :—

ओरमिग देवता को खेतों में घुमाया जाता है। मृत व्यक्तियों के नाम पर दान दिया जाता है। अन्तिम तीन दिनों को परियों का मेला (खाडो माई जाव़ङ्) कहा जाता है। इन दिनों में स्त्रियां खूब गहने पहन कर जाती हैं। खाडोमा—परि, जाव़ङ्-मेला। मेले में घास के पुतले बनाए जाते हैं।

मेबर, शू सारिङों फी मिग, आषाढ़ :—

देवता को खेतों में घुमाया जाता है। शू—देवता, सारिङों—खेतों में, फीमिग—ले जाना। देवता को लस्सी व मक्खन की भेंट चढ़ाई जाती है। खेतों में बकरे की बलि दी जाती है।

लियो, छिने :—

लामा व जोमो व्रत रखते हैं। सत्तू के तोरमा (गोले) बनाए जाते हैं तथा छिरिल (छोटे गोले) और छोक (बड़ा तोरमा) से पूजा की जाती है। खाना खाने के पश्चात् शंख बजाया जाता है ताकि युवतियां, चिकोटी से बचने के लिए, यदि छुपना चाहें तो छुप जाएं। लामा किसी स्त्री या पुरुष को चिकोटी (सन्तो) काट कर मेले का उद्‌घाटन करता है फिर सारे गांव में स्त्री पुरुषों को चिकोटी काटने का सभारम्भ हो जाता है। मेला रात भर चलता है। स्त्रियां रात को चिकोटी के डर से छुप जाती हैं। यह विचित्र त्योहार है। इसमें चिकोटी (सन्तो) काटने के लिए युवक टोलियों में बंट जाते हैं।

चांगो, शेशुल :—

अश्लील शब्द कहे जाते हैं। चाङ्गो में सन्तो काटने की प्रथा नहीं है। दूसरे दिन 'शेशुल' होता है जिस में दो परिवारों को बारी के अनुसार सारे गांव वालों को भोजन कराना पड़ता है। दो खेत इस कार्य के लिए रखे गए हैं। गांव में जिस व्यक्ति ने वर्ष भर में किसी भी साधन से अधिक धन कमाया हो, वह अपने सम्बन्धियों को खाना खिलाता है।

बूलिङ, ओमेच, चैत्र :—

सारे गांव के लोग इकट्ठा खाते पीते हैं। स्त्रियां पुरुषों को दावत देती हैं।

लियो, रारङ् बोङ्कोर, बैशाख :—

लामा खेतों में धर्म-ग्रन्थ पढ़ते हैं ताकि भूत-प्रेत फसल को हानि न पहुंचाएं। घरों के अन्दर व बाहर भी चूने के छींटे दिये जाते हैं ताकि दुरात्माएं भाग जाएं।

नमगिया, रहो, माघ :—

गाँव के लोग एक दूसरे को आमन्त्रित करते हैं। यह मित्रता बढ़ाने का त्यौहार है। रहो—मित्र (मित्रता करना)।

पूह, नाको, मेला, 15 ज्येष्ठ :—

जीव जन्तुओं के कल्याण के लिए लामाओं द्वारा प्रार्थना की जाती है। मरे हुए बैल की हड्डी तथा राख से मूर्तियां बनाई जाती हैं। दस दिन तक बौद्ध-मन्दिर में जाप किया जाता है। नाको में लामा खेतों में पोथियां पढ़ते हैं। इस मेले में ब्रह्मा, विष्णु तथा नारायण के नाम पर भी झण्डे चढ़ाए जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि जहां तक झण्डे से छू कर हवा पहुंचती है, वहां सुख-समृद्धि होती है। इसके द्वारा पितर भी स्वर्ग में निवास करते हैं। एक चोटी 'रिकसम बनगो' (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) पर भी झण्डा चढ़ाया जाता है। कहा जाता है कि इस चोटी पर एक लामा 'चमगुत डुक्पा नमगियल' को ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी के दर्शन हुए थे। इसी से इसका नाम 'रिकसम बनगो' पड़ा।

पूह, युरा, बैशाख :—

मृतक के नाम पर दान दिया जाता है। लामा व जोमो को दान दिया जाता है। मायुर कूहल को श्रमदान से साफ किया जाता है।

पूह, कुमजोव, बैशाख—ज्येष्ठ :—

बौद्ध-मन्दिर में भगवान बुद्ध की पूजा की जाती है। इसमें 'सौग्या' का भोग भी लगाया जाता है। रत्नजोत में घी डाल कर उससे पूजा की जाती है, इसे सौग्या कहा जाता है। भगवान बुद्ध को शराब चढ़ाई जाती है। लोग अमृत मान कर शराब पीते हैं।

पूह, हेना, 29, 30 चैत्र :—

यह भगवान विष्णु नारायण के नाम पर मनाया जाता है। प्रथम दिन लामा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी की मनुष्य के समान बड़ी मूर्तियां बनाते हैं। तीनों मूर्तियों पर रत्नजोत का रस निकाल कर चढ़ाया जाता है। लोग श्रद्धानुसार मन्दिर में पोथियां पढ़ते हैं।

पूह, रङ्जन :—

'रासुगनवो रङ्जन' चोटी पर झण्डा चढ़ाया जाता है। ग्रोक्च पर देवता की शक्ति आती है और वह विभिन्न प्रकार के 'शायङ्' निकाल कर दिखाता है। शायङ्—सरसों, यहां इसका अर्थ विभिन्न अनाजों को चमत्कारपूर्ण ढंग से लाकर दिखाना है। 'टलङ् सन्थङ्' में पितरों के नाम पर लामा व जोमो को खाना खिलाया जाता है। इस मेले में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी की पूजा भी की जाती है।

रिब्बा, होमेरिङ—फुल्याच् की समाप्ति पर :—

इस दिन लोग रीछ मारने जंगल में जाते हैं। होम का अर्थ रीछ होता है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में रीछ गांव में घुस आते थे अत: इस प्रथा की आवश्यकता पड़ी।

रक्छम, छित्कुल, मरजा, आषाढ़ :—

कण्ढे से 'मरजा' नाम के फूल लाए जाते हैं। फूल लाने वालों का स्वागत करने के पश्चात् 'खौमसिंग' नाले में गांव वाले आपस में एक दूसरे दल पर पानी फैंकते हैं। पानी फैंकने में जो दल जीतता है उसे दूसरा दल फूल भेंट करता है। ये फूल पुल को पार करने से पूर्व शुद्धि के लिए दिए जाते हैं। मरजा फूल अपने कण्ढे में रक्छम का ग्राम-देवता लाया है, ऐसा विश्वास है। मृतकों के नाम पर थिवाङ् (पत्थरों) पर भोजन परोसा जाता है।

गरशू, उख्यानिंग :—

नृत्य तथा गायन का कार्यक्रम रहता है। देवता को नचाया जाता है।

कानम, सुरपू, 7 आषाढ़ :—

इस मेले के लिए सत्तू तथा चाय आदि ग्राम-वासियों से इकट्ठे किए जाते हैं। सुरपू एक बौद्ध-मन्दिर का नाम है। मेले का प्रबन्ध जोमो तथा लामा करते हैं।

कानम, बोस, सुरपू से अगले दिन :—

इसमें स्त्रियां सब लोगों को सत्तू के गोले बांटती हैं। बोस-सत्तू का गोला।

कानम, छ्याङ् कुल्मा :—

बड़े बड़े लामा इकट्ठे होकर बौद्ध-धर्म-ग्रन्थ पढ़ते हैं। इन में लोगों की आयु लम्बी होने तथा व्याधियों से मुक्त होने की प्रार्थना की जाती है। लोग श्रद्धानुसार दान देते हैं।

कानम, लिप्पा, कन्ज्युर जाल्खा, लामा जलेन अथवा लामा जुल्खा, 13,14 हाड़, प्रथम आषाढ़ :—

इसमें लामा छैने बजा कर 'कङ्सो' नाम का मेला लगाते हैं। ब्याज के पैसों से मन्दिर की ओर से सामान खरीद कर पोल्टू व चिल्टे बनाए जाते हैं और लोगों में बांटे जाते हैं। कङ्ग्युर अथवा कन्ज्युर प्रवचन सम्बन्धी पुस्तकें हैं ये संख्या में 108 हैं। लिप्पा में इस मेले को लामा जलेन अथवा लामा जुल्खा कहा जाता है। लोग डाचोम्पा डांक में पद्म सम्भव की मूर्ति के दर्शन करने के लिए प्रात:काल लिप्पा गांव से चल पड़ते हैं। इससे अगले दिन 'कन्ज्युर जाल्खा' का मेला होता है जिसमें कन्ज्युर की 108 पोथियों को निकाल कर हर एक को गांव की परिक्रमा कराई जाती है। सायंकाल पोथियों को दक्षिणा दी जाती है।

कानम, रव्वाङ्री पिसा पाङ्मा[1], असोज :—

न्योज़ तथा देवदार की छाल तथा गिरी को पीस कर बुरादा बना लेते हैं तथा

---

1. पिसा—बुरादा, पाङ्मा—फैंकना।

जलती हुई अंगठियों पर फैंकते हैं जिससे चिनगारियां उठती हैं। पिसा-देवदार तथा न्योज़े की गिरी का बुरादा होता है। कानम के ग्राम-वासियों के दो दल होते हैं और बुरादा फैंक कर एक दूसरे को हराने का यत्न करते हैं।

कठगांव, सौरा बैशाखड्, 18 बैशाख :—

रात के समय एक बार तथा दिन में दो बार 'खोन' निकलते हैं। ये सात तक होते हैं। ये 20 बैशाख को पगड़ी लगा कर निकलते हैं। एक छेच् खोन (स्त्री राक्षस) बनता है उसके साथ भद्दी हरकतें की जाती हैं। मुंह से कुछ नहीं बोला जाता। लड़के गधे का सा 'लिंग' अपने साथ लिए घूमते हैं। ये लिंग भी कई हैं और पूर्व समय के ही बने हुए हैं। इन्हें भी 'खोर' के साथ कोठी में रख दिया जाता है। खोन देवता के कपड़े पहनते हैं। 'सौरा' का अर्थ 'अट्ठारह' होता है। 'खोन' का अर्थ राक्षस तथा 'खोर' का 'मुखोटा' होता है।

खोक्चा :

यह त्योहार कूनो-चारङ् में माघ के अन्त तथा फागुन के आरम्भ में मनाया जाता है।

पहला दिन—सूम्रा :

जब सूर्य छिप ही रहा हो तभी देवता को बाहर निकाल कर सब से पुराने वंश या जिस की बारी हो, के घर में ले जाना पड़ता है। क्योंकि बारी बारी से देवता सभी गाँव वालों को मेले में अपने घर ले जाना पड़ता है अतः एक वर्ष में 3 परिवारों की बारी आ जाती है। वर्ष के दौरान में जिसके यहां पुत्र उत्पन्न हुआ हो उसके यहां भी देवता इस मेले के दिन जाता है और उसे सब लोगों की आवभगत करनी होती है। यह मेला एक वर्ष कूनो से शुरू होगा और दूसरे वर्ष चारङ् से। जिस गांव से मेला शुरू होता है उस में पहले तीन दिन तो बारी वाले वंशों के यहां मेला होता है और बाकी एक एक दिन पुत्रोत्पत्ति वाले परिवारों में, तथा फिर दूसरे गाँव में 3 दिन तथा वहाँ पुत्रोत्पत्ति वाले परिवारों में एक एक दिन रहता है।

पहले दिन देवता को निकालने के बाद छत पर कुछ देर नचाया जाता है। गाँव के लड़के हर घर में जा कर पोल्टू, सत्तू और घण्टी मांग कर लाते हैं। शराब और पोल्टू तो वह स्वयं खा जाते हैं पर सत्तू को लाकर देवता के पास रखना पड़ता है। बाद में उस का एक गोला बना कर उसकी पूजा की जाती है। उस गोले को 'डङ्स्या' कहते हैं। जब देवता को मन्दिर से निकाला जाता है तो उस से पहले बौद्ध-मन्दिर "(टुङ्मा के मन्दिर) से कपड़ा, शंख, तलवार जिन्हें 'दादर' कहते हैं, उस के लिए लाए जाते है। उस 'दादर' या 'दांदर' में वर्ष भर की भविष्यवाणी निकल जाती है। उस कपड़े या शंख से यदि किसी अनाज का दाना निकले तो अनाज अच्छा होगा। कच्चा अनाज का दाना निकले तो आरम्भ में तो फसल अच्छी आएगी परन्तु बाद में बर्फ आदि से हानि की सम्भावना रहेगी। यदि हड्डी निकले तो मौतें अधिक होंगी। रात को बारी वाले पहरा देते हैं और उन्हें चावल की लफ्फी (चावल को पतला पका कर उसमें पनीर डाला जाता है। कई लोग इस में दूध भी डाल देते हैं) दी जाती है। प्रातः के समय भी उन्हें लफ्फी देने का रिवाज था लेकिन अब नहीं रहा है। इस थुक्पा

(लफ्फी) को, जो रात को दी जाती है, 'बल सर थुक्पा' कहा जाता है। माली इस दिन देवता की शक्ति से अपने मुंह मे दो सलाइयां घुसा लेता है।

दूसरा दिन—पिया :

दस बजे के लगभग देवता की पूजा होती है। फिर देवता को कुछ पुराने वंशों के घरों से कुछ 'शकदू' मांगने के लिए ले जाना पड़ता है। 'शकदू' में देवता के लिए गलियों में स्वागत के लिए खड़ी स्त्रियां फासुर, शराब, सत्तू, दू, थुक्पा आदि हाथ में लिए रहती हैं। पुजारी हर स्त्री के पास से गुजरता है और पूजा करता है फिर पीछे आने वाला उन वस्तुओं को ग्रहण करता है। कहा जाता है कि इस दिन दी जाने वाली शराब आदि के द्वारा पुजारी को वर्ष भर में किसी के घर में होने वाले अनिष्ट की सूचना मिल जाती है। यदि बुराई होनी हो तो पुजारी को शराब में खून दिखाई देता है या ऐसा ही कुछ और अनुभव होता है।

देवता इस दिन दूसरे बारी वाले के घर चला जाता है। जो लोग मेले में नहीं आते उन्हें 'छेत्पा' लगाया जाता है। यहां ग्रोक्च् पर देवता आ जाता है और वर्ष भर का हाल बताता है।

तीसरा दिन—देन केल :

उस दिन देवता को तीसरे घर में ले जाया जाता है, बाकी कार्यक्रम वही रहता है।

फिर यदि किसी के घर में लड़का हुआ हो तो वहां धूमधाम से मेला लगाया जाता है। जब तीसरे दिन देवता को अपनी कोठी पर पहुंचाया जाता है तो ग्रोक्च् (माली) पर रास्ते में एक स्थान पर देवता की शक्ति आ जाती है। ग्रोक्च् के हाथ में तलवार होती है और देवता को लोटे मे हर घर से 'कोरङ' (शराब की भेंट जो देवात को दी जाती है) देनी पड़ती है। जिस के घर से बर्तन या शराब खराब होता है उसे ग्रोक्च् तलवार से ऊंडेल देता है। यदि ऐसा हो जाए तो उस परिवार पर कोई आपत्ति आ जाती है या कोई मृत्यु हो जाती है, ऐसा माना जाता है।

दौदे :

यह त्योहार खोक्चा की समाप्ति पर चारङ् गांव में होता है। इस में मेला नहीं लगता। बौद्ध मन्दिर 'रङ्मा' में बौद्ध-धर्म सम्बन्धी पोथियों को निकाल कर पढ़ा जाता है। सवेरे दू तथा घी खाते हैं। शाम को दूध मिला कर थुक्पा पिया जाता है। रात के खाने के साथ शराब या चाय का कार्यक्रम चलता है। उन दिनों जिस घर में लामा लोग 'कन्ज्युर' पढ़ रहे होंगे, उस घर वालों को मेहमानों को बुलाना पड़ता है। उन अतिथियों को चाय व सत्तू दिए जाते हैं।

शाम को सारे पुरुष उस घर वाले के अतिथि होते हैं। उन्हें घण्टी और खाना दिया जाता है। सारे गांव में प्रत्येक घर में एक एक गोला सत्तू 'छौक' तथा पोल्टू शाम को बांटे जाते हैं। उस 'छौक' से यह समझा जाता है कि इसे खाने से सारे पाप मिट जाते हैं अतः इसे सारे परिवार वाले आपस से बांट कर खाते हैं। रात को लामा लोग 'गुरमा' गाते हैं। गुरमा लामाओं का एक महत्त्वपूर्ण मन्त्र है।

दूसरे दिन बजन्तरियों के साथ उन लामाओं तथा पोथियों को दूसरे के घर ले

जाया जाता है । वे वहां भी वैसे ही पोथियां पढ़ते हैं, इस प्रकार प्रत्येक घर में यह कार्य क्रम चलता है और इस के लिए एक मास से भी अधिक समय लग जाता है।

माहङ् साङा :

यह त्यौहार सारे किन्नर-क्षेत्र में किसी किसी न रूप में पन्द्रह माघ को प्रायः प्रत्येक गांव में मनाया जाता है। किन्नर-पुराण-कथा के अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि शिवजी के साथ बर्फ के देवता युकुन्तरस की दो बेटियों गोरे व गंगे का विवाह 15 माघ को हुआ था। अनेक गांवों में इस दिन देवता स्वर्ग से लौट आते हैं तथा अनेक स्वर्ग लोक जाते हैं।

कानम गाँव में इस दिन देवता स्वर्ग जाता है। देवता की अनुपस्थिति में उसकी आज्ञानुसार ग्राम-वासी चन्दा इकट्ठा करते हैं। देवता स्वर्ग जाते समय आपस में भोज देने के लिए कह जाता है। देवता के वापिस लौटने के दूसरे दिन दावत दी जाती है। शिकार की फाँकें, गिमटा व चिल्टा तथा पोल्टू और जुते (एक पकवान-विशेष) भी इस समय इकट्ठे किए जाते हैं अथवा फिर वहीं बनाए जाते हैं।

लिप्पा गाँव में इस त्यौहार का नाम 'माहङ् चोअङ्' है। 14 माघ की रात को सोते समय चूल्हे को लीप कर रखा जाता है फिर प्रातः उठ कर देवता का वरदान देखा जाता है। देवता अधिक होने वाले अनाज के दाने इस लीपे गए स्थान पर फैंक देता है। जो दाना प्रातः ही उस स्थान पर पड़ा मिले उसे ही देवता का वरदान समझा जाता है। उसके बाद 9,10 बजे सारे लोग धूप आदि ले कर मन्दिर में दरवाजा खोलने जाते हैं। वहां गोबर पर कुछ बिखरे अनाज के दानों को देखते हैं। शाम के समय मेला लगता है। उस से अगले दो दिन 'शूप्याज' (शिवरात्रि) मनाते हैं, इस में नाच गा कर मेला लगता है।

मेबर गाँव में साजो के दिन नए वर्ष का आरम्भ मनाते हैं। इस दिन नहाने-धोने का कार्य किया जाता है और प्रसन्नता में बन्दूकें चलाई जाती हैं। देवता के स्वर्ग जाने को यहां 'निरोलो वीमिग' (नीरोल जाना) कहा जाता है। 'माहङ् सोङा' के दिन देवता वापिस आता है। मन्दिर में बकरे काटे जाते हैं, देवता को कोठी से मन्दिर में धूम धाम से लाया जाता है। इस दिन घी और चिल्टे खाए जाते हैं।

जंगी गाँव में यह मेला 'माहङ् सङा' के नाम से प्रसिद्ध है। मेले के पहले दिन देवता 'अङ्मायुङ्' के मुखङ् और कपड़े आदि उतार देते हैं। देवता का 'सोथिङ्'[1] कैलाश को जाता है। इस के बाद 5 बर्तनों में अलग अलग प्रकार के अनाज डाले जाते हैं— जैसे फाफरा, जौ, गेहूं आदि। इन अनाजों को मन्दिर में ढक कर अलग अलग रखा जाता है जिस से वे सुरक्षित रहें। देवता की आज्ञानुसार 5 या 7 दिन अर्थात् जब तक देवता कैलाश से न उतरे, लोग एक लंका राक्षस (रावण) की मूर्ति कागज में उतार कर रखते हैं और उसे तीर से निशाना लगाते हैं। जो सब से पहले तीर से निशाना लगाता है उसे फूल भेंट किए जाते हैं फिर वह व्यक्ति पांच रुपये देता है। इसके पश्चात् निशाना लगाने वाले को एक एक रुपया देना पड़ता है। इन सब इकट्ठे हुए रुपयों को लेकर

---

1. सत्य अथवा दिल।

अन्तिम दिन शराब आदि खरीद कर दावत की जाती है। इस दिन मेला भी लगता है। आखिरी दिन राक्षस को जला दिया जाता है। जिस दिन देवता नीचे उतरता है, उस रात को पुजारी और ग्रोक्च् कोठरी में पूजा के लिए पोल्टू बनाते हैं।

इन पांच या सात दिनों में गाँव में कोई शोरगुल नहीं होता। देवता प्रायः प्रातः-काल ब्राह्ममुहूर्त में कैलाश से उतरते हैं। जब वे उतरते हैं तो पुजारी और ग्रोक्च् को बड़े ज़ोर की आवाज़ सुनाई देती है। उनको देवता स्वप्न में भी उतरता दिखाई देता है। इस के पश्चात् गाँव के सारे स्त्री-पुरुष कोठी के पास इकट्ठे हो जाते हैं और उन पांच बर्तनों में रखे अनाजों को देखते हैं। इन अनाजों पर दूसरे ही प्रकार के अनाज देवता द्वारा लगा दिए गए होते हैं, जैसे फाफरे के ऊपर जौ तथा जौ के ऊपर मक्की आदि। इनको 'पोरखङ्'[1] कहते हैं। जो वस्तु देवता द्वारा दूसरे अनाजों पर लगाई गई होती है, उसके सम्बन्ध में विश्वास किया जाता है कि वह वर्ष भर में अधिक उत्पन्न होगी।

दूसरे दिन 'पोरखङ्' देखने के पश्चात् मेला लगता है। तीसरे दिन भी मेला लगता है।

लबरङ् गांव में 'माहङ् सोङा' किले में मनाया जाता है। इस में पहले दिन पकवान बनाए जाते हैं। देवता के मन्दिर में पूजा की जाती है। रात को सन्थङ् (आंगन) तथा पन्ठङ् (कमरा) में मेला लगता है। दूसरे दिन किले के कमरे में जाकर 10,20 व्यक्ति मेला लगाते हैं। पहले समय में 8 ज़मींदार ही उधर जा सकते थे अब ऐसी कोई रोक नहीं है। अन्दर जाकर 2,4 बजन्तरी किले के दरवाज़े को बन्द कर देते हैं फिर बाहर से प्रवेश चाहने वाले दरवाज़े को खोलने के लिए गीत गाते हैं। अन्दर से भी गीत का उत्तर दिया जाता है। बाद में दरवाज़ा खोल दिया जाता है, फिर अन्दर मेला लगता है। इस गीत में अन्दर वाले बाहर वालों से पूछते हैं कि 'आप कौन हैं ?' बाहर वाले दरवाज़ा खोलने की प्रार्थना करते हैं। कहा जाता है कि इस किले में उरकू नामक तिब्बती राजा के साथ लड़ाई हुई थी। रक्छम गांव में 'माघङ् (माहङ्) सोङा'[2] से 8 दिन पहले गांव में बसने वाले 6 वंशों में से प्रत्येक से 'शू' मी देवता का व्यक्ति चुना जाता है। सभी 'शू मी' देवता का पूजा-पाठ करते हैं। जब वे पूजा करते हैं तो किसी से नहीं छूते।

14 माघ की रात को हस्तलिखित पुस्तक पढ़ी जाती है। ये 'देवता के व्यक्ति' शू-किम में 8 दिन तक रहते हैं। इस पुस्तक में किन्नौर के देवताओं की चर्चा है तथा गांव के देवता का यहां आना वर्णित है।

कफौर गाँव में 'माहङ् सोङ्या' में चिल्टे के साथ घी खाया जाता है। मेला नहीं लगाया जाता। देवता का वापिस आना अर्थात् 'शू जब' यहां 20 माघ को होता है अतः 'माहङ् सोङा' को मेला नहीं लग सकता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'माहङ् सोङा' किन्नौर का महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। इस में

1. भाग्य का पर्दा।
2. माहङ्—माघ, साए—10, ङा—5 अर्थात् 15 माघ।

अधिकांश देवता स्वर्ग से वापिस आ जाते हैं। ठङ गाँव में माघ का मेला—माहङ् मेला 8 दिन रहता है। मेला शुरू होने से पहली रात ग्रोक्च् तथा पुजारी उलटे पांव श्मशान घाट पर जाते हैं व वहां से मिट्टी लाते हैं। उस रात को सिर्फ पुजारी तथा ग्रोक्च् के घर में ही रात को रोशनी रहती है बाकी सब घरों में अन्धेरा होता है, नहीं तो भूत प्रेतों के आ जाने का डर रहता है।

गांव के पास आ जाने पर वे दोनों आगे देख कर चलते हैं और निर्दिष्ट पांच स्थानों से बिना देखे हाथ में मिट्टी उठा कर गोले बना कर अपने सिरहाने रख लेते हैं। सवेरे को गोले फट जाने का अर्थ है कि गांव में कुछ अनिष्ट होगा। यदि किसी गोले में दाने हों तो उस फसल के उस वर्ष बिल्कुल अच्छा होने का अनुमान लगाया जाता है।

यह मेला आठ दिन तक चलता है और इसका गीत बहुत लम्बा है।

शिवरात्रि

इस क्षेत्र में शिवरात्रि मुख्यतया ओरेस (बढ़ई) जाति का त्यौहार है। ओरेस तथा अन्य हरिजन एक स्थान पर ओरेसों के घर इकट्ठे हो जाते हैं, बकरा काटते तथा घास का एक छोटा सा देवता बनाते हैं। इस देवता को घास की बनी हुई छोटी सी पालकी में रखा जाता है और पूजा की जाती है तथा इसे वर्ष भर के लिए दरवाजे के ऊपर छत के पास लटका दिया जाता है। इसे बहुत शुभ माना जाता है। इस दिन हरिजनों तथा ओरसों के घर मेले लगते हैं तथा सवर्ण भी आकर वहीं नाचते हैं।

मूरङ् गाँव में इस दिन सब लोग प्रात: ही सतलुज पर नहाने के लिए जाते हैं। वहां सब व्रत रखते हैं फिर नहा धो कर केसर का तिलक लगाते हैं। महादेव का पत्थर का लिंग बनाया जाता है और उसे धूप आदि चढ़ा कर पूजा जाता है। स्त्रियां अपने अपने रिश्तेदारों को फूल मालाएं देती हैं। पैसे लेने या देने का इस अवसर पर रिवाज नहीं है। बहिनों को खाना खिलाया जाता है। गाँव के तीन व्यक्ति बर्फ के तीन गोले किले के पास नीचे खड़े हो कर मेला लगाने वाले स्थान की ओर फैंकते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि यदि इन गोलों में से कोई किसी व्यक्ति को लग जाए तो उसकी वर्ष भर के भीतर मृत्यु हो जाती है। गाँव में शिवरात्रि की कथा और मेला चलते रहते हैं। शिवरात्रि का महात्म्य चौबीस घण्टे का होता है, इस मेले में गाँव के सब स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं।

जंगी गांव में भी यह मेला धूम धाम से मनाया जाता है। पहले दिन बजन्तरी लोग वाद्य-यन्त्रों तथा अन्य ग्रामीणों के साथ सतलुज पर स्नान करने के लिए जाते हैं। वहां पर एक विशेष मिट्टी के टीके सब लोगों को लगाए जाते हैं। टीका लगाने के पश्चात् लोग नाचते हुए ऊपर गांव की ओर जाते हैं। इन स्थानों पर फल फूल बांटे जाते हैं और शराब से पूजा की जाती है।

'शङरङ्' नामक स्थान पर पहुंचते समय एक विशेष प्रकार की पत्ती, जो सर्दियों में हरी रहती है, फूल के स्थान पर आपस में बांटी जाती है। सायंकाल सन्धङ् में

पहुंच जाते हैं। वहां देवता को भी नचाने का प्रबन्ध किया जाता है। मेला लग-भग रात के दो-तीन बजे तक रहता है।

दूसरे दिन मेला दिन में नहीं लगता बल्कि रात से ही आरम्भ होता है। इस दिन मेला ही होता है कोई अन्य विशेष बात नहीं होती।

शिवरात्रि स्पीलो गाँव का भी विशिष्ट त्योहार है। यह मार्च में तिथि देख कर मनाया जाता है। इस दिन प्रातः उठ कर लोग सतलुज में स्नान के लिए जाते हैं। वहां थोड़ी देर बैठ कर गाना बजाना होता है। माथे पर 'चोङ्दो' नामक सफेद पत्थर का तिलक लगाया जाता है। पुरुष वहीं बैठ कर शराब पीते हैं तथा स्त्रियाँ गाना गाती हैं। इसके पश्चात् वहीं 'कायङ्' लगाया जाता है। गाँव में आकर हरिजनों के छत पर मेला लगता है। वहां केवल 3 चक्र मेला लगता है और शिवरात्रि का एक ही गीत गाया जाता है। इस समय दूसरा कोई गीत गाने की प्रथा नहीं है। इस के पश्चात् फिर सन्थङ् में आ जाते हैं, वहाँ मेला लगता है। उस दिन सब लोग शिवरात्रि का व्रत रखते हैं।

दूसरे व तीसरे दिन भी सन्थङ् में मेला लगाया जाता है।

कानम गाँव में भी शिवरात्रि चैत मास में मनाया जाने वाला त्योहार है। इसे यहां ओरेस लोगों के घरों में ही मनाया जाता है। स्पीलो गाँव के निर्देशन पर ही पहले कानम गाँव में मेला होता था। इसमें कायङ् नहीं लगाया जाता। प्रत्येक व्यक्ति को एक रुपया श्रद्धानुसार शिवरात्रि पूजन के स्थान पर ओरेसों के घर में रखना पड़ता है। बाद में उस घर में छत पर मेला लगता है। शराब के नशे में लोग अधिक पैसे भी दे देते हैं।

वैसे तो बौद्ध-धर्म में भी शिवजी को देवता मान लिया गया और उसे बुद्ध भगवान को तपस्या से विचलित करने वाला कहा गया है। परन्तु उसकी अलग से पूजा का विधान शिमला आदि ज़िलों से प्राप्त हुआ है। इन क्षेत्रों में शिवरात्रि बहुत बड़ा त्योहार है जिसके दिन प्रत्येक घर में एक से अधिक बकरे काटे जाते हैं।

रमनस

रमनस पौरिष्टाङ् की श्रेणी का त्योहार है। रमना का अर्थ पौरिष्टाङ् (प्रतिष्ठा) होता है परन्तु मूरङ् गाँव में ज्येष्ठ पूर्णमाशी को यह त्योहार हर वर्ष मनाया जाता है। इस दिन वैष्णव धर्म के देवता द्वारा बौद्ध-धर्म के अनुष्ठान में भाग लेना, द्रष्टव्य है। लागङ् (बौद्ध मन्दिर) से देवता शाम को लौटता है। यह बौद्ध-धर्म का त्योहार है।

रिब्बा गाँव में 'रमना' तथा पजा (पूजा) के वर्ष भर में 5, 5 त्योहार होते हैं। एक रमना के पश्चात् पजा तथा पजा के पश्चात् रमना मनाया जाता है।

इस गांव में निम्न-लिखित 'रमना' होते हैं :—

1. निरात्र—नवरात्रों का रमना।
2. दुङ्ग्युरु रमनस बौद्ध पेटिका (धर्म-चक्र) का रमना।
3. लवरङ् रमनस—बौद्ध-मन्दिर का रमना।
4. आशार रमना—आषाढ़ पूजा।

5. रमनाली रमनस—काला मटर उगने पर की जाने वाली पूजा।

रमना में लामा लोग सत्तुओं के साथ पूजा करते हैं। इस गाँव में पांच पजा ये हैं :—

1. रोकशो (काली मिट्टी) पजा—जब काला मटर बीजा जाता है।
2. गिरि पजा—पहाड़ की पूजा। देवता को पुल के पास ले जाते हैं।
3. तिङ्शू पजा।
4. होङ् पजा—होङ् (कीड़ा) की पूजा—इससे जमीन में कीड़े समाप्त हो जाते हैं।
5. बयङ् पजा—चिनगारी की पूजा। यह आग की पूजा होती है। यह सावन में सम्पन्न की जाती है ताकि आग से गाँव में कोई हानि न हो।

रमनस के सम्बन्ध में यह धारणा है कि यदि यह भली प्रकार से सम्पन्न न हो तो 'रमनस' कराने वाले की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। बौद्ध-मन्दिर के निर्माण पर रमनस में अनेक लामा इकट्ठे होते हैं और अपनी धर्म-पोथियों को पढ़ते हैं। रमनस में जो कुछ व्यय होता है, उसे गाँव वाले चन्दा डाल कर इकट्ठा करते हैं। निचार तथा काल्पा सब-डिवीजनों में बौद्ध-मन्दिरों का निर्माण कम होता है अत: रमनस भी कम देखने में आते हैं।

किन्नर-त्यौहारों के सम्बन्ध में :

इन त्यौहारों का समग्र दृष्टि से अध्ययन करने पर पता चलता है कि किन्नर जाति प्रागैतिहासिक तथा किसी ऐसे वर्ग का अवशेष है जिसका अस्तित्व इस क्षेत्र के अन्य स्थानों से लुप्त हो गया है। सब त्यौहार भूत-प्रेतों को भगाने, गाँव की समृद्धि, लोक-देवताओं के चमत्कार तथा देवताओं की शक्तियों में असीम विश्वास व्यक्त करते हैं। असुर देवताओं का अस्तित्व, हौरिङ्फो लोक-नाट्य का प्रचलन, देवी-देवताओं के वर्ग, अदृश्य आत्माओं को गालियां बाणा नाम के अजगर का वध, माघ मास के त्यौहार, देवताओं का सर्दी की ऋतु में स्वर्ग जाना तथा अन्य अनेक सामाजिक परम्पराएं इस जाति का मुंह-बोलता इतिहास है। रल्डङ् (स्वर्ग) की कल्पना, दिवंगत आत्माओं को वहां से वापिस बुला कर दान देना तथा पर्वत-शिखरों पर 'कोटङ्' का निर्माण इस जाति की महत्वपूर्ण परम्पराओं का दिग्दर्शन कराते हैं। केवल एक प्रथा-विशेष का सहारा लेकर हम किसी जाति को अन्य वर्ग के साथ सम्बद्ध नहीं कर सकते। जब किसी जाति की सामाजिक परम्पराओं का विधिवत अध्ययन प्रस्तुत नहीं हो जाता, हमें अपना निर्णय देने में सतर्कता बरतनी चाहिये।

7 लोक-देवता

किन्नर-क्षेत्र में देवी देवताओं का अस्तित्व प्रत्येक गांव में सामाजिक जीवन का आवश्यक अंग है। यहां देवता को पूछे बिना कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इस क्षेत्र में दो प्रकार के देवता हैं :—

1—वे देवता जिनके रथङ् होते हैं तथा जिनको उठाने के लिए चार अथवा छः व्यक्तियों की आवश्यकता रहती है।

2—वे देवता जिन के रथङ् नहीं हैं तथा जो ग्रोक्च के द्वारा लोगों से बात करते हैं। इस वर्ग में उन देवताओं को भी रखा जा सकता है जिन का प्रतीक एक डण्डा[1] होता है और जिन्हें एक ही व्यक्ति मेले आदि में नचाता है। यह डण्डा ऊपर से कपड़े से सजाया गया होता है तथा इस के सिरे के पास देवता का मुखङ् (धातु का चेहरा) लगाया गया होता है।

ऊपरवर्णित प्रथम वर्ग के देवता पूह गांव से नीचे के प्रायः सारे किन्नर-क्षेत्र में मिलते हैं। पूह से ऊपर के क्षेत्र में इस प्रकार के फबरङ् वाले देवता मिलते हैं। वहां देवता को उठाने के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं रहती। प्राचीन समय में हर वर्ष प्रत्येक गांव को दो भागों में बांटा जाता था, (1) देवठू तथा (2) राजठू। देवठू देवता की बेगार देते थे और राजठू राजा की सेवा करते थे। दूसरे वर्ष यह क्रम बदल जाता था।

देवता का रथङ् (रथ) उसे मूर्त रूप दिलाने के लिये महत्त्वपूर्ण उपकरण होता है। इस में दोनों ओर को पर्याप्त लम्बाई की दो भुजायें (वाहियां) लगाई जाती हैं। इन भुजाओं को उठाने से देवता की पालकी उठ जाती है। इन के मध्य में लकड़ी का चौखटा बनाया गया होता है जिस में लकड़ी के छोटे छोटे सींखचे लगा कर देवता का गला बनाया जाता है। गले के ऊपर याक की जटायें लगाई जाती हैं। जटायें चारों ओर लटकती रहती हैं, इन्हें देवता का 'छतरङ्' कहा जाता है। जटाओं के नीचे देवता के गले के साथ सब ओर को तीन पंक्तियों में सोने व चान्दी के छोटे-बड़े अट्ठारह मुखङ् लगाए जाते हैं। पालकी की भुजायें लचकदार लकड़ी की बनाई जाती

---

1. इस डण्डा-रूपी रथङ् को फबरङ् कहा जाता है।
2. मुखङ् का अर्थ मूर्ति है यहां देवताओं की पूरे आकार की मूर्तियां नहीं होतीं केवल 'मुखों' की ही मूर्तियां बना कर रथङ् के साथ लगाई जाती हैं।

हैं ताकि नाचते समय पालकी उछाल ले सके। इन भुजाओं को सिरों से आपस में रस्सी अथवा कपड़े से बांध दिया जाता है ताकि कन्धे पर उठाये जाने पर उन में से कोई आगे पीछे न खिसक जाये। पालकी भारी होती है और दोनों ओर से चार व्यक्तियों के द्वारा उठाई जाती है। इसे दो व्यक्ति किनारों से सहारा दिये रहते हैं ताकि देवता के बहुत नाचने की दशा में यह नीचे न गिर जाए।

देवता के मुखड़् जटाओं के नीचे इस प्रकार लगाये जाते हैं कि केवल सब से निचली पंक्ति के मुखड़् तथा अगले भाग के दो शिर-मुखड़् ही दर्शकों को दिखाई देते हैं। देवता के शेष 'मुखड़्' को जटा उठा कर देखना अच्छा नहीं समझा जाता। रथड़् को बहुत सुन्दर कपड़ों से सजाया जाता है और ज्यों ही यह कार्य पूरा होता है, उसमें दैवी-शक्ति का प्रवेश मान लिया जाता है। जब देवता[1] नचाया जाता है तो पालकी में देवता की शक्ति के प्रवेश के कारण, वह (रथड़्) बहुत उछलता है। कन्धों पर उठाये जाने के पश्चात् रथड़् इतने जोर से नाचता है कि अनेक बार उठाने वालों[2] के कन्धे छिल जाते हैं।

देवता के मुखड़् संख्या में अट्ठारह होते हैं। रियासत के समय में बुशहर के राजा किन्नौर के बड़े देवताओं (तीन सोनशिरस, चण्डिका तथा बद्रीनाथ आदि) के लिये सोने के मुखड़् राज्य कोष की ओर से बनवा कर देते थे तथा चान्दी के मुखड़् देवता के कोष से बनवाये जाते थे। वर्तमान समय में किन्नर-क्षेत्र में प्रायः सभी देवताओं के मुखड़् मूछों वाले होते हैं तथा देवियों के मुखड़् में नाक के गहने पहनाये गए होते हैं। उपरि क्षेत्रों में इस बात के अपवाद मिल जाते हैं। वहां देवियों के मुखड़् के साथ आभूषण नहीं होते तथा रथड़् के अग्र-भाग में चान्दी के पट्टों पर देवताओं की आकृतियां अंकित रहती हैं। इन ग्राम-देवताओं के अनेक प्रकार हैं परन्तु इन के कर्मचारियों, शक्तियों, मन्दिरों तथा सामाजिक मान्यताओं में विशेष अन्तर नहीं होता।

रथड़् की बनावट तथा कारीगरी के सम्बन्ध में प्रायः प्रत्येक गाँव में अनेक प्रकार के लोक-गीत प्रचलित हैं और विभिन्न अवसरों पर गाए जाते हैं। सुरगा चोरोनी देवता मीरू गाँव में अभी कुछ ही वर्ष पूर्व अवतरित हुआ है परन्तु उसके लिये जिस गीत का प्रचलन हो गया है, उसमें बयड्दू बढ़ई और जोटो सुनार का वर्णन आया है। प्राचीन समय से प्रचलित यह गीत प्रत्येक देवता के सम्बन्ध में ठीक बिठा लिया गया प्रतीत होता है। ऊपरवर्णित दोनों कारीगरों के विवरण प्रायः प्रत्येक मन्दिर तथा 'रथड़् गीत' में आते हैं। ये कारीगर कभी बहुत प्राचीन समय में रहे होंगे। देवता को सजाते समय वादकों को वाद्य-यन्त्र बजाते रहना पड़ता है। देवता का नृत्य के समय भूमि पर गिर जाना बहुत अपशकुन माना जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि जब देवता प्रसन्न होता है तो रथड़् का भार हल्का होता है और विपरीत दशा में बोझ बढ़ जाता है। यह बात वास्तविकता से अधिक मनोविज्ञान पर आधारित प्रतीत होती है, क्योंकि देवता द्वारा

---

1. देवता को नचाने का अर्थ देवता के रथड़् को नचाना होता है। देवता स्वयं कोई बात नहीं कर सकता, वह अपने ग्रोक्च के द्वारा ही सारी बातें बताता है।
2. रथड़् उठाने वालों को 'चालमिया' कहा जाता है।

मनोनीत व्यक्ति ही पालकी उठाते हैं अतः यह निश्चय करना कठिन है कि प्रत्येक दशा में देवता का रथङ् स्वयं नाचता है अथवा उसे चालमिया स्वयं झटका देकर हिलाते हैं। यह देखा गया है कि देवता की अदृश्य शक्ति से रथङ् अचानक हिलना बन्द हो जाता है अतः इस बात में विश्वास किया जा सकता है कि जब देवता की शक्ति रथङ् में आती है तो चालमिया अपनी इच्छानुसार उसे नहीं नचा सकते परन्तु यह शक्ति हर समय रहती है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध मे निर्णयात्मक ढंग से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

उपरिकिन्नौर के देवता बौद्ध-धर्मानुयायी हैं। वहा देवता की सेवा करने वाले इतने अधिक व्यक्ति नहीं होते जितने कि अन्य-क्षेत्रों में मिल जाते हैं। ग्रोक्च[1] देवता का कृपापात्र होता है और उस में, आवश्यकता पड़ने पर दैवी-शक्ति का प्रवेश हो जाता है फिर वह देवता बन जाता है और उस दशा में जो कुछ बोलता है उसे 'देव-वाणी' माना जाता है।

क्योंकि देवता स्वयं कोई बात नहीं कर सकता अतः उससे प्रश्न पूछे जाने पर कहार पालकी को रोक देते हैं और वह बिना नाचे, शान्त अवस्था में प्रश्नकर्त्ता की बातें सुनता है। यदि प्रश्न समाप्त होने पर देवता नाच कर पालकी को प्रश्नकर्त्ता की ओर झुका ले तो यह समझा जाता है कि देवता ने प्रश्न के उत्तर में 'हां' कहा, यदि देवता की पालकी प्रश्नकर्त्ता से विपरीत दिशा में झुके तो प्रश्न का उत्तर नकारात्मक माना जाता है। सारे प्रश्नों को इस प्रकार पूछा जाता है कि उन के उत्तर 'हां' या 'न' में आएं। जहां लम्बा प्रश्न पूछे जाने पर अन्य कारण से देवता द्वारा दिए गए उत्तर का स्पष्टीकरण न हो पाए, वहां 'ग्रोक्च' में देवता की शक्ति प्रवेश कर जाती है और वह देवता का प्रतिनिधि तथा अनुवादक बन कर समाधान बताता है।

कोई भी व्यक्ति जो देवता द्वारा अपनी सेवा के लिये निश्चित अथवा अनिश्चित अवधि के लिये चुना जाता है, देवता का 'कारदार' कहलाता है। ये 'कारदार' (कर्मचारी) अनेक गांवों में देवता तथा ग्राम-वासियों की सुविधा के अनुसार कम या अधिक होते हैं। इस क्षेत्र में देवताओं—यथा, मोनशिरस, बद्री नारायण आदि के निम्नलिखित मुख्य कारदार होते हैं :—

1—मोहतमिम। 2—ग्रोक्च या माली।
3—कायथ। 4—कोषाध्यक्ष।
5—शूचारस। 6—शू माथस।
7—भण्डारी। 8—पुजारस।
9—बजन्तरी। 10—कोनसङ् कोनैस।
11—चपड़ासी तथा 12—गर।

मोहतमिम :

इस का कार्य देवता की सम्पत्ति तथा अधिकारों की रक्षा करना होता है।

---

1. इसे माली भी कहा जाता है। निचले पहाड़ी क्षेत्रों में इसे 'चेला' अथवा 'गूर' कहा जाता है।

सरकारी कागज़ों में देवता की भूमि तथा अन्य सम्पत्ति मन्दिर के मोहतमिम के नाम पर ही लिखित होती है। पहले यह पद पैत्रिक होता था पर अब अधिकांश ग्रामों में देवता से आदेश द्वारा मोहतमिम बनाया जाता है। 'मन्दिर' तथा 'देवता' राजाओं के समय में राज्य-सम्पत्ति समझी जाती थी और लोग राजा के आदेश की भांति देवता के आदेश का पालन करते थे। मोहतमिम ग्राम का भद्र तथा श्रेष्ठ व्यक्ति समझा जाता है। जहां बौद्ध-धर्म का प्रभाव अधिक है वहां भी देव-मन्दिरों का प्रबन्ध मोहतमिम के हाथ है। इस प्रकार यह देव-मन्दिर का प्रधान कारदार होता है।

मोहितमिम का निश्चित वेतन कुछ नहीं होता पर उसकी मृत्यु पर देवता का सब से बड़ा नगारा (बाम), जिसे बहुत पवित्र तथा आदर-सूचक माना जाता है, शव के साथ श्मशानघाट तक ले जाया जाता है। देवता की ओर से शव पर चढ़ाने के लिये घाघरा अथवा कोई अन्य बढ़िया कपड़ा भी दिया जाता है। जब नया मोहतमिम बनाया जाता है तो मन्दिर की ओर से उस का अभिषेक (बडारन[1]) किया जाता है।

बडारन—ग्रोक्च, पुजारस, गुर तथा मोहतमिम शुद्ध (अभिषिक्त) कारदार समझे जाते हैं। अनेक गांवों में शूमाथस अथवा शूचारस का भी अभिषेक किया जाता है। इन में से जब किसी कारदार की मृत्यु हो जाये तो देवता द्वारा नये व्यक्ति के चुने जाने के पश्चात् निश्चित दिन में अन्य अभिषिक्त कारदार नये कारदार के घर आमन्त्रित किये जाते हैं। इस समय देवता के तीन मुखङ् गोरे, गङ्गे तथा ईशूरस रथङ् से निकाल कर उस कारदार के घर ले जाये जाते हैं तथा 'शुद्ध' व्यक्ति इस दिन उसी के घर खाना खाते हैं। गाँव के अन्य लोगों को भी पोल्टू तथा मांस और शराब के अतिरिक्त कंगनी का भोजन कराया जाता है। खीर इस भोजन का आवश्यक अंग माना जाता है। देवता की ओर से एक छोटा सफेद रंग का कपड़ा, जो देवता के प्रतिनिधित्व का सूचक होता है, नये कारदार को भेंट किया जाता है। इस अवसर पर बलि देना भी आवश्यक होता है। देवता की मूर्तियों के सामने 'बडारन का गीत' गाया जाता है। यह सृष्टि की उत्पति का गीत होता है[2]। यदि नया कारदार सारा व्यय वहन करने में असमर्थ हो तो वह 'बडारन' की प्रथा को मन्दिर में भी संक्षिप्त रूप में पूरा कर सकता है। इस उत्सव के अवसर पर नदी (सतलुज) पर जा कर नए कारदार को नहाना आवश्यक होता है।

ग्रोक्च् या माली :

यह व्यक्ति देवता का विशेष कृपा-पात्र होता है। देवता के द्वारा बात करने का यही 'माध्यम' होता है, अतः गांव में इस की प्रतिष्ठा शेष कारदारों से अधिक होती है। यह देवता से उस समय बात करता है जब उसे (देवता को) चालमिया (उठाने वालों) ने अपने कन्धों पर उठाया होता है। जब देवता मन्दिर में खोल कर रख दिया गया हो, अथवा उसके रथ को भूमि पर बिठा दिया गया हो, तब भी देवता से बात करने के

1. बड़प्पन देना अथवा सम्मानित बनाना।
2. देखिये परिशिष्ट 5 का प्रथम तथा द्वितीय गीत।

लिए इसे पूछा जाता है। कठिन समस्याओं के उत्तर पाने के लिए किसी भी समय धूप दिए जाने पर देवता का प्रवेश माली में हो जाता है और वह ऊंचे ऊंचे बोलने लगता है। 'ग्रोग्मो' का अर्थ 'देवता की शक्ति आने से हिलना' होता है अत: 'ग्रोक्च' शब्द के मूल में इसी क्रिया का रूप है। 'ग्रोग्मो' की अवस्था में वह सिर को ज़ोर से झटका देता है जिस से उसकी काली टोपी पीछे की ओर गिर जाती है। इस टोपी को भूमि पर गिरने दिया जाना अपशकुन माना जाता है। अतः 'ग्रोग्मो' की अवस्था में आने से पूर्व ही एक व्यक्ति ग्रोक्च के पीछे बैठ जाता है और टोपी को अपने हाथों से थाम लेता है। ग्रोक्च अनेक बार खड़ा हो कर भी 'ग्रोग्मो' की अवस्था में आ जाता है। इस अवस्था में माली जो भी बात करता है, वह देवता का आदेश माना जाता है। जब वह देवता द्वारा कही गई किसी भी बात को दूसरे लोगों को बताता है तो अपनी गांठ में पहले से बंधी हुई सरसों के कुछ दाने पास खड़े कारदारों की हथेलियों पर परीक्षार्थ रख देता है। वे हथेली पर रखे गए सरसों के दानों को गिनते हैं। यदि उन की संख्या विषम और तेरह से कम हो तो ग्रोक्च द्वारा कही गई बात सत्य मानी जाती है। दानें तीन या चार व्यक्तियों के हाथों पर रखे जाते हैं। यदि अधिकांश हथेलियों पर रखे गए दानें विषम हों तो ग्रोक्च की बात पर विश्वास कर लिया जाता है परन्तु यदि अधिकांश संख्यायें सम हों तो ग्रोक्च को देवता से फिर बात करना आवश्यक होता है। दानें लेकर मोहतमिम, शूचारस, पुजारी आदि थोड़ी देर तक अपनी मुट्ठियों में रखते हैं और गिनने के पश्चात् एक दूसरे को दिखाते हैं। यदि दानों की संख्या विषम हो तो उन दानों को ये लोग अपने सिरों पर लगा लेते हैं। ठङे, सापनी, रिब्बा, निचार तथा किल्बा आदि अनेक गाँवों में 'ग्रोक्च' बनने वाले व्यक्ति को बडारन के दिन नहाना आवश्यक होता है तथा 'डोङोर' के दो अथवा अधिक फूल खाने पड़ते हैं। यह फूल शुद्ध माना जाता है तथा इसे खाने पर ही प्रत्याशी की शुद्धि सम्भव मानी जाती है।

वेतन—माली देवता का प्रवक्ता होता है और इस के अतिरिक्त प्रबन्ध-सम्बन्धी उत्तरदायित्व उस का नहीं होता। उसे बलि के अवसर पर बकरे या मेमने का सिर दिया जाता है। उसका निश्चित वेतन कुछ भी नहीं होता परन्तु देवता के कोष से वर्ष की समाप्ति पर उसे कुछ अनाज तथा रुपये वेतन के रूप में मिल जाते हैं। देवता का कृपापात्र होना ही उसका सब से बड़ा वेतन है।

कोषाध्यक्ष :

देवता के कोष की ताली कोषाध्यक्ष के पास रहती है। वैसे तो कोष का उत्तर-दायित्व मोहतमिम पर होता है परन्तु कोषाध्यक्ष रुपया-पैसा रखने में उसकी सहायता करता है। देवता की धन-सम्बन्धी सारी आय कोषाध्यक्ष के पास दी जाती है। देवता की आज्ञा मिलने पर वह कोष से रुपये निकाल कर लोगों को देता है।

कायथ :

अनाज व नकदी की लिखा-पढ़ी का हिसाब रखता है। इस के पास लिखने व पढ़ने का ही कार्य होता है। इस के पास ही बर्तनों तथा पुराने कागजों का हिसाब भी रहता

है। इसे भी साल के अन्त में नकद तथा अनाज के रूप में थोड़ा सा वेतन देव-मन्दिर की ओर से दिया जाता है।

शू चारस :

'शू' का अर्थ देवता होता है और 'चारस' का—प्रबन्धक। शू चारस का कार्य देवता को कहीं बाहर ले जाने से पूर्व आवाज लगा कर गांव वालों को बुलाना होता है। यह दूसरे गांव से आने वाले लोगों तथा देवताओं का प्रबन्ध भी करता है। इसे भी वर्ष के अन्त में कुछ नकद पैसे तथा अनाज मिलता है।

शू माथस :

इसका कर्त्तव्य शू माथस के रूप में शू चारस से मिलता है। परन्तु यह लोगों को आवाज लगा कर इकट्ठा नहीं करता। अनेक गांवों में शूचारस नहीं होता। वहां शू माथस ही देव-मन्दिर व देवता का प्रबन्धक होता है। इसे भी वर्ष के अन्त में कुछ धन तथा अनाज मिलता है।

भण्डारी :

यह अनाज का हिसाब-किताब रखता है और जब अनाज देना या लेना होता है तो उसे तोलता है। अनाज पत्थों[1] से दिया व लिया जाता है। यह इसके पश्चात् सारा हिसाब कायथ को लिखाता है। इसे भी वर्ष के अन्त में कुछ धन व अनाज देवता के कोष से मिल जाता है। कोठार (उर्च)[2] की चाबी इसी के पास रहती है।

बजन्तरी (वादक) :

ये संख्या में 18 या इससे कम होते हैं। बड़े देवताओं के 18 बजन्तरी प्रसिद्ध हैं। देवता के पास जो वाद्य-यन्त्र बजाए जाते हैं, उनमें से ढोल, बाम, बान, गुज्वाल, करनाल, रणसिंगे, जगारङ् तथा डाकङ् प्रसिद्ध हैं। अधिकांश गांवों में बजन्तरी हरिजन ही होते हैं।

जब देवता को रात को मन्दिर में बिठा दिया जाता है तो ये लोग आरती के समय 'बेल' बजाते हैं। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठ कर उन्हें देवता के पास कड़ाके की सर्दी में भी 'नमत' बजाना पड़ता है। 'बेल' सायंकाल गायी जाने वाली आरती को कहते हैं और 'नमत' प्रात: काल में गाई व बजाई जाने वाली धुन होती है। ढोल बजाने वाला इन का मुख्य बजन्तरी होता है। इनको भी वर्ष के अन्त में धन व अन्न देवता के कोष से मिलता है। वादकों को मेलों के दिनों में बहुत कार्य करना पड़ता है। नर्तक बजन्तरियों की धुनों के साथ ही नृत्य-गति बदलते हैं। भूल भरा तथा इच्छाओं के विपरीत

---

1. अट्ठारह छटांक के लगभग तोल।
2. कोठार घर से दूर अलग बनाया हुआ लकड़ी का एक बड़ा सन्दूक होता है जिस में अनाज, गहने तथा रुपये-पैसे और कपड़े आदि रखे जाते हैं। यह भण्डार होता है। इस क्षेत्र में घर के अन्दर इन वस्तुओं को रखने की प्रथा नहीं है।

बजाने से लोग इन्हें झाड़ते तथा गालियां देते हैं। देवता भी वर्ष में एकाधिक उत्सवों पर इनके गायन व वादन का निरीक्षण करता है। अनेक गांवों में धुरी में चंवर लेकर नाचने वालों को जो राशि देवता को देनी पड़ती है, उसका कुछ भाग बजन्तरी भी लेते हैं।

पूजारस :

पूजारस या पुजारी प्रातः व सायं धूप आदि दे कर देवता की पूजा करता है। पूजा करने से पूर्व उसे ठण्डे पानी से साबुन लगाए बिना, पानी में कुछ गोमूत्र डाल कर नहाना आवश्यक होता है। गर्म मशालों तथा कास्टिक सोडा आदि से भी देवता परहेज करते हैं। पुजारी व मोहतमिम लहसुन नहीं खा सकते। मुर्गा व अंडा खाना भी वर्जित भोजनों में गिने जाते हैं अतः पुजारी इन्हें नहीं खा सकता। पुजारी देवता के द्वारा नियुक्त किया जाता है और इसे भी बडारन करना पड़ता है। पुजारी शराब व मांस (मुर्गे के मांस के अतिरिक्त) प्रयोग कर सकता है। इसे भी वर्ष के अन्त में देवता के भंडार से कुछ अनाज व रुपये मिलते हैं। कई ग्रामों में, प्रथा के अनुसार पुजारी व ग्रोक्च् को बलि के समय अथवा विशेष उत्सवों के अवसर पर भी कुछ आय हो जाती है।

कोनसङ् कोनेस :

'कोनसङ्' का अर्थ है—छोटा भाई और 'कोनेस' का अर्थ है—साथी। इसका कार्य देवता की रसोई में देवता की ओर से सारे कारदारों को विशेष अवसरों पर खाना बनाना होता है। कोनसङ् कोनेस की नियुक्ति देवता हर वर्ष करता है। इसे वर्ष के अन्त मे कुछ पैसे व अनाज और खाना बनाने पर देवता की ओर से खाना मिलता है। यह प्रत्येक देवता के यहां नहीं होता।

चपड़ासी :

कई देवताओं ने अब लोगों के झगड़े आदि के निपटारे के सम्बन्ध में दूसरे पक्ष के लोगों को (बुलाने तथा अन्य किसी आवश्यक कार्य से कारदारों को) बुलाने के लिये चपड़ासी भी रख लिए हैं। चपड़ासी को वेतन नहीं मिलता और न ही वह अपने आप को कम महत्त्वपूर्ण कारदार मानता है। बुलाए गए व्यक्ति के न आने पर वह देवता के पास उसकी शिकायत करता है। झगड़े में, जिस पक्ष को चपड़ासी बुलाए उसे देवता के आदेशानुसार कुछ पैसे उसे देने पडते हैं। अनेक बार जुर्माने में भी चपड़ासी के पैसे जुड़े रहते हैं, जिन्हें वह बाद में प्राप्त कर लेता है। चपड़ासी का रखा जाना देव-शासन में आधुनिक प्रबन्ध है अत: उन गाँवों में जहां थोड़े घर हैं और लोगों को शीघ्रता से इकट्ठा किया जा सकता है, इतने अधिक कारदारों की आवश्यकता नहीं रहती।

गुर :

कई गाँवों में यह भी देवता का कर्मचारी होता है। जब कहीं देवता पूजा करता है तो यह हलवा, पोल्दू आदि बना कर देता है। यह बहुत कम अवसरों पर कार्य करता

है अतः मन्दिर की ओर से इसे उसी दिन खाना-पीना दे दिया जाता है, जो इसका वेतन हो जाता है। अधिकांश गाँवों में 'ग्रर' कोई कारदार नहीं माना जाता।

ऊपरोक्त अधिकारियों में से प्रायः सभी देवता की इच्छा के अनुसार बदल दिए जाते हैं परन्तु अनेक गाँवों में मोहतमिम व पुजारस का पद पैत्रिक है। इसी प्रकार बूचारस एवं शूमाथस भी कई गाँवों में पैत्रिक होते हैं।

देवता के कोष से उसके भवनों, अतिथि देवता, कारदारों तथा विभिन्न महत्त्व-पूर्ण उत्सवों पर खर्च होता है और उसका हिसाब रखा जाता है। इसके सिवा पहले सराहन में 'व्यापन' नाम का एक यज्ञ वर्ष में एक बार राजा की ओर से सम्पन्न किया जाता था जिसके लिए ये ग्राम-देवता निश्चित धन-राशि देते थे, पर अब इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है।

देवता के कोष से ग्राम-वासियों को साधारण ब्याज पर रुपया तथा अनाज दिया जाता है जिसे नियमानुसार एक या दो वर्षों में आवश्यक रूप से लौटाना पड़ता है। यदि निश्चित तिथि को रुपया या ऋण न लौटाया जाए तो देवता की ओर से प्रति-दिन के हिसाब से कड़ा ब्याज लिया जाता है। इस व्यवस्था से ग्राम-वासी अपने देवता के कोष को दृढ़ से दृढ़तर करते चले जाते हैं। महेशुरों तथा उन की बहिनों (कोठी की चण्डिका, ऊषा व चित्ररेखा आदि) की इतनी अधिक सम्पत्ति है कि उनके अपने देवदार के जंगल हैं और गाँव की भूमि का अधिकांश भाग उनके नाम पर है। सुंगरा महेशुर का सेवों का बहुत बड़ा बागीचा है।

पिछले दिनों जब सरकार के आदेश के अनुसार काश्तकारों को भूमि का पूर्ण अधिकार मिल गया तब भी चगांव गाँव के काश्तकारों ने सरकार से प्रार्थना की कि उन्हें देवता की भूमि का मालिक न बनाया जाए क्योंकि इस से देवता अप्रसन्न हो जाएगा और उन्हें कई प्रकार की हानि उठानी पड़ सकती है।

किन्नर लोक-देवताओं के प्रकार :

किन्नर क्षेत्र में अधेड़ आयु की सभी स्त्रियों को 'नाने' अथवा नानी (बूआ) तथा प्रौढ़ पुरुषों को 'मोमा' अथवा 'मामा' कहने की प्रथा है। युवतियां अपरिचित युवकों को भी 'अते' (भाई) कह कर सम्बोधित करती हैं। सारांश यह है कि प्रस्तुत क्षेत्र के निवासी परिचित तथा अपरिचित व्यक्तियों के साथ भी किसी न किसी प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध बना लेते हैं जिसके कारण अपनत्व तथा सुरक्षा की भावना बढ़ जाती है।

यहां के लोक-देवता भी दूसरे ग्राम-देवताओं के साथ साथ इसी प्रकार के सामा-जिक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। छोटे देवता अपने आप को दूसरे बड़े देवताओं का भानजा मानते हैं तथा बड़े देवताओं को 'मोमा' कहते हैं। यह स्थानीय वातावरण तथा बड़े देवताओं का कृपापात्र बनने के ही कारण है, अन्यथा महेशुर (मोनशिरस) देवता नारायण तथा नाग देवताओं के किसी भी प्रचलित विश्वास के अनुसार 'मामा' नहीं हैं।

किन्नर-ग्राम-देवताओं का परिवार बहुत बड़ा है। इस में बड़े छोटे देवता तो हैं ही, ऐसे देवता भी हैं जिन्हें दूसरों के वर्ग में नहीं रखा जा सकता। इन देवी-देवताओं का संक्षिप्त विवरण अगले पृष्ठों में दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर किन्नर लोक-देवताओं को निम्नलिखित मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है :

मेशुर—

1. **मेशुर देवता/देवियां :—**

   अ. बर्गांव, सुङ्रा, भावा, पवारी तथा मेबर गांवों के देवता।

   आ. चण्डिका, ऊषा, चित्र रेखा, हिरमा, तिरासन तथा पिरासन।

2. **नाग देवता/देवियां :—**

   अ. ब्रूआ, साङ्ला, सापनी, बारङ्, यूला, उरनी, बरी तथा नात्पा आदि।

   आ. सारे क्षेत्र की नागिन-देवियां।

3. **नारायण अथवा कुल देवता :—**

   अ. सुङ्रा, भावा, चगांव, बद्रीनाथ, चीनी, उरनी, पानवीं, गरशू दुतरङ्, असरङ् तथा रोघी आदि।

4. **बौद्ध-धर्म सम्बन्धी देवता/देवियां :—**

   अ. डबला, युलसा, मिलायुङ्, टुङ्मा, चाकोलिङ्, तथा तलसा।

   आ. युङ्मायुङ्, जन, डबला, पूह, लामो तथा माथी।

5. **गृह-देवता/देवियां :—**

   अ. महासू, वीर, माटिङ्, छाङ्गा, नागस तथा देदुम आदि।

   आ. काली तथा न्युगे।

6. **बाहर रहने वाले देवता/देवियां :—**

   अ. फसल के देवता/देवियां।

   आ. भूत-प्रेत—चन, खोन, खुङ्च।

   इ. वन देवियां/देवता—सावनी।

इन देवी-देवताओं को क्षेत्रों के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है, यथा :—

1. सारे किन्नर-क्षेत्र में सम्मानित देवता—मोनशिरस तथा उनकी बहिनें और वन-देवियां।

2. क्षेत्र—विशेष के देवता—युल्सा, डबला, नाग, नारायण तथा बद्रीनाथ।

3. ग्राम-देवता—सभी देवता जिनका प्रभाव केवल अपने गाँव में ही है—
   (अ) बौद्ध-धर्म के देवता तथा देवियां।
   (आ) वैष्णव-धर्म तथा नाग-वंश के कुछ देवता।
4. वन-देवता तथा देवियां।
5. गृह-देवता—नागस, वीर, माटिङ् छाङ्गा तथा देवियां।

सामाजिक-स्तर, स्वभाव तथा कार्यों के आधार पर इन देवताओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :—

किन्नर–लोक–देवता
मेशुर
↓

↓ देवता (कठोर तथा अनुशासन-प्रिय)
↓ देवियां (स्वाभिमानी, जन-हित कारिणी तथा छल-कपट पूर्ण)

नाग-नारायण
↓

↓ वैष्णव-धर्म के देवता (सौम्य स्वभाव)
↓ नागस (पृथ्वी व फसल के देवता)

बौद्ध-धर्म सम्बन्धी
↓

↓ बौद्ध-धर्म के देवता (अहिंसा में विश्वास रखने वाले)
↓ बौद्ध-धर्म की देवियां (जन कल्याणमयी)

गाँव के बाहर रहने वाले देवता
↓

↓ पहाड़ों (कण्ढों) के देवता (ईर्ष्यालु)
↓ गृह-देवता (किमशू) (रक्षक)
↓ अन्य सभी प्रकार के देवता खातिङ्शू आदि (पोषक)

छोटे देवता जब बड़े देतवाओं से मिलने के लिए उन के गाँव जाते हैं तो उस गाँव के निवासियों को अपने देवता के आने की सूचना पहले नहीं देनी होती क्योंकि छोटे व्यक्ति भी बड़ों के घर जाने से पूर्व अपने आने की सूचना नहीं देते।

धर्म के आधार पर किन्नर-लोक देवताओं को निम्न चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. शैव-धर्म के देवता — महेशुर तथा देवियां।
2. वैष्णव-धर्म के देवता — नारायण (नारेनस, कुल देव, महासु, वासदेव, विष्णु।

3. बौद्ध-धर्म के देवता — बौद्ध धर्मानुयायी ग्राम तथा गृह देवता।
4. आदिम जातीय देवता — सावनी, फसल के देवता, नर बलि लेने वाले देवता, आदि।

किन्नर-देव परिवार के सदस्यों से सम्बन्धित जन-विश्वासों के आधार पर उन की उत्पत्ति आदि का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

मेशुरस (मोनशिरस)—

अट्ठारह भाई-बहिन माने जाते हैं अनेक गीतों के अनुसार इनकी संख्या सात बताई जाती है। बाणासुर ने हिरमा को मुलट धार पर बल पूर्वक रोक लिया और वे राक्षस विवाह करके सुंगरा गाँव के पास एक गुफा 'गोरबोरिङ् अग्ग' में रहने लगे। जहां इनके 18 पुत्र-पुत्रियाँ हुए। हिरमा कफौर गाँव की देवी है। महेशुर भाई-बहिनों में से कुछ के नाम ये हैं :—

1. चण्डिका—कोठी गाँव।
2. भाबा मेशुर—भाबा गाँव।
3. सुङ्रा मेशुर—सुङ्रा गाँव।
4. चगांव मेशुर—चगांव गांव।
5. ऊषा—निचार गांव।
6. चित्ररेखा—तरण्डा गांव।
7. छोटा कम्बा—दुर्गा/नागिन।
8. पिरासन नात्पा के पास सतलुज में।
9. पोर परका—पवारी गांव।
10. मेबर मेशुर—मेबर गांव।
11. चगांव दुर्गा (गूंगी बहरी)—चगांव गांव।
12. बड़ा कम्बा दुर्गा—बड़ा कम्बा।
13. पुजाहरली—पुजाहरली मेशुर शिमला जिला।
14—18. गूंगे बहरे—भाई-बहिन।

किन्नर-क्षेत्र को इन भाई बहिनों ने आपस में बांट लिया। बड़ी बहिन चण्डिका ने अपने छोटे भाई-बहिनों को क्षेत्र बांट दिये, जिन के आधार पर वे अपने अपने गाँवों तथा क्षेत्रों के एकमात्र अधिकारी बन गये। इस बांट के समय किन्नौर का सब से बड़ा तथा उपजाऊ क्षेत्र चण्डिका ने अपनी वेणी के पीछे छुपा कर रख लिया तथा प्रकट रूप में अपने लिए रोपा गाँव लिया। कोठी गाँव के समीप रहने वाले रोएलिङ्[1] ठाकुर को उसने बाणासुर के त्रिशूल की सहायता से मार डाला।

---

1. कुछ किम्वदन्तियों के अनुसार इसे दसराम भी कहा जाता है :—देखिये Census of India 1961, Kothi—a Village Survey—Monograph Vol. XX–Part VI–No. 1, Page 52.
तथा किन्नर देश-राहुल सांकृत्यायन, पृ० 192, 193।

कई लोक-गीतों के आधार पर सुङ्रा, भावा तथा चगाँव के महेशुरों, चण्डिका तथा ऊषा के बीच ही भागों की बाँट हुई परन्तु तरण्डा, पवारी तथा मेबर से मिले गीतों के अनुसार पवारी तथा मेबर के देवताओं को कोई भाग नहीं दिये गए और उन्होंने स्वयं अपने लिये क्षेत्र ढूंडे। इन देवी-देवताओं की माता हिरमा (हिड़िम्बा) कफौर गाँव की देवी है। इस का रथङ् नहीं है। इस का ग्रोक्च चरौनिङ्[1] के समय कहता है कि इसने सावनी देवियों की सहायता से ऊपर के पहाड़ पर लोहे की सलाई लगा कर उसे गिरा दिया और कफौर के समीप राज्य कर रहे पाण्डवों को भगा दिया। हिरमा से मिलने के लिए ऊषा, चित्ररेखा/चित्रलेखा तथा सुंगरा महेशुर कभी कभी पालकियों में लाए जाते हैं।

बाणासुर का न तो रथ है और न ही उसे कोई ग्राम बाँट में मिला था। इन महेशुरों की एक बहिन पिरासन बहुत दुष्टा तथा कठोर थी इसलिये लोगों ने उसे मार डालना चाहा। एक बार जब वह निचार गाँव से छोटा-कम्बा जा रही थी तो नात्पा झूले को पार कराते समय लोगों ने उस के रथङ् को सतलुज नदी में गिरा दिया, परन्तु वह थोड़ी दूर जाने के पश्चात् सम्भल गई और नदी में चट्टान बन गई, जहाँ अब भी लोग उस की पूजा करते हैं।

महेशुरों में कुछ भाई-बहिन गूंगे तथा बहरे भी थे। उन का निश्चित रूप से पता नहीं चलता कि वे कहाँ चले गए परन्तु एक बहिन के मूहरे को अभी भी चगाँव महेशुर गाँव से बाहर जाते समय अपनी जटाओं में डाल कर ले जाता है। कहा जाता है कि जब रारङ् पानुङों स्थान[2] पर बाँट हो रही थी तो चगाँव महेशुर ने अपनी इस गूंगी बहिन के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व लिया था।

कोठी की चण्डिका सब से चालाक देवी मानी जाती है इस ने अपने भाइयों को धोखा दिया[3] था। ऐमर्स दसराम के साथ लड़ाई में उस ने उस ठाकुर को हराया[4] था।

यह कहा जा सकता है कि यह क्षेत्र प्राचीन समय में बाणासुर का प्रभाव-स्थल रहा है और वह विशाल किन्नर-क्षेत्र का राजा रहा होगा। रामपुर-बुशहर के समीप ही एक स्थान है—सराहन। उसे शोणितपुर का अपभ्रंश माना जाता है। इस क्षेत्र में प्राचीन शिव-मन्दिर, सिक्के तथा भवनों के खण्डहर मिलते हैं। किन्नर-संस्कृति पर बाणासुर के प्रभाव को देखते हुए यह विश्वास करना पड़ता है कि आधुनिक सराहन ही पौराणिक शोणितपुर रहा है।

कुछ विद्वान शिव जी को हिमालय में रहने वाली अनार्य-जातियों का देवता मानते

---

1. देवता की शक्ति आना। जब देवता की शक्ति किसी व्यक्ति पर आ जाती है तो वह काँपने लगता है, उस अवस्था को 'चरौनिङ्' कहा जाता है।
2. बाङ्तू के पास एक खुले मैदान का नाम।
3. क्षेत्र-बाँट का सन्दर्भ।
4. यह काल्पा क्षेत्र का अधिपति था।

है,[1] उनका मत है कि शिव जी अपनी विशेषताओं तथा दैवी शक्ति के कारण आर्यों का भी प्रधान देवता बन गया।

बाणासुर से सम्बन्धित एक किम्वदन्ती के अनुसार[2] प्राचीन समय में किन्नर-प्रदेश कामरू का स्थान एक बहुत बड़े राज्य की राजधानी था। इस राज्य में तीन ब्राह्मण बन्धु रहते थे। देवताओं का किसी कारण श्राप के होने से वे कद में छोटे हो गए और उन का सारा शरीर गलना आरम्भ हो गया जिस कारण वे बाणु (वामन) बन गए। वे इतने छोटे हो गए कि गाय के खुर रखने से बने तालाब को भी पार नहीं कर सकते थे। अन्त में जीवन से तंग आ कर उन्होंने तपस्या करना आरम्भ कर दिया और तीन वर्ष तक अपना पुराना जीवन लौटाने के उद्देश्य से तप करते रहे। उन की तपस्या से भगवती अन्नपूर्णा, जो उस क्षेत्र की देवी थी, प्रसन्न हुई और उन का पूर्व व्यक्तित्व लौट आया। देवी के आशीर्वाद से उन के नाम देवपूर्ण, तपपूर्ण तथा राजपूर्ण पड़े। सब से बड़े भाई देवपूर्ण ने देवी का मन्दिर बनवाया, तपपूर्ण साधु बन गया तथा राजपूर्ण वहां से बस्पा उपत्यका में आया जहां वह कामरू का राजा बन गया।

राजपूर्ण के राज्य का मन्त्री बाणासुर था। राजा उस का बहुत आदर करता था, अतः शेष दरबारी उससे द्वेष करते थे। बाणासुर इस अवस्था से तंग आकर मानसरोवर की यात्रा के लिए गया। मानसरोवर के जल में उस समय बाणासुर के मन की अशान्ति की तरह उथल पुथल थी। तब उस प्रदेश में कैलाश पर्वत नहीं था और नदी सांगपू ने उसे पीले जल से इतना भर रखा था कि जल किनारों से बाहर आ गया था। शिव जी वहां ताण्डव नृत्य कर रहे थे, उन्होंने नृत्य करते समय अपने आवास कैलाश को एक ठोकर लगाई, जिससे वह पृथ्वी पर आ गया। पृथ्वी फट गई और कैलाश पहले तो लुप्त हो गया परन्तु कुछ समय पश्चात्, वह मानसरोवर के उत्तर में प्रकट हुआ। भूचाल आने से वहां एक नदी बन गई जिस का नाम शोणित (सतलुज) है। आगे आगे बाणासुर चला और पीछे शोणित। सराहन के पास आकर उसने उसे आदेश दिया कि वह आगे अपना मार्ग स्वयं ढूंडे। उसने इसी स्थान पर अपनी राजधानी बनाई जिस का नाम शोणितपुर रखा। इस कथन का अभिप्राय यह है कि बाणासुर इस क्षेत्र का

---

1. देखिए :—
   N. M. Penzer—The Ocean of Story, Vol. I, Forword by Sir Richard Carnae Temple, Bart. C. B., C.I.E., Page XIX.—"As I understand the situation, Siva was orignally a Local Himalayan God, who with Vishnu, gradually became a chief among the whole Hindu pantheon. This would assume that he was a non-Aryan deity who grew into prominence—and he wore a neclace of skulls. Why ? Was this a non—Aryan aboriginal nation ? Among the Andamanese who may be taken to be among the most untouched aborigines in existence, it is still the custom to wear skulls of deceased relatives."
2. कुल्लुई लोक-साहित्य, मूल शोध-प्रबन्ध—प्रति—डॉ० पद्म चन्द काश्यप, पृ० 10-15।

एक वीर पुरुष था जिस की राजधानी सराहन थी। यद्यपि यह कथा भौगोलिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा पुष्ट नहीं होती परन्तु बाणासुर व सराहन के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालती है।

कुल्लू प्रदेश[1] में एक ताण्डी नाम का राजा हुआ। वह राक्षस था और रोहतांग दर्रे के पास कुल्लू की दिशा में रहता था। उसकी बहिन का नाम हिडम्बा था। हिडम्बा का मन्दिर अद्यतन मनाली के निकट डूंगरी में है। भीमसेन अपने प्रवास-काल में इस क्षेत्र में गया। ताण्डी ने अपनी बहिन को उसे मारने भेजा पर वह भीम के साथ भाग निकली। युद्ध में भीम ने ताण्डी को मार दिया।

एक अन्य विवरण के अनुसार[2], तारकासुर के तीन पुत्रों ने ब्रह्मा से वरदान के रूप में तीन नगर प्राप्त किए थे। इन तीनों को एक ही बाण से भेदने वाले के अतिरिक्त दूसरा कोई भी उन्हें जीत नहीं सकता था। दानवों के बहुत सदाचारी होने के कारण वे अजेय हो गए और देवता उन के सामने तेजहीन हो गए। महाभारत में इस कथा को प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि दानवों ने महान उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। इस कथा में मत्स्यपुराण[3] में परिवर्तन मिलता है। यहां दानवों के नेता 'बाणासुर' अथवा 'मय दानव' बताए गए हैं। नारद के प्रयत्नों से दानव अपने आचार-व्यवहार में गिर गए और शिव जी उन से नाराज हो गए। परन्तु बाणासुर ने अपनी प्रजा का सारा दोष अपने सिर पर लिया और शिवजी से क्षमा मांगी। शिवजी उसकी श्रद्धा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसकी नगरी को विध्वस्त करने का संकल्प छोड़ दिया और शेष दो नगरों को पृथ्वी पर धकेल दिया। उन में से एक कैलाश के समीप गिरा और दूसरा अमर कण्टक पर पड़ा। यह कथा शैवों तथा वैष्णवों की विचारधाराओं के सम्बन्ध में प्रकाश डालती है।

शैवों और वैष्णवों का आपसी संघर्ष शिवजी तथा विष्णु को एक दूसरे से बड़ा बताना था। महाभारत में प्रथम बार 'ऊषा' तथा 'अनिरुद्ध' की कथा का उल्लेख हुआ है।[4] शिवजी के ऊपर विष्णु का उत्कर्ष बताने के लिए पुराणकारों ने इस कथा का उल्लेख किया। इस में बाणासुर को, जो शिव-भक्त था विष्णु के हाथों हराना बताया गया है। विष्णु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में यह कथा एक ही प्रकार से वर्णित है[5]। इस कथा के अनुसार 'ऊषा' का पिता बाणासुर परम शिव-भक्त था। भगवान शिव अपने भक्त बाणासुर की सहायता के लिए उस समय आए जब उसका युद्ध कृष्ण के साथ हो रहा था। कृष्ण, क्योंकि विष्णु का ही रूप था अत: बाण तथा कृष्ण का युद्ध शैव और वैष्णव मत का युद्ध हो गया। बाद में शिवजी के हार जाने पर विष्णु के साथ उन का समझौता होना वर्णित है, जो दोनों धर्मों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है।

---

1. वही, पृ० 36-37।
2. डॉ० यदुवंशी—शैवमत—बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पृ० 128।
3. मत्स्यपुराण—अध्याय 129-32, अध्याय 188।
4. देखिए—महाभारत सभापर्व 40, 24-29।
5. विष्णु पुराण-भाग 5, अध्याय 33 तथा ब्रह्माण्ड पुराण-भाग 1, अध्याय 204।

महाभारत के सभापर्व में इस कथा को जिस प्रकार से कहा गया है उससे यह संघर्ष अधिक स्पष्ट हो जाता है। हिडिम्ब बध पर्व में हिडिम्ब द्वारा अपनी बहिन हिड़िम्बा को पाण्डवों को मारने के लिए भेजे जाने पर बताया गया है कि वह बड़ी उतावली से उन के पास गई, परन्तु :—

दृष्टैव भीमसेनं सा शाल पोतमिवोद्गतम् ।
राक्षसी कामयामास रूपेणा प्रतिम भुवि ॥17॥

धरती पर उगे हुए साखू के पौधे की भांति मनोहर भीमसेन को देखते ही राक्षसी (मुग्ध हो) उन्हें चाहने लगी। इस पृथ्वी पर वे अनुपम सुन्दर थे।

हिड़िम्बा को यहां इच्छानुसार रूप धारण करने वाली बताया गया है। वह भीमसेन के पास सुन्दर रूप धारण करके गई और पूछने लगी कि वह नर-रत्न कौन है ?[1]

हिड़िम्बा ने भीम से विवाह-सम्बन्धी अनेक प्रार्थनाएं कीं परन्तु वह पुरुष-रत्न उसे अपनाने के लिए तैयार नहीं हुआ। हिड़िम्बा आकाश में भी उड़ सकती थी, उसने कहा—

अन्तरिक्षचरी ह्यस्मि कामतो विचरामि च ।
अतुलामापनुहि प्रीति तत्र तत्र मया सह ॥30॥

शेष पाण्डव-भ्राता तथा कुन्ती सोए हुए थे, उसने कहा——

यत् ते प्रियं तत करिष्ये सर्वानेतान् प्रबोधय ।
मोक्षायिष्याम्यहं कामं राक्षसात् पुरुषादकात् ॥33॥

उस राक्षसी ने कहा—आप को जो प्रिय लगे, मैं वही करूंगी। आप इन सब लोगों को जगा दीजिए। मैं इच्छानुसार उस मनुष्य-भक्षी राक्षस से इन सब को छुड़ा लूंगी।

भीमसेन ने उस में कोई रुचि नहीं दिखाई और कहा—

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद् वा पीच्छसि तत् कुरु ।
तं वा प्रेषय तन्वङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम् ।36।

—अतः भद्रे ! तुम जाओ या रहो, अथवा तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वही करो। तन्वङ्गि ! अथवा यदि आप चाहो तो अपने नर-भक्षी भाई को ही भेज दो।

भीम ने उसे कहा—

धिक् त्वामसति पुंस्कामे मम विप्रियकारिणी ।
पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि । 18 ॥

---

1. सा कामरूपिणी रूपं कृत्वा मानुषमुत्तमम् ।
उपतस्थे महा बाहुं भीमसेनं शनैः शनैः ।21।
लज्जा मानेव ललना दिव्याभरण भूषिता ।
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं भीमसेन मथा ब्रवीत ।22।
कुतस्त्वमसि सम्प्राप्तः कश्चासि पुरुषर्षभ ।
क इमे शेरते चेह पुरुषः देवरूपिणः ।23।—हिडिम्बवध पर्व ।

मनुष्य को पति बनाने की इच्छा रख कर मेरा अप्रिय करने वाली दुराचारिणी ! तुझे धिक्कार है। तू पूर्ववर्ती सम्पूर्ण राक्षस-राजों के कुल में कलंक लगाने वाली है।

अपने लिए हिड़िम्बा कहती है——

अहं हि मनसा ध्याता सर्वान् नेष्यामि वः सदा।
(न यातु धान्यहं त्वार्ये न चास्मि रजनीचरी।
कन्या रक्षस्सु साध्वयस्मि राज्ञि साल कण्टकी।)

—आप अपने मन से जब जब मेरा स्मरण करेंगे, तब तब सदा ही (सेवा से उपस्थित हो) मैं आप लोगों को अभीष्ट स्थानों में पहुंचा दिया करूंगी। आर्ये ! मैं न तो यातुधानी हूं और न ही निशाचरी हूं। महारानी ! मैं राक्षस जाति की सुशीला कन्या हूं और मेरा नाम सालकंटकी है।

पाण्डव हिड़िम्बा के साथ शालिहोत्री ऋषि के आश्रम में कुछ देर ठहरे।

राक्षसियों के सम्बन्ध में एक अन्य श्लोक में कहा गया है :—

सद्योहि गर्भान् राक्षस्यो लभन्ते प्रसवन्ति च।
कामरूप धराश्चैव भवन्ति बहुरूपिका॥ 36॥

राक्षसियां जब गर्भ धारण करती हैं, तब तत्काल ही उसको जन्म दे देती हैं। वे इच्छानुसार रूप धारण करने वाली तथा नाना प्रकार के रूप बदलने वाली होती हैं।

इसी अध्याय के 38वें श्लोक में बताया गया है कि हिड़िम्बा से भीमसेन का घटोत्कच नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम घटोत्कच इसलिए पड़ा कि वह घट-सिर, उत्कच—ऊपर उठे हुए बालों वाला अथवा केश रहित था, अर्थात् केश रहित सिर वाला या ऊपर उठे हुए बालों वाले सिर वाला था।

पाण्डव इस दौरान में :—

मत्स्यांस्त्रिगर्तान् पंचालान् कीचकानन्तरेण च।
रमणीयान् वनोद्देशान् प्रेक्षमाणाः सरांसि च॥ 2॥

मत्स्य, त्रिगर्त, पांचाल तथा कीचक इन जनपदों के भीतर होकर रमणीय वनस्थलियों और सरोवरों को देखते हुए वे लोग यात्रा करने लगे।

इन सब श्लोकों से हिड़िम्बा के सम्बन्ध में जो जानकारी मिलती है वह यह है कि वह राक्षस वंश से सम्बन्धित थी और उसमें रूप बदलने की शक्ति थी। किन्नर-पुराण-कथा में भीम सेन का वर्णन तो नहीं आया है परन्तु कफौर गांव में जहां हिरमा देवी का मन्दिर है, यह कथा ही प्रचलित नहीं है बल्कि देवी का ग्रोक्च भी देवी की शक्ति आने पर कहता है कि पहले उस स्थान पर पाण्डवों का राज्य था फिर हिरमा ने जा कर सावणियों (कण्ढे की वन-देवियों) की सहायता से ऊपर के पहाड़ पर लोहे की सलाइयां गाड़ कर उसे गांव पर गिरा दिया और पानी का एक नाला निकाल कर सारे गांव को उस में बहा दिया।

सुंगरा गांव में एक बड़ी चट्टान है जिस के ऊपर ऐसी विशेष प्रकार की घास

उगती है जो ऊंचे पर्वतों पर पाई जाती है। वहां के देवता के सम्बन्ध में यह किम्वदन्ती है कि भीम ने उसे मारने के लिए सामने के पहाड़ से उस चट्टान को एक उंगली पर रख कर फैंक दिया था पर देवता अपनी शक्ति के कारण बच निकला।

इन सब बातों का अर्थ यह हुआ कि पाण्डव वंश से इन मेशुरों की शत्रुता थी और सुङ्रा मेशुर, हो सकता है, ताण्डी अथवा हिडिम्ब का ही दूसरा नाम हो अथवा भीम द्वारा मारे जाने के पश्चात् वह देवता के रूप में अवतरित हो गया हो। यह विश्वास यहाँ के लोगों में भी है कि ये देवता असुर हैं पर यदि इन्हें न पूजा जाए तो ये हानि पहुंचाते हैं अतः डर के कारण इन्हें देवता मान कर पूजना आवश्यक होता है।

विष्णु पुराण में ऊषा-अनिरुद्ध का विवरण इस प्रकार है :—

अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो बलेः पौत्रीं महाबलः ।
उषां बाणस्य तनया मुपयेमे द्विजोत्तम ॥7॥[1]
यत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशङ्कर योर्महत् ।
छिन्नं सहस्रं बाहूनां यत्र बाणस्य चक्रिणा ।8॥

—हे द्विजोत्तम ! महाबलि अनिरुद्ध युद्ध में किसी से रोके नहीं जा सकते थे। उन्होंने बलि की पौत्री एवं बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह किया था। उसमें भी हरि और भगवान शङ्कर का घोर युद्ध हुआ था और श्री कृष्णचन्द्र ने बाणासुर की सहस्र भुजाएं काट डाली थीं।

ऊषा को रात को स्वप्न में अनिरुद्ध के दर्शन हुए। बाणासुर के मन्त्री का नाम कुम्भाण्ड था उसकी पुत्री का नाम चित्रलेखा अथवा चित्ररेखा था, वह ऊषा की सखी थी। जब ऊषा को अनिरुद्ध के दर्शन हुए तो प्रातः उसने उसे बुलाकर लाने के लिए कहा। लेखा ने कहा कि 'यह तुम किसके विषय में कह रही हो ?'

किन्तु जब लज्जा वश ऊषा ने उसे कुछ भी न बतलाया तब चित्रलेखा ने (सब बात गुप्त रखने का) विश्वास दिला कर ऊषा से सब वृतान्त कहलवा लिया।[2]

किन्नर-क्षेत्र के लोक-गीतों एवं विश्वास के अनुसार चित्रलेखा हिरमा की लड़की थी पर उसका जन्म उसके नाक से हुआ था। यह यहां भी माना जाता है कि पहले यह ऊषा की सहेली थी परन्तु तान्त्रिक होने के कारण तथा ऊषा के अधिक निकट जाने के उद्देश्य से यह हिरमा के नाक से उत्पन्न हुई। अतः हमारी यह धारणा पक्की होती जाती है कि हमारी पौराणिक-गाथा के लिखे जाने के पूर्व की कथा जो पुराणकारों तक नहीं

---

1. श्री विष्णु पुराण—गीता प्रेस गोरखपुर, अध्याय 32, पृ० 470।
2. बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
तस्याः सत्य भवत्सा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते ।17।
यदा लज्जा कुला नास्यै कथया मास सा सखी ।
तदा विश्वास मानीय सर्व मेवाभ्यवादयत् ।18।—विष्णुपुराण, अध्याय 32 ।

पहुंच पाई, इस क्षेत्र में प्रचलित रही है और पुराणों का इस क्षेत्र में कम प्रचलन होने के कारण लोकवार्ता में आज भी यह उसी रूप में मिलती है।

विष्णु-पुराण के 33वें अध्याय में हज़ार भुजाओं के उपयोग के सम्बन्ध में बाणासुर ने शिवजी से प्रश्न किया है जिसके उत्तर में शंकर ने बताया कि जिस दिन मयूर-चिन्ह वाली ध्वजा टूट जाएगी उस दिन बाणासुर का शत्रु उत्पन्न हो जाएगा। इस ग्रन्थ में भी बाणासुर की राजधानी का नाम शोणितपुर बताया गया है।[1] इसी अध्याय के 26वें श्लोक में कहा गया है :—

मुंचतो बाणनाशाय ततश्चक्रं मधुद्विष: ।
नग्ना दैतेय विद्या भूत्कोटरी पुरतो हरे: ।36।

जिस समय भगवान मधुसूदन बाणासुर को मारने के लिए चक्र छोड़ना ही चाहते थे, उसी समय दैत्यों की विद्या (मन्त्रमयी कुल देवी) कोटरी भगवान के सामने नग्नावस्था में उपस्थित हुई।

ऊषा का विवाह यहां प्रचलित विश्वासों के अनुसार 'हौनू' राक्षस से हुआ था जिसे चण्डिका ने धोखे से घराट में मार दिया था परन्तु महाभारत तथा विष्णु पुराण में अनिरुद्ध तथा उसके वंश की केवल जीत ही नहीं बताई गई है बल्कि वैष्णव धर्म की शैव-धर्म पर भी विजय प्रदर्शित की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पुराणकारों ने 'हौनू' राक्षस को वैष्णव धर्म का प्रभाव बताने के उद्देश्य से कृष्ण के वंश से जोड़ दिया और उस प्रचलित कथा को महत्त्वपूर्ण मोड़ प्रदान किया। विष्णु पुराण में बाणासुर को प्राणदान देते हुए विष्णु कहते हैं[2]—

त्वया यद् भयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया ।
मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ।।47।।

—आप ने जो अभय दिया है वह सब मैंने भी दे दिया। हे शङ्कर! आप अपने को मुझ से सर्वथा अभिन्न देखें।

भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोश[3] में बाण के सम्बन्ध में कहा गया है :—

1. एक दानव जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

2. एक सुविख्यात असुर जो असुर राजा बलि वैरोचन का पुत्र था। शिव का पार्षद होने के कारण इसे महाकाल नामान्तर भी प्राप्त था। पद्म पुराण में इसे भूतों का राजा कहा गया है। पद्म (25.11) के अनुसार यह सहस्रबाहु होने के कारण अत्यधिक पराक्रमी तथा युद्ध में अजेय था।

---

1. देखिए विष्णुपुराण—अध्याय 33, श्लोक 11, 12।
2. देखिए विष्णुपुराण—अध्याय 33, श्लोक 47।
3. महामहोपाध्याय विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री, चित्राव, भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोश, पृ० 502।

मत्स्य-पुराण[1] में इस की माता का नाम विन्ध्यावलि दिया गया है। इस की राजधानी दैत्यों के सुविख्यात त्रिपुरों में से शोणितपुर में थी। हरिवंश पुराण में बाण की जीवन-कथा विस्तृत रूप में दी गई है[2]। इसके अनुसार—दैत्यों की त्रिपुर नगरियां आकाश में सदैव संचरण किया करती थीं। ये निर्भेद्य थीं जिन्हें कोई जीत नहीं सकता था। इसके रहस्य का कारण थीं—दैत्य स्त्रियां, जिन के पति-सेवा के प्रभाव से ये नगरियां पृथ्वी पर नहीं आती थीं तथा आकाश में ही तैरती थीं। दैत्य लोग इन नगरियों में रहते तथा देवों एवं ऋषियों के आश्रमों में जाकर उत्पात मचाते। इससे ऊब कर देव-ऋषि आदि भगवान शङ्कर के पास गए, तथा अपने कष्टों का निवेदन कर उबारने के लिए प्रार्थना की।

शङ्कर भगवान ने भक्तों की मर्मान्तिक वाणी को सुन कर नारद को स्मरण किया। याद करते ही स्मरण-गामी नारद तत्काल प्रकट हुए। शंकर ने देवर्षि नारद से निवेदन किया कि वह राक्षसों की नगरियों में जा कर वहां की महिलाओं का ध्यान पति-सेवा से हटाकर दूसरी ओर लगा दें, जिस से वे नगर पृथ्वी पर आ सकें तथा इन अजेय राक्षसों का नाश हो सके।

शङ्कर के वचनों को स्वीकार कर नारद वहां गया, तथा वहां की स्त्रियों को, (विभिन्न प्रकार के अन्य धार्मिक पूजा-पाठों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर), पति-सेवा-व्रत से हटा दिया जिस के कारण नगरों की शक्ति कम होने लगी। ऐसी स्थिति देख कर, शंकर ने तीन नोकों वाले बाण से तीनों नगरों को बेध दिया। शंकर ने अग्नि को भी आज्ञा दी कि तीनों नगरियां जला दी जाएं। अग्नि ने आज्ञा पाते ही इन्हें भस्मीभूत करना शुरू किया।

नगरों को जलता देख कर, बाण अपनी नगरी से अपने उपास्य देव शिवलिंग को साथ ले कर बाहर निकला। वह शिव भक्त था, अतएव अपने को कष्ट में पाकर उसने 'तोटक छन्द' के द्वारा शंकर की पूजा कर उसे प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर शंकर ने इस की शोणितपुर नगरी बचा ली तथा अन्य दो को जलने दिया। वे दोनों जल कर शैल तथा अमरकण्टक पर्वत पर गिरीं। इसी कारण उन दो स्थानों पर तीर्थ बन गए। यह विवरण मत्स्य पु० 187-188 तथा पद्म पुराण स्वर्ग खण्ड 14-15 में विवेचित है[3]।

हरिवंश पुराण[4] तथा शिवपुराण में बाण द्वारा शिव-पुत्र बनने के लिए तपस्या करना तथा कार्तिकेय द्वारा उसे तेजस्वी ध्वज तथा मयूर-वाहन दिया जाना वर्णित है।

---

1. भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोष, पृ० 502 तथा मत्स्य-पुराण 187.40।
2. भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोष तथा हरिवंश पुराण अध्याय 2, श्लोक 116-128।
3. देखिए—भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र--कोष—महामहोपाध्याय विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री, चित्राव, सं० 2021, पृ० 502-503।
4. ह० वं० पुराण-2. 116.22 तथा 1.116.22।

शंकर ने उसे कार्तिकेय के जन्म-स्थान का अधिपति बनाया था। कार्तिकेय द्वारा दिए गए ध्वज में मयूर की छाप थी, जिसका सिर मयूर का न हो कर मनुष्य का था। इसी पुराण (शिवपुराण)[1] के 51वें खण्ड में लिखा गया है कि भगवान शंकर ने उसे अपने परिवार में सम्मिलित करके गणेश व कार्तिकेय की रक्षार्थ नियुक्त किया था। श्रीमद्-भागवत[2] के अनुसार उसने वाद्य-वादन में विशेष दक्षता दिखा कर शिव जी को ताण्डव-नृत्य से प्रसन्न किया था।

बाण ने शंकर द्वारा प्राप्त किए गए इन वरों के बल पर, अनेक बार इन्द्रादि देवों को जीत कर, जब जैसा चाहा, किया। किसी में इतनी शक्ति नहीं थी कि उस के तेज के सामने ठहरे। एक बार इस ने शंकर को कहा कि इसकी प्रबल शारीरिक शक्ति इसे लड़ने के लिए मजबूर कर रही है। शंकर ने उसे बताया कि कार्तिकेय द्वारा दिया गया ध्वज जिस दिन भी ध्वस्त होगा, उसी दिन युद्ध होगा। बाद में इन्द्र का वज्र गिरने पर वह ध्वस्त हो गया। कथा रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है और बताया गया है कि बाण के ऊषा नामक एक कन्या थी जो अत्यधिक नियन्त्रण में रखी जाती थी। एक बार एक पहरेदार के द्वारा सूचना प्राप्त होने पर कि ऊषा किसी पुरुष से अपना सम्पर्क बढ़ा रही है, बाण उसके महल में गया और ऊषा को एक पुरुष के साथ जूआ खेलते हुए पाया। वह पुरुष अनिरुद्ध था। बाद में बाण ने नागपाश छोड़े, जिन्होंने (नागों ने) ऊषा व अनिरुद्ध को जकड़ लिया और वे बन्दी बना लिए गए।

कृष्ण अनिरुद्ध को छुड़ाने के उद्देश्य से सेना ले कर शोणितपुर पहुंचा। बाण की रक्षा के लिए उसकी ओर से शंकर भगवान, कार्तिकेय एवं गणेश भी थे। पद्मपुराण के अनुसार बाण का युद्ध सब से पहले बलराम से हुआ तथा भागवत एवं शिवपुराण के अनुसार इसका युद्ध सर्वप्रथम सात्यकि से हुआ। वह कृष्ण से युद्ध में हार गया। पद्मपुराण[3] के अनुसार पार्वती की प्रार्थना के अनुसार कृष्ण ने उस की दो भुजाएं छोड़ कर सारे बाजू काट दिये। भागवत[4] तथा शिवपुराण के अनुसार विष्णु ने इसके चार हाथ रहने दिए तथा शेष काट डाले।

श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण ने उसे इस लिए जीवित छोड़ दिया कि उसने उस के प्रपितामह प्रहलाद को वर प्रदान किया था कि वह उसके किसी वंशज का वध नहीं करेगा[5]।

ऊषा-अनिरुद्ध विवाह :

कृष्ण ने द्वारिका बुलाकर ऊषा का अनिरुद्ध से विवाह कर दिया। इसने (बाण)

---

1. विष्णुपुराण रुद्र-संहिता युद्ध खण्ड, अ० 53।
2. श्रीमद्भागवत—10.62।
3. पद्मपुराण—3.2.50 तथा प्राचीन भारतवर्षीय चरित्र कोश, पृ० 504।
4. भागवत 10.63.49 तथा प्राचीन भारतीय चरित्र-कोश, पृ० वही।
5. भागवत—10.63।

ने ऊषा के अनिरुद्ध से उत्पन्न पुत्र को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया, जिस से प्रतीत होता है कि उसकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी[1]। किन्तु ब्रह्माण्ड में इसकी पत्नी लोहिनी से उत्पन्न इस के 'इन्द्रधन्वन' नामक पुत्र का विवरण प्राप्त है[2]।

पद्म[3] तथा मत्स्य पुराणों[4] से उस की 'अनौपम्या' आदि अनेक पत्नियां होने का भी पता चलता है। नित्याचार पद्धति नामक ग्रन्थ के अनुसार बाण के द्वारा देश के विभिन्न भागों में चौदह करोड़ शिवलिंगों की स्थापना की गई थी। ये लिंग 'बाण लिंग' नाम से सुविख्यात थे। नर्मदा, गंगा आदि पवित्र नदियों में प्राप्त शिवलिंगाकार पत्थरों को भी बाणासुर के नाम से 'बाण लिंग' कहा जाता है।[5]

बाण सभी पुराणों के अनुसार बलि का पुत्र, प्रह्लाद का पौत्र तथा हिरण्कश्यपु का पुत्रपौत्र बताया गया है। बाण की जीवन-कथा में शैव एवं वैष्णवों के परम्परागत संघर्षों की परछाइयां भी अस्पष्ट रूप से दिखलाई देती हैं।

प्राचीन चरित्र कोश[6] में बताया गया है कि 'आकाश में तैरती हुई बाण की शोणित पुर राजधानी किसी पर्वतीय प्रदेश में स्थित नगरी की ओर संकेत करती है। शोणितपुर को लोहितपुर एवं बाणपुर नाम भी प्राप्त थे। (त्रिकाण्ड. 32.17, अभि. 133. 977)। आसाम में स्थित ब्रह्मपुत्र नदी का प्राचीन नाम भी लोहित था, इस से प्रतीत होता है कि बाण का राज्य सद्य: कालीन आसाम राज्य के किसी पहाड़ी स्थान पर बसा होगा। यह पहाड़ी अत्यन्त दुर्गम होने के कारण देवों के लिए बाण अजेय बना होगा। महाभारत[7] में हिड़िम्बा का नाम कमल पालिका भी बताया गया है।'

चम्बा में हिरिमा देवी का मन्दिर है[8]। यह चम्बा के राजाओं की राजदेवी रही है। मनाली के समीप डूंगरी में हिड़िम्बा का मन्दिर है। उसके भाई का नाम ताण्डी था जो पाण्डवों का समकालीन था[9]।

महाभारत में हिड़िम्बा एक राक्षसी या मानव-भक्षी दानवी है जिसे लोक परम्पराओं के अनुसार हम कुल्लू की देवी हिरिमा या हिडिम्बा पाते हैं। हिड़िम्बा सम्भवत: एक देवी थी जो अति प्राचीन काल से पूजी जाती रही है और उसकी पूजा, जिस में नर-बलि की प्रथा थी, अनार्य थी इसी लिए ब्राह्मणों ने उसे देवी नहीं माना बल्कि मनुष्य-भक्षी दानवी कहा था। हिरिमा आरम्भिक काल से कुल्लू घाटी की देवी रही है,

---

1. शिव रुद्र युद्ध संहिता—59।
2. ब्रह्माण्ड पुराण—3.5.45।
3. पद्मपुराण—14।
4. मत्स्यपुराण—187.25।
5. नित्याचार—पृ० 556 तथा भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० 505।
6. वही (भा० प्रा० च० को०)—पृ० 505।
7. महाभारत, आदि पर्व 143.156, पंक्ति 4 तथा भा० प्रा० च० को०, पृ० 505
8. J.Ph. Vogel, Ph.D.—Indian Serpent Lore, Pp. 252-53.
9. J. Hutchison & J.Ph. Vogel—History of Punjab Hill States Vol. II, 1833, Page 426.

ऐसा प्रतीत होता है। उस का मन्दिर डूंगरी में मनाली के समीप है। परम्परा है कि उस ने कुल्लू के राजाओं को सत्ता दी और वहां रघुनाथ-पूजन का प्रचार हो जाने के पश्चात् भी अपनी महत्ता को बनाए रखा। अब तक भी यह माना जाता है कि ये राजा उसे 'दादी' कह कर पुकारते हैं। यद्यपि हिड़िम्बा को दशहरा में जाना पड़ता है और रघुनाथ जी को सम्मान देना पड़ता है, फिर भी उसे शेष देवताओं से थोड़ी देर बाद आने का अधिकार प्राप्त है[1] जो उसके ऐतिहासिक प्रभुत्व एवं विशिष्टता का द्योतक है।

वैदिक लोगों के शत्रुओं के अनेक प्रमाण हैं। इन सब में बहुत भयानक वे लोग थे जिन्हें असुर कह कर पुकारा जाता है। असुरों के दो प्रतिभाशाली तथा आध्यात्मिक नेता, जो पुराणों में प्रसिद्ध हैं, 'शुक्र' और 'मय' हैं[2]। तारक दैत्य के तीन पुत्र मय के मित्र थे। मय ने उन्हें तीन रहस्यमय नगरियों का निर्माण किया था। ये वही नगरियां थीं जिन का वर्णन पीछे किया जा चुका है। तारकासुर ने स्कन्द, जो शिव जी का अग्नि से उत्पन्न पुत्र माना जाता है, से लड़ाई लड़ी थी जिस में उसकी मृत्यु हो गई थी। तारकासुर को मारने के पश्चात् स्कन्द शैव-धर्मानुयायियों का नेता रहा। कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यों से पहले के लोग शिव को अपना देवता मानते रहे हैं[3]। जब शिव से सब देवताओं ने त्रिपुरासुरों की नगरियों को नष्ट करने की प्रार्थना की तो उसने सारे देवताओं से उनकी आधी शक्ति प्राप्त की और तब से उसे महादेव अथवा महेश्वर कहा जाने लगा, क्योंकि वह उन सब में सब से बड़ा हो गया[4]।

डा० गोविन्द चातक[5] कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध की शादी बाणासुर की पुत्री ऊषा के साथ गढ़वाल के स्थान ऊषीमठ पर हुई मानते हैं। उन के अनुसार बाणासुर गढ़वाल के उस क्षेत्र का राजा था जिसे आजकल बामसू कहा जाता है। उनके

---

1. Ibid, Pp. 426-27.
2. Hopkins–Epic Mythology, pp. 49, 50, 178-180 and G. S. Ghurye–Gods and Men—Pp. 55-56.
3. G. S. Ghurye—Gods and Men—

   It thus appears that Skanda's killing of Taraka demon pulled the trigger of the feud between the demons on the one hand and the gods and their proteges, humanity on the other. In the pest-ridding campaign, sometimes, strange in appearance, yet befitting the wayward and pre-Aryan component of Saivism, Siva, his consort and Skanda even sided with the demons, and the contribution of Vaishnavite section of the Hindu Pantheon is by far the more important and impressive...Skanda after discharging the specific task (of killing Tarakasur) remained the head of one group of Siva's attendants—Page 56.
4. The elements of Hindu Econography—Vol. II, Part I, Page 47.
5. मध्य पहाड़ी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 14।

मतानुसार यही प्राचीन शोणितपुर रहा होगा क्योंकि इस के आसपास लाल पत्थर और चट्टानें मिलती हैं जो शोणितपुर नामकरण की सार्थकता सिद्ध करती हैं परन्तु उनका तर्क इस सम्बन्ध में सबल भूमिका पर आधारित नहीं है।

सराहन नामक स्थान को, जो राम पुर से 25 मील के अन्तर पर एक सुन्दर पहाड़ी की तराई में बसा है शोणितपुर कहा जाना समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि यह स्थान हिमालय पर्वत के उस क्षेत्र में बसा है जो प्राचीन काल में निश्चय ही दुर्गम रहा होगा। यह स्थान शिमला से 115 मील के अन्तर पर किन्नर-क्षेत्र के बिल्कुल समीप है और यहां खुदाई पर प्राचीन सिक्के व भवनों में प्रयुक्त होने वाली अनेक वस्तुएं मिली हैं जो इस क्षेत्र की ऐतिहासिकता सिद्ध करती हैं। यही नहीं, इस स्थान पर अनेक लोगों को चले हुए तीरों के टुकड़े भी मिलते हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि यहां प्राचीन समय में तीरों के साथ भयंकर लड़ाई हुई होगी। क्योंकि सतलुज को 'शोणित' कहा गया है अतः यह स्थान अब से लगभग 6,000 वर्ष पूर्व इस नदी के इतने समीप रहा होगा कि इस का नाम शोणितपुर पड़ जाना आश्चर्य का विषय नहीं है।

वास्तव में बाणासुर असुर जाति का इतना प्रसिद्ध नेता रहा है कि आसाम से लेकर काश्मीर तक सारे हिमालय में उस का अमिट प्रभाव था और उसने अनेक स्थानों पर अपने किले स्थापित किए होंगे।

जिस जाति में बाणासुर का सम्मान था उसी जाति की प्रतिष्ठित देवी का नाम हिरमा या हिड़िम्बा रहा है। स्पष्ट है कि बाणासुर के समय में ही हिड़िम्बा भी कोई प्रसिद्ध देवी या स्त्री रही होगी। कालान्तर में उस का सम्बन्ध बाणासुर के शौर्य के कारण उससे जुड़ता गया और वह उस की धर्म पत्नी मान ली गई। इस देवी को नर बलि दी जाती थी, इस का प्रमाण शिमला जिला के अनेक गांवों में बारह वर्ष के अन्तर से मनाया जाने वाला 'भूण्डा' त्यौहार भी है। भूण्डा में जिस देवी 'हिरबणी' (हिरमा) की मूर्ति हवन-कुण्ड के पास रखी जाती है और जिसे प्रसन्न करने के लिए हजारों रुपये खर्च करके सामूहिक यज्ञ किया जाता है, उसे सम्पन्न करने का सब से महत्त्वपूर्ण पग एक व्यक्ति की बलि देना होता था। उस व्यक्ति को 6 मास पूर्व एक पक्का रस्सा बनाने के लिए कहा जाता था और उस के लिए सारी सामग्री दे दी जाती थी। रस्से को 'बलोतर' कहा जाता है। इस रस्से को हवन-कुण्ड के पास ले जाकर बलि के दिन पूजा जाता है तथा बलि चढ़ने वाले व्यक्ति को 'हिरबणी' देवी को अर्घ्य-मन्त्रादि से समर्पित किया जाता है। इससे पूर्व ही बहुत अन्तर (लगभग 500 गज) पर दो खम्भे (दोजी) गाड़े गए होते हैं, जिन के साथ रस्से को बान्ध दिया जाता है। ये 'खम्भे' इस प्रकार गाड़े जाते हैं कि एक पहाड़ की चोटी के पास ऊंचाई पर हो तथा दूसरा काफी नीचे। इस का यह उद्देश्य होता है कि जब 'बेड़ा' (जाति विशेष के व्यक्ति) को एक खम्भे के पास से रस्से पर चढ़ाया जाता है और उसकी दोनों टांगों से भी बकरे की खाल की थैलियां काफी मिट्टी भर कर बांध दी जाती हैं, ताकि उसका सन्तुलन न बिगड़े, तो वह सीधा रस्से पर निचले खम्भे की ओर घसीटता चला जाए। इस पुरुष को, जो बलि चढ़ाए जाने के उद्देश्य से उन खम्भों से बंधे रस्से पर चढ़ाया जाता है, 'ज्वाई' कहा जाता है। वर्तमान समय में पुरुष (बेड़ा) के स्थान पर बकरे को उस रस्से पर बिठा कर नीचे की ओर को छोड़ा जाता है पर खम्भे तक आने का काम

'ज्याई' ही करता है। अब यद्यपि 'नर-बलि' का प्रचलन 'बकरे द्वारा स्थानापन्न होने में' बदल दिया गया है और अनेक बार बकरा भी बलि नहीं चढ़ाया जाता क्योंकि रस्से के दूसरे सिरे तक पहुंचने पर भी उसकी मृत्यु नहीं होती परन्तु प्राचीन काल में हिरमा को प्रसन्न करने के लिए नर-बलि का प्रचलन अवश्य ही रहा है। कहा जाता है कि बलि के दिन जब 'ज्याई' को 'हिरबणी' की मूर्ति के सामने संकल्प के लिए लाया जाता है तो वह बहुत काम्पता है और देवी की मूर्ति बहुत भयंकर लगती है। यदि बकरा न मरे तो 'ज्याई' को दे दिया जाता है। सन् 1962 ई० में निरमण्ड गांव में जो 'भूण्डा' यज्ञ हुआ उस में लगभग 350 मन अनाज, 20,000.00 नकद तथा 20 मन जौ तथा अन्य सामग्री का व्यय हुआ। यदि बकरा या 'ज्याई' मर जाए तो ऐसा समझा जाता है कि यज्ञ सम्पूर्ण हो गया परन्तु यदि बलि-पशु या पुरुष बच जाएं तो 'देवी' को बिना बलि के ही प्रसन्न मान लिया जाता है। अब 'ज्याई' को बलि के लिए रस्से पर चढ़ाने तथा प्रदर्शन करने की सरकार आज्ञा नहीं देती।

हिरमा का मन्दिर लाहौल स्पीति के जाहलमा ग्राम में भी है जहां देवी के डर से लोग उसे निश्चित भेंट देते हैं तथा हल में एक ही 'चुरु'[1] जोता जाता है, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि देवी के प्रभाव से उस क्षेत्र में दो चुरु जोतने से हल नहीं चलाया जा सकता। नर-बलि महेशुरों के लिए भी दी जाती रही है।

बाणासुर की आत्मा अपने पुत्र-पुत्रियों के पास समय समय पर घूमती रहती है, ऐसा विश्वास है। यह अदृश्य सांप के आकार की है तथा जिस गांव में जाती है, वहां किसी को दिखाई तो नहीं देती पर उस गांव में भयंकर तूफान चलते हैं। भाबा गांव में महेशुर के पास आते समय देवता अपने पिता को गांव के बाहर स्वागत करके लाने के लिए जाता है। एक स्थान पर धूपादि तथा बलि से पिता की आत्मा का स्वागत किया जाता है तथा उसे बाजे के साथ मन्दिर में लाया जाता है। आत्मा के वहां से वापिस जाते समय किसी भी आयोजन की आवश्यकता नहीं होती।

चगांव गांव में मेशुर आरम्भ में अपने पिता की आत्मा का स्वागत नहीं करता। जब गांव में तेज तूफान चलते हैं तो मान लिया जाता है कि सम्भवतः देवता के पिता की आत्मा आई होगी। देवता से इस सम्बन्ध में पूछा जाता है। यदि ग्रोक्च इस बात की पुष्टि कर दे कि आत्मा गांव में आई है तो देवता से प्रार्थना की जाती है कि वह उसके जाने की तिथि बताए। इस अवसर पर मन्दिर में सफाई आदि भी की जाती है। निश्चित तिथि को देवता अपनी पालकी (भाबा जहां उस का छोटा भाई देवता है अथवा यदि वह यह समझे कि आत्मा कोठी गांव में चण्डिका के पास जा रही है तो उस ओर को) ले कर आटे, का सांप एक पिटारे में बन्द करवा कर तथा उसके पास पूजा की सामग्री तथा दीपक रखवा कर गांव से काफी दूर (कई बार तो यह दूरी चार मील से भी अधिक होती है) तक, अपने पिता को छोड़ने जाता है। सारे गांव के लोग देवता के साथ होते हैं तथा इस

---

1. चुरु—याक का नर बच्चा जो बैल के स्थान पर हल जोतता है और जिस के सारे शरीर पर लम्बे बाल होते हैं, यह ऊंचे पहाड़ों पर पाया जाता है।

उत्सव को 'शू बोन् साम्यमू' (अर्थात् शू—देवता, बोनू—पिता को, साम्यमू—विदाई) कहा जाता है। 'देवता के पिता की विदाई' के पश्चात् यह विश्वास किया जाता है कि गांव में हवा का प्रकोप कम हो जाएगा, और लोगों के कथनानुसार, ऐसा अनेक बार होता भी है।

बाणासुर की आत्मा आन्धी के रूप में हिरमा देवी के गाँव कफौर में भी जाती है। तेज हवा चलने की दशा में वहां भी माना जाता है कि बाणासुर की आत्मा आई होगी। इसलिए उसे 'दू'[1](बड़िया) बांट कर विदाई दी जाती है। क्योंकि हिरमा गुप्त है और उसका कोई रथ नहीं है अतः देवता की आत्मा को गाँव से ही विदा कर दिया जाता है। साङ्ला में तेज हवा चलने की दशा में एक हाण्डी में आग, सरसों के दाने आदि डाल कर उसे एक स्थान पर गाँव के बाहर रखा जाता है, यह हवा की आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए किया जाता है, इसे 'हिरिम साम्यमू' अर्थात् 'आन्धी की विदाई' कहते हैं।

'हिरिम' यद्यपि 'हिरिमा' से मिलता जुलता शब्द है परन्तु इन दोनों का कोई सीधा सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। हां, इस प्रथा का 'देवता की आत्मा के आगमन' की प्रथा से कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। जन-विश्वास के अनुसार हम कह सकते हैं कि इस क्षेत्र में हवा की भी आत्मा मानी जाती है, भले ही उसका आरोपण बाणासुर की आत्मा पर कर दिया गया हो। जब अनाज की पुनाई का कार्य आरम्भ होता है तो हवा की सब से अधिक आवश्यकता रहती है। यदि किसी कारण-वश हवा बन्द हो जाए तो पुनाई करने वाला हल्की हल्की ध्वनि में सीटियां बजाना आरम्भ कर देता है, जिस का अर्थ यह होता है कि वह हवा को (अर्थात् हवा की आत्मा को) बुला रहा है। ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से हवा के झोंके अवश्य आ जाते हैं। यदि हवा चल रही हो तो सीटी बजाना वर्जित होता है, क्योंकि इस के कारण तेज आन्धी भी आ सकती है जिस से सारा अनाज उड़ने का भय रहता है।

कोठी की देवी चण्डिका बड़ी चालाक देवी मानी जाती है, उसने कोठी पहुंचने पर एक राक्षस को मारा था। यह राक्षस उस क्षेत्र का स्वामी था तथा अपनी पत्नी के साथ ही अपनी प्रजा को भी तंग करता था। चण्डिका ने उसकी पत्नी से पति को मारने की आज्ञा इस शर्त पर ले ली कि वह उस के पति के मारे जाने पर शेष आयु भर उसकी रक्षा तथा पालन-पोषण करेगी। बाद में चण्डिका ने उस राक्षसी (हौनू राक्षस की पत्नी) को अपने साथ रखा। अब भी देवी के रथङ् में एक मूहरा उस राक्षसी का लटका रहता है। यह 'हौनू' ऊषा का पति भी बताया जाता है।

एक गीत के अनुसार बाणासुर का त्रिशूल लाकर चगांव मेशुर ने हौनू के भौरे को मार दिया था[2]। कहा जाता है कि वह त्रिशूल अब भी रोपा देवी के मन्दिर में

1. यह नमकीन 'हलवा' होता है। आटा लेकर उबलते हुए पानी में डाल देते हैं। उस में नमक डाला जाता है और लकड़ी के डण्डे के साथ पानी में खूब घोटा जाता है, फिर इस में चूहली का तेल डाल दिया जाता है तथा पिन्नियां बना कर लोगों को बांट दी जाती हैं।
2. कथा का जरासन्ध की कथा से बहुत साम्य है।

रखा है जिसे विशेष अवसरों पर ही निकाला जाता है । इसे 'खण्डोमा' कहा जाता है ।

एक रोचक बात जो बहुत कम लोग जानते हैं यह है कि कोठी की देवी को कुमारी देवी माना जाता है परन्तु रोपा गांव में (यह गाँव इसके हिस्से में बांट कर आया था), जहां यह तीसरे वर्ष प्रकट होती है, इस के सम्बन्ध में यह धारणा है कि यह कुमारी देवी नहीं है। यह मूरङ् गांव की सहायक देवी मानी जाती है, वहां का बड़ा देवता ओरमिग अथवा कुल-देव है । यह देवता नारायणों की श्रेणी में आता है, अतः यह विवाह-सम्बन्ध शैव व वैष्णव संस्कृतियों को मिलाने का कार्य करता है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में 12 वर्ष के पश्चात् ओरमिग देवता चण्डिका से निमन्त्रण आने पर रोपा जाया करता था। वहां जिस बकरे की बलि दी जाती थी उस की हड्डियों को एक स्थान पर दबाया जाता था । जब दूसरी बार दोनों देवता इकट्ठे होते थे तो उन्हें पहले हड्डियों को खोजना पड़ता था । एक बार दोनों देवताओं में शर्त लग गई कि कौन हड्डियों को पहले खोज निकालेगा । ओरमिग ने चण्डिका से हड्डियां शीघ्र खोज लेने की दशा में विवाह-प्रस्ताव रखा । चण्डिका मान तो गई परन्तु उसे विश्वास था कि वह (अपने ग्रोक्च तथा अन्य कारदारों की सहायता से) हड्डियां पहले ही ढूंढ निकालेगी पर ऐसा नहीं हो सका । ओरमिग जीत गया अतः उसने चण्डिका को विवाह हेतु मनाना चाहा । रोपा वालों का विचार है कि चण्डिका ने उससे विवाह नहीं किया और आगे के लिए दोनों देवताओं का मिलना जुलना बन्द हो गया परन्तु मूरङ् वालों ने तो चण्डिका का रथ ही बना लिया और वे चण्डिका को ओरमिग की पत्नी मानते हैं । देवी का ग्रोक्च भी है जो देवी की ओर से यह कहता है कि वह रोपा से वहां आई हुई है । अभी तक भी ओरमिग पूजा के लिए रोपा नहीं जाता परन्तु मूरङ् के पास से ही एक ऊंचे स्थान से रोपा की तरफ को वर्ष में एक बकरा भेंट कर देता है । इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन[1] द्वारा उठाई गई देवी के विवाह-सम्बन्धी समस्या स्वयं ही हल हो गई है ।

महेशुरों के एक और भाई का भी पता चला है । यह शिमला जिला के पुजाहरली गांव में रहता है । यह गांव खदराला से लगभग 6 मील के अन्तर पर समरकोट के पास है । वहां जाने पर पता चला कि वहां के महेशुर का पुजारी तथा गूर (ग्रोक्च) देवता को महेशुरों का भाई मानते तो हैं परन्तु देवता अपने आप को बाणासुर का लडका नहीं मानता बल्कि शिवजी का रूप मानता है । उस के मुखङ् भी कम हैं और उस के सिर पर जटाएं चारों ओर से नहीं गिराई जातीं बल्कि शिमला क्षेत्र के बाकी देवताओं की भांति इस के मुखङ् खुले रखे जाते हैं । बहुत सम्भव है कि प्राचीन समय में ही अलग रहने के कारण कहानियों तथा मान्यताओं में अन्तर आ गया हो और लोगों ने किन्हीं कारणों से अपने देवता का सम्बन्ध बाणासुर से जोड़ना बुरा मान लिया हो ।

---

1. देखिए राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित 'किन्नर-देश' के पृष्ठ 158-159 जहां वे देवी चण्डिका के विवाह का प्रस्ताव कानम के डबला के पास रखते हैं और कामरू के बद्रीनाथ से उसका विवाह कराना चाहते हैं ।

हिरमा का प्रभाव-क्षेत्र हिमालय के ऊंचे स्थल ही नहीं रहे हैं बल्कि बिलासपुर व मण्डी के निचले क्षेत्रों में भी लोग इस देवी की पूजा करते रहे हैं। बिलासपुर में सरयून के स्थान पर हिड़िम्बा का एक छोटा व सुन्दर मन्दिर है। यहां देवी एक प्रस्तर-मूर्ति में भैंसे की सवारी करती हुई दिखाई गई है। अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हिरमा व बाणासुर इस क्षेत्र के प्रभाव-शाली देवता रहे हैं।

सुङ्रा गांव में, जहां का देवता सारे मेशुरों का बड़ा भाई माना जाता है, निम्नलिखित गृह-देवता माने जाते हैं :—बीर, काली, तेशू, दुर्गा तथा हिरमा। यहां यह उल्लेखनीय है कि हिरमा भी सुङ्रा की गृह-देवी मानी जाती है।

इस गांव में देवता के पिता बाणासुर का आना 'महादेऊ बऊ करमू'[1] कहा जाता है। तीन वर्ष तक बाणासुर कोठी के ऊपर के हिस्से में रहता माना जाता है, उस के बाहर आने का त्यौहार नहीं माना जाता।

हिरमा को नहीं बुलाया जाता परन्तु कभी कभी यह समझा जाता है कि वह भी यहां के देवता के मन्दिर में जाती है। उस का यहां निवास करना नहीं माना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किन्नर-ग्राम देवताओं का बहुत बड़ा परिवार है जिस में अनेक प्रकार के देवता हैं। इन देवताओं पर वहां के प्राचीन निवासियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन्हें हम निम्नलिखित मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :—

1. बौद्ध-देवता।
2. असुर-देवता।
3. वैष्णव-धर्म के देवता।
4. नाग-देवता।

बौद्ध-धर्म के देवताओं में वे देवता हैं जो तिब्बत से आए हुए माने जाते हैं। इन में निम्नलिखित देवता प्रमुख हैं :—

1. डबला[2]।

---

1. 'महादेव के पिता को लाना।'

2. ये महायान धर्म के देवता माने जाते हैं। कानम गांव में यह विश्वास भी प्रचलित है कि वहां के डबला देवता ने काफी बाद में बौद्ध-धर्म स्वीकार किया है, पहले वह बौद्ध-धर्म का देवता नहीं था। डबला के नौ भाई बहिन माने जाते हैं, जिन में से प्रमुख ये हैं :—

1) डबला—कानम सब से बड़ा भाई, 2) नमगिया डबला, 3) पूह डबला—यह देवी है। इसका नाम खङ्डमा छेरिङ् बुटित है। 4) खाबो डबला, 5) हाङगो डबला, 6) शिपकी—डबला (तिब्बत में है), 7) बाकी सभी भाई तिब्बत में हैं।

2. बुल्सा ।
3. नैदक ।
4. जोमातोक ।
5. पुरग्युलु शू ।
6. टुङ्मा ।
7. जोङचेम ।

तथा 8. देदुम आदि ।

इन के अतिरिक्त कुछ बौद्ध-धर्म मानने वाली देवियां भी हैं :—

1. छित्कुल माथी ।
2. युङ्मा युङ् ।
3. जन ।

तथा 4. लामो ।

ये सभी देवता लामाओं का आदर करते हैं और बौद्ध-धर्म के आदर्शों पर चलने वाले हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य देवता भी हैं जो बौद्ध-धर्मानुयायी तो नहीं हैं पर लामाओं का बहुत सम्मान करते हैं। ये सारे देवता प्रायः पूह डिवीजन के गाँवों के हैं क्योंकि बौद्ध-धर्म की महत्ता इस क्षेत्र में अधिक है। पांगी का शिशेरिङ् देवता भी लामाओं को अपना गुरू मानता है।

असुर देवता

इन देवताओं में मेशुर तथा उन की बहिनें रखी जा सकती हैं क्योंकि हिरमा अथवा हिड़िम्बा और बाणासुर को हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में वैष्णव संस्कृति से सम्बन्धित नहीं माना जाता। प्रचलित विश्वासों के अनुसार मेशुर तथा उनकी बहिनें प्राचीन काल में नर बलि लेती रही हैं तथा अब भी उनकी पूजा शराब तथा मांस (बलि) से की जाती है। इन सभी बातों पर आगे विस्तृत रूप से विचार किया गया है। इस प्रकार के मुख्य देवता व देवियां निम्नलिखित हैं :—

1. मेशुर—सुङ्रा, भाबा व कटगांव तथा मेबर और प्वारी में रहने वाले।
2. मेशुरों की बहिनें—ऊषा, चित्ररेखा, चण्डिका, छोटा कम्बा की देवी, पिरासन आदि।
3. हिरमा देवी।

ये देवता वैष्णव देवताओं यथा ब्रह्मा, विष्णु तथा नारायण आदि के शत्रु तो नहीं हैं परन्तु उन्हें अपने से बड़ा नहीं मानते। 'मेशुर' शब्द में सम्भवतः 'महासुर' शब्द से बिगड़ कर बन गया है अन्यथा जब हम बाणासुर को 'देव'[1] अथवा असुर मानते हैं तो इस के लड़कों को महादेव, मोनशिरस अथवा मेशुर कहते हुए भी असुर श्रेणी में ही रखना अधिक संगत प्रतीत होता है।

---

1. लोकगीतों में बाणासुर को 'देव' कहा गया है।

वैष्णव-धर्म के देवता—नारायण, वासदेव, विष्णु, महासू आदि इस वर्ग में आते हैं। इनका वर्णन अगले पृष्ठों में किया गया है।

नाग-देवता :

नाग-देवता या सर्प-देवता पाताल लोक में रहने वाले माने जाते हैं। यद्यपि नाग-पूजा भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से प्रचलित है परन्तु वेदों में इन का वर्णन जाति की दृष्टि से नहीं के बराबर मिलता है। महाकाव्यों में उनके प्रर्याप्त विवरण मिलते हैं और महाभारत में वे पूरी प्रसिद्धि प्राप्त करते प्रतीत होते हैं। महाभारत में उनकी उत्पत्ति कादरू व कश्यप से हुई बताई गई है और जनमेजय के नाग-यज्ञ में इन्हें नष्ट करने के प्रयत्न किए गए।[1]

डा० पद्मचन्द काश्यप[2] के अनुसार किन्नरों के साथ साथ उनके सहजातीय बन्धु नाग भी इस प्रदेश के आदि वासियों में से थे। प्रागार्यकालीन नागों के बहुत से गढ़ भारत के कई भागों में मिलते हैं, हो सकता है हिमाचल के इस भाग के कितने ही पुराने गढ़ इन्हीं नागों के बनाए हुए हों। कुल्लुई प्रदेश में नागों का सम्बन्ध हम सर्वत्र पाते हैं। शायद ही ऐसी कोई उपत्यका हो जहां कभी नागों की बस्तियां न रही हों, क्योंकि आज भी प्रायः सभी गाँवों तथा परगनों में नागों की पूजा की जाती है। अट्ठारह नाग और अट्ठारह नरैण की बात अभी तक प्रचलित है कि किस प्रकार नरैणों (नारायणों) ने नागों की मानहानि की थी। तासकी, तक्षक और वासुकी नाग के अपने मन्दिर हैं और उनका उल्लेख अनेक लोक कथाओं और गीतों में आता है। 'देवकन्या' नामक अर्द्ध-पौराणिक/अर्द्ध ऐतिहासिक गीत में नाग-कन्या का ब्राह्मण बसु से विवाह का उल्लेख है।

ऊपरोक्त मत को मानने में कठिनाई यह है कि यदि नाग जाति इस क्षेत्र में बसती रही हो और वे देवता हो गए हों तो आज के नाग-देवताओं को पानी तथा फसल का देवता नहीं माना जाना चाहिए था। जब नागों को हराने के पश्चात् उनके शत्रुओं ने उन्हें इस क्षेत्र से समूल नष्ट कर दिया तो उन्हें देवताओं के रूप में माना जाना युक्ति संगत नहीं जंचता। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिमालय के आंचल में नाग जाति रहती रही है परन्तु यहां जिन नागों की पूजा अब की जाती है वे उस जाति के अवशेष नहीं हैं बल्कि सांप हैं जिनकी उत्पत्ति पृथ्वी से हुई मानी जाती है। यहां तक कि कश्यप की सन्तान से जिस 'नाग-वंश' का होना माना जाता है वह भी एक मानव-जाति थी इन नाग-देवताओं की जाति नहीं। किन्नौर के नाग-देवता या तो झील से उत्पन्न हुए माने जाते हैं अथवा किसी तालाब से। बूआ, सापनी और पौण्डा के नागों का जन्म पौण्डा गाँव में हुआ। यहां से एक लड़की सापनी गाँव में ब्याही गई थी। यहां उल्लेखनीय यह है कि अभी भी बूआ गाँव में वह घर है, जहां उस लड़की द्वारा लाए गए साँपों के कारण पानी ही पानी हो गया था। इस घर को देखते हुए

---

1. महाभारत में इस जाति के सम्बन्ध में लाक्षणिक विवरण यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।
2. कुल्लुई लोक-साहित्य—मूल-प्रति शोध प्रबन्ध, पंजाब यूनिवर्सिटी पुस्तकालय, चण्डीगढ़, पृ० 114-115।

कहा जा सकता है कि यह घटना चार सौ वर्ष से पुरानी नहीं हो सकती। अभी 15,20 वर्ष पूर्व यूला गाँव में नाग देवता निकला है। उरनी के नाग-देवता का गीत भी है, जिस के अनुसार वह गाँव के बाहर एक पत्थर के पास अदृश्य रूप में रहता था, बाद में उसने वहां के नारायण देवता से प्रार्थना की कि वह उसे निकाले। नारायण ने दो व्यक्ति बड़े देवता चगांव महेशुर के पास भेजे कि वह नाग को निकलने की आज्ञा दें। महेशुर ने नाग को निकलने की आज्ञा दे दी और अब गाँव में इस देवता का रथ बना दिया गया है। यह घटना बहुत पुरानी नहीं, केवल 30 वर्ष के लगभग पहले की है।

बरी गाँव का नाग भी मीरू में लगभग 200 वर्ष पहले एक तालाब से उत्पन्न हुआ है। साङ्ला गाँव के तीन नागों में से एक निकट अतीत से सामने के पर्वत की झील से आया हुआ कहा जाता है। दो नाग भी उससे पूर्व उसी स्थान से आए थे। सारांश यह है कि सभी नाग देवताओं का पानी से सम्बन्ध रहा है और उनकी पूजा भी धन-सम्पत्ति, फसल, पानी व बर्फ लाने व बन्द करने के उद्देश्य से ही की जाती है, अतः नाग जाति के साथ हम नाग देवताओं को किसी भी प्रकार नहीं जोड़ सकते। यह कहा जा सकता है कि नाग-देवता पहले यहां की आर्यों से पूर्व की जाति के देवता रहे हैं और सम्भवतः उन्हें बाद में इस क्षेत्र में आने वाले लोगों ने भी पूजना आरम्भ कर दिया हो। नाग-पूजकों का वर्तमान जातियों में समा जाना अविश्वसनीय नहीं है।

अट्ठारह नागों के जन्म के सम्बन्ध में ऊपरोक्त ग्रन्थ[1] में दी गई कथा से किन्नर-नाग-देवताओं की कथा का साम्य है। यह कथा इस प्रकार है :—

'किसी समय में मनाली के उत्तर में एक गाँव में एक सुन्दर स्त्री रहती थी। एक बार वह सुन्दरी अपने घर की छत पर बैठी थी जहां से बासू नाग ने उसका अपहरण कर लिया और उसे छुपा रखा। एक दिन नाग उस स्त्री की गोद में सिर रख कर सो रहा था। वह स्त्री सोच-विचार में मग्न थी। सहसा उसे ध्यान आया कि उस दिन असौज की तृतीय तिथि थी और उसके गाँव में मेला हो रहा था। उस के सम्बन्धी मेले में सम्मिलित होंगे, वहां नाच और गाना हो रहा होगा, तरह तरह के बाजे बज रहे होंगे। यह स्मरण होते ही उसकी आंखे भर आईं। आँसू उमड़ते गए और थमने का नाम न लेते थे। नेत्रों से अश्रुधारा बह चली और कुछ बूंदें सोए नाग के मुंह पर भी गिरीं। आंसुओं के मुंह पर पड़ते ही सोया नाग जाग उठा। उसने स्त्री के मुंह की ओर देखा कि वह रो रही थी। बासू ने रोने का कारण पूछा और जान लेने पर उसे आश्वासन दिया कि वह चिन्तित न हो उसे गाँव में पहुंचा दिया जाएगा। साथ में नाग ने उसे बताया कि गाँव में जा कर वह अट्ठारह नागों को जन्म देगी। बासू ने उसे आदेश दिया कि वह उन नागों का भली प्रकार पालन-पोषण करे, उन्हें दूध पिलाए और उनके आगे धूप जलाए।

नाग ने इस प्रकार समझा कर उसे उसके गाँव वापिस पहुंचा दिया। कालान्तर में स्त्री ने अट्ठारह नागों को जन्म दिया। उनके उत्पन्न होते ही उसने उन्हें एक घड़े

---

1. कुल्लुई लोक साहित्य—डॉ० पद्म चन्द काश्यप, पृ० 134।

में बन्द कर दिया और कुटुम्ब के अन्य सदस्यों से छिपा कर उन्हें दूध देती रही तथा धूप जला कर पूजा करती रही। एक बार उसकी बहू ने उसे घड़े में दूध डालते तथा धूप जलाते देख लिया। उसको जिज्ञासा हुई और वह अवसर की खोज में रही, जब वह स्वयं अपनी आंखों से देख ले कि उस घड़े में क्या है और उसकी सास क्यों उस घड़े की इतनी रक्षा करती है।

एक दिन सास किसी काम से घर के बाहर गई। बहू ने उपयुक्त अवसर जान कर एक हाथ में दूध का कटोरा और दूसरे में धूप-पात्र ले लिया। जल्दी जल्दी में घड़े का ढकना उठाया। ढकना उठाना ही था कि नागों ने अपने सिर बाहर निकाले। उन्हें देखते ही वह घबरा गई और उसके मुंह से चीख निकल पड़ी। इस घबराहट में उस के हाथ का दूध और धूप दोनों गिर पड़े। धूप घड़े में जा पड़ा, जिस से कई नाग जल गए और कुछ घड़े से बाहर निकल भागे। इस प्रकार प्रीणी के नाग का हाथ जला, जलासू का नाग बहरा हो गया और गोशाली का नाग अन्धा। रायसन का काली नाग जल कर काला हो गया।'

इस कथा से यह स्पष्ट नहीं होता कि वासुकि कोई व्यक्ति था अथवा देवता ? और यह भी पता नहीं चलता कि उस का घर कहां था तथा मनाली गांव के समीप की उस स्त्री को लेकर वह कहां चला गया। अट्ठारह नागों का जन्म, घड़े में उन का पाला जाना तथा घर के लोगों को न बता कर मां का दूध पिलाते रहना आदि बातें चमत्कारिक हैं और नागों की एक जाति का इस क्षेत्र में निवास करना किसी भी प्रकार से प्रमाणित नहीं करतीं।

इसी ग्रन्थ में वर्णित बशेरू नाग के जन्म की कहानी सापनी के नाग के जन्म सम्बन्धी प्रचलित विश्वास से बहुत समानता रखती है। नाग नाम की एक जाति भी थी जो हिन्दुओं से अलग थी। एक ही नाम होने से हमारी पौराणिक-गाथाओं में दोनों का सम्मिश्रण हो गया और उस से पुराण-कथाओं को समझने में कठिनाइयां उत्पन्न हो गईं[1]। यह माना जा सकता है कि नाग-वंश के लोग इस क्षेत्र में

---

1. The Nagas, or a People bearing the same name, are historical, and have left many traces behind them. There were mountains so called and Naga–Dwipa was one of the seven divisions of Bharata-Varsha. Kings of this race reigned at Mathura-Padmavati, and the name survives in modern Nagpur. There are various speculations as to who and what they were, but it seems clear that they were a race distinct from the Hindus. The mythological accounts are probably based upon the Historical, but they have been mixed up together and confused. The favourite theory is that they were a scythic race, and probably obtained their name from worshipping serpents or holding them in awe and reverence.

—A classical Dictionary of Hindu Mythology, Dowson, Page 213.

रहे हैं अथवा ऐसी जाति यहां रही है जिस के देवता नाग थे परन्तु जाति का स्वयं नागों में बदलना सम्भव प्रतीत नहीं होता। हमारी पुराण-कथाओं में भी वीर पुरुषों का देवता बन जाना वर्णित है परन्तु हम उन की सम्पूर्ण जाति को देवता नहीं मानते, केवल किसी ही वीर को धार्मिक-देवता मानने की परम्परा है।

महाभारत के दिग्विजय पर्व में अर्जुन का नागों के देश पर विजय प्राप्त करना लिखा है जिस से उस का हिमालय के किसी क्षेत्र में किन्नर-देश के समीप स्थित होने का आभास मिलता है।

जेम्स फरगुसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ट्री ऐण्ड सरपैण्ट वरशिप' (1873) में यह माना गया है कि नाग वास्तव में सांप नहीं थे बल्कि नाग-पूजा करने वाली जाति थीऔर इसे वीर आर्यों ने जीता था। ये लोग तुरकी की जाति का अंश थे। परन्तु बोगल के मत से यह धारणा गलत है। फरगुसन[1] के अनुसार आर्यों ने नाग पूजा दस्युओं से सीखी। इस सम्बन्ध में वे, ऋग्वेद में इस पूजा का कोई भी सन्दर्भ न होना है, इसका सब से बड़ा प्रमाण समझते हैं। परन्तु बोगल महोदय का कथन है कि ऋग्वेद उस समय की सारी संस्कृति पर प्रकाश नहीं डालता। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में नाग-पूजा से सम्बन्धित पर्याप्त मन्त्र उपलब्ध हो जाते हैं[2]। नागों से सम्बन्धित अनेक विश्वासों तथा धारणाओं पर बोगल महोदय ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन सरपैंण्ट लोर' में प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं कि कादरू और विनता दो बहिनें थीं जो कश्यप की ब्याही गई थीं। कश्यप ने दोनों पत्नियों को दो वर दिए। कादरू ने एक हज़ार नागों की माता होने का वर मांगा परन्तु विनता ने दो पुत्रों की माता होने का वर प्राप्त किया। समय बीतने पर काद्रू के गर्भ से 1000 अण्डों की एक पोटली उत्पन्न हुई जिसे 500 वर्षों तक एक बर्तन में रखा गया। दूसरी बहिन ने जब देखा कि उस के दो अण्डों से कुछ भी नहीं हुआ है तो वह क्रोधित तथा शर्मिन्दा हुई और उस ने एक अण्डे को फोड़ दिया। इस अण्डे को फोड़ने से एक कच्चा पुरुष जिस की टांगें नहीं थीं, उत्पन्न हुआ। यही बाद में 'अरुण' (सूर्य के घोड़े का चालक) बना। इस लड़के ने अपनी माता को श्राप दिया कि क्योंकि उसने उसे अपाहिज बना दिया अतः वह 500 वर्षों तक अपनी बहिन की दासी रहेगी। उस ने यह भी कहा कि मैं ही आप को इस दासता से छुटकारा दिलाऊंगा। उस का दूसरा पुत्र गरुड़ हुआ जो नागों का शिकार करता है। उत्पन्न होते ही वह आकाश में उड़ गया।

चीन के ग्रन्थों में नाग को राक्षस कहा गया है[3]। वसेहरु नाग के सम्बन्ध में यह किम्वदन्ती है कि एक स्त्री को घास काटते समय सोने का एक मूहरा मिला। इसे वह घर ले गई और भेड़ बकरियां बढ़ाने के उद्देश्य से उन के कमरे में रखा परन्तु प्रातः काल देखने पर पता चला कि उस कमरे में पानी ही पानी था और सारी भेड़ बकरियां उसमें में डूब गई थीं। उसने इस मूहरे को एक ब्राह्मण को दे दिया जिसने इसे अपने

1. देखिए :—
   Indian Serpent Lore—By J. Ph. Vogel, Ph.D., Page 2.
2. **Ibid, Page 6.**
3. **Ibid, Page 94.**

अनाज में रखा परन्तु वह भी सारा पानी से भर गया। इससे उसने अपने गाँव के लोगों को उस मूर्ति का मन्दिर बनाने के लिए कहा। उसका मन्दिर गाँव से बाहर बनाया गया जहां से वह अब भी मौसम पर नियन्त्रण रखता है। इस नाग ने गाँव में एक झील बनवाई जिस का पानी सिंचाई के काम आ सकता है। यह झील एक नाले को खोद कर बनाई गई है जिसे देवता ने एक ही रात में बना दिया था। अभी भी देवता वहां लाया जाता है, और एक विशेष दिन 6,7 घण्टे वहां रखा जाता है ताकि उस में शक्ति का संचार हो। इस बीच उसके कारदार बातचीत नहीं करते। इस समय में देवता के बजन्तरी बाजे बजाते रहते हैं ताकि दैवी शक्ति की देवता में प्रवेश करने के लिए मदद की जाए[1]।

एक किम्वदन्ती जो सापनी के नाग के जन्म से बिल्कुल साम्य रखती है, इस ग्रन्थ में पृ० 254 पर उद्धृत है,—बृटिश लाहुल में एक पानी का झरना 'चू मिग जे रा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे ही 'अन्धा स्रोत' भी कहते हैं। प्राचीन काल में एक लामा ने तिब्बत से बहुत से नाग किसी व्यक्ति के हाथ भेजे थे। जब वह व्यक्ति एक स्थान 'चू-मिग-ग्यलसा' में पहुंचा तो उसे टोकरी को खोलने की जिज्ञासा हुई। उसने उसे खोल कर देखा तो बहुत से नाग ऊपर उठे और बाहर भाग गए। जहां वे नाग गए वहीं से झरने (स्रोत) उत्पन्न हो गए जिन्हें 'चूमिग ग्यलसा' कहा जाता है। उन में एक अन्धा सांप भी था जिसे एक ओर कर दिया गया था। अब उन्हों ने उसे उठाया और एक ओर फेंक दिया, इस लिए इस झरने से थोड़ा पानी निकला। अतः इसे 'अन्धा स्रोत' कहा जाता है। कुल्लू में 18 नाग व 18 नारायणों की कहावत प्रसिद्ध है। यहां, पहाड़ी क्षेत्रों में नारायण को नाग के समीप का देवता माना जाता है। गजेटियर में कहा गया है कि 'अट्ठारह' बड़ी संख्या को बताने के लिए कहा गया है। सम्भवतः यह कहना अधिक ठीक होगा कि अट्ठारह पवित्र संख्या मानी जाती है[2]।

अट्ठारह नागों की उत्पत्ति की वही कहानी इस पुस्तक 'कुल्लुई लोक-साहित्य' में दी गई है।

गढ़वाल में कृष्ण को नागराजा कहा जाता है। कृष्ण नाग-द्रोही थे। सम्भवतः कालीयदमन के कारण ही उन्हें यह नाम दे दिया गया हो[3]। सापनी गाँव में नाग देवता है। कहा जाता है कि पौण्डा गाँव में एक लड़की का नाम तुङ्के था। उसका विवाह बूआ गाँव में हुआ। बूआ गाँव में उन दिनों पानी की कठिनाई थी। गाँव की स्त्रियां प्रातः

---

63. Ibid., Page 262.

64. "The term 'Narayan' is employed in these hill-tracts to designate a being closely retated to a 'Nag'. In the Gazetter, it is said that eighteen is used to indicate a large number. It would perhaps be more correct to say that eighteen is considered as auspicious member.

—Indian Serpent Lore—by Vogel, Page 255.

3. गढ़वाली लोक कथाएं—डॉ० गोविन्द चातक, पृ० 7।

काल ही पानी लाने के लिए पहाड़ पर स्थित 'बुल्चो' स्थान पर जाती थी और सायंकाल अपने गांव में लौट पाती थी। तुङ्के इस प्रकार के जीवन से बहुत दुःखी थी।

एक बार वह अपने मायके गई। उसके पिता ने उसे अपने सिर में जूएं देखने के लिये कहा। जब वह सिर से जूएं निकाल रही थी तो उसके पिता को नींद आ गई परन्तु मुंह पर पानी की बूंदें पड़ने पर वह उठ गया। जब उसने आकाश की ओर देखा तो पता चला कि वहां बादल का एक भी छींटा नहीं था। उसने समझ लिया कि तुङ्के के आंसू ही उसके मुंह पर गिरे हैं। उसने ससुराल के गाँव में पानी की कठिनाई का वर्णन किया। उसके पिता ने उसे इस कठिनाई को दूर करने का आश्वासन दिया।

जब तुङ्के ससुराल जाने के लिये तैयार हुई तो उसके पिता ने एक पिटारा उसे दिया और उसे मार्ग में खोलने के लिये इनकार किया। उसने उसे बताया कि वह खुड्ड के दरवाजे पर उस पिटारे को खोले और दरवाजा बन्द कर दे। पिटारा (छाटो) ले कर तुङ्के अपने ससुराल चल पड़ी। मार्ग में 'छटाटङ् ती' नामक स्थान पर पहुंचने पर उसे उत्सुकता हुई और उसने पिटारे का ढक्कन खोलना चाहा। अभी वह पूरा ढक्कन खोल भी नहीं सकी थी कि उसमें से एक सांप निकल कर भाग गया। सांप झाड़ियों की ओर गया और वहां से पानी का स्रोत बह निकला। यह स्थान वाङ्तू के समीप है। 'छटाटङ् ती' का अर्थ झरना होता है। कड़छम के पास 'संङ्रेसो' स्थान पर उसकी जिज्ञासा के कारण फिर एक सांप निकल गया।

यद्यपि तुङ्के डर गई थी परन्तु सापनी गाँव से नीचे 'कन्द्रालस' नामक स्थान पर पहुंचने पर उसने फिर पिटारे को खोलना चाहा। वहां भी एक सांप का बच्चा निकल कर भाग गया। उसने देखा कि अभी तक सांप के चार और बच्चे पिटारे से निकलने का यत्न कर रहे थे। घर पहुंच कर उसने खड्ड (पशु बांधने का कमरा) के दरवाजे पर धूप जला कर पिटारे को खोल दिया। उसी समय खुड्ड में पानी ही पानी भर गया और सारा खुड्ड एक तालाब जैसा दृष्टिगोचर होने लगा।

तुङ्के का विवाह 'डुङ्सर' वंश में हुआ था। अब उस वंश का कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं है परन्तु जिस घर के खुड्ड में उन सांपों को छोड़ा गया था, वह अब देवता की कोठी के रूप में काम में लाया जा रहा है और अच्छी दशा में है।

इस प्रकार पानी प्राप्त करने के पश्चात् तुङ्के ने यद्यपि किसी व्यक्ति को अपनी उपलब्धि के सम्बन्ध में नहीं बताया परन्तु उसने 'बुल्चो' से पानी लाना बन्द कर दिया। गांव की अन्य स्त्रियां इस भेद का पता लगाने के लिये बहुत उत्सुक थीं। उस समय गांव में एक कुट्टन रहती थी। उसने तुङ्के से किसी प्रकार सारे रहस्य का पता लगा लिया। उसने तुङ्के को बताया कि खुड्ड का पानी स्वास्थ्य के लिये खराब होता है और इससे मकान को भी हानि पहुंचने का डर है। तुङ्के बहुत भोली थी। उसने खुड्ड को सुखाने के लिये कुट्टन से उपाय पूछा। कुट्टन के कहा—यदि कुत्ते की टट्टी की धूनी खुड्ड में दी जाए तो खुड्ड का पानी सूख सकता है। उस

ने यह भी बताया कि सारे पानी को सुखाने के लिये बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। जब धूनी दी जाएगी तो सांप दरवाजे से बाहर निकलने का यत्न करेंगे। यदि उन्हें दराट (बोट्या) से दरवाजे पर काट दिया जाए तो वे वापिस नहीं आ सकेंगे। नहीं तो उन के फिर लौटने पर खुड्ड पानी से भर जाएगा।

तुङ्के ने कुत्ते की टट्टी की धूनी दी और खुड्ड के दरवाजे पर दराट ले कर खड़ी हो गई। जब खुड्ड से सांप निकलने आरम्भ हुए तो उसने बारी बारी से उन्हें काटना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार कुल अट्ठारह सांप निकले जिनमें से अन्तिम दो सिरों वाला था। इस तरह सारे सांपों के कटे हुए टुकड़ों का उस स्थान पर एक बड़ा ढेर हो गया। उसने उन टुकड़ों को कोटिङ् (किल्टा) में डाल कर गांव से दूर 'चिस्पनदारङ् (सड़ी हुई धार) से ढांक के नीचे गिरा दिया और घर लौट आई।

उसके घर लौटने के पश्चात् उन सांपों के टुकड़े स्वयमेव जुड़ते गए और एक इतना बड़ा सांप बन गया कि 'चिस्पनदारङ्' से चल कर उसने कन्द्रालस (लगभग अढ़ाई मील का अन्तर) में अपना सिर रखा और पीछे मुड़ कर देखा तो उसकी दुम अभी चिस्पनदारङ् में ही थी। वह सांप सापनी गांव से ऊपर के पर्वत की ओर बढ़ा। अभी भी सापनी के कण्ढे में उसके जाने के चिन्ह शेष हैं। सापनी के दुर्ग से आगे बढ़ कर उसने पर्वत-शिखर को काटा और दूसरी ओर बढ़ निकला। इस के पश्चात् वह एक तालाब 'दूलिङ्' पर पहुंचा और वहां रुक गया। दूलिङ् से अभी तक भी एक छोटी नदी 'दूलिङ् खड्ड' के नाम से निकलती है।

उस समय भी दूलिङ् के आसपास रोहड़ू क्षेत्र के लोगों की भेड़ बकरियां चरा करती थीं। उन का एक मेमना प्रतिदिन किसी अदृश्य स्थान पर चला जाता था और ढूंढने पर दूलिङ् तालाब के पास मिलता था। एक दिन उसके मालिक को बहुत क्रोध आया और उस ने उसे तालाब के पास ही काट दिया। फुआलों ने उस मेमने का सिर तालाब में फैंक दिया और शेष शिकार को साफ करके अपने डेरे में पकाने के लिए ले गए।

अपने निवास स्थान पर जाकर जब उन्होंने मांस को खोला तो उसमें सोना मिला हुआ था। यह सोना आमाशय में फंसे घास आदि का बन गया था। आमाशय की इन वस्तुओं को 'ससखम्र' कहा जाता है। 'ससखम्र' का जो भाग उन्होंने तालाब पर फैंक दिया था उसे प्राप्त करने के उद्देश्य से वे फिर वापिस लौटे। जब वहां से वह सोना इकट्ठा किया गया तो उन्हें देवता का मूहरा (मूर्ति) बनवाने की इच्छा हुई। वे उसे रोहड़ू ले गए और वहां एक लुहार को उसकी मूर्ति बनाने के लिए कहा। लोहार जब एक मुखङ् वाली मूर्ति बनाता था तो वे स्वयमेव तीन मुखङ् बन जाते थे। इस प्रकार लोहार ने बहुत यत्न किया और अन्त में उस मूर्ति से उलट कर हथौड़ा उस के माथे से लग गया जिस के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

वे मूर्तियां (तीनों मूहरे) अलग अलग उड़ कर 'सौमङ्-चूरी' नामक स्थान पर डूबे तथा सपनी के कण्ढे में आए। वहां उन्होंने अपना अपना क्षेत्र बांट लिया। पहले ने अपने लिये चूबा गांव लिया। दूसरे को रोहड़ू तहसील का 'पेखा' गांव मिला और सब से छोटे ने सापनी (रापङ्) गांव लिया।

'सौमङ्-चूरी' में रहते हुए उन्होंने एक कूहल बनाई जिस के अवशेष अब भी उस स्थान पर हैं। एक दिन उन्होंने वास्पा नदी को रोक कर उसके साथ बहने वाले रेत से एक मैदान बनाने का निश्चय किया। इस के लिये सापनी तथा रोहडू के देवता बाढ़ भेजने के लिये नदी के ऊपर रहे और सब से बड़ा भाई बाढ़ को थामने के लिये वास्पा के किनारे आ गया। जब बाढ़ आई तो वह सारे पानी को सम्भालने में असमर्थ हो गया और इस लिए बूआ के पास छोटा सा मैदान ही बन सका तथा शेष मिट्टी 'छोल्तू' (टापरी) के पास आ कर रुकी। अभी भी इन दोनों स्थानों पर छोटे छोटे मैदान हैं। बूआ के पास का मैदान देवता का खेत है। अभी भी ये भाई एक दूसरे के पास आते जाते रहते हैं। बूआ गांव में ये तीनों कभी इकट्ठे नहीं हुए। ऐसा समझा जाता है कि इस गांव में इन के इकट्ठे होने पर इन की माता के लिये नर-बलि की आवश्यकता पड़ेगी। इन की माता को कब इस गांव में लाया गया, इस की कोई किम्वदन्ती नहीं है। कुल्लू क्षत्र के अनेक गांवों, यथा नगर, जगतसुख तथा मनाली में नागों के खदेड़ने के अवशेष के रूप में अब भी 'गनेड़' या 'नगेड़' का त्यौहार मनाया जाता है[1]।

बहुत सम्भव है 'सापनी' का आरम्भिक नाम सांपों (नागों) के कारण 'सांपनी' हो। पौण्डा, जहां इन देवताओं का जन्म-स्थल है, अब भी इन देवताओं के लिये आकर्षण की भूमि है। जब कभी इन में से किसी को वहां जाना पड़ता है तो वह मेमने की बलि देना आवश्यक समझता है।

इस क्षेत्र के अन्य प्रसिद्ध लोक-देवताओं के संक्षिप्त विवरण निम्नांकित हैं :—

छित्कुल गांव :

छित्कुल माथी :—

ग्रोक्च चरोनिङ् के समय कहता है कि देवी वृन्दावन से तिब्बत के एक गांव ताङों गई वहां से फुआलों के साथ छित्कुल आई। देवी का विवाह कामरू के बद्रीनाथ से हुआ है पर उसका बड़ा भाई बटसेरिङ् का नारायण भी बहुपति प्रथा के कारण देवी का पति माना जाता है। इस आशय का एक लोक गीत कामरू में गाया जा है। देवी के ग्रोक्च को त्यौहारों के अवसर पर शक्ति-प्रदर्शन के लिए अंगारों पर चलना पड़ता है।

गुप्त राज :—

देवी का सहायक देवता। रथङ् बहुत पुराना है। इसकी एक सन्दूक जैसी पालकी है। नाचने पर कन्धे तोड़ता है। रागङ् किमशू गृह देवता है।

ठङे गांव :

बोरेस कुल्लो :—

इसे रिब्बा के देवता कासूराजस ने मिट्टी से उत्पन्न किया। विवाह केदार नाले (उसी ग्राम की सहायक-देवी) से हुआ।

---

1. विवरण के लिए देखिए—कुलूत देश की कहानी-लाल चन्द प्रार्थी- पृ० 145-146।

केदार नाले :—

केदार नाले के पिता ने लड़की के लिये वर ढूंढते समय सब से अच्छा खाना बनाने वाले देवता के साथ विवाह की शर्त रखी। दाचो सावनी की सहायता से बोरेस कुल्लो ने सब से अच्छा भोजन बनाया। दाचो सावनी ने कीचड़ का बनाया हुआ मशाला सब को बांटा जिससे सभी देवताओं का भोजन बिगड़ गया। देवता का एक ही व्यक्ति के उठाने योग्य रथ है। कथा समुद्र-मन्थन की कथा से मिलती है जहां अन्य लोग मूर्ख बनाए गए।

किमशूआ :—

तीसरा देवता है। रथ बहुत छोटा है।

रिब्बा गांव :

कासूराजस (कंसराज) :—

पहले गांव में 'गुरुका' देवता था। कासूराजस गांव के ऊपर प्रकट हुआ और उस ने 'शरफो' स्थान में फुल्याच का प्रबन्ध किया। देवता के आदेश पर लामा 'छम्म' (एक विशेष नृत्य) लगाते हैं। मन्दिर में एक साधु का दिया हुआ बहुत पुराना शंख है।

रक्छम् :

सौनिगे :—

कैलाश से आई परन्तु बजन्तरी ढूंढने कुल्लू तक गई। दो गायिका युवतियों ने नाले में पानी रहने तक कण्ढे से न लौटने का वचन लिया। नाले में पानी है और वे नहीं लौटी। मन्दिर में टाकरी में लिखी हस्तलिखित पुस्तक है। इस पुस्तक को 14 माघ को पढ़ा जाता है। बकरे की बलि देते हैं। गांव के छ: वंशों के सभी घरों में देवी के स्वर्ग से आने के चित्र बनाए जाते हैं। सब लोगों को 14 माघ को इन्हें देखना पड़ता है। यदि चित्र में भूल हो तो उस घर वालों को शराब पिलानी पड़ती है।

शमशीर :—

सम्भवत: शनिश्चर है। गढ़वाल से आया है। सात भाई हैं। छ: गढ़वाल में हैं। 'शोने' नामक कण्ढे में 'मरजा ऊ' फूल इसी देवता के द्वारा लाया हुआ है। ओक्च चरोनिङ् में अपने को गांव में सोनिगे द्वारा लाया गया बताता है।

नाग-देवता :—

साङ्गला देवता के साथ 'बराल' झील से आया।

भगवती देवी :—

देवी 50,60 वर्ष पूर्व निकली है। गांव के ऊपर पत्थरों में कहीं शिवलिंग है उसे ढूंढने के लिए ही देवी का अवतरण हुआ है। इस देवी को अब सौनिगे देवी से बड़ा माना जाता है। बड़े देवताओं के अंगरक्षक वीर हैं। उन का मन्दिर पुल के पार है, इसी लिए पुल के पार सांप नहीं होते महासू, रङ्मू आदि किमशू हैं।

कफौर :

हिरमा देवी :—

कुल्लू से आई। बाणासुर से राक्षस विवाह। देवी का केवल छत्रड़् ही है। बाणासुर की आत्मा सांप व हवा के रूप में गांव में आती है। उस समय भारी तूफान भी आ ता है। यदि नमकीन हलवा (दू) बना कर बांटा जाए तो हवा बन्द हो जाती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

जानी गांव :

गन्धर्पंस :—

गन्धर्पंस पहले याशङ् (चगांव) का देवता। मेशुर ने उसे गांव से निकालने के उद्देश्य से यह शर्त लगाई कि जो देवता सतलुज नदी के पार पत्थर फैंक कर पहुंचा दे, वही इस भूमि का मालिक होगा। चगांव मेशुर ने जानकर पत्थर पार नहीं होने दिया। गन्धर्पंस (गन्धर्व) को जानी गांव जाना पड़ा। याशङ् से गन्धर्व द्वारा फैंके गए पत्थर का निशान अभी भी जानी गांव के समीप है।

नारायण :—

गन्धर्पंस (गन्धर्व) देवता का सहायक देवता है। नारायण देवता का गन्धर्व देवता से छोटा होना उल्लेखनीय घटना है।

छोटा कम्बा :

नागिन :—

छोटा कम्बा की देवी है। ऊषा की अवैध सन्तान मानी जाती है। कई लोक-गीतों के अनुसार यह ऊषा की बहिन है। देवी का मूहरा एक कुम्हार को मिला था इससे पूर्व इस गांव का देवता नारायण था जो बाद में गरशू गांव चला गया था।

नमगिया :

युल्सा :—

इसका नमगिया गांव में मन्दिर है परन्तु रथ नहीं है। ल्हासा से आया है। देवता का प्रतीक 10 फुट के लगभग लम्बी लकड़ी है। एक ही व्यक्ति उसे उठा कर नचाता है। यदि वह लकड़ी भूमि पर गिर जाये तो काले बकरे की बलि दी जाती है! देवता को शिरकिन में तीन दिन के लिये बाहर निकाला जाता है। युल्सा (युल-गांव, सा-देवता) निम्नलिखित गांवों के देवता हैं :—

1. नमगिया,
2. हाङ्गो,
3. सुङ्नम-
4. रोपा, आदि

बैसारा :—

नमगिया गांव में यह बुशहर से लगभग 30 वर्ष पूर्व आया है ।

कुल देव नारायण :—

यह हरिजनों का देवता है । रथ नहीं है ।

किमशू :—

देदूम, काली ग्यलबो तथा माण्टोक्पा हैं । माण्टोक्पा की पूजा न करने पर उसकी शक्ति घर के सब व्यक्तियों पर आ जाती है और शराब पिलाने तक नहीं उतरती ।

चन :—

सावनी होते हैं । इन का वर्णन बौद्ध-धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में भी मिलता है ।

कानम :

डबला :—

ल्हासा से कानम आया है । डबला आदि 9 भाई-बहिन हैं । इन्हें एक याक दौड़ा कर इस स्थान पर लाया । गुफा में घुस जाने के पश्चात् देवता ने याक को तीर मारा जो नेसिङ् के नीचे एक ढांक में लगा, वहां से अब भी पानी की धारा निकलती है । गांव के कुछ लड़के बनावटी देवता का खेल (स्वांग) खेल रहे थे, डबला उन में से एक लड़के पर आ गया । देवता एक घोड़े पर सवार है, जिस की गर्दन पीछे को मुड़ी हुई है । सुङ्नम का देवता भी घुड़सवार है पर उसके घोड़े की गर्दन मुड़ी हुई नही है । एक बार कानम के देवता के घोड़े की गर्दन लुहार ने चान्दी बचाने के उद्देश्य से सीधी बना दी । जब डबला यल्सा के पास सुङ्नम गया तो उस देवता ने अपनी नकल करने के कारण उसे बुरा भला कहा । दोनों देवता एक दूसरे से रूठ गए । बाद में भूल का पता लग गया और देवता ने लुहार को सजा दी ।

पाण्डव :—

देवता की मूर्ति के पास चांदी के पटे पर पांच मूर्तियां हैं जो पाण्डवों की मानी जाती हैं । पाण्डवों का माली भी है जो 'सौतिङ्' के समय उठता है । डबला बौद्ध धर्मानुयायी है और निरामिश भोजी माना जाता है ।

किमशू दे दुम नारेनस :—

देदुम डबला का पहरेदार माना जाता है । बहुओं के साथ उनके मायके से आ जाता है ।

फसल का देवता :—

नाम कुछ विशेष नहीं । सत्तू का चार कोनों वाला पुतला बनाया जाता है और उसे सब कोनों पर मक्खन लगा कर देवता की प्रसन्नता के लिये सब दिशाओं में फेंक देते हैं तथा शेष भाग को बांट कर खाते हैं ।

लिप्पा :

टङ्टा नारेनस :—

स्पीति के 'ताङों' के स्थान से आने के कारण यह नाम है। 'जुङ्नस' वंश के घर में आग लग जाने से सन् 1961 ई० में देवता के प्रतीक तीन सफेद पत्थर (छरा) गुम हो गए।

अशरङ् :

रापङ् नागस, नारेनस :—

नारेनस देवता का रथङ् अभी कुछ वर्ष पूर्व बनवाया गया। नागस सापनी से आया बताया जाता है। परम्परा है कि लिप्पा गांव में फुल्याच के समय 'त्रिमङ्' स्थान पर नर बलि की प्रथा थी। बाद में बैल की बलि दी जाती रही।

कामरू :

बद्रीनाथ :—

मथुरा वृन्दावन में उत्पन्न हुए। राज देवता माना जाता है।

कुमुख्या देवी :—

किले में बसने वाली कुमुख्या देवी ने कामरू गाँव बसाया।

लांगूरा वीर :—

कामरू के किले के पास लांगूरा वीर की स्थापना है। इसे वर्ष में एक बार मेमने की बलि दी जाती है। यह देवी का सहायक देवता है।

कल्याण सिंह :—

रामपुर बुशहर के राजवंश के साथ सम्बन्धित थे। इन्होंने बुशहर रियासत पर राज्य किया है।

छत्र सिंह :—

अब देवता माने जाते हैं।[1] बद्रीनाथ को किसी के घर में नहीं ले जाया जाता।

पांगी, रोघी, रारङ्, रव्वाङ्गी :

शिशेरिङ् :—

औजार तेज करने के पत्थर से एक मूहरा प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् तीन मूहरे और निकले तथा पत्थर भी कुछ बढ़ गया। ये तीन देवता हैं :—

1. रोघी नारेनस,
2. ब्वाङ्गी मरकारिङ्,
3. रारङ् पाथोरो।

---

1. कल्याण सिंह रामपुर बुशहर की वंशावली के अनुसार 112वां राजा था तथा छत्तर सिंह 96वां। देखिए किन्नर देश, पृ० 246।

शिशेरिङ् देवता बौद्ध-धर्म को मानने वाले हैं। देवता लामा के दर्शनों के लिये बौद्ध-मन्दिर जाता है।

नागस :—

शिशेरिङ् का मन्त्री माना जाता है। इसका नाम 'बायोच' है। यह किल्बा से आया है।

माटिङ् छाङा, काली, नाग, बीर :—

ये सभी घर के देवता हैं। माटिङ् छाङा को पेट पीड़ा के लिये पूजा जाता है। नाग भी किसी बहु के मायके से आया हुआ देवता है।

रोपा :

देवी चण्डिका :—

कोठी की चण्डिका का ही रूप है। देवी का रथङ् तीन वर्ष के बाद सजाया जाता है। देवी के सजाये जाने पर प्रत्येक घर से उसे एक बकरा, पूजा पाठ के लिये हलवा तथा पहनने के लिये कपड़े (घाघरा आदि) देने पड़ते हैं।

यहां वह तलवार है जिससे देवी ने 'हौनू' राक्षस का वध किया था। इस तलवार का एक सिरा टूटा हुआ है। इसे 'खण्डोमा' कहते हैं। देवी की अनुपस्थिति में इसे ही पूजा जाता है। देवी का विवाह ओरमिग (मूरङ् के देवता) से हुआ माना जाता है परन्तु इस गांव के कुछ लोग उसे सत्य नहीं मानते।

युल्सा :—

रोपा से ऊपर कण्ढे में एक मन्दिर में रहता है। बैशाख मास में 'क्यङ् क्यङ्' घास से इसकी जटाएं बना कर रथङ् पर सजा कर गांव में लाते हैं। उस घास को आपस में बांट कर लोग एक दूसरे को पीटते हैं। युल्सा के मन्दिर के पास ही कण्ढे में एक कूहल है जिसे यदि कोई ऋतुमती स्त्री या उसका पति पार करे तो या तो वर्षा हो जाती है अथवा पार करने वाले की हानि हो जाती है।

काली :—

रथङ् नहीं है परन्तु देवी चण्डिका के साथ रहने वाली बड़ी देवी मानी जाती है। लादने वाले (लद्दू) बकरे के मालिक इसे वर्ष में एक बकरा भेंट करते हैं।

गृह देवता :—

वासदेव खुड्ड का देवता माना जाता है। यह रक्षक है। इस की वर्ष में एक या दो बार पूजा होती है।

बीर, काली :—

बीर तथा काली की भी समय समय पर पूजा की जाती है।

लवरङ :

छकोलिङ् :—

लवरङ् गांव का देवता है।

स्पीलो :

छोरमोश :—

स्पीलो की देवी है। यह महाभारत के युद्ध के पश्चात् दुःखी हो कर अपने भाई छाकङ् शू (लवरङ् का देवता) के साथ इस क्षेत्र में आई। इस का नाम चक्रवर्ती देवी भी है।

1. देदुम।
2. काली सुङ्नम।

सुङ्नम :

युल्सा : —

सुङ्नम का देवता है। यह बौद्ध-धर्मानुयायी है।

गृह देवता :—

माटिङ् छाङ्रा, तङ् ता शू, पोरका शू, नारेनस :—

माटिङ् छाङ्रा का छोटा सा मन्दिर गांव के बाहर है। इस मन्दिर में छोटा सा दरवाजा है परन्तु इस का ग्रोक्च देवता की शक्ति आने पर उस दरवाजे से अन्दर घुस जाता है। इस की एक मूर्ति सुङ्नम गांव के मन्दिर में दीवार पर है, जिस में यह सांप के रूप में दिखाया गया है।

जंगी, अकपा :

क्यङ् मायुङ् :—

पहले यह देवता अकपा गांव में रहता था और इस की बहिन 'मिलायुङ्' जंगी गांव में रहती थी। बाद में दोनों ने अपने स्थान बदल लिये। यह देवी देवता कैलाश से आए हुए हैं। देवता के साथ उसकी बहिन का 'खण्डो' (खण्डा) रहता है। देवता अपने पहरेदार 'किमशूग्रङ्' के लिए बलि लेता है।

मूरङ् :

ओरमिग :—

ओरमिग रोपा रवक (ग्याबुङ्) से यहां आया। देवता प्राचीन समय में 12 वर्ष के पश्चात् 'बोनङ्' त्यौहार के समय रोपा जाया करता था। इस अवसर पर 108 बकरे काटे जाते थे। उनकी हड्डियां एक स्थान पर दबाई जाती थीं। इन हड्डियों को 12 वर्ष पश्चात् दूसरे त्यौहार के समय देवता अपने चमत्कार से ढूंढता था। एक बार देवी चण्डिका के ग्रोक्च ने ठीक स्थान बता दिया जिससे ओरमिग अपमानित अनुभव करने लगा। इस के पश्चात् ओरमिग ने धोखे से चण्डिका के साथ विवाह कर लिया। कुछ लोग विवाह को भी हार जीत की शर्त के अनुसार मानते हैं। ओरमिग कुल देव है और इस प्रकार वैष्णव-धर्म का देवता है।

गृह देवता :—

हिरिम, वेदरान, साङोन, टेशू, काली :—

हिरिम हनुमान का ही दूसरा नाम है। वेदरान राजा का किमशू था अब यहीं

बस गया। साङोन पर्वत पर रहती है, बर्फ व पानी देवी है। तेशू का अर्थ बड़ा देवता होता है। यह सब से पहले का देवा है।

काली फसलें तथा बीमारियाँ ठीक करती है। ओरमिग लिप्पा में गृह-देवता है, उसका रथ घास से बनाया जाता है।

हाङ्गो :

डबला :—

हाङ्गो का देवता है। किमशू के नाम पर हर घर में बकरा पालने की प्रथा है।

लियो :

जोमातोक :—

लियो गाँव का देवता है। तिब्बत से आया है। देवता अपने ग्रोक्च के द्वारा धूप (घोल) लाकर आवश्यकता पड़ने पर रोगी के लिये देता है।

तालिङ्सा :—

तालङ्सा का अर्थ 'ताली वाला' होता है यह स्वयं को रल्डङ् (स्वर्ग) की चाबी वाला कहता है।

रापङ् नागस :—

कहा जाता है कि रापङ् (सापनी) का नाग तिरासङ् के अवतारी लामा को मारने के लिए गांव में आया। वह लामा को तो मार नहीं सका परन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण उसे यह स्थान पसन्द आया और वह यहीं रह गया। उस का 'फबरङ्' एक व्यक्ति के घर में है जिसे चूलिङ गाँव विशेष अवसर पर निकाला जाता है।

नैदक :—

इस देवता ने भी तिरासङ् के अवतारी लामा से मुकाबला किया था। देवता लामा को याक के रूप में मिला था। ने-तीर्थ स्थान, दक-मालिक।

श्यालखर :

शूमा, युल्सा, ग्यलबू युल्सा :—

ये तीनों देवता श्यालखर में हैं। इन के केवल लोहे के मूहरे हैं। ये बड़े प्रभावशाली हैं। तीनों के ग्रोक्च हैं।

मालिङ तथा नाको :

पुरग्युल शू :—

यह पहाड़ का देवता है। पुरग्युल नाम की एक चोटी नाको गाँव के ऊपर है। यह लगभग 22000 फुट ऊंची है। परम्परा है कि पुरग्युल देवता ने नाको के एक लामा के साथ शर्त लगा कर एक रात में वहां की कूहल का निर्माण किया। लामा अपने वचन के अनुसार एक रात में 108 मानी फानियां नहीं बनवा सका। मानी फानी का अर्थ बौद्ध-स्तूप होता है।

चांगो :

डबला :—

डबला देवता का रथ नहीं है।

देदुम :—

देदुम व युल्सा के भी रथ नहीं हैं।

युल्सा :—

यह गांव का प्रभावशाली देवता माना जाता है। इस गांव में किम शू घर के अन्दर नहीं रखे जाते।

मेबर

इस गांव में रक्शू (मन्दिर के अन्दर रहने वाला पत्थर रूपी देवता) हैं। कहा जाता है कि जब मेशुर देवता का मन्दिर बनवाया जा रहा था तो एक पत्थर को प्रतिदिन बाहर फैंक दिया जाता था पर वह रात में वहीं वापिस आ जाता था। बाद में उसे देवता मान लिया गया। इस के अतिरिक्त काली, कुसुम नालङ्चशू, महासू, न्यूगे, वीर, वज़ीर कणालोस्या—जो देवता की बात न मानने पर दण्ड देता है, तथा मातिङ् छाङ्ग देवता भी इस गांव के छोटे देवता माने जाते हैं। रग-पत्थर शू-देवता।

वाङ्पो घाटी में मेशुर, कुलदेव, कामशू नारायण, विष्णु, नागस तथा पाण्डव (पाणा) देवता हैं।

कामशू नारायण सात भाई थे परन्तु मेशुर के साथ उन की अनबन हो गई और उसने उन्हें नाले में बहा दिया। एक नारायण को लोगों ने पकड़ लिया और वह बेई गांव का देवता बन गया।

पाणा (पाण्डव) काबा गांव के देवता हैं। इन्हें अनाज के यज्ञ से पूजा जाता है। भाबा घाटी के एक छोटे से गांव सुरचो में भी पाणा ग्राम-देवता माने जाते हैं।

टशिगङ् गांव में 'ग्यलबो कुङ्ग' देवता है। ग्यलबो का अर्थ 'महाराज' होता है। ये 5 हैं। यह एक श्यालखर गांव में भी हैं। यहीं एक देवता जाख्युङ् (गरुड़) भी है यह सांपों का नाश करने वाला है। जब वर्षा नहीं होती तो टशिगङ् वाले बाहर निकाल कर इस की पूजा करते हैं। इसकी चन्दन की मूर्ति को बाहर से तभी अन्दर ले जाया जाता है जब वर्षा हो जाती है। इस समय इस के साथ की 4,5 मूर्तियों को भी साथ ही बाहर निकाला जाता है इनमें एक लुई ग्यालबो (वासुकि नाग) भी है। बाकी सभी मूर्तियां पीतल की हैं। बताया जाता है कि इनमें एक मूर्ति एक लामा की है जिसे वर्षा न लाने के कारण तिब्बत के राजा लङ्दर्मा ने दुःखी किया था और जिसके हाथ की उंगलियां उसने काट दी थीं।

टशिगङ्, रोपा तथा लियो के पास तिरासिङ् नामक स्थानों पर बौद्ध मन्दिरों में एक एक ऐसी छोटी मूर्ति है, जिस के सिर पर छोटे छोटे बाल हैं। ये काले रंग के थोड़े मोटे तथा बिल्कुल खड़े होते हैं। कहा जाता है कि ये बढ़ते रहते हैं। तिरासिङ् की मूर्ति को एक बड़ी मूर्ति के बीच मढ़ दिया गया है अतः वह अब किसी को दिखाई नहीं

देती। तिब्बत में एक बहुत बड़े लामा 'मिलारेपा' हुए हैं। कहा जाता है कि उन्हें तिब्बत-वासियों ने सत्तू भेंट किए। जितने वे खा सकते थे, उन्होंने खा लिए। बाकी बचे हुए सत्तुओं के आटे से उन्होंने बालों वाली तीन मूर्तियां बना दीं। उन में से दो रोपा तथा टशिगङ् के स्थानों पर किन्नौर में हैं। कहा जाता है कि इन मूर्तियों के बाल बढ़ते रहते हैं और उन्हें काट कर छोटा करना पड़ता है परन्तु इस सम्बन्ध में विश्वस्त जानकारी का अभाव रहा है। अब इन मूर्तियों को छूने नहीं दिया जाता क्योंकि कहा जाता है कि लोग पुराने समय में इनके बालों को नोच लिया करते थे।

इन देवताओं के अतिरिक्त अन्य छोटे देवी-देवता भी बौद्ध-धर्मानुयायी हैं और लामाओं के अवतार या गुरू माने जाते हैं। वास्तव में बौद्ध-धर्म के अन्तर्गत हिन्दुओं के प्रायः सारे देवताओं को अंगीकार कर लिया गया है और उनके नाम तिब्बती भाषा में बदल दिए गए हैं।

'देदुम' या 'छुबदुद' पानी के देवता माने जाते हैं। ये असंख्य हैं और तिब्बत से आए हैं। आश्चर्य यह है कि किन्नौर के निचार डिवीजन में भी, जहां बौद्ध-धर्म के देवताओं का प्रभाव बहुत कम है महेशुरों के मन्दिरों के अन्दर इन 'देदुम' देवताओं का निवास माना जाता है। यही नहीं, इसी लिए देवता के प्राचीन मन्दिरों को 'देओगलङ्' भी कहा जाता है। देओगलङ् में वर्ष में एकाधिक मेले विशेष अवसरों पर ही लगाए जाते हैं, अन्यथा यहां मेला लगाने की प्रथा नहीं है।

'च़न' घर के देवता भी हैं। अनेक गाँवों में यह गृह-देवता माना जाता है। कहते हैं कि 'च़न' एक लामा था पर अपने कर्म से भूलने पर 'यक्ष' बन गया और छोटे देवता के रूप में पूजा जाने लगा। इसकी प्रकृति भूत की तरह है। पूजा न किए जाने पर यह हानि पहुंचाता है।

इनके अतिरिक्त 'बन देवता' तथा 'लपचेस' (पत्थरों का समूह जो घाटियों पर रखा रहता है) अधिकारी देवता भी प्रसिद्ध देवता माने जाते हैं। सावणी वन-देवियां हैं, ये बौद्ध धर्म ग्रन्थों में भी वर्णित हैं।

किन्नर-देवता अपने गाँव से दूसरे देवताओं के पास भी आते जाते रहते हैं। जो देवता बड़े हैं उन्हें छोटे देवता आमन्त्रित करते हैं और जब कोई ग्राम-देवता किसी दूसरे गाँव जा रहा हो तो उसके साथ उस गाँव के प्रत्येक घर से कम से कम एक व्यक्ति का जाना आवश्यक माना जाता है। दूसरे गाँव जाकर ये लोग सारे ग्राम-वासियों के अतिथि होते हैं और प्रत्येक परिवार अपनी बारी पर इन्हें भोजन खिलाता है। बड़े देवताओं के गांव के लोग भी अपने आप को छोटे देवता के गाँव वालों से बड़ा मानते हैं और उनके गाँव जाकर साधिकार अपने आराम की वस्तुएं मांगते हैं। देवता दूसरे देवता के गाँव में आठ या दस दिन तक भी ठहर जाते हैं। जब देवता दूसरे गाँव जाता है तो उसके मूहरे आदि एक किल्टे में उसके साथ ले आए जाते हैं, इसे 'बुल्डो' कहते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 'बुल्डो' के द्वारा उस गांव की बीमारियां आदि भी दूसरे गाँव चली जाती हैं अतः अतिथेय देवता 'बुल्डो' के किल्टे को मन्दिर-प्रवेश के समय ही धक्का मार कर गिराने का यत्न करता है।

देवता अपनी प्रजा के झगड़ों के निर्णय देता है परन्तु दो देवताओं के झगड़ों को प्राचीन समय से लेकर राजदरबार ही निपटाता रहा है।

ग्राम-देवता जादू दूर करता है तथा भूतों को भगाता है परन्तु जब देवता को भूत लग जाये तो दूसरे देवताओं (विशेष रूप से हरिजनों के देवता) के ग्रोक्च कांटेदार झाड़ियों से झाड़ कर भूत को देवता की जटाओं से निकालता है। इस समय वह तलवार से देवता के सम्मुख नाचता है तथा भूत को भगाने के लिये बन्दूकें चलाई जाती हैं।

ग्राम-देवता भूत को समझा बुझा कर गांव से बाहर भेजते हैं। अनेक बार तो भूत को गांव से बाहर पहुंचाने के लिये देवता को आठ दस मील तक भी जाना पड़ता है। कुछ भूतों को देवता अपने मन्दिर में कैद कर लेता है। ये देवता सर्दियों में वर्ष भर के लिये सुख-सम्पदा लाने के लिए इन्द्रलोक चले जाते हैं और दूसरे देवताओं को हरा कर अपने गांव के लिए सब प्रकार की रिद्धियां अपने साथ लाते हैं।

मेशुरों के पश्चात् इस क्षेत्र के मुख्य देवता नारायण हैं। ये मेशुरों के सहायक हैं। कामरू का बद्रीनाथ इनमें सब से बड़ा माना जाता है। नारायण आपस में भाई-भाई माने जाते हैं। विष्णु केवल हरिजनों का देवता माना जाता है।

सारांश यह है कि किन्नर लोक-देवता समस्त सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं और उनका व्यवहार समाज के सजीव प्राणी की भांति होता है। वे प्रसन्न होते हैं, गृहस्थी चलाते हैं, झगड़ा करते हैं, छल कपट से काम लेते हैं, उनमें बहुपति प्रथा तथा स्वाभिमान है। इसी कारण किन्नर लोगों के सुख-दुःख में उनका महत्त्व-पूर्ण हाथ है। उनके बिना किन्नर समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

8 लामा–धर्म

लामा-धर्म[1] किन्नौर के बहुत बड़े भाग का मुख्य धर्म है। सारे क्षेत्र में लामा[2] धार्मिक अनुष्ठानों के अधिष्ठाता माने जाते हैं। वे तिब्बती भाषा में पारंगत होते हैं। प्रायः प्रत्येक गाँव में बौद्ध-मन्दिर (लागङ्) होता है, जहाँ लामा रहता है अथवा दूसरे स्थान से आने पर पूजा-पाठ करता है। इन लामाओं की अपनी सम्पत्ति नहीं होती परन्तु मठ की भूमि तथा सम्पत्ति पर इन का पूर्ण अधिकार होता है। ग्रामीण जब लामा का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए जाते हैं तो भेंट के लिए अनाज आदि ले जाते हैं। भौतिक प्रसिद्धि तथा सम्पत्ति-संचय के लोभ से विरक्त रहते हुए, लामा धर्म-ग्रन्थों को पढ़ने तथा दुङ्ग्युर[3] (धर्म-चक्र) को घुमाने में ही अपना सारा समय व्यतीत करते हैं।

प्राय: प्रत्येक किन्नर-ग्राम के समीप, रास्ते के मध्य अनेक स्थानों पर पत्थरों के चबूतरों पर तिब्बती भाषा के शिलालेख रखे जाते हैं, जिन पर लामाओं द्वारा बौद्ध-धर्म सम्बन्धी श्लोक लिखे गए होते हैं। जब समय मिलता है, लामा सुन्दर पत्थरों पर कुरेद कर तिब्बती श्लोक लिखते हैं और इन चबूतरों पर रखते हैं ताकि इन्हें पथिक पढ़ें और इन के प्रभाव से दुरात्मायें गाँव में न आ सकें। इन चबूतरों को 'मानी-फानी' कहा जाता है। इन पर अधिकांशतः प्रसिद्ध तिब्बती मन्त्र 'ॐ मणि पद्मे हुं ह्रि' लिखा रहता है। सामाजिक नियम के अन्तर्गत इन 'मानी फानियों' को बाईं ओर रह कर ही पार करना आवश्यक माना जाता है। यह माना जाता है कि ऐसा करने से भूत-प्रेतों से रक्षा होती है। मानी फानी इस क्षेत्र के बौद्ध-धर्म सम्बन्धी इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।[4]

बौद्ध-धर्म में तन्त्र-विद्या का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वानों का मत है कि

---

1. 'लामा' शब्द तिब्बती भाषा में 'ब्लामा' लिखा जाता है और लामा-धर्म मानने वाले देशों में केवल कुछ विशेष प्रकार के 'भिक्षुओं' अथवा 'पण्डितों' के लिये ही प्रयुक्त होता है। यह 'ब्रह्मा' का अपभ्रंश है।
   —देखिये 'मैन इन इण्डिया' वॉल्यूम 46, अंक 4 (अक्तूबर-दिसम्बर, 1966) के पृष्ठ 345 पर निर्मलचन्द्र सिन्हा का 'दि लामा' लेख।
2. लामा की पदवी अर्जित होती है, पैत्रिक नहीं।
3. दुङ्ग्युर—यह पेटिका होती है जिस में बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित मन्त्र तिब्बती भाषा में लिखे रहते गए होते हैं। एक धर्म-चक्र में एक करोड़ से भी अधिक मन्त्र होते हैं।
4. देखिये—मार्को पालिस द्वारा लिखित पुस्तक 'पीकस ऐण्ड लामाज़' पृ० 52-53.

इस का उदय पहले बौद्धों में ही हुआ[1]। बौद्ध-धर्म के प्रसार से पूर्व तिब्बत में 'बोन-धर्म' का प्रचलन था। यह धर्म तन्त्र-विद्या पर आधारित था और समाज में इतना अधिक लोक-प्रिय था कि बौद्ध-धर्म-प्रचारकों को इसे पूर्ण रूप से अध्ययन करने की आवश्यकता पड़ी। आधुनिक बौद्ध-धर्म में भी इस धर्म के तान्त्रिक तत्वों का इसी कारण से समावेश हुआ है। बोन धर्म को समाप्त करने के उद्देश्य से सारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों को बौद्ध-धर्म के अनुरूप ढाला गया और साक्य-मुनि के साथ सम्बन्धित किया गया।[2]

'ॐ मणि पद्मे हुं' बौद्ध-धर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र है। इस के सम्बन्ध में 'मणिकाबुम' नामक तिब्बती ग्रन्थ में अनेक व्याख्यायें दी गई हैं। इस का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है—

ओम्	तीन तत्वों (वाणी, शक्ति तथा आनन्द) का एकीकरण।
मणि	सिद्धि-रत्न।
पद्म	कमल।
हुं	मैं-सर्वव्यापक।
ह्रि	सत्।

अर्थात् आध्यात्मिक पुनर्जन्म के कमल में, तीन तत्वों का समूह मेरा सिद्धि दायक रत्न है।[3] यह मन्त्र समस्त सृष्टि का सार है[4]।

धर्म व अर्थ की सिद्धि तथा त्रिकाल और दसों दिशाओं के सभी तथागतों का प्रसन्न होना इस षडाक्षरी मन्त्र का फलादेश माना जाता है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार इस के प्रत्येक शब्द का अर्थ इस प्रकार है :—

1.	**ओम्**	पाँच प्रकार का ज्ञान।
	म	अपार मैत्री।
	णि	अपार दया।
	पद्	अपार प्रसन्नता।
	मे	अपार समता।
	हुं	महाकारुणिक ज्ञान से अत्यधिक प्राणियों का हित।
2.	**ओम्**	सर्व विद्या संग्रही महाकारुणिक।
	म	वैरोचन।

---

1. डॉ० सम्पूर्णानन्द—हिन्दू देव परिवार, पृष्ठ 178।
2. Tibet and Tibetan—Tsing Lien Shen and Shen—Chi Liu, Page 21.
3. Herbert Bruce Hannah—Grammar of the Tibetan Language, 1912, Pp. VIII & IX.
   "The Embodiment of the Trinity or Incarnation of Deity, is my wish-granting Jewel in the Lotus of Spiritual rebirth."
4. Census of India 1961, Vol. XX—Part VI, No. 12, Monograph on 'KANUM', page 12.

	णि	वज्रसत्त्व ।
	पद्	रत्न-सम्भव ।
	मे	अमिताभ ।
	हुं	अमोघसिद्धि ।
3.	ओम	धर्मकाय ।
	म	सम्भोग काय ।
	णि	निर्माण काय ।
	पद्	स्वभावकाय ।
	मे	अभिसम्बोधिकाय ।
	हुं	अपरिवर्तनीय वज्रकाय ।
4.	ओम	सर्वडाकिनी, जाति समूह वज्रयोगिनी ।
	म	बुद्ध डाकिनी ।
	णि	वज्रसत्त्व डाकिनी ।
	पद्	रत्न डाकिनी ।
	मे	पद्म डाकिनी ।
	हुं	आध्यात्मिक शुद्धि ।

'ओम् मणि पद्मे हुं' के मन्त्र में 'मणि' को सब से महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। यह महान् 'पुण्यवान' तथा सिद्धिदातृ है।[1]

इस मन्त्र को कपड़ों पर लिखवा कर लामाओं द्वारा विधिवत लम्बे डण्डों पर झण्डों [दारछोद (त)] के रूप में घरों की छतों से ऊपर लगाया जाता है। यह विश्वास है कि दारछोद से भूत-प्रेत भाग जाते हैं तथा ऋद्धि-सिद्धि का आगमन होता है[2]।

मानी फानी की भांति छोस्तेन भी बौद्ध-धर्म सम्बन्धी मान्यताओं का दिग्दर्शन करती है। इस के अनेक प्रकार हैं जिन का वर्णन आगे किया गया है। इस के दर्शन करना बहुत पवित्र कार्य माना जाता है[3]।

मानीफानी के पास से गुज़रते समय जिन नियमों का ध्यान रखना पड़ता है, छोस्तेन के पास से निकलते समय भी वे ही नियम ध्यान में रखे जाते हैं। तिब्बत में यह सामान्य-प्रथा है कि किसी भी पवित्र पदार्थ को दाहिने से पार न किया जाए तो दुर्भाग्य का चिन्ह माना जाता है। वहां यह कहावत कि 'बायें हाथ के भूत-प्रेतों से सावधान' (Beware of the devils on the left hand side)[4] प्रसिद्ध है।

---

1. देखिये—भिक्षु धर्मरक्षित लामा लोब्ज़ंग द्वारा रचित पुस्तक—'ॐ मणि पद्मे हुं', पृष्ठ 45 से 49।
2. Waddell L. A.—The Buddhism of Tibet or Lamism, Seoond Edition. Pp. XXVII & XXVIII.
3. Journal of Asiatic Society of Bengal, Part I & II (New Series) Vol. XIII, Nos. 145 to 150, 1844. Notes on Moorcrofts' Travels in Ladakh etc. by J. D. Cunningham, Pp. 198 to 200.
4 Marco Palis—Peali and Lawas, Page 53.

साधारण रूप से देखने पर सारे क्षेत्र का लामा-धर्म एक ही प्रकार का प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में इस की अनेक प्रशाखाएं हैं जो विभिन्न ग्रामों में फैली हैं। इन पर विस्तृत रूप से विचार करने से पूर्व हमें यह देख लेना ठीक रहेगा कि किन गाँवों में धर्म का कौन सा रूप है :—

नाम ग्राम	बौद्ध-धर्म की शाखा	परिशिष्ट
1	2	3
1. नाको	डुग्पा	
	छोग्ले[1]	ठोमा धर्म की उप-शाखा।
	चोद्पा	इस शाखा के उपासक डमरू तथा कङ्लिङ्[2] बजाते[3] हैं।
2. चांगो	ज़ोग्छेन	यह सब से उच्च धर्म है इससे आगे निर्वाण की प्राप्ति मानी जाती है।[4]
	ठोमा	इस धर्म की देवी का नाम 'पल्दन लामो' है। यह डाकिनी के प्रकार की देवी है।

इस देवी को प्रसन्न करके निर्वाण प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है।[5]

---

1. यह ठोमा धर्म की पूजा-पद्धति की उपशाखा है। तिब्बत के एक लामा इस का प्रचार करने के उद्देश्य से अन्य ग्रामों में भी गए पर अभी तक किसी ने इसे इस क्षेत्र में नहीं सीखा।
2. हड्डी का बना हुआ एक वाद्य-यन्त्र।
3. ये लामा श्मशान घाट में सिद्धि प्राप्त करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं। इन का विश्वास है कि सिद्धि से अन्तःकरण को बदला जा सकता है। ये मृतक के कान में 'फोआ' कहते हैं जिससे आत्मा का मोक्ष को प्राप्त होना माना जाता है। 'फोआ' एक मन्त्र होता है।
4. इसे जानने वाले इसी गाँव में हैं, किन्नौर में यह नई शाखा है।
5. 'ज़ोग्छेन' तथा 'ठोमा' निङ्मा धर्म की उपशाखाएं हैं तथा इस क्षेत्र में अन्य स्थानों पर बहुत प्रचलित नहीं हैं। ठोमा में देवी की सिद्धि प्राप्त की जाती है। कहते हैं कि ठोमा धर्म की साधना की कोई प्राचीन पोथी पद्म सम्भव के अवतार दुत्ज़ोम रिम्पोछे ने, जो पिछले दिनों दलाई लामा के साथ तिब्बत से भारत आए हैं, कहीं गुप्त स्थान से निकाल कर इस धर्म का प्रचार किया। यह नितान्त नया धर्म है। 'ठो'–बिगड़ना, 'मा'-देवी, इसमें देवी भैरव का रूप धारण करके प्रचलित बुराइयों को समाप्त करने के लिए काल रूप में आई है, ऐसा बताया जाता है। वह बुराइयों को समाप्त करने के लिए काल रूप में खड़ी मानी जाती है। यह कलियुग का विशेष धर्म है इसमें डोलमा का भयानक रूप देखा जाता है। यह धर्म 100 वर्ष से अधिक पुराना नहीं है तथा निङ्मा धर्म की उपशाखा माना जाता है। भविष्यवाणी करने के कारण ही पद्म सम्भव को 'त्रिकाल बुद्ध' कहा जाता है।

3.	हाङ्गो	निङ्मा धर्म ।	ग्येलङ् टुल्कू हाङ्गो का बड़ा लामा है ।
4.	चूलिङ्	निङ्मा धर्म ।	
5.	लियो	निङ्मा धर्म ।	
6.	टशिगङ्	डुक्पा धर्म ।	
7.	नमगिया	डुक्पा धर्म ।	
8.	डबलिङ्	डुक्पा धर्म ।	
9.	रवाओं	डुक्पा धर्म ।	
10.	डुबलिङ्	डुक्पा धर्म ।	
11.	श्यालखर	डुक्पा धर्म ।	
12.	सुमरा	ठोमा ।	
		डुक्पा ।	
		ग्येलुक्पा ।	
13.	पूह	डुक्पा ।	
14.	श्याशो	निङ्मा ।	
15.	सुङ्नम	निङ्मा ।	
16.	तालिङ्	निङ्मा ।	
		ञिङ्ठी ।[1]	
17.	ग्याबुङ्	निङ्मा ।	
18.	रोपा	निङ्मा ।	
19.	कानम	ग्येलुक्पा ।[2]	
20.	स्पीलो	निङ्मा ।	
		ञिङ्ठी ।	
		ठोमा ।	
		चोद्पा ।	
		डुक्पा ।	

1. यह भी नया धर्म है । इसे मानने वाली एक जोमो (बौद्ध-भिक्षुणी) स्पीलो गाँव में भी है । कहा जाता है कि 'ञिङ्ठी' धर्म की एक पुस्तक भी कहीं से अभी ही प्राप्त हुई है ।

2. स्पीति में भी पिन क्षेत्र के अतिरिक्त सारे स्थानों पर यही धर्म है । इस सारे क्षेत्र में बौद्ध-धर्म के प्रसिद्ध भिक्षु रत्न भद्र (लोचा रिङ्चेन जाङ्पो) ने ग्यारहवीं शताब्दी में डुक्पा व ग्येलुक्पा शाखाओं में प्रचार किया । इसके दूसरे गुरु 'गेशे रिम्पोछे' हैं जो भारत वर्ष आ गए हैं । रत्न भद्र का 18वां अवतार कुछ वर्ष पूर्व श्यालखर गाँव में हुआ है ।

21. **करला** निङ्मा ।

22. **लवरङ्** निङ्मा ।
डुक्पा ।
चोद्पा ।

23. **लिप्पा** निङ्मा ।
डुक्पा ।[1]

24. **असरङ्** निङ्मा ।
डुक्पा ।

25. **जंगी** निङ्मा ।
डुक्पा ।

26. **रारङ्** डुक्पा ।[2]
निङ्मा ।
चोद्पा ।

27. **मूरङ्** ग्येलुक्पा ।
निङ्मा ।
यहां डुग्पा शाखा भी है, इसके अन्तर्गत करमापा, लोडुक तथा करयुत्पा या योङ् डुक उपशाखाएं आती हैं ।

---

1. लिप्पा में ज्योतिष का जन्म माना जाता है । वहां प्राचीन समय में एक अवतारी लामा 'ङारिङ् टुल्कू' हुए जिन्होंने तिब्बत में भी ज्योतिष का प्रचार किया । टुल्कू का अर्थ 'अवतारी' होता है । इस गांव के प्रसिद्ध लामा अब भी जन्त्रियां बनाते हैं । ये लामा डुक्पा धर्म को मानते हैं । आर्य मंजु श्री घोष इस धर्म के प्रवर्तक माने जाते हैं । लिप्पा आरम्भ से ही बौद्ध-धर्म का प्रसार-केन्द्र रहा है तथा यहां अनेक लामा तथा जोमो हैं ।

2. डुक्पा धर्म का प्रचारक टशिगङ् का अवतारी लामा है । इसका नाम युरग्यल टुल्कू है । यह लद्दाख से अवतार रूप में इस धर्म का प्रचार करने यहां आया । इसका एक जन्म नेसङ् में हुआ, इसके पश्चात् यह टशिगङ्, नेसङ् अथवा स्पीति में अवतार लेता रहा । इसका असली सिंहासन टशिगङ् में है । युङ्जिन टुल्कू जो आजकल रारङ् में है, तिब्बत में उत्पन्न हुआ और मिलारेपा (एक ही कपड़े में रहने वाले योगी) का अवतार माना जाता है । यह टशिगङ् के अवतारी लामा का गुरू है । मिलारेपा का एक शिष्य 'राशुङ्वा' का अवतार 'छोएगोन रिम्पोछे' जो तिब्बत में अवतरित हो कर रारङ् गांव आया था, वृद्धावस्था में वहीं स्वर्गवास हुआ । 'युङ्जिन टुल्कू' 15, 16, वर्ष की आयु का है । रारङ् में उसका मामा 'लाखोङ् टुल्कू' भी अवतारी लामा है, जो वहीं बड़े लामा के साथ रहता है ।

28.	नेसङ्	निङ्मा ।
		डुक्पा ।
29.	ठङे	ग्येलुक्पा ।
30.	कुनो चारङ्	ग्येलुक्पा ।
31.	साङ्ला घाटी	ग्येलुक्पा ।
32.	रिस्पा	निङ्मा ।
		डुक्पा ।
		ग्येलुक्पा ।
33.	रिब्बा	ग्येलुक्पा ।
34.	खादुरा	ग्येलुक्पा ।
		डुक्पा ।
35.	पांगी	निङ्मा ।
		डुक्पा ।
36.	काल्पा	निङ्मा ।
		डुक्पा ।
37.	रोहगी	ग्येलुक्पा ।
38.	चगांव	ग्येलुक्पा ।
39.	यूला	ग्येलुक्पा ।
40.	भाबा घाटी	निङ्मा ।

उल्लेखनीय है कि ञिङ्ठी निङ्मा शाखा का सूक्ष्म धर्म है। 'ञिङ्ठी' एक पुस्तक का नाम है। कहा जाता है कि जब बौद्ध-धर्म का प्रचार हो रहा था तो पांच व्यक्तियों ने उसे अपनी भावना के अनुसार सुना। पद्म-सम्भव ने इसे छुपा कर रखा था। अलग अलग प्रकार से सुनने के कारण इस धर्म की उपशाखाएं बनीं।

बौद्ध-धर्म के इन सभी सम्प्रदायों पर तिब्बती बौद्ध-धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। जोमो[1] भी लामाओं के साथ धर्म की शिक्षा प्राप्त करती हैं। किन्नौर का बौद्ध-धर्म

---

1. किन्नर-क्षेत्र की अनेक लड़कियां विवाह के लिए इनकार करके बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लेती हैं और बौद्ध-मठों में रह कर धर्म की शिक्षा लेती हैं। इन्हें जोमो (बौद्ध-भिक्षुणियां) कहा जाता है। इनका पहनावा लाल अथवा भगवें रंग का (अपनी मान्यता की धर्म-शाखा के अनुसार) होता है। इन्हें विवाह की अनुमति नहीं होती परन्तु जब कोई भिक्षुणी विवाह कर लेती है तो वह 'जोमो' नहीं रहती। अधिकांश जोमो सिरों को मुण्डवा लेती हैं।

तिब्बत के बौद्ध-धर्म की भांति भूत-प्रेतों व राक्षसों में विश्वास पर आधारित है। प्रसिद्ध लामा अपनी मृत्यु से पूर्व अगले जन्म से सम्बन्धित कुछ संकेत दे जाते हैं तथा बड़े लामा की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न होने वाले लड़कों का पता रखा जाता है और जहां सन्देह हो, लड़के को पुराने लामा की प्रयुक्त कुछ वस्तुएं नई वस्तुएं के साथ दी जाती हैं, यदि वह लड़का अपने प्राचीन अवतार के समय प्रयोग में लाई गई वस्तुओं को पहचान ले तो समझा जाता है कि लामा का अवतार हो गया है। यदि लड़का अपनी पहले की वस्तुओं को अलग न कर सके तो उसे वास्तविक अवतारी लामा नहीं माना जाता। बच्चे के पांवों आदि के निशान लगवा कर भी पहचान की जाती है। अवतार सम्बन्धी परीक्षा केवल पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों की ही की जाती है।

यदि अवतार का पता चल जाए और यह निश्चित हो जाए कि अमुक लड़का ही दिवंगत लामा का अवतार है तो उसकी पढ़ाई आदि का प्रबन्ध किया जाता है और बड़ा होने पर उसके नाम चले आ रहे बौद्ध-मठ की सम्पत्ति उसके नाम हो जाती है। किन्नौर में इस प्रकार के अनेक अवतारी लामा हैं। इन सब की समाज में बहुत प्रतिष्ठा है।

यह विश्वास किया जाता है कि बौद्ध-धर्म के प्रचार के पूर्व तिब्बत का मान्यता प्राप्त धर्म 'बोन' था। इस धर्म का क्षेत्र बहुत व्यापक रहा[1] है। इस में भूत-प्रेत तथा देवी देवताओं का प्राधान्य था। 'बोन' धर्म की सारी अलौकिक शक्तियां वर्तमान बौद्ध-धर्म में सम्मिलित कर ली गई हैं। इन का उल्लेख बाद की बौद्ध-धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में हुआ है[2]। कुछ देवताओं के नामों व कार्यों में परिवर्तन भी हुआ है, यथा, प्राचीन काल में 'दुद' देव लोक की आत्माएं थी परन्तु लामा-धर्म में 'राक्षस' बना दी गई[3]।

किन्नौर के बौद्ध-धर्म को समझने के लिए तिब्बत के बौद्ध-धर्म को समझना आवश्यक होगा। विश्वास के अनुसार यहां का प्रथम राजा स्वर्ग के देवताओं का पुत्र था जो स्वर्ग से सीधा तिब्बत पर राज्य करने के लिए आया। उसके साथ उस समय कोई अन्य व्यक्ति नहीं था और वह अपना कार्य समाप्त करके वापिस चला

---

1. To day we are in a position to say with some certainty that the original Bon religion was the National Tibetan form of that old animist-Shamanist religion which at one time widespread not only in Siberia but throughout the whole of inner Asia, East and West Turkestan, Mongolia, Manchuria, the Tibetan Plateaux and even China. The profound Scholar (cf. H. S Neyberg—The religious ancient Iran) declared the pronouncements of the prophet Zarathustra to have been Shamanist inspired. However, the view has not generally been accepted.

   Humut Hoffmann—The religions of Tibet, Pp. 14-15.

2. Ibid, Page 17.
3. Ibid, Page 19.

गया। आठवीं पीढ़ी का राजा 'ग्रि-गुम' अपने मन्त्री के जादू का शिकार बना और इस कारण उसकी आत्मा स्वर्ग वापिस नहीं जा सकी। उसका पार्थिव शरीर भी यहीं रह गया परम्परा के अनुसार लोग उसी समय से कब्रों[1] से सम्बन्धित विश्वासों पर चलने लगे। इस पौराणिक राजा के पश्चात् तिब्बत के राजा पार्थिव प्राणी हुए। इसी की अनेकों पीढ़ियों के पश्चात् ख्री-सोन इदेब्तसन (Khri Srong ldebtsan) राजा के आमन्त्रण पर पद्म सम्भव भूत-प्रेतों को हटाने के लिए तिब्बत गए[2]। पद्म सम्भव ने लोगों के प्रचलित धर्म का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया और उन की मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए नया धर्म प्रारम्भ किया।

प्रसिद्ध राजा स्रोन-सेन-गम्पो ने देश का विधान तैयार किया और धार्मिक प्रथाएं प्रचलित कीं[3]।

पद्म सम्भव ने ती-सोङ्-दे-सन राजा के समय में 'सोम-यी' बौद्ध-मठ का निर्माण कराया। इस प्रकार तिब्बत के बौद्ध-धर्म का प्रारम्भिक रूप ग्येलुक्पा (Red hat Sect) था। पद्म सम्भव का तिब्बती नाम लोफोन (लों पोन) रिम्पोछे' है, जिस का अर्थ 'मूल्यवान हीरा या गुरू' होता है।

तेरहवीं शताब्दी के अन्त में कुबला खां ने, जो चीन का प्रथम मंगोल बादशाह था, तिब्बत के बौद्ध-मठ के प्रधान लामा को बुलाकर सम्मानित किया। वह 'साक्य' सम्प्रदाय का प्रधान लामा था। तब से प्रधान लामा को 'दलाई लामा[4]' कहा जाने लगा। //

बौद्ध-धर्म के सार्वजनिक प्रचार के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की गई और भारतीय संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद प्रस्तुत किए गए। साधारणतया संस्कृत की पुस्तक का अनुवाद करने के लिए दो व्यक्ति होते थे, एक भारतीय जिसे 'पण्डित' कहते थे तथा दूसरा तिब्बती जिसे 'लोत्सवा' या 'लोचा' कहा जाता है। 'लोचा' का अर्थ अनुवादक होता है[5]। इन दोनों को एक ही नाम से पुकारने के लिए 'लोपन[6]' भी कहा जाता था। अनुवाद दो भिन्न भागों में किया गया। एक प्रकार में तो 'सूत्रों' के रूप में लिखे गए ग्रन्थ थे और दूसरे में शास्त्रों के अनुवाद थे। 'सूत्र' भगवान बुद्ध के वचन हैं तथा 'शास्त्र' अन्य विद्वानों द्वारा लिखे गए उन के वचनों

---

1. तिब्बत में मृतकों को दबाने की प्रथा भी है।
2. Humut Hoffman—The religions of Tibet—Pp. 54-58.
3. Sir Charles Bell—The People of Tibet, Page, 11.
4. दलाई—समुद्र, लामा-बौद्ध पण्डित, अथवा ला-बड़ा, मा-नहीं—अर्थात् सब से बड़ा (गुरू)।
5. भोट प्रकाश :—
   A Tibetan Christomathy, by Vidhushekhara Bhatta Charya, Page XXIV.
6. 'Lo' for Lotsava and 'Pan' for 'Pandit', Ibid, Page XXIV.

की व्याख्या से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों को 'कङ्ग्युर'[1] तथा 'तङ्ग्युर' कहा जाता है। कङ्ग्युर में बुद्ध, विनयवस्तु, विनय विभंग के शब्द तथा तङ्ग्युर में नागार्जुन, आर्यदेव, असंगा, वसुबन्धु, दिन्नग तथा धर्मकीर्ति आदि के प्रवचन विद्यमान हैं। कन्ज्युर के सात[2] भाग हैं तथा तन्ज्युर[3] के दो। इन दोनों प्रकार के वर्गों में क्रमश: 1108 तथा 3458 पुस्तकें हैं। इन में सारे ग्रन्थ संस्कृत से ही नहीं बल्कि कुछ पुस्तकें पाली, अपभ्रंश तथा चीनी भाषा से भी अनुदित हैं। कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं जो अनुवाद नहीं हैं। किन्नौर में कानम व लिप्पा में 'कन्जूर' तथा 'तन्जूर' के पुस्तकालय हैं। इन पुस्तकों का लामा-समाज में बहुत मूल्य है। कन्जूर में 103 मौलिक पोथियां हैं और प्रत्येक पुस्तक में लगभग 10000 श्लोक हैं। इन्हें 'बुद्ध-वचन-अनुवाद' भी कहा जाता है। तन्जूर[4] में 235 मौलिक पुस्तकें हैं तथा इन के अतिरिक्त सहस्रों भारतीय ग्रन्थों को तिब्बती अनुवाद में सुरक्षित रखा गया है। इस संग्रह को 'शास्त्र-अनुवाद' भी कहा जाता है।

महायान–धर्म का उद्देश्य निर्वाण अथवा परिनिर्वाण था। प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कनिष्क की सभा में इस धर्म पर विचार-विमर्श हुआ। प्राणी मात्र को मोक्ष के लिए शिक्षा देना इस धर्म-शाखा का उद्देश्य था।

लामा—धर्म की शाखाएं :

किन्नौर-क्षेत्र में लामाओं के तीन मुख्य वर्ग हैं :

1. ग्येलुक्पा अथवा ग्येलुपा।
2. डुक्पा।

तथा 3. निङ्मा अथवा निङ्मापा।

ग्येलुक्पा लामाओं का स्थान सर्वोच्च माना जाता है क्योंकि टाशी लुम्बो तथा ल्हासा में इसी शाखा के लामाओं का अधिकार है। वे पीले परिधान में रहते हैं और उन की टोपियां भी उसी रंग की होती हैं।

---

1. इसका ठीक उच्चारण का ग्युर (bkah-gyur) है। 'का' का अर्थ—आज्ञा, तथा 'ग्युर' का अर्थ 'होना' होता है। इसका अर्थ 'बुद्ध का आदेश' हुआ।

2. ठीक उच्चारण तां 'ग्युर'। 'त्सां'—
The word 'bstan' 'hgyur' literally means 'that which is or has become the doctrine (of Buddha). These collections are often briefly called Bkah-bstan, Sasna-Sutra and the words Gsun-rab pravacana and bstan-bcos, Sastra are also used to imply them together. Ibid, Page XXVIII.

3. 1. Vinaya (Hdul. ba), 2. Pranjna Parmita (Ses. rab. kyi.pha.rol. tu. phyin. pa), 3. Budhavatamsaka (Sans. rgyas. phal. po. che), 4. Patna kuta (Dkon-mchog brtsegs-pa), 5. Sutra (Mdo), 6. Nirvana (Mya. nan. las. hdas. pa) and 7. Tantra (rgyud).

4. Tantra (Rgyud) & Sutra (Mdo).
Ibid, page XXVIII.

डुक्पा लाल टोपियां पहनते हैं तथा निङ्मा भी वैसे ही कपड़े पहनते हैं अथवा नंगे सिर रहते हैं। इन दोनों शाखाओं के लामा गृहस्थी भी हो सकते हैं परन्तु ग्येलुक्पा शाखा में विवाह का विधान नहीं है।

साक्य-धर्मानुयायी लामा लाल रंग के कपड़े पहनते हैं। किन्नर-क्षेत्र में इस वर्ग के भी कुछ लामा मिल जाते हैं। तिब्बत में मठाधिकारी को लामा तथा उस से छोटे भिक्षुओं को ग्येलुङ् कहा जाता है, किन्नौर में ग्येलुक्पा धर्म मानने वाले सभी लामाओं को 'ग्येलुङ्' कहा जाता है।[1]

कनिंघम के अनुसार ग्येलुक्पा लामाओं के निम्नलिखित छः स्तर हैं :—

1. घेशे अथवा गेशे, 2. चोगजिरक्पा, 3. कछेन, 4. ग्येलुङ्, 5. गीचुल तथा 6. चुन्बा।

इन में चुन्बा सब से पहला स्तर है तथा गेशे सब से उच्च[2]। परन्तु किन्नर-क्षेत्र में जिन लामा को सर्वाधिक शिक्षित माना जाता है वे ग्याबुङ् गांव के 'लारम्पा' हैं। कानम तथा रिब्बा के मठों के प्रधान लामा 'कछेन' हैं।

धर्म-शाखाओं में से कादम्पा[3] में सर्व प्रथम संशोधन हुआ। बाद में 'सोन का-पा' के समय में यह धर्म तिब्बत का प्रधान-धर्म बन गया। आतिसा का प्रधान तिब्बती शिष्य 'दोमतोन' था। यह 'शिष्य' का दम्पा का मुखिया बना और इसी ने सन् 1058 ई० में ल्हासा के उत्तर-पूर्व में 'रादंग' मठ का निर्माण करवाया। कादम्पा धर्म-शाखा के उन्नयन के पश्चात् करग्युत्पा व साक्यपा धर्म में भी सुधार होने आरम्भ हुए। ये धर्म भी आतिसा की शिक्षाओं व निर्देशों पर चलते थे और उसी के शिष्य इन का संचालन करते थे।

वह धर्म-शाखा जिसके कार्यकर्त्ता व लामा सुधार नहीं करना चाहते थे, 'निङ्मापा'[4] कहलाई। इस शाखा में विश्वास रखने वाले लामा प्राचीन काल से चले आ रहे धार्मिक नियमों में विश्वास रखते थे और उन्हें तोड़ने की आवश्यकता नहीं समझते थे। इनका धर्म गुह्य था और ये अपनी उपलब्धियों से साधारण लोगों को परिचित कराना आवश्यक नहीं मानते। जिस प्रकार महायान-धर्म के प्रचार के लिए नागार्जुन ने यह घोषणा की कि यह धर्म साक्य-मुनि द्वारा प्रचारित है, उसी प्रकार 'निङ्मा' लामा भी कन्दराओं में प्राचीन ग्रन्थों व लामाओं की खोज करने लगे और उनके शिष्यों ने इन स्थानों में साधना आरम्भ की। उन लोगों का कथन था कि इन गुप्त स्थानों पर पद्म सम्भव द्वारा रचित ग्रन्थ हैं तथा इस धर्म में विश्वास रखने वाले कुछ महात्मा भी कन्दराओं में छुपे बैठे हैं। इस शाखा के अन्तर्गत तान्त्रिक धर्म भी आता है। ये

---

1. Notes on Moorcroft's Travels in Ladakh by J. D. Cunnineham in Journal of Asiatic Socigty of Bengal, Part I & II (New Series) Vol. XIII, Nos. 145 to 150, Page 185.
2. Ibid, Pp. 188—190.
3. आदेश मानने वाले।
4. निङ्मापा का अर्थ ही 'पुराने वाला' अथवा 'प्राचीन' होता है।

तान्त्रिक शैव-धर्म के तान्त्रिकों की भांति ही होते हैं और भूत-प्रेतों से धर्म की रक्षा करते हैं।

ग्येलुक्पा धर्म पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रचलित हुआ। इस धर्म का प्रवर्तक 'त्सोंग का पा' अथवा 'लो-जन टक पा' माना जाता है। यह मंजुश्री का अवतार कहा जाता है और इस धर्म के अनुयायियों द्वारा पद्म सम्भव तथा आतिसा से भी अधिक सम्मानित ठहराया जाता है। इसकी मूर्तियां अधिकांश मन्दिरों में सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करती हैं और 'दलाई लामा' तथा पंचेन लामा' की मूर्तियों के मध्य रखी जाती हैं। इसने अपना सारा जीवन धर्म-प्रचार में लगा दिया और प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों को बौद्ध-मठों में रखवाया। इसे 'ग्येल्वा[1] अर्थात् 'विजयी' कहा जाता है। इस के अनुयायी 'दुल्वा लामा' कहे जाते हैं। इसी ने इस धर्म के लामाओं के लिए पीले रंग के परिधान का निर्देश किया।

इस प्रकार इस ने अपने वर्ग के 'पण्डितों' को पीले रंग की टोपी का उनके कपड़ों की भांति प्रचलन किया। अब प्राचीन धर्म में विश्वास रखने वाले लामा पहले की भांति लाल वस्त्र पहनते हैं[2] तथा बोन-धर्म में विश्वास रखने वाले लामा काले वस्त्र पहना करते हैं।

इस शाखा के लोग वज्रधर को 'आदि बुद्ध' मानते हैं और मैत्रेय (बाद का बुद्ध) तथा अन्य भारतीय महात्माओं, यथा, आसंगा और आतिसा के और तिब्बती मनीषियों, यथा, ब्रोम-तोन तो सोन-का पा' आदि के नियमों पर विश्वास करते हैं। वज्र भैरव[3] इस धर्म का नियन्त्रक बुद्ध माना जाता है।

ग्येलुंग धर्म के लामाओं के सादा लिबास तथा आचार-विचार की शुद्धता ने इस धर्म को शीघ्र ही लोक-प्रिय बना दिया। इस धर्म के अनुयायी अवतारवाद में सर्वाधिक विश्वास रखते हैं तथा गार्हस्थ्य-धर्म से दूर रहते हैं, इस में विवाह का विधान नहीं है।

'करग्युत्पा' शाखा का प्रारम्भ मरपा लामा द्वारा किया गया। ग्येलुक्पा के पश्चात् यह दूसरा बड़ा धर्म माना जाता है। मरपा भारत में आए और आतिसा तथा उनके गुरु पा' मथिन तथा 'नारो' से बौद्ध-धर्म की दीक्षा ली। इन के ही अनुयायी मिला-रा पा[4] ने भी इस धर्म की पुष्टि के लिए कार्य किया परन्तु वे साधु वेष में (संसार से

---

1. L. A. Waddell—Lamaism, Pp. 59-60.
2. He gave the hat named pan-Ssa-sue-rin, or the "Pandits" long tailed Cap ; and as it was a yellow colour like their dress, and the old Lamaist body adhered to their red hat the new sect came to be popularly called the Sa-ser or "yellow-Cap" in contradiction to the Sa-mar or "Red Cap" and their more aboriginal "Bon pa" Co-religionist the 'Sa-nak' or black caps.
3. Dorji-Jig-Je. L. A. Waddell—Ibid, Page 61.
4. Tibet's Great Yogi Mlarepa—by W. Y. Evans-Wentz.

विरक्त) रहे अत: इस धर्म का प्रवर्तक कादम्पा लामा 'वाग-पो ला-रजे' माना जाता है, इसे 'जे गम्पो वा' भी कहा जाता है[1]। इस धर्म के अनुयायी सन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं तथा कन्दराओं व एकान्त स्थानों में निवास करते हैं।

इनके अतिरिक्त करमा पा, डुग्पा, साक्यपा, निङ्मापा तथा जेद्पा धर्मों की स्थापनाएं भी विभिन्न लामाओं द्वारा हुई जिन में से कुछ किन्नौर में भी प्रचलित हैं। किन्नौर में बौद्ध-धर्म फैलाने वाला धर्म-गुरू रत्न भद्र (रिङ् चेन जम्बो अथवा रिङ् चेन जम्पो—ग्याहरवीं शताब्दी) माना जाता है। इसके बनाए हुए अनेक मन्दिर रिब्बा कानम, रारङ्, पूह तथा नाको आदि गाँवों में मिल जाते हैं। रिब्बा गाँव में इसे लोगों ने पकड़ कर मारना चाहा परन्तु यह अपनी सूझ बूझ से वहाँ से भाग गया। इस सम्बन्ध में एक गीत भी प्रचलित है। कुनो-चारङ् गाँव में भी इसके समय का एक प्राचीन बौद्ध-मन्दिर है।

लामाओं की पूजा-सामग्री :

1. दरजे–वज्र, इसे लामा पूजा के समय दाएं हाथ में पकड़े रहते हैं। साधना के समय यह हाथ में या अंगुली में रखा जाता है।

2. डिलू—घण्टी, लामा पूजा पाठ के समय इसे निरन्तर बजाते रहते हैं।

3. डमरू—डमरू, इस के साथ एक लम्बी रस्सी लगी रहती है जो डमरू के हिलाने से दोनों ओर बजती रहती है।

4. काङ्लिङ्—जाँघ की हड्डी का तुरी के आकार का यन्त्र होता है। इस हड्डी को साधारणतया 'चोद्पा' 'डुक्पा' व 'निङ्पमा, धर्म-शाखाओं के लामा बजाते हैं। यह तन्त्र-विद्या से सम्बन्धित मानी जाती है इस के बजाने से, विश्वास किया जाता है, कि भूत-प्रेत इकट्ठे हो जाते हैं और 'फोआ'[2] कहने से उनका मोक्ष हो जाता है। इसे रात के समय बजाया जाता है। यह हड्डी यदि युवती की टाँग की हो तो अधिक सुरीली बताई जाती है। प्राचीन समय में जब कभी किसी स्त्री की मृत्यु होती थी तो इस प्रकार की हड्डियों को प्राप्त किया जाता था। जब भूत-प्रेतों को बुलाया जाता है तो चक्र-सम्भर देवता का आहवान भी किया जाता है ताकि वह रक्षक के रूप में रहे। हाङ्गो गाँव में इस प्रकार के तान्त्रिक लामा हैं।

5. दुङ्ग्युर—धर्म-चक्र।

---

1. The name Kar-gyu-pa(bkah-brgyud-pa) means a "follower of the successive orders. Expressive of the fact that the sect believes that rulings of its later sages are inspired. Noro's teacher, the monk Tilo or Telo (about 950 A. D.) (Cf. Tara; 226 P. and No. 171) is held to have been directly inspired by the Metaphysical Buddha Vajra-Dhara.

—Ibid. Page 64.

2. 'मोक्ष' के लिए कहा जाने वाला मन्त्र।

'बन' का त्यौहार कई गांवों में बीशु के दिन हर तीसरे वर्ष मनाया जाता है। इसमें देवता द्वारा रक्षार्थ सारे गांव की परिक्रमा की जाती है तथा लोग मन्दिर में सुरक्षित प्राचीन समय के हथियारों के साथ नाचते हैं।
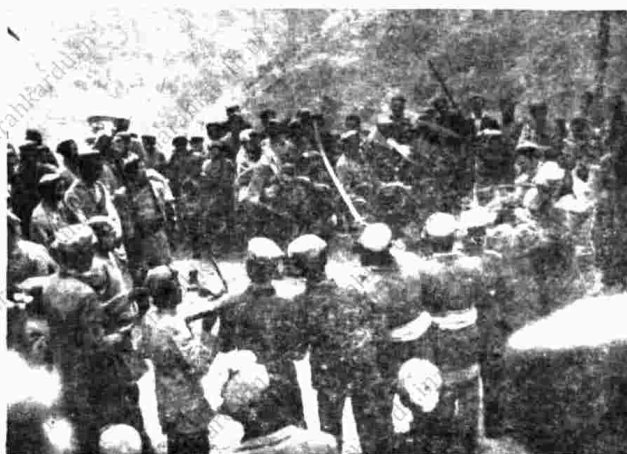
बौद्ध मन्दिर का एक भित्ति-चित्र जिसमें महात्मा बुद्ध विश्राम मुद्रा में दिखाए गए हैं।

ये मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं :—

1. बड़ा धर्म-चक्र जो मन्दिर में रखा रहा है। इस में मन्त्र लिख कर डाल दिए गए होते हैं और इसके घुमाने से उनका लाभ मिलता है। यह ताम्बे का बना होता है और एक पेड़ी की भांति होता है। इस में एक करोड़ से भी अधिक मन्त्र आ जाते हैं। ये मन्त्र 'ॐ माणे पद्मे हुं' होते हैं।

2. मन्दिर में रखे गए छोटे दुङ्ग्युर जिन्हें 'माणे कोरलम' कहा जाता है, घुमाने के काम आते हैं। ये एक मन्दिर में कई होते हैं। ये बहुधा मन्दिर के बाहर रामदे में इस प्रकार सजाए गए होते हैं कि परिक्रमा करने वाला व्यक्ति हाथ से इन्हें बारी बारी से इच्छानुसार घुमाता जाए।

3. हाथ में ले कर घुमाने का धर्म-चक्र। इसे 'थुगजी छिन्बो' कहा जाता है। इसका दूसरा नाम 'लाकौर माणे' है। इसे चलते समय हाथ में ले कर भक्तजन घुमाते रहते हैं।

6. तिङ्ज़र—पूजा की प्यालियां। ये पीतल की बनी होती हैं। किसी भी मन्दिर में ये सात से कम नहीं होतीं। इन को 'दुनज़र' भी कहते हैं।

7. दुङ्—शंख।

8. तीर—दा, इसे पूजा के समय सत्तू के आटे की मूर्ति 'तोरमा' में लगाना पड़ता है।

9. मारमे, छोन्पे—दीपक। पूजा के समय अनेक दीपक जलाए जाते हैं।

10 कुथङ्—चित्र, बुद्धों के भित्ति तथा वस्त्र-चित्र बनाने की यहाँ विशेष रुचि है, इन्हें बौद्ध-मन्दिरों में रखा जाता है।

11. छोस—पेचा-पोथी, छोस-धर्म। धर्म-पोथियां प्रत्येक लामा के पास होती हैं और वह इन्हें दिन तथा रात्रि के अधिकांश समय में पढ़ता है।

12. रल्डी—तलवार।

क्योंकि भूत-प्रेतों का आह्वान किया जाता है अत: लामा लोग लोहे का हथियार अपने पास रखते हैं।

पल्दन लामो बौद्ध-धर्म में सब से बड़ी देवी मानी जाती है। ये 18 देवियों में सब से बड़ी देवी है। पूह के मन्दिर में इन सभी देवियों के भित्ति-चित्र हैं।

गाँव की सीमा के साथ उपरि-किन्नौर के प्राय: प्रत्येक गाँव में एक दरवाज़ा (ड्योढ़ी) सड़क के बीच बनाया गया होता है। इसके छत पर नीचे की ओर को भित्ति-चित्र बने होते हैं। इन चित्रों में मुख्य रूप से भगवान-बुद्ध तथा अन्य धर्म-गुरुओं के चित्र रहते हैं। इस दरवाजे को 'कंकणी' कहा जाता है। गाँव के बाहर से आने वाले व्यक्ति को कंकणी के नीचे से गुज़रना होता है ताकि उसके साथ भूत-प्रेत गाँव में न आ सकें।

जब लामा या किसी अन्य प्रसिद्ध पुरुष की मृत्यु होती है तो मृत्यु से पूर्व उस की आज्ञा के अनुसार उसके शरीर को जलाया अथवा दफनाया जाता है। अब दफनाने

की प्रथा नहीं के बराबर रह गई है परन्तु जलाने के पश्चात् बची हड्डियों व राख को कुदङ्[1] में दबा कर रखा जाता है। कुदुङ् एक प्रकार का 'छोस्तेन' होता है पर इस में विधि-पूर्वक हड्डियों आदि को रखने की ही व्यवस्था रहती है जब कि छोस्तेन अथवा छोक्तेन[2] में उन पुरानी धर्म-पोथियों को दबाया जाता है जो पढ़ने के योग्य न रही हों। 'छोक्तेन' कई स्थानों पर लोगों की श्रद्धा तथा 'मोक्ष' की भावना के आधार पर भी बनाए जाते हैं। इन में लामा मन्त्र लिख कर तथा मूर्तियां बना कर लगाते हैं। इन्हें 'धर्म-स्तूप' कहा जाता है। धर्म-स्तूप तीन प्रकार के होते हैं—

1. **गल्दन छोए कोर छोक्तेन**[3] :

इस स्तूप में पोथियां ही रखी जाती हैं। इस प्रकार के स्तूप घरों के अन्दर भी बनाए जाते हैं। गाँवों में ही सामूहिक रूप से इस प्रकार के धर्म-चक्रों को बनाया जाता है।

2. **नमग्यल छोक्तेन**[4] :

यह सर्व—विजयी स्तूप होता है। इस के द्वारा भूत-प्रेत भाग जाते हैं। यह तीन मंजिल का होता है। कानम गाँव में इस प्रकार का स्तूप है। इस प्रकार के छोक्तेन के मन्त्र अलग होते हैं।

3. **रिकसुम गोम्बो छोक्तेन**[5] :

इस प्रकार के स्तूप को चित्र-रूप में अथवा मिट्टी आदि से बनवा कर भूत-प्रेतों को भगाने के लिए दरवाजे पर लगाया जाता है। इस में निम्न-लिखित तीन मूर्तियां रहती हैं :—

1. आर्य मंजुश्री—बुद्धि का देवता, पीला रंग।
2. आर्य अवलोकितेश्वर—महाकारुणिक देवता, सफेद रंग।
3. वज्रपाणि—वीरता का देवता, नीला रंग।

किन्नौर के लामा-धर्म का प्रभाव लोक-देवताओं पर भी पड़ा है। अनेक देवता, जिन का वर्णन लोक-देवताओं के अध्याय में किया गया है, बौद्ध-संस्कृति से प्रभावित

---

1. कु—मृत शरीर, दुङ्-हड्डी। 8वीं, 18वीं तथा 28वीं तिथि को मरा हुआ व्यक्ति उस दिन नहीं जलाया जाता। जो व्यक्ति 'लोहा' (चख) राशि में उत्पन्न हुए हों उन्हें पहले दबाया जाता है दो-तीन कुछ दिनों बाद उखाड़ कर जलाया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आग लोहे को नहीं जला सकती इसलिये इस राशि वाले व्यक्ति को उसी दम जला देने से अनिष्ट माना जाता है।
2. छोस्तेन अथवा छोक्तेन—छोए-धर्म, तेन-बनाए रखना। अर्थात् 'धर्म को बनाए रखना'।
3. गलदन-गौरवपूर्ण, छोए-धर्म, कोर-चक्र।
—गौरवपूर्ण धर्म-चक्र।
4. नमग्यल—नम-सर्व, ग्यल-दमन, अर्थात् सर्वदमन-स्तूप।
5. तीन प्रकार के स्वामी।

हैं। बौद्ध-मन्दिरों के देवता रथ वाले नहीं होते, इन की मूर्तियां दीवारों पर बना दी जाती हैं। जिस स्थान पर लामाओं की हड्डियां विधि-पूर्वक दबाई जाती हैं उसे 'पुरखङ्' कहते हैं :—

किन्नौर के प्रसिद्ध लामा :

भारत-चीन संघर्ष से पूर्व इस क्षेत्र के अनेक लामा तिब्बत में रह कर वहां के मठों में ज्ञानार्जन करते थे परन्तु सन् 1961 में वे भारत वापिस आ गए और अपने देश में विभिन्न स्थानों पर रहते हैं।

इस क्षेत्र के सुङ्नम गांव के एक प्रसिद्ध लामा हैं जिन्हें लोग 'नेगी लामा' के नाम से जानते हैं, वे तिब्बती भाषा तथा दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान हैं। इन्होंने संस्कृत का भी पर्याप्त अध्ययन किया है और अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आज कल ये राजगीर में रहते तथा शिष्यों को पढ़ाते हैं। इन का तिब्बती नाम तनजिन ग्यलसन है।

एक अन्य लामा ग्याबुङ् में हैं। ये 'लारम्बा' हैं। लारम्बा[1] बौद्ध-धर्म की पढ़ाई के अनुसार सब से बड़ी उपाधि मानी जाती है। यह ल्हासा के मठ में दी जाती है।

कानम गांव का बौद्ध-मठ बहुत पुराना माना जाता है। यहां 'कचेन'[2] लामा रहते हैं। 'काचेन'/कछेन उपाधि करने के लिए निम्न लिखित ग्रन्थों को पढ़ना पड़ता है :—

1.	द्दीरा	3 वर्ष का समय
2.	नमडेल	7 वर्ष का समय
3.	फरचिन	3 वर्ष का समय
4.	उमा	4 वर्ष का समय
5.	ज्रोद	5 वर्ष का समय
6.	दुलुश्रा	3 वर्ष का समय
7.	केजो	समाधि अवस्था जो शेष सारी आयु चलती है।

---

1. यह उपाधि तिब्बत के मठों में पढ़ाई करने के पश्चात् प्राप्त की जाती थी।
2. 'कचेन'/कछेन बौद्ध-धर्म की 'लारम्पा'/लारम्बा की भांति बहुत बड़ी उपाधि मानी जाती है। लारम्पा की उपाधि 'डेपुङ्' मठ में पढ़ने वाले लामाओं को दी जाती थी तथा 'कचेन' की टशिलुम्बो में विद्या ग्रहण करने वालों को।

   तिब्बत में केवल चार ही बड़े बौद्ध-मठ थे जहां बौद्ध-धर्म की शिक्षा दी जाती थी, ये :—

   1. डेपुङ्—जहां 7700 लामा पढ़ते थे।
   2. सेरा—जहां 5500 लामा पढ़ते थे।
   3. गल्देन—जहां 3300 लामा पढ़ते थे।
   4. टशिलुम्बो—जहां 3700 लामा पढ़ते थे, में स्थित थे।

इस प्रकार 'काचेन' बनने के लिए 25 वर्ष का समय लग जाता है। इन पुस्तकों की टीकाओं को भी याद करना पड़ता है।

इन के अतिरिक्त लिप्पा, रारङ्, जंगी, नेसङ्, श्यालखर, टशिगङ् तथा पूह आदि गाँवों में भी उच्च कोटि के लामा रहते हैं। रिब्बा गाँव के एक लामा भी 'काचेन' है, वे उसी गाँव के मठ में रहते हैं।

तिब्बती भाषा में हिन्दुओं के कुछ प्रसिद्ध देवी/देवताओं के नाम इस प्रकार हैं :—

1. यम राज—सिङ्गे छोएकी ग्यलबो।
2. यमदूत—शिंडे लेनगन।
3. नर्क—ङ्न—बुरा, सोङ्—जाना—ङ्न सोङ।
4. स्वर्ग—लायुल, ला—देवता, युल—निवास।
5. कुबेर, धन का देवता—नोर ला। नोर—धन, ला—देवता।
6. विद्या का देवता—आर्य मंजुश्री—जिम्चुन जमपेयङ।
7. सरस्वती—यिशे लामो।
8. चार दिशाओं के देवता—ग्यल छेनजी।
9. धर्म के देवता—छोएला।
10. गणेश—छोग दग—धन का देवता माना जाता है।
11. शिवजी—अङ्पोला—धर्म पाल माना जाता है।
12. पार्वती—उमा।
13. विष्णु—क्यब जुग।
14. इन्द्र—लाही वाङ्पो ग्याजिन।
15. आर्यतारा—डोलमा, डोल—तारना, मा—माता।
16. धर्मपाल—छोएक्युङ्।
17. वज्रभैरव—दोरजे जिगजेद, (यह Sexo Yogic Practices अर्थात् यौन—योगाभ्यास का देवता है।)

18\. नागदेवता—लूमो—यहाँ नागिन देवियां ही मानी जाती हैं, नागों को देवता नहीं माना जाता।

19\. भूत प्रेत—शिण्डे, सोण्डे।

20\. सावणी, बन-देवियाँ—लामो, लामोचे। (इसी नाम का सावणियों को प्रसिद्ध करने वाला एक मेला भी है)।

21\. धृतराष्ट्र—युल खोरशुङ्—दिशा व धन का देवता।

22\. रावण—लँका डिन्चू, डिन—गला, चू—दस।

23. हयग्रीव—ताड़िन, हय—घोड़ा, ग्रीव—गला।

24. त्रिलोक—खमसुङ्।

25. आत्मा—सेम्स, नमशे।

बौद्ध-धर्म के देवी देवताओं का भी यहां के जनजीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

बौद्ध-धर्म की दो प्रसिद्ध शाखाओं, महायान तथा हीनयान के सम्बन्ध में सरलतम व्याख्या यह दी जा सकती है कि जब हम दूसरों की भलाई की दिशा में सोचते हैं तो महायान के सिद्धान्तों के अनुसार आचरण कर रहे होते हैं और जब केवल अपने सम्बन्ध में सोचते हैं तथा दूसरों के हितों का ध्यान नहीं रखते तो हीनयान के अन्तर्गत चल रहे होते हैं। ग्येलुक्पा शाखा के अनुसार कोई भी व्यक्ति साधना के द्वारा 'बुद्ध' बन सकता है और मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस क्षेत्र में प्रचलित बौद्ध-धर्म की यह विशेषता है कि लामा लोग ख्याति की इच्छा नहीं रखते और अपनी साधना का लाभ साधारण प्राणियों को भी पहुंचाना चाहते हैं, अतः कहा जा सकता है कि इस धर्म का समष्टिगत रूप किन्नर-समाज में क्रियाशील है।

9 लोक जीवन और संस्कृति

जन्म के संस्कार :

मनुष्य जीवन में जन्म, विवाह एवं मृत्यु संस्कार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। संसार की वर्तमान जातियों के रहन सहन में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि आदिम युग में मनुष्य किस प्रकार रहता होगा, यह बता पाना कठिन है। अनुमान द्वारा यह कहा जा सकता है कि आरम्भिक समाज में सन्तानोत्पत्ति पर मनुष्य प्रसन्न तो होता होगा परन्तु आधुनिक युग की भांति यह इन अवसरों पर नृत्य-गायन तथा अन्य अनुष्ठानों में अपेक्षाकृत अधिक सादा रहता होगा।

किन्नर-क्षेत्र में सन्तानोत्पत्ति के समय अथवा इस उपलक्ष्य में बाद में गीतों का प्रचलन नहीं है। समूचे क्षेत्र में यद्यपि सांस्कृतिक विविधता है परन्तु जन्म के गीतों का न होना सारे समाज की परम्परा है। व्यक्त रूप में लड़के अथवा लड़की का जन्म एक जैसा माना जाता है परन्तु फिर भी पुत्रोत्पत्ति पर सारा परिवार प्रसन्न होता ही है। सम्पन्न परिवार देवता की पालकी को पुत्रोत्पत्ति के कुछ समय पश्चात् अपने घर में लाते हैं तथा गांव वालों को खाना खिलाते तथा शराब पिलाते हैं। ऐसे अवसरों पर देवता को, प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए ही घर में लाया जाता है। इसे शू-कुद (शू-देवता, कुद-बुलाना) कहा जाता है। शू-कुद के अवसर पर अनेक बकरों की बलि दी जाती है तथा भोजन आदि पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है।

यहाँ यह प्रचलन है कि प्रसव के समय माता को खुड्ड (पशु बान्धने के कमरे) में रखा जाता है। इस प्रकार प्राय: प्रत्येक व्यक्ति का जन्म खुड्ड में होता है। जन्म के पश्चात् बच्चे को नहलाया जाता है। जिस परिवार में बच्चे का जन्म हुआ हो उसके सदस्य प्रथानुसार दो अथवा एक सप्ताह तक (स्थानीय प्रथानुसार) न तो देवता का वाहन छू सकते हैं और न ही उस पर अपनी परछाई दे सकते हैं। यदि इस सम्बन्ध में कोई व्यक्ति भूल करे तो समझा जाता है कि देवता (लाब) जूठा हो जाता है और उसे शुद्ध करने के लिए बकरे अथवा मेमने की बलि की आवश्यकता रहती है। सूतक के दिनों में देवता का 'को' छूना भी वर्जित माना जाता है। बच्चे का पिता शेष परिवार वालों की अपेक्षा अधिक दिनों तक 'अशुद्ध' माना जाता है। निश्चित अवधि के पश्चात् घर की शुद्धि की जाती है। किन्नौर के उपरि-भागों में लामा, परिवार की शुद्धि के लिए, यथा विधि मन्त्र पढ़ता है परन्तु निचले भागों में लिपाई तथा पानी आदि के द्वारा ही पवित्रता मान ली जाती है।

उपरि-किन्नौर के प्राय: सभी गांवों में विभिन्न त्यौहारों के अवसरों पर,

पुत्रोत्पत्ति वाले परिवार की ओर से देवता को बकरा भेंट करने की प्रथा है। रोपा गांव में ऊख्याङ् के समय पुत्रोत्पत्ति वाले परिवार सम्मिलित रूप से एक बकरा ग्राम देवी की भेंट चढ़ाते हैं, जिस से मांस की छड़ें बनाकर ग्राम-वासी पुत्रों के पिताओं को बारी बारी से पीटते हैं। कूनो-चारङ् में पुत्रोत्पत्ति वाले परिवारों को ग्राम-देवता को, आवश्यक रूप से, एक त्यौहार के समय अपने घर ले जाना पड़ता है। पुत्रोत्पत्ति पर देवता को कुछ रुपये भेंट करने का चलन प्रायः सभी गाँवों में है परन्तु इस में अपनी श्रद्धानुसार कार्य किया जाता है, देवता किसी व्यक्ति से आग्रह-पूर्वक भेंट नहीं मांगता।

पुत्र तथा पुत्री के जन्म के सम्बन्ध में एक अन्तर यह भी है कि राज-ग्रामङ् क्षेत्र के गाँवों में यदि लड़की उत्पन्न हो तो माता तीसरे दिन ही खुड्ड से दूसरे कमरे में चली जाती है परन्तु यदि लड़का हो तो एक और दिन ठहर कर अर्थात् चौथे दिन दूसरे कमरे में लाई जाती है। इस देर का कारण विशेष नहीं होता केवल प्रथा ही इस के मूल में बैठी है, ऐसा समझा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां जन्म के संस्कार बहुत सरल तथा स्वाभाविक हैं। नमगिया गाँव में बच्चे की उत्पत्ति पर माता-पिता द्वारा गाँव वालों को भोजन खिलाना पड़ता है। सन्तान चाहे लड़की हो अथवा लड़का, दोनों ही दशाएं समान मानी जाती हैं। इस प्रकार दिए गए भोज को 'ङेवङ्' (बच्चे का भोज) कहा जाता है। गाँव की लड़कियां पुत्री के जन्म पर उसके पिता को पीटती हैं और वह भागने का यत्न करता है।

रोपा गाँव तथा उपरि-किन्नौर के अन्य क्षेत्रों में सन्तानोत्पत्ति के दूसरे या तीसरे दिन शुद्धि के लिए लामा को बुलाया जाता है। वह 'सङ्' (शुद्धि) के मन्त्र पढ़ता है। शिशु की जन्म-तिथि तथा ग्रहों को देख कर लामा उसके सम्बन्ध में भविष्य-वाणी करते हैं।

लियो गाँव में लड़का तथा लड़की का जन्म एक जैसा माना जाता है। जिस दिन किसी के घर में बच्चा उत्पन्न हो, उसके दूसरे दिन गाँव के प्रत्येक घर से स्त्रियां अनाज (न्यवङ्) ले कर उस घर में जाती हैं। उस घर में गाना आदि गाने की प्रथा नहीं है। लामा उस दिन प्रातः काल 'साङ्' बोलता है जिस के अनुसार मन्त्र पढ़ कर धूप आदि दिया जाता है तथा घर की शुद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है।

बीस दिन अथवा एक मास पश्चात् सन्तानोत्पत्ति वाला परिवार सारे गाँव वालों को खाना तथा छङ् (बैङ्री) देता है। इस अवसर पर मेला भी होता है और गाँव के लोग बच्चे को पैसे देते हैं। यह एक प्रकार का आदान-प्रदान ही होता है क्योंकि ऐसा वे प्रायः प्रचलित प्रथा के अनुसार ही करते हैं, श्रद्धानुसार नहीं।

विवाह प्रथायें :

"किसी भी जाति की सामाजिक एवम् सांस्कृतिक व्यवस्था को भली प्रकार समझने के लिये उस जाति की विवाह-प्रथा का अध्ययन आवश्यक होता है। पितृ-सत्तात्मक परिवारों में विवाह की संस्था द्वारा पिता से पति की ओर अधिकार स्वतः परिवर्तित होते चले जाते हैं। उपहारों तथा वधु के मूल्य के रूप में आदान-प्रदान द्वारा धन का

पुनर्वितरण होता रहता है जिससे विभिन्न परिवारों की, अथवा यूं कहें, समाज की विभिन्न इकाइयों की आर्थिक स्थिति बदलती रहती है। दक्षिणी अफ्रीका की एक जाति में प्रचलित यह कहावत—कि 'व्यक्ति अपने ससुर का बैंक है,' सार्वभौम सत्य पर आधारित प्रतीत होती है। हमारे समाज में भी तो जामाता को 'दशम ग्रह' कहा जाता है।

संसार की विभिन्न जातियों में भिन्न प्रकार की विवाह-प्रथायें प्रचलित हैं परन्तु सबसे यह बात स्पष्ट है कि विवाह ही सामाजिक जीवन की मूलभूत इकाई है। किस समाज में किस प्रकार की विवाह-पद्धति प्रचलित है, उसमें कौन सी नई बातें हैं जो उस समाज को अन्य समाजों से अलग करती हैं, इत्यादि बातें समाज-शास्त्रियों तथा नृतत्त्वशास्त्रियों के लिये महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं परन्तु कौन सी प्रथा बढ़िया है तथा कौन सी घटिया, यह कहने का अधिकार शायद ही किसे हो। क्योंकि समाज अपनी संस्कृति का रक्षक होता है अतः अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये वह जो प्रयत्न करता है उनकी गणना अन्य समाजों से तुलनात्मक ढंग से नहीं की जा सकती। मानव-समाज में जिन प्रथाओं को व्यक्ति के हित में स्वीकृति प्राप्त होती जाती है, उन्हें स्वस्थ दृष्टिकोण से ही देखा-परखा जाना समीचीन है। अपने से भिन्न समाजों की प्रथाओं के अध्ययन में यह दृष्टिकोण नितान्त आवश्यक एवम् वांछित भी है क्योंकि इसके बिना निष्पक्ष अभिमत बना पाना सम्भव नहीं है।

किन्नर-समाज भौगोलिक एवम् सांस्कृतिक दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण इकाई है। क्षेत्र की स्थिति तथा संस्कृतियों के संगम के कारण यहां प्रागैतिहासिक काल की प्रथायें वर्तमान समय में भी प्रचलित मिल जाती हैं। आदिम-समाजों में यौन-सम्बन्धी धारणायें ही विवाह का आकर्षण नहीं होतीं बल्कि श्रम-विभाजन इस प्रकार के सम्बन्ध का मुख्य कारण माना जाता है। सन्तानोत्पत्ति को विवाह का उद्देश्य माना जाता है परन्तु वह भी गौण ही रहता है[1]।

इस क्षेत्र की सामाजिक स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यहाँ श्रम-विभाजन की समस्या परिवार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गाँव से ऊपर पर्वत-शिखर के पास (कण्ठे में) तथा बस्ती से नीचे नदी-नाले के किनारे (न्योल में) भूमि के अलग अलग दो भाग होते हैं जिनकी देख-भाल करना तथा भूमि के बंटवारे को रोकना—ताकि कम से कम सदस्य सम्पत्ति का भार सम्भाले रहें—आदि बातें आवश्यक होती हैं। प्रत्येक परिवार को प्रायः निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं :—

1. शारीरिक श्रम करके जीविकोपार्जन।
2. भेड़ बकरी चराना।
3. खेती-बाड़ी करना।
4. खेतों में सिंचाई करना।

---

1. Adivasis– Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1969, page 107.

5. उत्सवों के अवसरों पर उपस्थिति।
6. बच्चों की देख-भाल।
7. देवता की सेवा तथा उसके आदेशों का पालन।
8. कण्ढे की खेती का प्रबन्ध तथा अनाज आदि गाँव में लाना।
9. विकास कार्यों में योग।
10. किन्नौर से बाहर भेड़-बकरी ले जाना, इत्यादि।

इस सूची को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि मैदानी ही नहीं बल्कि अन्य कम ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों की अपेक्षा यहां पारिवारिक उत्तदायित्व अधिक हैं। परिवार में जितने अधिक सदस्य होंगे, उतने ही अधिक सुख होंगे। यह देखा गया है कि इस सारे क्षेत्र में बहुपति प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा के प्रचलन के अनेक कारण हो सकते हैं; यथा—

1. खशों की प्राचीन विवाह-पद्धति का प्रभाव।
2. सम्पत्ति की बाँट का भय।
3. स्त्रियों की संख्या कम होना।
4. अन्य संस्कृतियों का प्रभाव।
5. निर्धनता [1]।
6. बड़े भाई के प्रति आदर-भाव तथा पुरुषों का आधिक्य[2]।
7. सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार तथा छोटी बालिकाओं की हत्या करने की प्रथा[3]।
8. परिवार की एकता की भावना तथा श्रम-विभाजन की समस्या[4]।
9. पुरुषों का ईर्ष्यालू न होना[5]।

डॉ० इरावती कारवे ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'किनशिप ऑरगेनाइजेशन इन इण्डिया' में अनेक उद्धरण दे कर यह सिद्ध किया है कि बहुपति प्रथा वैदिक काल में भी प्रचलित रही है[6]। उनके अनुसार छोटे भाइयों को बड़े भाई की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध-

---

1. History of Sexual Customs—Richard Lewinsohn Translated by Alexander Myce, page 45.
2. The Origin and Development of the Moral Ideas—Edward Westermarck—Vol, II, p. 387.
3. Adivasis—Publication Division, Ministry of Informotion and Broadcasting, page 110.
4. The People of Tibet–Sir Charles Bell, Pp. 192-194.
5. Social Economy of Polyandrous People – R. N. Saxena, page 25.
6. Dr. Iravati Karvey–Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Pp. 223-229.

अधिकार प्राप्त थे और यदि छोटे भाई विवाह करते थे तो बड़े भाई के विरुद्ध पाप करते थे।

लेकिन डॉ० शिवराज शास्त्री अपने शोध-प्रबन्ध 'ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध' में इस मत से सहमत नहीं हैं[1]। उनका कथन है कि देवर शब्द 'द्विवर' के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है बल्कि प्राचीन काल में छोटे बड़े का भेद किये बिना पति के प्रत्येक भाई को देवर कहा जाता था[2]। विलियम ग्राहम सुमनेर भी बहुपति विवाह-प्रथा का प्रचलन जीवन के लिये संघर्ष तथा सम्पत्ति को न बांटने की भावना के कारण मानते हैं[3]। वे लिखते हैं कि मालाबार तट के नायरों में बहुपति प्रथा निर्धनता के कारण नहीं है बल्कि इसलिए है कि वे सम्पत्ति को बांटना पसन्द नहीं करते हैं। पंजाब के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित बहुपति-प्रथा के सम्बन्ध में ब्रिफाल्ट[4] का कथन है कि यह प्रथा यहाँ हिन्दुकुश के निवासियों के कारण आई है क्योंकि आक्रमणकारी उसी मार्ग से भारत में प्रवेश करते रहे हैं। कुछ विद्वान बहुपति प्रथा को इन पहाड़ी क्षेत्रों में पहले से बसी आदिम जातियों, यथा, डोम तथा अन्य हरिजनों के कारण मानते हैं। उनका कहना है कि जब आर्य जाति इन निवासियों के सम्पर्क में आई होगी तभी उसने यह प्रथा अपनाई होगी[5]। प्राचीन काल में चीन तथा तुर्किस्तान में भी बहुपति प्रथा प्रचलित रही है[6]। डॉ० इरावती कारवे के अनुसार बहु-पति विवाह प्रथा खशों में सम्भवत: पहले से विद्यमान थी[7]।

किन्नर-क्षेत्र में प्रचलित बहुपति प्रथा यहां के रीति-रिवाजों की भांति बहुत प्राचीन है। यह तो निश्चित है कि इस क्षेत्र में खशों का ऐसा वर्ग अति प्राचीन-काल से निवास कर रहा था जिसे इस पर्वतीय भाग की दुर्गमता, सम्पर्क-सूत्रों के अभाव तथा हिमालय की पवित्रता के कारण 'किन्नर' कहा जाने लगा। यह विचारणीय विषय है कि यह प्रथा इस वर्ग में पर्याप्त समय से प्रचलित रही है। सम्भव है हिमालय में आर्यों के निवास से पूर्व यहां के मूल निवासियों में इस प्रथा का प्रचलन रहा हो। इस क्षेत्र में निवास करने वाली हरिजन जाति की संस्कृति व भाषा का प्रभाव यहां के सवर्णों की संस्कृति पर पड़ा हो और उन्होंने यह प्रथा हरिजनों (जिन्हें 'कोली' शब्द से अभिहित किये जाने के कारण कई विद्वानों ने 'कोल' जाति से सम्बन्धित माना है) से अपनाई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसका सब से सशक्त प्रमाण है कि हरिजनों की बोली आर्य-भाषाओं के समीप है जबकि सवर्ण तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार से सम्बद्ध भाषा प्रयोग में लाते हैं। साथ ही हरिजनों की संख्या इतनी कम है कि उनके द्वारा सवर्ण-संस्कृति

---

1. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध—डॉ० शिवराज शास्त्री।
2. वही, पृष्ठ 395।
3. Folkways—Page 351.
4. Briffault–The Mothers, Vol. I, P. 691.
5. Social Economy of a Polyandrous People—Dr. R. N. Saxena, Pp. 23-24.
6. वही, पृ० 23।
7. Kinship Organisation in India, P. 133.

को प्रभावित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जब आक्रमण-कारी विजित क्षेत्रों से बसते हैं तो वे उस क्षेत्र में बसने वाले लोगों की संस्कृति की अनेक बातों को अपनी संस्कृति में मिला लेते हैं ताकि सांस्कृतिक खाई को कम किया जा सके। इसी प्रकार विजित वर्ग नई संस्कृति की अनेक बातें अपना लेता है अतः बहुत सम्भव है कि किन्नर-क्षेत्रों में आने वाले वर्ग ने यहां के निवासियों के रीति रिवाजों को ग्रहण किया होगा जिसमें बहुपति विवाह प्रथा भी सम्मिलित रही होगी। खशों में बहुपति विवाह प्रथा का प्रचलन रहा है, ऐसे प्रमाण भी अनेक विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं।

पुराणों में वर्णित पाण्डवों की कथा से यह भी प्रतीत होता है कि आर्यों के एक बड़े वर्ग में बहुपति प्रथा प्रचलित रही है। मैदानों में बसने वाले वर्ग की समस्यायें पर्वतवासियों की समस्याओं से भिन्न थीं और उनके पास प्रत्येक प्रकार के साधन अधिक थे अतः उनके यहां प्रचलित प्रथाओं में परिवर्तन अपेक्षाकृत शीघ्रता से हो गए। बहुत सम्भव है कि आदिम मानव ने एकता की भावना के वशीभूत हो कर इस प्रकार की प्रथा को अपनाया हो। पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले लोग दैनिक जीवन की कठिनाइयों के कारण अधिक भावुक तथा सहयोगी वृत्ति के होते हैं अतः इस प्रकार की प्रथा का प्रचलन पारिवारिक सन्तुलन को जन्म देता है, इसी कारण इस प्रथा का वर्तमान समय तक इन क्षेत्रों में प्रचलित रह पाना आश्चर्य की बात नहीं है।

निर्धनता के कारण बहुपति प्रथा के प्रचलन का तर्क सबल भूमिका पर आधारित नहीं है। निर्धन जातियां तथा समाज संसार के अनेक भागों में हैं परन्तु सब में यह प्रथा प्रचलित नहीं हुई। बड़े भाई के प्रति आदर-भाव के कारण यह प्रथा प्रचलित हुई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता परन्तु परिवार के बीच नैतिकता तथा अनैतिकता का ज्ञान होने से पूर्व ही इस प्रथा का आरम्भ हो गया होगा। पारिवारिक एकता की भावना का सबल होना बहुपति प्रथा की रीढ़ की हड्डी का काम देता है।

सम्पत्ति के कारण बंटवारे से बचने के लिए इस प्रकार के रिवाज का प्रचलन आरम्भ में भले ही इस प्रथा के मूल में रहा हो परन्तु वर्तमान समाज में सम्पत्ति का बंटवारा इसका मुख्य आधार नहीं है। किन्नर-क्षेत्र में श्रम-विभाजन की दृष्टि से इस प्रथा का प्रचलन माना जा सकता है। एक परिवार के सदस्यों को जितने अधिक कार्य करने आवश्यक होते हैं, उन्हें पूरा करने के लिए बहुत अधिक सदस्यों की आवश्यकता रहती है, साथ ही पारिवारिक एकता का भी ध्यान रखना पड़ता है अतः सभी भाइयों के अलग अलग विवाह नहीं किये जा सकते क्योंकि बाद में झगड़े उठ खड़े होने की आशंका रहती है।

इस क्षेत्र में बालिकाओं की हत्या के कारण बहुपति प्रथा का प्रचलन नहीं माना जा सकता क्योंकि यहां लड़की तथा लड़के का जन्म एक जैसा ही माना जाता है। पतियों का एक दूसरे के प्रति ईर्ष्यालू होना तथा मातृ-सत्तात्मक परिवार की सी व्यवस्था जिसके अन्तर्गत परिवार में माता का दर्जा महत्वपूर्ण माना जाता है, इसके आवश्यक कारण माने जा सकते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बहुपति प्रथा यहां के मूल निवासियों में प्रचलित

रही है और आधुनिक युग में उसका सम्बन्ध भले ही जीवन की किसी समस्या के साथ जोड़ा जाए, वह एक सामाजिक-व्यवस्था के रूप में सामने आती है। किसी भी क्षेत्र की सामाजिक बनावट को समझने के लिए वहां पर प्रचलित लोक-गीतों, लोक-कथाओं तथा भाषागत मुहावरों व लोकोक्तियों का मुख्य हाथ रहता है। अतः यदि हम किन्नर लोक-गीतों का अध्ययन करें तो पता चलता है कि निकट अतीत में ही ऐसे दृष्टान्त भी मिल जाते हैं जहां इस प्रथा के अन्तर्गत विवाहित पत्नियां भी प्रसन्न नहीं थीं और अपने पतियों को छोड़ कर चली गईं तथा ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जहां अनेक पतियों में से जब एक पति पहली पत्नी को पूछे बिना दूसरी पत्नी ले आया तो पहली पत्नी नाराज़ हो गई और यदाकदा उसके भाग जाने अथवा आत्महत्या के लिए तैयार थी। अनेक दशाओं में एक भाई द्वारा लाई गई अलग पत्नी सम्मिलित परिवार का सदस्य बन जाती है और उससे किसी को आपत्ति नहीं होती परन्तु शिक्षित तथा गतिशील परिवारों में बहुपत्ति प्रथा बन्द हो गई है और सुदूर क्षेत्रों में रह कर नौकरी करने वालों अथवा घर में कम निवास करने वाले व्यक्तियों के लिए यह सुविधाजनक नहीं मानी जाती, अतः इस संस्था का विघटन निश्चित है।

वर्तमान समय में जिन परिवारों में बहुपति विवाह प्रथा का प्रचलन है उनमें भी केवल सहोदर भाइयों की ही सम्मिलित पत्नी हो सकती है। सम्पूर्ण क्षेत्र में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जिसमें किसी बाहर के व्यक्ति को इस प्रथा के अन्तर्गत परिवार का सदस्य मान लिया गया हो।

पुरुषों का बाहुल्य तथा स्त्रियों की संख्या में कमी होना इस क्षेत्र में बहुपति विवाह-प्रथा के मुख्य कारण नहीं हो सकते क्योंकि सन् 1961 की जनगणना के अनुसार प्रति 1000 पुरुषों की संख्या के पीछे 984 स्त्रियां थीं[1]। यह माना जा सकता है कि प्राचीन काल में स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण इस प्रथा का प्रचलन हुआ हो परन्तु इस क्षेत्र में विवाह की जो प्रथायें प्रचलित हैं उनका सम्यक् अध्ययन किये बिना हम इस परम्परा का सामाजिक आधार नहीं समझ सकते। बहुपति विवाह-प्रथा किसी भी प्रकार से हेय अथवा अपमानपूर्ण सामाजिक व्यवस्था नहीं है और न ही उसका वर्णन समाज-विशेष को तिरस्कृत अथवा अवांछनीय स्थिति में डालता है बल्कि इस प्रथा के निष्पक्ष अध्ययन से हमें प्राचीनतम मानव-समाज की आत्मा के दर्शन होते हैं। संस्कृतियों के आदान-प्रदान तथा सभ्यताओं के विकास के साथ मनुष्य ने किस प्रकार समय-समय पर अपनी मान्यताओं को बदला है, आदि बातों का अध्ययन रोचक तथा उपयोगी होता है।

किन्नर-समाज में प्रचलित विवाह-प्रकारों का अध्ययन उस समाज को अधिक अच्छी तरह से समझने के लिए लाभप्रद तथा आवश्यक है। इस क्षेत्र में मुख्यतया निम्नलिखित विवाह-प्रचलित हैं :—

1. **जनेकङ् अथवा जनेटङ्**—बड़ा अथवा सामान्य प्रका का विवाह।

---

1. Facts and Figures about 1961 Census—Edited by Sach Dev Verma, page 44.

2. **न्योटङ् मीरङ्**—दो व्यक्तियों द्वारा बरात के रूप में जाकर सम्पन्न किया गया विवाह।
3. **बमचलशिश**—प्रेम-विवाह।
4. **दारोश डबडब**—बलपूर्वक किया गया विवाह। (इसमें दुल्हन को बलपूर्वक भगा लिया जाता है)।
5. **हारी**—विवाहिता से तलाक हो जाने के पश्चात् पुनर्विवाह को 'हारी' अथवा 'हार' कहते हैं। इसके अन्तर्गत कुमारी अथवा अविवाहिता स्त्री के साथ विवाह सम्पन्न नहीं होता।

इस क्षेत्र में लगभग 10 बोलियां प्रचलित हैं इसलिए विवाह के उपर्युक्त प्रकारों के नाम भी भिन्न-भिन्न बोलियों में अलग अलग हैं। इन नामों तथा विवाह-प्रकारों का पूर्ण विवेचन हम अगले पृष्ठों में प्रस्तुत करेंगे—

जनेकङ्—

सामान्य विवाह का प्रकार है। इस प्रथा के अनुसार वर तथा वधु के माता-पिता आपस में विवाह सम्बन्धी बात चीत करके निर्णय करते हैं। जनेकङ् प्रथा के अनुसार लड़के का बाप अपने पुत्र के लिये वधु तलाश करता है। अनेक बार वह तीन लड़कियां ढूंढता है, तीनों के नाम पर तीन फूल लाता है और देव-मन्दिर में जाकर ग्राम-देवता से उनमें से सब से उपयुक्त लड़की के बारे में पूछता है। इस अवसर पर मध्यस्थ (माजोमी) भी साथ होता है। देवता सामान्यतया एक लड़की के सम्बन्ध में स्वीकृति दे देता है। शेष दो लड़कियों के नामों के सम्बन्ध में लोगों को पता नहीं दिया जाता। लड़की के सम्बन्ध में स्वीकृति मिल जाने पर माजोमी (मध्यस्थ) और लड़के का पिता लड़की के बाप के पास जाते हैं और विवाह-सम्बन्ध पक्का करने की बात चलाते हैं। यदि यत्न करने पर भी लड़की का पिता न माने तो दूसरी जगह लड़की तलाश करनी पड़ती है। यदि स्वीकृति मिल जाए तो एक रुपया लड़की की वरणी के रूप में उसका बाप लड़के के बाप से लेता है। उस अवसर पर लड़के के बाप का शराब (घण्टी) तथा अच्छे भोजन से स्वागत किया जाता है। बाल-विवाह की प्रथा का भी प्रचलन है। बातचीत पक्की हो जाने पर यदि देर तक या एक वर्ष के भीतर विवाह सम्पन्न न हो तो फागुली के मेले (त्यौहार) के अवसर पर लड़के का बाप लड़की के बाप के घर लड़की के नाम पर पोल्टू भेजता है। इस उपहार को 'फागुली बांटा' कहा जाता है और इस प्रकार के रिश्ते वाले कई लोग मार्गशीर्ष मास में बकरा काटने पर भी बकरे की आंतें आदि लड़की के नाम पर उसके माता-पिता के घर पहुंचा देते हैं जिसे 'छारमी बांटा कहते हैं। 'छारमिग' का अर्थ पतझड़ होता है। शादी से पूर्व लड़की को कपड़े अथवा गहने नहीं दिए जाते। शादी का दिन वर-वधु के बाप या तो देवता को पूछ कर अथवा स्वयं ही अपनी सुविधानुसार निर्धारित करते हैं। इस क्षेत्र के ऊपरी भागों में बौद्ध-धर्म का प्रभाव अधिक है अतः लामा द्वारा ही विवाह की तिथियों का निर्धारण होता है।

विवाह के दिन वर पक्ष की ओर से वधु पक्ष के लिए माथे पर लगाया जाने वाला 'फ्यायज' (फ्याय—माथा) नामक गहना भेजा जाता है। शेष आभूषण माता-पिता की ओर से विदाई के समय दिए जाते हैं। वर पक्ष की ओर से अन्य कोई गहना यहां नहीं दिया जाता।

विवाह के सम्बन्ध में लड़की को प्रायः कोई संकेत नहीं दिया जाता और बरात वाले दिन भी उसे किसी कार्य के बहाने अपने सम्बन्धियों के यहां भेज दिया जाता है ताकि वह सायंकाल तक लौटे और दिन में विवाह की तैयारियां पूरी की जा सकें। लड़की द्वारा सारे आयोजन के सम्बन्ध में पूछे जाने पर उसे झूठमूठ बातें बताई जाती हैं, जैसे देवता घर में बुलाया जा रहा है अथवा लोग आकर वैसे ही गप्प शप्प के लिए बैठे हैं, इत्यादि। अनेक बार इस सन्देह के कारण रोचक घटनायें भी हो जाती हैं, जैसे यदि एक घर में तीन अथवा चार विवाह योग्य बहिनें हों तो एक समझती है कि दूसरी का विवाह होने वाला होगा अतः चिन्ता नहीं करती। यह उल्लेखनीय है कि यहां सुन्दरी लड़कियों के विवाह अपनी बड़ी बहिनों के विवाहों से भी पहले हो सकते हैं, परन्तु इस प्रकार की घटनाओं को सामान्य प्रथा नहीं मान सकते क्योंकि ये अपवाद स्वरूप ही होती हैं। जनेकङ् प्रथा में माता-पिता द्वारा सब से बड़े बच्चों के विवाह सब से पहले निर्धारित किए जाते हैं जबकि दारोश डबडब में छोटों के विवाह बड़ों से पहले हो सकते हैं। अनेक बार लड़की को अपने विवाह के सम्बन्ध में अपनी सहेलियों आदि से पूर्व-सूचना मिल जाती है, जिससे यदि उसे वर पसन्द न हो तो वह विवाह के लिए इनकार कर देती है।

ऐसी दशा में जबकि वधु को अपने विवाह-सम्बन्ध का ज्ञान न हो, बरात आने के पश्चात् बड़ी देर बाद गुन्याले (वधु) को उसकी सूचना दी जाती है, जिसे सुन कर वह जोर से रोना प्रारम्भ कर देती है और उसी समय उसकी सहेलियां भी रोने लग जाती हैं।

इसके पश्चात् लड़की को नहलाया जाता है। फिर उसे नए कपड़े, जो पिता के ही दिए होते हैं, पहनाये जाते हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि वर (लारो) के घर से 'फ्यायज़' गहना ही लड़की के घर दिया जाता है, शेष कपड़े व गहने वधु को ससुराल (पराया किम) में दिए जाते हैं। लड़के के ससुराल को 'दूरेस' तथा लड़की के ससुराल को 'परायो' अथवा 'पराया किम' कहा जाता है। नहलाने के बाद लड़की को उसकी मां के पास बिठाया जाता है तथा फिर मध्यस्थ (माजोमी या बिश्टू) लड़की को हाथ पकड़ कर उठाने से पहले उसकी माता के पांवों पर कुछ भेंट रखता है। लड़की का हाथ पकड़ कर, विदाई के समय, माजोमी वधु को दरवाजे से निकालता है और गांव के बाहर इसी प्रकार ले जाता है। सारे सम्बन्धी व गांव वाले गांव के बाहर तक इस अवसर पर उसके साथ जाते हैं।

वधु का पिता वर को सफेद पगड़ी पहनाता है। इसके पश्चात् एक तलवार अथवा कटार म्यान में बन्द करके वर की गाची (कमरबन्द) में लगाता है। इस समय पर शराब पीने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले दोनों 'बाटिच' (प्याला) अथवा 'नङ्च' भी माजोमी तथा वर को दे दिए जाते हैं।

वर की बरात (जान्या) में जितने व्यक्ति जाते हैं उनसे लगभग बीस गुणा वधु की बरात में जाते हैं। एक के लिए बीस बरातियों की प्रथा दोनों पक्षों के सम्बन्धी जानते हैं। अतः वर पक्ष के द्वारा जितने लोग बरात में लाए जाते हैं उन्हीं से अनुमान लगाया जा सकता है कि विवाह किस स्तर का होगा। बरात के आने पर लोग सारी

रात भर वहीं सोते हैं और नृत्य-गायन का कार्यक्रम चला रहता है। नृत्य-गायन (कायङ्) के समय में वर तथा बराती भी घुरी में नाचते हैं तथा प्रथम गाना विवाह के सम्बन्ध में गाया जाता है। इस गाने में बताया जाता है कि किन किन वंशों के लोगों में किस प्रकार विवाह सम्बन्धी बात चीत हुई। गाने की कथा से प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में वर-पक्ष के लोग भी आरम्भ में वधु-पक्ष वालों को यह नहीं बताते थे कि वे विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से आए हैं। इसमें बताया गया है कि वर-पक्ष के लोग यह पूछते हुए आए कि क्या कोई बकरी का बच्चा बिकाऊ है ? लड़की के पिता ने कहा—यदि बकरी का बच्चा चाहिए तो समीप के घर में जाओ। उन्होंने कहा-बकरी का बच्चा तो नहीं, गाय का बच्चा चाहिए। लड़की के पिता ने फिर वही उत्तर दिया। उन्होंने बाद में बताया कि वे उसकी लड़की के साथ अपने लड़के का विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आए हैं। मोमा (बड़ों के लिए आदर-सूचक शब्द) ने यह कह कर इनकार किया कि उसकी लड़की घर के छत पर लगाए गए झंडे (दारछोद) की भांति है, अतः वह उसका विवाह प्रस्तावित लड़के से नहीं कर सकता। बाद में गीत के बोल अधिक मोहक हो जाते हैं और गाया जाता है कि कण्ठे के पक्षी को; वन की स्वतन्त्र चिड़िया को, नहीं पकड़ना चाहिए था परन्तु यदि पकड़ लिया तो अब ठीक ढंग से पकड़े रहना और किसी प्रकार का कष्ट न देना। यदि लड़की को कष्ट दिया जाएगा अथवा खाने के साथ वे वस्तुएं दी जाएंगी जिन्हें यह नहीं खाती तथा पहनने को वे कपड़े दिए जाएंगे जिन्हें यह नहीं पहनती तो इसके भाई-बन्धु उठेंगे (क्रोध करेंगे) और सीढ़ी को जला देंगे।

इस क्षेत्र में वर के लिए पालगी (पालकी) तथा अन्य किसी प्रकार के वाहन का प्रचलन नहीं है। सम्पन्न परिवारों के वर घोड़ों पर जाते हैं और साधारण परिवार का वर पैदल ही जाता है। पूह डिवीजन में वर तथा बराती घोड़ों पर जाते हैं क्योंकि वहां प्रत्येक घर में घोड़े पालने की प्रथा है। मार्ग में जहां किसी पुल अथवा नाले को पार करना होता है वहां बकरे या मेमने की बलि दी जाती है। यही नहीं, बल्कि काटे हुए बकरे को पुल पर लहू की लकीर देते हुए घसीटा जाता है ताकि मार्ग में मिलने वाले भूत-प्रेत बलि को स्वीकार करें और नदी अथवा नाले से पार बरात के साथ न आएं।

जब बरात गांव में आती है तब भी, अनेक गांवों में, उसके साथ आए हुए भूत-प्रेतों को भगाने के उद्देश्य से उसे गाँव के बाहर रोका जाता है और मशालें जला कर गांव वाले बरातियों के पास जाते है तथा बकरे की बलि दी जाती है। मूरङ् गांव में ये मशालों वाले लगभग सारे गांव में घूमते हैं तथा भूतों को दूर रखने के लिए सरसों आदि जलाते तथा 'थू थू' करते हैं। राजग्रामङ् क्षेत्र में देवता बरात का स्वागत वर के घर पर ही करता है।

बरात की विदाई के समय वधु का पिता लम्बू (पीतल का खुले मुंह वाला बड़ा बर्तन) लोटा, थाली, बिस्तर, पलंग, ट्रंक, खाना बनाने के अन्य बर्तन, कुदाली, दरान्ती, लवान, चिमटा तथा अन्य वस्तुएं लड़की को दहेज के रूप में देता है। विवाह में बाजे आदि का प्रबन्ध सम्पन्न परिवारों के लोग ही करते हैं। ऐसा बताया जाता है कि इस क्षेत्र में केवल वजीरों (विष्टुओं) के वंशों के वर ही विवाहावसरों पर पालकी में जाते रहे हैं।

बरात की विदाई के समय गांव की स्त्रियां एक छोटा किन्तु सारगर्भित गीत गाती हैं जिसके अनुसार वर-वधु की मंगल-कामना की जाती है तथा उन्हें राम और सीता की जोड़ी कहा जाता है। इस प्रकार के विवाह के अवसर पर माजोमी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और उसे पूछ कर (जई) सारे कार्य किए जाते हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, जब बरात वर के घर के पास पहुंचती है तो वह गांव के बाहर रुक जाती है। वहां लड़की के गांव से जितनी भी लड़कियां ही उस गांव में ब्याही गई होती हैं, वे बरात को 'सोंठ' (शराब तथा पोल्टू) देती हैं। बरातियों के साथ आए अदृश्य भूत-प्रेतों को गांव से दूर रखने के लिए ग्राम-देवता गांव के बाहर जाता है और प्रत्येक बराती को गांव में भेजता जाता है। अनेक बार पुजारी ही देवता की ओर से जाकर बरातियों से मिलता है तथा बाद में बकरे अथवा मेमने की बलि दी जाती है। यह पूजा केवल शुद्ध किया हुआ पानी छिड़कने पर भी सम्पन्न हो सकती है। लड़की के गांव में बरात पहुंचने पर ऐसा नहीं किया जाता। कई गांवों में बराती ग्रोक्च द्वारा फैलाए गए कपड़े के नीचे से गुजरते हैं। रात को विवाह के सम्बन्ध में लड़की की सहेलियों द्वारा एक गीत गाया जाता है।

अगले दिन वर पक्ष के सब सम्बन्धी वर के घर के छत पर इकट्ठे होते हैं फिर वहां पर वर व वधु को एक स्थान पर बिठाया जाता है। वर के सब भाइयों को एक पंक्ति में बिठाया जाता है। इन सब भाइयों को सफेद पगड़ी बांधी जाती है। यह पगड़ी सेहरे के स्थान पर होती है। इस क्षेत्र में वर सेहरा नहीं बांधता। इस समय वर-वधु के सामने एक थाली में फूल रखे जाते हैं। इस थाली में सब सम्बन्धी पैसे, कपड़े, दोहड़ू, पट्टू तथा अनेक अन्य वस्तुएं वर-वधु को भेंट करते हैं। इन सब वस्तुओं का लिखित रूप में हिसाब रखा जाता है। इस प्रथा को 'बेल्डिङ्' कहा जाता है। 'बेल्डिङ्' परिवार में होने वाले केवल पहले ही विवाह पर होता है। शेष में, अनेक स्थानों पर यह विधान नहीं है। वरों को इस अवसर पर जो एक ही पगड़ी बांधी जाती है, वह मामा द्वारा दी जाती है। इस पगड़ी को बांधने का अर्थ होता है कि विवाह सम्मिलित रूप से हुआ है। इस अवसर पर बरातियों की खूब आवभगत की जाती है और उनके द्वारा इनकार करने पर भी उन्हे घी दिया जाता है। उस दिन बरात वहीं ठहरती है। रात को फिर मेला लगता है।

अगले दिन प्रातः खाना खा कर जब बराती घर जाने के लिए तैयार होते हैं तो वधु उनके साथ बाहर दूर तक रोती हुई जाती है। विदाई के समय भी एक गीत 'कायङ्'[1] लगाते हुए गाया जाता है। थोड़ी दूर जा कर बराती बैठ जाते हैं और माजोमी के पास लड़की के लिए कुछ पैसे तथा वस्तुएं देते हैं। इस प्रथा को 'उदानङ्' कहते हैं।

इसके बाद लड़की अपने ससुराल चली जाती है और बरात माजोमी के घर जाती है जहां वह एक दिन ठहरती है। वहां भी नृत्य गायन (मेला) होता है। इस रात माजोमी का पर्याप्त खर्च हो जाता है। अगले दिन बरात अपने गांव वापिस चली जाती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में मेहमान तीसरे ही दिन वापिस

1. नृत्य-विशेष।

जाते हैं। प्रथा के अनुसार प्रथम दिन आने के लिए, दूसरा दिन ठहरने के लिए तथा तीसरा प्रस्थान के लिए रखा जाता है। ठीक भी है, स्थान की कठिनाइयों व दुर्गम रास्तों को देखते हुए इस प्रथा का प्रचलित होना सहज स्वाभाविक है।

न्योटङ् मीरङ् :

'ज़नेकङ्' में लड़की की बरात में अनेक बार सौ से भी अधिक बराती चले जाते हैं और विवाह का खर्च काफी हो जाता है। जो परिवार इतने बड़े आयोजन को सम्भव नहीं मानते वहां विवाह के एक अन्य प्रकार 'न्योटङ् मीरङ्' (न्योटङ्-दो, मीरङ् आदमियों के साथ) का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार की शादी के लिए भी देवता की आज्ञा लेना प्रायः आवश्यक है। यह आज्ञा विवाह के प्रकार के सम्बन्ध में नहीं होती बल्कि सम्बन्ध स्थापित करने के लिए होती है। लड़की के पिता की सहमति तथा वधु-पक्ष के मामा आदि अन्य सम्बन्धियों की स्वीकृति भी आवश्यक मानी जाती है। अनेक बार इस प्रकार का विवाह करने पर युगल की यह साध भी रहती है कि धन तथा अन्य प्रकार के प्रबन्ध हो जाने पर बड़े विवाह (ज़नेकङ्) का आयोजन किया जाए परन्तु अपवाद-स्वरूप ही है। 'न्योटङ् मीरङ्' के पश्चात् जब कभी 'ज़नेकङ्' का आयोजन हुआ है तो यह परिवार की समृद्धि तथा बदली हुई परिस्थितियों का ही सूचक रहा है। ऐसे आयोजन कभी कभी तो सन्तान हो जाने के पश्चात् भी होते रहे हैं। इस अवसर पर स्त्री को उसके मायके भेज दिया जाता है तथा पुरुष बरात लेकर उसके मायके उसी प्रकार जाता है जैसे वह अविवाहित हो। वधु के माता-पिता इस अवसर पर दहेज भी देते हैं।

'न्योटङ् मीरङ्' में लड़की की 'वरणी' एक रुपया होती है। माजोमी इसमें भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस अवसर पर सभी सम्बन्धियों को नहीं बुलाया जाता तथा वर बरात के साथ ससुराल नहीं जाता। केवल माजोमी तथा एक अन्य व्यक्ति वधु के घर जाते हैं और वहां एक दिन ठहर कर उसे वर के घर लाया जाता है। 'ज़नेकङ्' की एक प्रथा यह भी है कि उसमें वर वधु को आशीर्वाद देने के लिए देवता को घर में बुलाया जाता है। इस प्रथा को 'शू-कुद' (ग्राम देवता को बुलाना) कहा जाता है। 'न्योटङ् मीरङ्' में शु-कुद् आवश्यक नहीं होता और वर-वधु देवता के मन्दिर में जा कर भी देवता का आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं 'न्योटङ् मीरङ्' में भी पगड़ी सब वरों को बांधी जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'न्योटङ् मीरङ्' विवाह का संक्षिप्त तथा साधारण प्रकार है।

'न्योटङ् मीरङ्' प्रकार के विवाह में जहां एक पक्ष अमीर तथा दूसरा निर्धन हो, एक पक्ष में अच्छा विवाह भी हो सकता है। इस दशा में इस अवसर पर एक पक्ष द्वारा विवाह के सारे अनुष्ठान किए जाते हैं परन्तु इसमें भी वर वधु को लाने के लिए ससुराल नहीं जाता। बरात में इस दशा में भी कम लोग जाते हैं क्योंकि दूसरे पक्ष पर खर्च का बोझ अधिक हो जाने का भय रहता है। 'न्योटङ् मीरङ्' प्रकार का विवाह शादी से अधिक एक समझौता होता है जिसमें वर तथा वधु पक्ष अपने कर्त्तव्यों को सरलता पूर्वक निभाते हैं। साधारणतया 'न्योटङ् मीरङ्' के पश्चात् विवाह सम्बन्धी बड़ा आयोजन करने की प्रथा अब समाप्त-प्रायः है और इसे हम विवाह-प्रथा का प्रचलित अंग नहीं मान सकते। विवाह चाहे किसी भी प्रकार का हो, 'डोलङ्चिम' (वर-

द्वारा सास के पांवों पर भेंट रखना) इस प्रथा का आवश्यक अंग है। जब वर विवाह के पश्चात् प्रथम बार अपने ससुराल जाता है तो उसे अपनी सास के पांवों पर नमस्कार करते समय कुछ रुपये रखने पड़ते हैं। पांवों पर इस भेंट को रखे जाने के बाद ही सास जमाता से कुशल-क्षेम पूछती है। सास के पांवों पर झुकना 'डोलङ्चिम' कहा जाता है।

दम चलशिश :

'दमचलशिश' का शाब्दिक अर्थ 'ठीक सम्बन्ध होना' होता है। इसमें आपस में प्रेम हो जाने पर प्रेमी तथा प्रेमिका भाग जाते हैं। इसे 'भाग्यमिग' भी कहते हैं। जब प्रेमी-प्रेमिका घर लौटते हैं तो लड़के का पिता माजोमी को लड़की के माता-पिता के पास समझौते के लिए भेजता है। माजोमी अपने साथ शराब की एक बोतल तथा उस पर लगाने के लिए कुछ मक्खन तथा इजित (इज्जत) के रूप में देने के लिए कुछ रुपये भी ले जाता है। लड़की के माता-पिता के घर पहुंचने पर वह अपराधी की सी क्षमा-याचना करता हुआ, शराब की बोतल के सिरे पर मक्खन की एक बत्ती लगा कर उसे कुछ राशि के साथ उन्हें भेंट करता है। यदि दूसरा पक्ष बहुत क्रोधित हो और भेंट को स्वीकार न करे तो वह 'इजित' के पैसे बढ़ाता जाता है तथा लड़के के द्वारा की गई भूल के लिए क्षमा मांगता है। माता-पिता के द्वारा भेंट स्वीकृत कर लेने पर बात का समाधान निकल आता है और लड़की के मामा तथा अन्य सम्बन्धियों को मनाने का प्रश्न शेष रहता है। लड़की के मामा का उसके विवाह-सम्बन्धों को निश्चित करने में आधा भाग माना जाता है। अत: उसे भी इजित के पैसे देना आवश्यक होता है। लड़की के सम्बन्धी 'इजित' के अधिकारी होते हैं अत: उन्हें भी कुछ रुपये देने पड़ते हैं।

जब लड़की के माता-पिता समझौते के लिए उत्सुक न हों तो 'इजित' के पैसे नहीं दिए जाते। इस दशा में बात अन्तिम दौर में नहीं पहुंचती। 'दारोश डबडब' में भी इजित के रुपये का प्रश्न उठता है। 'भाग्यामिग' विवाह का प्राचीन संस्कार है, क्योंकि इस प्रकार के विवाह में वर वधु एक दूसरे को भली प्रकार समझते हैं अत: इस प्रकार का विवाह अन्य विवाहों की अपेक्षा प्राय: अधिक स्थायी रहता है।

दारोश डब डब :

इस क्षेत्र में प्रचलित विवाह-प्रकारों में 'दारोश-डबडब' का अपना स्थान है। 'दारोश' का अर्थ 'बलपूर्वक' तथा 'डबडब' का अर्थ 'घसीटना' होता है। इस प्रकार के विवाह में लड़की की इच्छा का ध्यान बहुत कम रखा जाता है। दारोश डबडब को यदि हम विवाह-प्रकार न कह कर एक आदिम जातीय प्रथा कहें तो अधिक उचित होगा। इस प्रथा को 'राक्षस विवाह' के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जब कोई लड़की सुन्दर तथा शिक्षित हो तो उससे विवाह के इच्छुक लड़के यह प्रयत्न करते हैं कि उसे वधु के रूप में प्राप्त किया जाए। यदि 'जनेकङ्,' 'न्योटङ् मीरङ्' अथवा 'दमचलशिश' प्रकारों में से कोई भी सम्भव न हो तो 'दारोश डबडब' का सहारा लिया जाता है। इस प्रथा को हम सामान्य रूप से प्रचलित विवाह-प्रकारों में नहीं रख सकते क्योंकि ऐसी घटनाएँ वर्तमानकाल में निरन्तर कम होती जा रही हैं परन्तु इस प्रथा का उल्लेख

अवश्य ही किन्नरों की सामाजिक व्यवस्था का सम्यक् अध्ययन करने के उद्देश्य से आवश्यक है।

'दारोश डबडब' किन्नर-क्षेत्र के निचले भाग, जिसमें 'कन्नौरयानुस्कद' उपभाषा का प्रचलन है, का शब्द है। अन्य क्षेत्रों में इस प्रथा को क्या नाम दिया गया है, इस सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे। साधारण अर्थ में यह कहना असंगत नहीं होगा कि इस प्रथा के अन्तर्गत लड़की को बलपूर्वक उसकी इच्छा या अनिच्छा से विवाह के उद्देश्य से भगाया जाता है। बहुधा लड़की को यह पता नहीं होता कि उस पर किस टोली की आंख है। यदि युवक तथा युवतियां एक दूसरे के साथ विवाह के इच्छुक भी हों तो भी बहाने आदि के लिए दारोश डबडब की स्थिति उत्पन्न करते हैं परन्तु जहां लड़की को दारोशडबडब का पता न हो वहां वह बड़ी उलझन में पड़ती है। दारोश डबडब में वर-पक्ष के लड़कों की एक टोली बन जाती है और लोग इस ताक में रहते हैं कि लड़की को किसी अकेले स्थान पर पाकर बलपूर्वक भगा ले जाएं। उपयुक्त अवसर प्राप्त होने पर वर वधु को सर्व प्रथम छूता है और इसके बाद उसकी टोली के युवक उसे बलपूर्वक भगाने का यत्न करते हैं। ऐसा समझा जाता है कि जो भी व्यक्ति सबसे पहले भगाने हेतु लड़की को छुएगा, वही उसका भावी पति होगा। वह बाजू आदि से किसी बहाने लड़की को सर्वप्रथम छूने का प्रयत्न करता है और इतनी देर में उसके दल के लोग निकल पड़ते हैं तथा उसे बलपूर्वक उठा कर ले जाते हैं। अनेक बार यह कार्य इतनी शीघ्रता से हो जाता है कि लड़की को यह आभास ही नहीं हो पाता कि उसका भावी पति कौन होगा। जब डबडब करने वालों ने वधु को अपने घर ले जाने के लिए उठाया होता है तो कई बार वह रोती चिल्लाती तथा दांतों से उन्हें काट खाती है। परन्तु साधारणतया वे उसे छोड़ते नहीं हैं और अपने घर पहुंचा कर ही दम लेते हैं। कई बार इस टोली को लड़की के द्वारा पत्थर या जूते भी खाने पड़ते हैं।

जब लड़की को वर के घर पहुंचा दिया जाता है तो सब लोग इकट्ठे होकर यह चाहते हैं कि विवाह सम्बन्धी बातों का निर्णय उन्हीं के पक्ष में रहे। वे इस के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं कि वधु पक्ष के लोग उनके इस कार्य को अन्यथा न लें तथा सम्बन्ध को स्वीकार कर लें।

इस अवसर पर लड़की की भरसक सेवा होती है, उसे अच्छा खाना दिया जाता है तथा गांव तथा परिवार की सारी स्त्रियां उसे समझाने का प्रयत्न करती हैं। यदि लड़की अप्रसन्न हो तो पर्याप्त समय तक खाना नहीं खाती और रोती रहती है परन्तु पूर्व ज्ञान से लाई गई लड़की को मनाना कठिन नहीं होता। कई बार लड़की भागने में भी सफल हो जाती है और ऐसी भी घटनाएं हो जाती हैं जब लड़की के न मानने पर कानून की लपेट में आने के डर से अथवा अन्य कारणों से उसे अपने घर लौटने दिया जाता है।

दारोश डबडब के दूसरे दिन वर-पक्ष के लोग वधु-पक्ष को मनाने के लिए एक या दो माजोमी (मध्यस्थ) भेजते हैं। माजोमी सारी स्थिति को स्पष्ट करके क्षमा-याचना करते हैं तथा लड़की के माता पिता को 'इजित' का रुपया देने का यत्न करते हैं। 'इजित' शब्द किन्नर-समाज में वशिष्ट अर्थ का द्योतक है। किसी का अपमान होने पर, लड़की का तलाक होने पर अथवा अन्य किसी प्रकार की हानि पहुंचाए जाने पर जो मान-हानि होती है, उसे 'इजित' कहा जाता है। देवता को पूछे बिना यदि अन्य

गाँव के लोग ग्राम-वासियों के साथ अवांछनीय व्यवहार करें अथवा दारोश डबडब के अन्तर्गत लड़की को भगा कर ले जाएं तो देवता को भी 'इज़ित' का पैसा देना आवश्यक होता है। विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते समय जो भी राशि वर-पक्ष से प्राप्त की जाती है उसे 'इज़ित' कहा जाता है। किन्नौर के निचले भागों में सामान्यत: 'इज़ित' का रुपया दो सौ से कम होता है परन्तु ऊपरी क्षेत्रों में यह राशि कई गुणा अधिक होती है। अनेक परिवार 'इज़ित' का रुपया नहीं स्वीकार करते। माजोमी अपनी भूल स्वीकार करके तथा सारे कृत्य के लिए वधु के माता-पिता से क्षमा-याचना करते हैं ताकि उनका क्रोध शान्त किया जा सके।

माजोमी शराब की बोतल तथा मक्खन ले कर जाते हैं और उसके साथ पाँच रुपये की राशि लड़की के माता-पिता को भेंट करते हैं। इन वस्तुओं के स्वीकृत हो जाने पर यह समझा जाता है कि वधु-पक्ष के लोग 'इज़ित' के पैसे ले कर बातचीत के लिए तैयार हो जाएंगे। मक्खन को सुख-समृद्धि, शुभ-कामनाओं तथा सौभाग्य का चिह्न माना जाता है इसीलिए माजोमी शराब की बोतल के मुख पर उसे लगा कर भेंट करते हैं। जब 'इज़ित' ले ली जाती है तो लड़की के माता-पिता यह चाहते हैं कि उनकी लड़की को उनके घर भेज दिया जाए तथा तिथि निश्चित करने के पश्चात विधिवत विवाह किया जाए।

ऐसी दशा में लड़की को बुलाने के लिए उसके मायके की ओर से कोई व्यक्ति उसके ससुराल जाता है और एक दिन वहां ठहर कर उसे अपने साथ लाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, किन्नर-क्षेत्र में सम्बन्धियों के घर अतिथि कम से कम दो रातें अवश्य ठहरते हैं। सौहार्द की दृष्टि से इस प्रथा का बड़ा महत्त्व है।

जब 'इज़ित' की राशि स्वीकार कर ली जाए तो विवाह से पूर्व भी कई बार लड़की ससुराल जाती रहती है और उसके यहां प्रथम सन्तान होने से पूर्व यथा-विधि विवाह कर दिया जाता है। सामान्यतया 'इज़ित' की राशि की स्वीकृति के पश्चात् विवाह सम्पन्न करने की कठिनाई समाप्त हो जाती है और केवल लोकाचार के लिए 'जनेकङ्' का दिन निश्चित किया जाता है। वास्तविक कठिनाई तो तब रहती है जब माजोमी वधु-पक्ष को विवाह के लिए राज़ी न कर सके। यदि लड़की की किसी अंश तक स्वीकृति हो तो माजोमियों के निराश लौटने पर भी उसे वापिस नहीं भेजा जाता। लड़की के माता-पिता को मनाने के प्रयत्न जारी रहते हैं। कई बार माजोमी जाते आते रहते हैं और माता-पिता को सम्बन्ध की स्वीकृति देने के लिए समझाते व प्रार्थना करते हैं। यदि किसी कारण से लड़की के माता-पिता सम्बन्ध की स्वीकृति के पक्ष में न हों तो भी प्रथम सन्तान होने के पश्चात् बात सुलझ जाती है। इस दशा में माता-पिता या तो स्वीकृति दे देते हैं या फिर माजोमी के द्वारा बात सुलझाने के प्रयत्न बन्द कर दिए जाते हैं।

यदि 'डबडब' लड़की की इच्छा के अनुसार किया जाए तो माता-पिता को मनाने की बात पर अधिक बल नहीं दिया जाता। 'इज़ित' का जितना पैसा उन्हें दिया जाए, लेना पड़ता है। यदि माता-पिता प्रसन्न हो जाएं तो शेष सम्बन्धी 'इज़ित' के पैसे लेने से इनकार नहीं करते। दोनों पक्षों में समझौता हो जाने पर पोल्टू (पकवान) आदि के अनेक किल्टे (टोकरे) एक पक्ष दूसरे पक्ष को लड़की की विदाई के समय देता है तथा दोनों पक्षों में इन अवसरों पर बकरे काटे जाते हैं। शराब, जिसे स्थानीय भाषा में 'रक' कहा

जाता है; इन उत्सवों का महत्त्वपूर्ण पेय होता है। लोग रास्ते में पीने के लिए भी कुछ बोतलें अपने साथ ले जाते हैं। 'दारोश डबडब' अति प्राचीन काल से प्रचलित प्रथा है। इसका सब से बड़ा दोष यह है कि इसमें लड़की को अपने भाग्य का निर्णय करने का तनिक भी अधिकार नहीं है। स्थानीय कानून (Customary Law) के अनुसार 'दारोश डबडब' भयंकर अपराध नहीं है। फिर भी वर्तमान समय में इस प्रथा पर अंकुश लगा है और लोग 'डबडब' की दशा में यह प्रयत्न करते हैं कि बात आपस में सुलझ जाए और कानून की शरण न लेनी पड़े।

विवाह प्रथा का जाति-विशेष के सांस्कृतिक इतिहास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है अतः अन्य जातियों में इस प्रकार के प्रचलन पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा। बल पूर्वक भगाने की प्रथा सिक्किम में भी प्रचलित है। यहां माजोमी को 'बरमी' कहा जाता है। सिक्किम क्षेत्र में यह भी माना जाता है कि भानजा अथवा भानजी पर माता की तरह आधा अधिकार मामा का भी होता है। किन्नर-क्षेत्र में भी 'मामा' का अधिकार इसी प्रकार माना जाता है तथा विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिए मामा महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और 'इजित' की राशि का भागी वह भी होता है। सिक्किम में 'कुन चेन' नामक विवाह-पद्धति के अनुसार वर की ओर से एक व्यक्ति लड़की को चुराने (भगाने) के उद्देश्य से उसके घर में घुसता है और घर की स्त्रियां उसका अवरोध करती हैं। ऐसी दशा में उन स्त्रियों को भी कुछ पैसे देने पड़ते हैं।[1]

तिब्बत के 'पुराङ्' क्षत्र में मध्यस्थ को 'लोङ्मी' कहा जाता है। यहां भी भगाने की प्रथा प्रचलित है और 'इजित' के पैसे 'लोङ्मी' ही लड़की के पिता को देता है।

लड़की को भगाने की प्रथा छोटा नागपुर की कुछ जातियों, यथा—हो, सन्थाल, मुण्डा तथा भूमिज[2] आदि में भी प्रचलित है। सरायकेला की एक आदिम जाति भूमिज में लड़की का पिता विवाह सम्बन्धी बात पक्की कर लेने पर भी यह इच्छा व्यक्त करता है कि उसकी लड़की को भगाकर ले जाया जाए। इसके लिए समय आदि दोनों दलों के द्वारा निश्चित किया जाता है। इस तरह की शादी के कारण प्रचलित धारणा के अनुसार लड़की के माता-पिता का मान बढ़ता है।[3] किन्नर क्षेत्र के कुछ भागों में विवाह सम्बन्धी बात पक्की हो जाने पर भी इस प्रथा के अन्तर्गत लड़की को भगा लिया जाता है इस प्रकार लड़की का भगा कर ले जाना एक औपचारिकता मात्र ही होती है और समाज में उसे बुरा नहीं माना जाता। जब वर तथा वधु-पक्ष में विवाह की बात तय हो जाती है तो लड़की के माता-पिता निश्चित तिथि को पूर्व-निर्धारित समय पर उसे किसी कार्य के बहाने घर से बाहर भेज देते हैं तथा वर-पक्ष के लोग समय पाकर उसे भगाने में सफल हो जाते हैं। अनेक बार लड़की को भी

---

1. Sarat Chandra Dass—The Ancient Marriage Customs of Tibet, tr. of Asiatic Society of Bengal, Pp. 3, 1893, Vol. LXII, Pp. 15-22.
2. वही, पृ० 9।
3. J. C. Dar—The Bhumijas of Saraikilla, P. 12 as quoted in 'Adivasis'—Publication Division, Page 107.

इस बात के सम्बन्ध में किसी ढंग से वर-पक्ष द्वारा संकेत दे दिया जाता है और वह यह समझती है कि उसका हरण करने के सम्बन्ध में उसके माता-पिता को कोई ज्ञान नहीं है। जब दोनों पक्ष आपस में बातचीत करके 'भगाने के विवाह' का फैसला करते हैं तो लड़की का मूल्य पहले निर्धारित कर लिया जाता है परन्तु उसे गुप्त रखा जाता है। जब लड़की को भगाया जाता है और माजोमी भेजे जाते हैं तो प्रकट रूप में सारी बातों को एक प्रकार नए ढंग से आरम्भ किया जाता है और 'इजित' के पैसे लिए जाते हैं।

किन्नर-क्षेत्रीय समाज अपनी विशिष्ट संस्कृति तथा परम्पराओं के कारण समाजशास्त्रीय, भाषाशास्त्रीय तथा नृतत्व-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इकाई है। इस क्षेत्र में प्रथाओं की भिन्नता तथा स्थानीयता इस अध्ययन को और भी अधिक रोचक बना देती है। जिन विवाह-प्रकारों पर गत पृष्ठों में विचार किया है वे मुख्यतः उक्त नामों के अन्तर्गत विचार तथा काल्पा क्षेत्रों में प्रचलित हैं। कूनोचारङ् क्षेत्र, जो तिब्बत की सीमा के साथ सटा हुआ है, में 'दारोश डबडब' को 'डबचिस फीफी' अथवा 'कुनमा कूशा' (चोरी से ले जा कर) कहते हैं। चोरी करने या 'कुनमा कूशा' की नियत वाला लड़का अपने साथ आठ-दस या इससे कम युवकों को लेकर इस अवसर की तैयारी में रहता है कि लड़की को पकड़ कर अपने घर ले जाए। इस क्षेत्र में यह आवश्यक नहीं कि विवाह की इच्छा वाला लड़का ही सब से पहले लड़की को हाथ लगाए। बलपूर्वक भगाई गई लड़की अनेक बार रोती रहती है और खाना आदि भी नहीं खाती। दूसरे दिन दो या तीन माजोमी (मध्यस्थ) जिनमें से एक मामा के वंश का होता है, एक बोतल 'कोरङ्' (भेंट) तथा इजित के पैसे लेकर लड़की के माता-पिता के घर जाते हैं। उस बोतल पर या शराब के बीच मक्खन लगाना शुभ शकुन माना जाता है। यहाँ शराब के प्याले के बाहर भी मक्खन का टीका (यरका) लगाना आवश्यक होता है। यह सम्मान का प्रतीक भी माना है। बड़ी पदवी वाले लोगों, विशेष कर लामाओं के प्यालों में तीन टीके लगाने की प्रथा है। माजोमी लड़की के घर वालों के पास लड़के के वंश व परिवार की प्रशंसा करता है और कहता है कि उस घर में लड़की को सब सुख सुविधाएं प्राप्त होंगी। लड़की के माता-पिता रिश्ते के सम्बन्ध में मान जाएं तो माजोमी के साथ परिवार के सदस्य वर-वधु के भावी जीवन की मंगल-कामना के लिए इकट्ठे बैठ कर शराब पीते हैं। 'इजित' के रूप में इस क्षेत्र में भी दो सौ रुपये तक की राशि लेने की प्रथा है। यदि बात निश्चित हो जाए तो कई परिवार विवाह भी निश्चित कर लेते हैं, पर अनेक बार शादी नहीं की जाती बल्कि लड़की वैसे ही अपने ससुराल में रहने लग जाती है।

इस क्षेत्र में 'सेम्बा थुनशा' (प्रेम विवाह, सेम्बा दिल, थुनशा-मिलकर) में भी 'इजित' की राशि का दिया जाना आवश्यक है। माजोमी भी होते हैं। इसमें लड़का व लड़की भाग जाते हैं। उनके पीछे घर वाले माजोमी भेज कर बात ठीक करने का यत्न करते हैं। भागने का उपयुक्त समय भेड़-बकरियों को सर्दियों से पहले मैदानों में ले जाने का होता है। भेड़-बकरियां कुछ मील दूर पहुंचाने के पश्चात् प्रेमी अपनी प्रेमिका से मिलने गांव लौट आता है और वे गांव से भाग कर भेड़-बकरियों के साथ मैदानों में चले जाते हैं। बाद में इस प्रकार की शादी को माँ-बाप की स्वीकृति

मिल जाती है। इस क्षेत्र में शादी की तिथि प्रायः लामा की सहायता से ही निश्चित की जाती है पर उसमें दोनों पक्षों की सलाह से परिवर्तन हो सकता है। 'रेशा' (मंगनी द्वारा) प्रकार के विवाह के लिए वर व वधु पक्ष में बात चीत हो जाती है। माजोमी ही इस प्रकार के विवाह की बात चलाते हैं और कोरङ् (शराब की भेंट) की बोतल मक्खन सहित प्रस्तुत करते हैं। जिन के यहां केवल लड़कियां ही हों उन्हें मकपा (घर जमाई) की आवश्यकता रहती है अतः कई बार उन्हीं की ओर से माजोमी लड़के की खोज में निकलता है। मकपा को अपने ससुराल में ही रहना होता है और वह लड़की के मां-बाप की सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है।

कई मकपा अपने घर की सम्पत्ति का भाग भी ले लेते हैं। इस क्षेत्र में शादी को 'पग़लेन' तथा बारात को 'ज़नेटङ्' कहते हैं। इस दिन वर-पक्ष की ओर से अपने घर में चावल, रोटी और शिकार बनाया जाता है। बरात के साथ बाजे आदि का भी प्रबन्ध रहता है। वर घोड़े पर जाता है परन्तु यदि मार्ग खराब हो तो पैदल ही जाना पड़ता है। उसे पगड़ी बांधी जाती है। बराती रास्ते के लिए पोल्टू तथा शराब ले कर जाते हैं। मार्ग में खतरनाक स्थानों, यथा, नदी नालों पर जहां भूत-प्रेतों का डर हो, बकरे की बलि दी जाती है। लड़की के घर के लिए भी कुछ पोल्टू व शराब साथ ले जाने की प्रथा है। वर के साथ कुल मिला कर दस पन्द्रह बराती होते हैं, शेष ग्राम वासियों का साथ जाना आवश्यक नहीं समझा जाता। वर के कई भाई होने पर भी केवल बड़ा ही भाई शादी के लिए बरात में जाता है।

'पग़लेन' में वधु पक्ष में खाना आदि तैयार होता है तथा बरातियों के पहुंचने पर भोजन कराया जाता है। इस क्षेत्र में भी यद्यपि लड़की को विवाह के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से बताया तो नहीं जाता पर सहेलियों से वह इस बात का पता लगा ही लेती है। वधु के घर पहुंचने के बाद बरात के स्वागत में नृत्य का कार्यक्रम होता है। वधु को गहने व अच्छे कपड़े पहनाए जाते हैं। वर पक्ष के लोग गहने व कपड़े वधु को लेकर जाते हैं। यदि कोई गहना कम हो तो वधु-पक्ष वाले जल्दी बनवाने का वायदा लेते हैं और उसके लिए उन्हें पैसे भी देने पड़ सकते हैं। अगले दिन वे वहीं ठहरते हैं। उस दिन लड़की वालों को घी डाल कर भोजन खिलाया जाता है।

वधु-पक्ष वाले लड़की को सब प्रकार के बर्तन दहेज में देते हैं। वधु के साथ लगभग 40-50 बराती होते हैं। सम्पूर्ण किन्नर-क्षेत्र में वर की बरात वधु की बरात से कई गुणा अधिक होती है। बरात में स्त्रियां भी होती हैं। गांव वाले उन्हें विदा करने के लिए जाते हैं। विदाई के समय लड़की रोती जाती है तथा उसे भी घोड़े पर बिठाया जाता है।

वापसी पर भी बरात को कई स्थानों पर पूजा करनी पड़ती है। गांव में पहुंचने पर 'कोरङ्' के साथ उन सब का स्वागत किया जाता है। उस समय भी पूजा की जाती है तथा पूजा (पूरङ्) का सामान पोल्टू आदि के साथ फैंक दिया जाता है। यह सम्भवतः उन दुरात्माओं के लिए किया जाता है जो मार्ग से अदृश्य रूप में बरातियो के साथ आई हुई मानी जाती हैं। घर पहुंचने पर शराब की भेंट (कोरङ्) दी जाती है। खाना खाने के पश्चात् मेला (कायङ्) लगता है। लड़की के साथ

आए बराती वर पक्ष वालों से खूब चीजें माँगते हैं और रोब जमाते हैं। कई बार तो चीजें ठीक न मिलने पर वे कई वस्तुएं, यथा, थाली आदि तोड़ भी देते हैं।

अगले दिन 'उदानङ्' तथा 'बेल्डङ्' होता है। इन दोनों प्रथाओं के सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है। माजोमी के घर बरात के जाने की प्रथा इस क्षेत्र में नहीं है। 'उदानङ्' के समय वर के सब भाइयों को देवता के सामने छत पर पगड़ी तथा अचकन आदि पहना कर एक पंक्ति में, सब से बड़ा सब से आगे, फिर उससे छोटा, फिर उससे छोटा, इस प्रकार बिठाया जाता है। वधु भी उस समय वहीं होती है। पगड़ी व गाची बांध लेने से ही वे सब भाई उस नव वधु के वैधानिक पति हो जाते हैं। सबसे बड़ा भाई वैधानिक तौर पर भी, यदि बाकी भाई और शादियाँ भी कर लें तो, उस वधु का असली पति समझा जाता है। पगलेन में दूल्हों में से एक का बरात में जाना बहुत आवश्यक है। शादियां आषाढ़ व कातिक में अधिक होती हैं।

रोपा घाटी किन्नर-क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण भाग है। इस घाटी में शियाशो, सुङ्नम, ग्यांबुङ् तथा रोपा प्रसिद्ध गाँव हैं। रोपा गाँव की देवी चण्डिका किन्नौर की महत्त्वपूर्ण तथा सर्वाधिक शक्तिमती देवी समझी जाती है। इसी देवी ने किन्नर-क्षेत्र के महेश्वर देवताओं के बीच क्षेत्रों की बांट की थी। चण्डिका बाणासुर व हिड़िम्बा की पुत्री तथा महेशुरों की सब से बड़ी बहिन बताई जाती है। इस घाटी में यद्यपि प्रायः 'कनौर-यानुस्कद' अर्थात् काल्पा से नीचे के क्षेत्रों में प्रचलित बोली प्रयुक्त होती है परन्तु एक गाँव सुङ्नम की बोली किन्नर-क्षेत्र के किसी अन्य गाँव की बोली से नहीं मिलती। इस घाटी में प्रचलित विवाह-प्रथाओं में भी अन्य क्षेत्रों से तनिक भिन्नता है अतः इनका विवरण प्रस्तुत करना असंगत नहीं होगा। इसे 'गन्म्युल/गञ्ज्युल वैली' भी कहा जाता है।

न्यमशा डापङ् :

सुङ्नम की बोली में दारोश डबडब (भगाने की शादी) को 'न्यमशा डापङ्' कहते हैं। जो युवक वर की ओर से लड़की को बलपूर्वक लाने के लिए जाते हैं, उन्हें वर के घर में सायंकाल का भोजन दिया जाता है। बलपूर्वक लाई गई लड़की के घर में प्रवेश करने के बाद दरवाजे पर बकरा काटा जाता है। अगले दिन माजोमी (मध्यस्थ) लड़की के माता-पिता को मनाने के लिए जाते हैं। ये संख्या में पांच अथवा सात होते हैं। शराब की बोतल कोरङ् (भेंट) के रूप में उसी प्रकार लाई जाती है जैसे माजोमी अन्य भागों में मक्खन लगा कर ले जाते हैं। लड़की के पिता को 'इजित' की कुछ राशि देनी पड़ती है, यह प्रायः एक रुपये से हजार रुपये तक होती है। सुङ्नम में एक व्यक्ति के विवाह में सगे सम्बन्धियों को दी गई राशि का विवरण इस प्रकार है—वधु के पिता को 600 रु०, छोटे पिता[1] (चाचा) को 300 रु० और बड़े पिता (ताया) को 100 रु०

---

1. बहुपति विवाह-प्रथा में पिता के बड़े व छोटे सभी भाइयों को 'पिता' अथवा 'तेग बबा' (बड़ा पिता) तथा 'बबाच' (छोटा पिता) कहा जाता है। ताया अथवा चाचा शब्द प्रचलित नहीं हैं।

की राशि इजित के रूप में दी गई, यद्यपि वे सभी भाई सम्मिलित परिवार में रहते थे। वधु के शेष दो पिताओं ने कुछ नहीं लिया उन्हें एक एक बोतल शराब के साथ पांच पांच रुपये भेंट स्वरूप दिए गए। लड़की की दो मौसियों ने बीस बीस रुपये स्वीकार किए तथा 'इजित' के रूप में मामा ने सौ रुपये लिए। इसके अतिरिक्त अन्य सम्बन्धियों को भी थोड़ी बहुत राशि देनी पड़ी। वर ने सास के पांवों पर झुकते समय (डोलङ्चिम में) तीस रुपये उसके पांवों पर रखे। 'डोलङ्चिम' की प्रथा प्रायः सारे किन्नर-क्षेत्र में प्रचलित है। इसके अन्तर्गत सास के पांवों पर वर को कुछ राशि आवश्यक रूप से रखनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त विवाह पर जो व्यय हुआ वह इस राशि से अलग था। यदि वधु के ताया अथवा चाचा घर से बाहर हों तो उनके नाम पर भी पांच रुपये तथा शराब की एक बोतल देनी पड़ती है। 'समझायामो[1]' हो जाने पर बड़े विवाह की तिथि लामा निश्चित करता है। इस बड़ी शादी को 'न्यमशा लेमो' (बहू करना) कहा जाता है।

न्यमशा लेमो :

दोनों पक्षों में सगे सम्बन्धी आमन्त्रित किए जाते हैं। सम्बन्धियो को 'बोन्युङ्' कहा जाता है। लड़के की बरात में अन्य सम्बन्धियों के साथ 'बक्टुद्ज़िखा' अर्थात् 'वर का सखा' तथा लामा भी होते हैं। मार्ग में वर के साथ उसके सम्बन्धी, बजन्तरी, लामा तथा बक्टुद्ज़िखा, सब इकट्ठे चलते हैं। बक्टुद्ज़िखा का यह कर्त्तव्य होता है कि वह वर के साथ ही रहे। वर तथा ज़िखा के सिरों पर सफेद कपड़े बांधे जाते हैं। बक्टुद्ज़िखा वर की रक्षा के लिए अपने हाथ में तीन रंग के कपड़े (लाल, हरा तथा सफेद) तथा तीर ले कर चलता है। बरात घोड़ों पर जाती है।

वधु के घर पर पहुंचने पर 'बोनयुङ्ज' के साथ एक कमरे में बरात को बिठाया जाता है। इस अवसर पर वर अपनी सास के पांवों पर झुक कर नमस्कार (जिसे परोचिमो अथवा डोलङ्चिम कहा जाता है) करता है। इस में साधारणतया दस-बीस रुपये की राशि उसके पांवों पर रखी जाती है। शेष सम्बन्धियों के पांवों पर भी थोड़ी बहुत राशि रखना आवश्यक माना जाता है।

इस अवसर पर बोनयुङ्ज (सम्बन्धी) इकट्ठे बैठ जाते हैं और अप्रसन्न प्रतीत होते हैं। माजङ्मी (मध्यस्थ) एक विशेष प्रकार का 'क्षो'[2] के आकार का दो मुंहों वाला बर्तन शराब से भरता है तथा बोनयुङ्ज को मनाना आरम्भ करता है। वह उन्हें पांच रुपये की राशि भी भेंट करता है। इसके पश्चात् वे प्रसन्न हो जाते हैं तथा शराब के बर्तन को बाहर ले जाकर पूजा करते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को शराब बांटी जाती है फिर सब को खाना खिलाया जाता है। लड़की की सहेलियां भी बरात में

---

1. समझा-बुझा कर विवाह के लिए लड़की के माता-पिता को मनाना।
2. 'क्षो' निचले किन्नौर में पीतल अथवा लोहे का गंगासागर के आकार का बर्तन होता है। इसे पवित्र बर्तन माना जाता है क्योंकि देवता के द्वारा छिड़काव आदि का सारा कार्य 'क्षो' के साथ ही सम्पन्न किया जाता है। यह एक प्रकार से 'देवता का लोटा' होता है।

उसके साथ जाती है। वधु सब सम्बन्धियों से गले मिलती है और रोते हुए विदा होती है। माता से गले मिलते समय वह उसे छोड़ती नहीं है। इस पर वर (माकपा) को अपने हाथ से उसे छूना पड़ता है और माजङ्मी (मध्यस्थ) उसे माता के गले से छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं।

बरात में सब से आगे बजन्तरी, उसके पश्चात् लामा, वधु के बोनयुङ्ज, बाद में वधु तथा उसकी सहेलियां, वधु को सहारा देने के लिए माजङ्मी तथा सब से पीछे वर तथा उसका सखा (वक्टुद्जिखा) चलते हैं। सखा के हाथ में इस समय भी तीर अवश्य रहता है।

माक्पा (वर) के घर पहुंचने पर लामा कोरङ् (देव-पूजा की शराब) का मन्त्र के साथ छिड़काव करता है। जिस कमरे में बोनयुङ्ज (वधु के सम्बन्धियों) को ठहराया जाता है उसके दरवाजे पर वर की मां अच्छा अनाज तथा 'नंगा जौ' आदि लेकर 'यर' (घी) का टीका लगा देती है। वधु को लड़के की माता हाथ पकड़ कर अन्दर ले जाती है। उस समय वधु के हाथ में पांच रुपये तक की राशि दी जाती है ताकि वह खाली हाथ पहली बार घर में प्रवेश न करे। बजन्तरी नीचे आंगन में बैठते हैं। जब सब लोग घर में प्रवेश कर जाते हैं तो दरवाजे पर बकरा काटा जाता है जिसका उद्देश्य मार्ग से साथ आने वाले भूत-प्रेतों को प्रसन्न करके वापिस भेजना होता है।

घर के भीतर सब से पहले बोनयुङ्ज अपनी आयु तथा स्थिति के अनुसार बैठते हैं। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि किन्नर-समाज में एक पंक्ति में बैठने के लिए व्यक्ति को आयु तथा सामाजिक स्थिति का ध्यान रख कर ही स्थान ग्रहण करना होता है। बहुपति विवाह-प्रथा के अन्तर्गत सब भाइयों में से कोई भी दूल्हा बन कर जा सकता है, सब की आवश्यकता नहीं होती। इस अवसर पर 'दू'[1] (कोन) थाली में रखा जाता है। माजङ्मी घी लगा कर 'दू' का छोटा टुकड़ा जिखा (सखा) को देता है। सखा सब से पहले सब से बड़े भाई तथा बाद में उससे छोटों को इस प्रकार के टुकड़े देता है। वधु को भी बाद में वैसा ही टुकड़ा दिया जाता है परन्तु वह उसे नहीं खाती और उसे पीछे बैठी सखियों को दे देती है तथा वे उसे पीछे दीवार से चिपका देती हैं। इस क्रिया को तीन बार दोहराया जाता है। इसके पश्चात् थोड़ा थोड़ा दूध दिया जाता है जिसे पीछे इसी प्रकार, पीछे दीवार के साथ, उंडेल दिया जाता है। इस क्रिया को 'छुमकोन'[2] अर्थात् 'एकता करने वाला नमकीन हलवा' कहा जाता है। इसके पश्चात् यह समझा जाता है कि दोनों पक्षों की एकता हो गई।

बाद में अतिथियों को शराब (छङ्) तथा स्त्रियों को नमकीन चाय पिलाई जाती है। इस अवसर पर वधु की सखियां विवाह का गीत गाती हैं जिसमें वर पक्ष को बताया

---

1. 'दू' कनौरयानुस्कद का शब्द है। यह एक प्रकार का नमकीन हलवा होता है जिसे अण्डों से घोलकर बनाया जाता है। इस हलवे को पवित्र माना जाता है तथा विशेषावसरों पर 'दू' तैयार करने की प्रथा सारे किन्नर-क्षेत्र में प्रचलित है।
2. छुम-एक होना, कोन-नमकीन हलवा।

जाता है कि यदि 'गुन्याली' (वधु) को ससुराल में रहते हुए कष्ट होगा तो उसके भाई बन्धु उठेंगे और सीढ़ी जला देंगे। गीत में यह भी बताया जाता है कि हमारी लड़की नाजुक है, इसके कपड़ों व खाने का विशेष ध्यान रखा जाए। इसके पश्चात् वर के यहां से दिए गए कपड़ों को वधु अपनी सहेलियों की सहायता से बदलती है और खाना खाने के पश्चात् नृत्य-गायन (मेले) का कार्यक्रम चलता है। लोग नाचते-गाते सारी रात बिताते हैं।

अगली प्रात: सब को खाना खिला चुकने के पश्चात् सब के सामने विवाह का प्रतिज्ञा-पत्र लिखा जाता है जिस में लड़की के सम्बन्धी यह लिखाते हैं कि यदि वर-पक्ष लड़की को ठुकराये तो उन्हें विवाह का खर्च तथा अन्य भत्ता उसे देना पड़ेगा और यदि बहुपति-विवाह की दशा में कोई पति लड़की को छोड़ दे तो उसे घर की सम्पत्ति में से कोई हिस्सा प्राप्त नहीं होगा। यह शर्तनामा लड़के के पिता के पास रहता है तथा लड़की का पिता भी उसकी एक प्रति ले लेता है।

खाना खा चुकने के पश्चात् वधु सब से पहले कमरे से निकलती है और दरवाजे के पास सब से गले मिलती है। उस समय 'बोनयुङ्ज' अपनी सामर्थ्य व श्रद्धानुसार एक थाली में लड़की के लिए भेंट स्वरूप कुछ राशि डालते हैं। यह राशि सैकड़ों रुपयों में भी हो सकती है तथा एक रुपया भी। इस प्रथा को 'केलर' कहा जाता है। इस प्रकार हजार अथवा इससे भी अधिक रुपये इकट्ठे हो जाते हैं। इसके पश्चात् बरात बिदा हो जाती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जिस दिन विवाह हो उस दिन वर तथा वधु के घरों से एक चौथाई पत्था (लगभग $\frac{1}{2}$ किलो) अनाज सब परिवारों के प्रत्येक व्यक्ति को दिया जाता है। इसे 'टशिश' कहा जाता है। टशिश की प्रथा वर्तमान समय तक रोपा घाटी के गाँवों में ही प्रचलित रही है और यह इतनी अधिक रोचक है कि इसके पूर्ण विवरण के बिना इस क्षेत्र की विवाह-प्रथा का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। टशिश विवाह का एक प्राचीन प्रकार है।

टशिश :

यह विवाह बड़ी शादी की भांति होता है परन्तु जब वर पक्ष की बरात लड़की के घर के पास पहुंचती है तो उस का दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। दरवाजे से लगभग 12 फुट की दूरी से प्राय: डेढ़-डेढ़ फुट के अन्तर पर तीन-तीन पत्थरों की ढेरियां लगाई जाती हैं। बरात दरवाजे से सब से अधिक दूर की ढेरी पर रुक जाती है। वधु-पक्ष का लामा बरात की ओर एक कांटेदार झाड़ी 'सुर' लेकर बड़े रोब से आता है। वर-पक्ष का लामा विनम्रतापूर्वक उसका स्वागत करता है। वे दोनों लामा तिब्बती भाषा में बात करते हैं तथा प्रश्न पूछते हैं। वर-पक्ष के लामा की ओर से प्रश्नों के ठीक उत्तर मिलने की दशा में वधु-पक्ष का लामा पीछे देखे बिना एक ढेरी को गिराता हुआ उल्टे पांव वापिस जाता है। प्रश्नोत्तर वाले लामाओं की विशेष वेश-भूषा होती है जिसे 'डोग्ला गोन्बो' कहा जाता है। प्रश्नोत्तर फिर भी चलते रहते हैं और उनके समाप्त होने तक दोनों लामा दरवाजे के पास पहुंच जाते हैं। प्रश्नोत्तर ऊंचे स्वर में गाकर ही सम्पन्न किये जाते हैं। टशिश गन्युल घाटी (रोपा घाटी) में अतीत में प्रचलित सर्वमान्य प्रथा थी परन्तु अब इसका प्रचलन कम हो गया है क्योंकि इस पर बहुत

अधिक खर्च हो जाता है। टशिश के अवसर पर चौथाई पत्था (एक ब्रेचा) अनाज इस घाटी के सब परिवारों के प्रत्येक सदस्य को बांटना पड़ता है अतः सारी घाटी में बांटने हेतु पचासों मन अनाज की आवश्यकता रहती थी।

टशिश के अवसर पर लड़की के घर पर वर-पक्ष के किसी व्यक्ति को बकरा काटना पड़ता है। इस बकरे की गर्दन को कई वस्तुएं मलकर तथा सुई आदि चुभा कर इतना कठोर बना दिया जाता है कि काटने वाला उसे एक ही बार से काटने में असमर्थ हो।

बरात को खाना खाते समय एक बड़े मसरबो (गंगासागर) में पानी दिया जाता है जिससे प्रत्येक बराती को एक हाथ से उठा कर पानी पीना पड़ता है। जो व्यक्ति एक हाथ से इस बर्तन को न उठा पाए उसे प्यासा रहना पड़ता है। ये प्रथायें वर-पक्ष की परीक्षा के रूप में प्रचलित थीं।

एक और मनोरंजक बात यह है कि जब लड़की को विवाह के समय मायके से विदा किया जाता है तो शोक-धुन बजाई जाती है जिस का अर्थ यह होता है कि माता पिता की ओर से लड़की विवाह के अवसर पर ही मर गई।

विदाई के समय मक्पा (जामाता) लड़की की माता को 'मासोर' (दूध तथा पालन-पोषण का मूल्य) के रूप में पांच सौ रुपये तक राशि देता है।

घर पहुंच कर सास अपनी नई बहू का हाथ पकड़ कर गृह-प्रवेश कराती है। इसे 'गुद कारामा' कहा जाता है।

टशिश तथा दूसरे प्रकार के विवाहों में देवता की शक्ति ग्रोक्च् (पुजारी) पर आ जाती है और बलि का बकरा पानी ऊपर फैंकने पर हिलता है। ग्रोक्च् के साथ बकरे को दरवाजे पर ले जाया जाता है और वहां उस के आदेशानुसार उसे काट दिया जाता है।

टशिश के तीसरे दिन सम्बन्धियों आदि को भोज दिया जाता है तथा बोनयुङ्ज को बुलाने के लिए लड़की के घर से घोड़े लाए जाते हैं। इस समय लड़की की माता भी उसके ससुराल आती है। सर्व प्रथम वधु की माता सन्मुख बैठे अपने जामाताओं को माजोमियों (मध्यस्थों) की उपस्थिति में गर्म पट्टू आदि भेंट करती है।

लड़की के मायके के अन्य सम्बन्धी भी वरों (मक्पाओं) को रुपये पैसे भेंट करते हैं इसे 'बेल्लङ्' कहा जाता है। 'बेल्लङ्' की प्रथा में प्राप्त की गई भेंट अथवा राशि दुगनी वापिस की जाती है। इसका पैसा केवल जामाताओं को ही दिया जाता है।

इसी घाटी के रोपा गाँव में बलपूर्वक भगाने के विवाह को 'तेम खुनमिग' कहा जाता है। तेम खुनमिग में लड़की को बलपूर्वक भगाने के पश्चात् उसके माता-पिता से कोई निर्णय होने से पूर्व उसे वर अपने घर में नहीं ले जा सकता बल्कि उसे किसी अन्य स्थान पर छुपाना पड़ता है।

भगाने के पश्चात् छोटा विवाह होता है तथा 'समझायामो' के बाद बड़े विवाह का प्रबन्ध किया जाता है। लड़की का मूल्य लगभग पन्द्रह सौ रुपये तक लिया जाता है।

इस गाँव में बरात लाकर विवाह करने को 'तेम कालमी' अथवा 'तेम लानमी' कहा जाता है। जनेटङ् (बरात) में तीन से लेकर दस व्यक्तियों तक घोड़ों पर जाते हैं।

माक्पा[1] (जामाता) अवश्य बरात के साथ जाता है। संयुक्त विवाह में सब से छोटे भाई का बरात में जाना आवश्यक माना जाता है। बरातियों को 'ज्याओपा' कहा जाता है। लामा तथा माक्पा सब से पहले तेम (वधु) के घर पहुंचते हैं, शेष बराती उनसे पीछे आते हैं। लड़की की बरात में उसकी दस, ग्यारह सहेलियां भी जाती हैं ये सब बराती घोड़ों पर जाते हैं जिन के साईस हरिजन होते हैं। वधु की एक सहेली कुछ दिन उसके ससुराल में रहती है ताकि लड़की का मन नए घर में लग जाए। लगभग दस दिन के पश्चात् 'यूमेद् डोलङ्चिम' (सास को नमस्कार) के लिए माक्पा (जामाता) तथा स्तेम (वधु) को उसके मायके में आना पड़ता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, किन्नर-क्षेत्र की गन्ग्युल घाटी (रोपा घाटी) में यद्यपि केवल चार ही गाँव हैं परन्तु भाषा व संस्कृति की दृष्टि से इन में परस्पर पर्याप्त अन्तर है। सुङ्नम गाँव की बोली शेष तीन गाँवों की बोली से नहीं मिलती। अत: आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि एक समतल घाटी के मध्य बसा यह गांव किस प्रकार सदियों तक अपनी पृथकता बनाए चला रहा। टशिश की प्रथा इस क्षेत्र की प्राचीन विवाह-पद्धति को दर्शाती है। अगले पृष्ठों में हम इसी प्रथा से मिलते जुलते विवाह-प्रकार के सम्बन्ध में विचार करेंगे तथा देखेंगे कि इस प्रथा पर क्या और कितना बाह्य-प्रभाव हुआ है ?

सुङ्नम से एक ऊंचे दर्रे 'हङ्ला' को पार करने के पश्चात् हम हङ्रङ् घाटी में प्रवेश करते हैं। यदि रोपा गाँव से चल कर सड़क के मार्ग से कोई व्यक्ति पूह तथा हङ्रङ् जाना चाहे तो उसे ग्यावुङ्, सुङ्नम तथा शियाशो हो कर जाना होगा।

रोपा-घाटी में प्रेम-विवाह को 'पोरदेश' कहा जाता है। यह शब्द 'परदेश' है तथा इसका वही अर्थ है जो अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में लिया जाता है। जब कोई व्यक्ति घर से दूर जाता है तो उसे 'परदेश जाना' कहा जाता है। प्रेम-विवाह का यह नाम इस लिए पड़ गया प्रतीत होता है कि वर तथा वधु को इस प्रकार का विवाह करने हेतु सामान्यतया घर से भाग जाना आवश्यक सा होता है। वे अनेक बार तो एक या दो वर्षों तक भी घर नहीं आते। जब वे वापिस घर आते हैं तो विवाह के विधिवत आयोजन की आवश्यकता नहीं रहती। प्रेम-विवाह यदि सजातीय हो तो अधिक सामाजिक गतिरोध आकर्षित नहीं करता परन्तु अपने से न्यून वर्ग की लड़की से होने की दशा में कुछ देर के लिए गाँव से बाहर चले जाना हितकर होता है क्योंकि वापिस आने तक परिजनों तथा सम्बन्धियों का क्रोध प्राय: शान्त हो गया होता है। इस प्रकार के विवाह-सम्बन्धों को अब लोग स्वीकारने लग गए हैं और नाक-भौं चढ़ाने की आदत पर्याप्त कम होती जा रही है।

पूह-नमगिया क्षेत्र में नामाकुया (चोरी करना अथवा बलपूर्वक भगा कर ले जाना) प्रकार के विवाह की प्रथा है। इसमें अन्य क्षेत्रों की प्रचलित प्रथा की भांति लड़की

---

1. मक्पा अथवा माक्पा एक ही शब्द है, इन में अर्थ-भेद नहीं है।

को, भावी पति अपने साथियों के साथ अवसर पाकर भगा कर ले जाता है। यदि लड़की को घटना का संकेत मिल जाए और वह प्रसन्न हो तो वह रोती-चिल्लाती तथा गति-रोध उपस्थित नहीं करती परन्तु सम्बन्धों से उसके असन्तुष्ट होने की दशा में वह छूटने का भरसक प्रयत्न करती है। अनेक दशाओं में तो माता-पिता को विवाह हेतु पहले ही राशि दे कर मनाना पड़ता है तथा नामकुया उनके संकेत पर ही किया जाता है।

इस क्षेत्र में लड़की के माता-पिता द्वारा 'इज्जत'[1] के रूप में एक हजार तथा दो हजार रुपये के बीच राशि ली जाती है। विधिपूर्वक किए जाने वाले विवाह में कुल खर्च लगभग चार हजार रुपये या इससे अधिक हो जाता है। इस सम्बन्ध में पूह नमगिया क्षेत्र में विवाहित एक लड़की के विवाह का सोदाहरण वर्णन प्रस्तुत करना अनुचित नहीं होगा।

नामाकुया[2] के पश्चात् इस विवाह में प्रत्येक पुल अथवा नाले को पार करते समय बकरे की बलि दी गई। मार्ग में जहां भी देवता का निवास माना जाता है, बकरे की बलि देना आवश्यक माना जाता है ताकि देवता को प्रसन्न किया जा सके। पुल पर बलि देने के दो उद्देश्य बताए जाते हैं—एक तो नदी के उस पार के भूत-प्रेतों को, जो उन व्यक्तियों का पीछा कर रहे माने जाते हैं, प्रसन्न करके पुल पार करने से रोकना तथा दूसरे पानी के देवता को प्रसन्न करना। भूत-प्रेतों के बरात के साथ चलने की आशंका प्रायः सम्पूर्ण किन्नर-क्षेत्र में की जाती है तथा, जैसा कि पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है, इसके लिए बलि देने तथा दुरात्माओं को देवता की सहायता से वापिस भेजने की प्रथा है। नमगिया-पूह क्षेत्र में बरात के गांव में पहुंचने पर तथा मार्ग मे भी अनेक बार बन्दूक से फायर किए जाते हैं ताकि उन की आवाज से भूत-प्रेत भाग जाएं। पूह गांव में इस प्रकार के फायर को 'च्येग् डोल'[3] अर्थात् 'भूत-भगाना' कहा जाता है।

जिस विवाह का वर्णन हम ऊपर कर रहे थे उस में वधु को वर के घर में पहुंचाने पर दरवाजे पर एक बकरा काटा गया तथा सब लोग शीघ्रता से घर के भीतर चले गये और दरवाजा बन्द कर दिया गया। यह बलि गृह-देवता को प्रसन्न करने तथा साथ आए हुए भूत–प्रेतों को प्रसन्न करके वापिस भेजने के लिए थी।

दूसरे दिन लड़के का पिता तथा माजङ्मी[4] चुलजा[5] (मनाने) के लिए लड़की के माता पिता के घर गए। लड़की के माता पिता पहले तो प्रकट रूप में बहुत अप्रसन्न हुए (यद्यपि उन्हें सारी योजना का पता था और उन्होंने वर-पक्ष से इज्जत के रूप में कुछ रुपये भी प्राप्त कर लिए थे) परन्तु बाद में एक हजार रुपये की राशि 'इज्जत' के रूप

---

1. 'इजित' अथवा 'इज्जत' के सम्बन्ध में पहले विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह राशि एक प्रकार से 'लड़की का मूल्य' होता है।
2. बलपूर्वक भगाना।
3. च्येक्-भूत, डोल-भगाना।
4. माजङ्-बीच या मध्य, मी-व्यक्ति अर्थात् मध्यस्थ।
5. इसे अन्य क्षेत्रों में 'समभायामो' भी कहा जाता है।

में लेकर बात पक्की हो गई। उनके अन्य सम्बन्धियों को इस प्रकार राशि दी गई—मामा को 150 रु० और बवाच[1] तथा अन्य सम्बन्धियों को कुल मिला कर डेढ़ सौ रुपये दिए गए।

एक मास के उपरांत लड़का एक साथी के साथ पकवान आदि ले कर वधु के साथ अपने पागलो (ससुराल) में गया। जाते ही सास के पांवों पर दस रुपये की राशि रखी गई जब कि शेष किसी को कुछ नहीं दिया गया। दो दिन ससुराल में ठहरने के उपरांत लड़का (जामाता) वापिस चला गया।

विधिवत विवाह करने की इच्छा को साकार रूप लगभग एक वर्ष के पश्चात् दिया जा सका क्योंकि इस बड़े आयोजन के लिए पर्याप्त धन-राशि की आवश्यकता थी। बड़े विवाह को इस क्षेत्र में 'टशी पागलेन' कहा जाता है। स्पष्टतया तिब्बती सीमा के साथ बसे हमारे देश के अन्तिम छोर के इस क्षेत्र में 'टशी' शब्द रोपा घाटी के 'टशिश' से मिलता है। टशिश प्रकार के विवाह का वर्णन पहले किया जा चुका है। टशी पागलेन में बजन्तरियों के साथ लगभग पचास व्यक्ति घोड़ों पर वधु के घर गए। बजन्तरी पैदल जा रहे थे। बरात वधु के घर में दिन में पहुंच गई तथा रात को वहीं ठहरी। गांव के लोगों द्वारा बरात का स्वागत किए जाने के उपरांत उसे घर के अन्दर बिठाया गया। उसके बाद वधु-पक्ष के सम्बन्धियों आदि ने अपनी लड़की के लिए कपड़े, औजार, बर्तन तथा नकद कुल मिला कर लगभग चार हज़ार रुपये का सामान जोड़ (दहेज) के रूप में दिया। जामाता के लिये कपड़े, सफेद छुवटा (लम्बा इकहरा कोट) तथा एक पगड़ी भी दी गई। रात को नृत्य-गायन का कार्यक्रम हुआ तथा दूसरे दिन प्रातः बरात वापिस गई।

वधु-पक्ष की ओर से बरात में स्त्रियां, पुरुष सब मिल कर लगभग पचास बराती थे, ये सब लोग घोड़ों पर थे। बरात की विदाई पर गांव के मन्दिर में एक बकरे की बलि दी गई। नदी के पुल पर भी एक बकरे की बलि दी गई। यहां यह उल्लेखनीय है कि पुलों पर बकरे की बलि एक ओर दी जाती है तथा उस पर से लहू की धार के साथ बलि दिए गये बकरे को दूसरे कोने तक घसीटा जाता है। वधु-पक्ष के बरातियों में सगे सम्बन्धियों (भाई, बहिनों आदि) ने पुल पार करने से इनकार कर दिया और उन्हें मनाने के लिये वर-पक्ष वालों को पचास-पचास रुपये (परिवार के साथ सम्बन्धों के अनुसार) देने पड़े। नाले के पुल पर बकरा नहीं काटा गया बल्कि देवताओं तथा भूत-प्रेतों को भेंट के रूप में शराब उंडेली गई। बरातियों ने वहां भी आगे बढ़ने से इनकार किया और कुछ राशि उन्हें वहां भी मनाने के उद्देश्य से देनी पड़ी। वर के गांव के पास बरातियों ने फिर इनकार किया और उस समय उन्हें एक सौ रुपये की राशि बांटनी पड़ी। बरात के स्वागत के लिये मार्ग में पड़ने वाले सभी गांवों के लोग आते रहे। बरातियों ने मार्ग में स्थान-स्थान पर शराब पी। अपने गांव के पास पहुंचने पर ऊंची धार पर एक बकरे की बलि दी गई। वर-पक्ष के घर के दरवाज़े

---

1. 'बोवा' का अर्थ पिता होता है तथा उसके साथ 'च्' जुड़ जाने से अर्थ 'बवाच्' 'छोटा पिता' अथवा 'चाचा' हो जाता है

पर पहुंच कर वधु के भाई ने भीतर जाने से इनकार कर दिया और उसे एक सौ रुपये की राशि देनी पड़ी। मामा ने इनकार नहीं किया नहीं तो उसे भी उतनी ही राशि देनी पड़ती। उसके बाद देहलीज पर एक बकरे की बलि दी गई फिर बरात अन्दर आ गई। बराती तीसरे दिन अपने गांव वापिस गए।

प्रस्तुत विवाह इस क्षेत्र का आदर्श विवाह हो, ऐसा नहीं है परन्तु इसमें लगभग चार हजार रुपये व्यय हुए। विवाह में वर-वधु पक्ष की आर्थिक दशा के अनुसार कम या अधिक खर्च हो जाता है, इस सम्बन्ध में मानक रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती। 'टशी पागलेन' विवाह सामाजिक मान्यता प्राप्त सम्मानपूर्ण प्रकार है अतः दोनों पक्ष इस प्रकार का आयोजन करने में गर्व अनुभव करते हैं। अनेक बार तो ऐसी शादियां तब भी होती देखी जाती हैं जब बलपूर्वक भगाई गई लड़की के यहां सन्तान हो चुकी हो। इस प्रकार इस प्रथा को हम औपचारिक ही मानेंगे। इस क्षेत्र की उपभाषा में 'समझायामो' के लिए 'डिचा' तथा सास के पांवों पर दूल्हे के द्वारा नमस्कार करते समय पैसे भेंट करने के लिए 'छाक्पेचा' कहा जाता है। अन्य स्थानों पर 'सास-नमस्कार' के लिए 'डोलङ्चिम' कहा जाता है।

पूह-नमगिया क्षेत्र की प्रथाओं पर तिब्बती प्रथाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथा इस क्षेत्र के लोगों के सम्बन्धी तिब्बत के गांवों में भी रहते हैं। प्राचीन काल से व्यापार-सम्बन्ध होने के कारण दुर्गम पहाड़ों के उस पार विवाह सम्बन्ध होना आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती। इस क्षेत्र की भाषा तिब्बती मिश्रित है।

हङरङ् में भागने के विवाह को 'नामाकूजा' (चोरी का विवाह) कहा जाता है। यद्यपि इस क्षेत्र में आबादी बहुत कम है परन्तु वनस्पति रहित यह क्षेत्र फैलाव की दृष्टि से विशाल है। इस घाटी के चारों ओर ऊंचे नंगे पर्वत हैं तथा वर्ष में एक ही फसल होती है जिसे बोने के के पश्चात् पकने में नौ मास लगते हैं। नाको, मालिङ् लियो, चोलिङ्, हाङ्गो, चांगो, श्यालखर तथा सुमरा इस क्षेत्र के प्रसिद्ध गांव हैं। स्पिति नदी इस क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती है। सांस्कृतिक दृष्टि से इस क्षेत्र को एक इकाई माना जा सकता है। इस क्षेत्र में नामाकूजा (चोरी का विवाह) लड़की को भगा कर सम्पन्न किया जाता है परन्तु यहां प्रायः वर-वधु को भगाने के लिए स्वयं नहीं जाता बल्कि उसके सहयोगी इस कार्य को सम्पन्न करते हैं। भगाने के पश्चात् लड़के के माता-पिता तथा मध्यस्थ (नामाचोलङ्) लड़की के माता पिता को मनाने के लिए उनके घर जाते हैं। वे अपने साथ छङ् (अनाज की शराब) तथा खतक (एक विशेष प्रकार का रेशमी कपड़ा जिसे पवित्र माना जाता है) ले जाते हैं जिन्हें भेंट करके लड़की के माता पिता को प्रसन्न किया जाता है। लड़की के घर पहुंच कर प्याले में शराब डाल कर तथा उस पर मक्खन का टीका लगा कर उसके पिता को पीने के लिए देते हैं। पहले तो सौ रुपये की राशि निकाल कर रख दी जाती है तथा इसके पश्चात् 'इज्जित' के रूप में जितनी भी राशि मांगी जाए, देनी पड़ती है। यदि लड़की की सहमति हो तो वर पक्ष के लोग 'समझायामों' के लिए अधिक उत्सुक नहीं रहते। लाहौल में भगाने की शादी को 'कूजी ब्याह' कहा जाता है।

विवाह का दूसरा प्रकार 'नामारेजा' है। यह सामाजिक रूप से स्वीकृत तथा

स-सम्मान विवाह का प्रकार है। इसमें लड़की का पिता वर-पक्ष की ओर से 'खतक' तथा 'छङ्' आदि भेंट करने के पश्चात् सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पूछ लिया जाता है। पिता लड़की की सहमति का ध्यान रखता है अतः वर पक्ष वालों को भी लड़की की राय जाननी पड़ती है। यदि लड़की सहमत हो तो विवाह (नामारेज़ा) की तैयारी हो जाती है। इस दशा में 'इज़ित' के पैसे तथा लड़की के लिए आभूषण पहले ही देने पड़ते हैं।

बरात (पग़लेन) का दिन लामा बताता है। बरात में वर के साथ बीस के लगभग व्यक्ति जाते हैं परन्तु यह संख्या निश्चित नहीं होती। सभी व्यक्ति घोड़ों पर सवार होते हैं। जब बरात गाँव में पहुंचती है तो बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां धूप ले कर खुले स्थान में आ जाती हैं। ये स्त्रियां तिब्बती भाषा में गाने गाती हैं। ये गाने प्रहेलिकायें अथवा समस्या-प्रधान कवितायें होती हैं जिनके उत्तर बरात में से कुछ व्यक्तियों को देने पड़ते हैं। इन गानों के उत्तर सब बराती नहीं दे सकते अतः इस कार्य के लिए प्रसिद्ध गायकों को बरात के साथ ले जाना आवश्यक सा होता है। इन गायकों को 'न्याओं' कहा जाता है। ये विशेष प्रकार का पहनावा पहने होते हैं। यह पहनावा प्रायः लाल रंग का ज़रीदार चोगा तथा एक विशेष टोपी होता है। इस बहस को यदि शास्त्रार्थ कहा जाए तो उचित रहेगा क्योंकि इसमें दर्शन, ज्ञान-विज्ञान की अनेक बातें पूछी गई होती हैं। बहस के समय बराती घोड़ों से उतर जाते हैं। अनेक बार यह बहस काफी लम्बे समय तक चलती है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में इसमें कभी कभी पूरा दिन लग जाता था और सन्तोषजनक उत्तर दे सकने में असमर्थ होने पर बरात को वापिस जाना पड़ता था। गीत के पश्चात् वधु-पक्ष की इन गायिकाओं को दस-पन्द्रह रुपये देने पड़ते हैं। इसके पश्चात् वे शिष्टाचारवश क्षमा-याचना करके वापिस चली जाती हैं और बरात आगे बढ़ती है। जब बरात वधु के घर के दरवाजे के पास पहुंचती है तो, पुराने रीति-रिवाज के अनुसार, फटे पुराने कपड़ों तथा जूतों को किसी ऊंचे स्थान पर लटका दिया जाता है ताकि बरातियों को नीचा दिखाया जा सके। यह प्रथा अब धीरे धीरे बन्द हो रही है और 'न्याओं-प्रथा' का विघटन हो रहा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि न्याओं द्वारा प्रश्नों के उत्तर निश्चित स्थान पर दिए जाते हैं। वहां पहले ही, मुङ्नम गाँव में प्रचलित प्रथा की भांति, पत्थरों के ढेरों से धीरे धीरे बरात आगे बढ़ती है। दरवाजे के पास पहुंचने पर बराती खड़े हो जाते हैं क्योंकि वधु की सहेलियों ने दरवाजा बन्द कर लिया होता है। वर पक्ष वाले उन्हें कुछ राशि देकर दरवाजा खोलने के लिए कहते हैं। यदि लड़कियां प्रसन्न हो जाएं तो जूतों व फटे-पुराने कपड़ों की मालायें हटा दी जाती हैं तथा दरवाजा खोल दिया जाता है, अन्यथा नहीं। जब दरवाजा बन्द होता है तो वर-पक्ष के लोग खतक[1] के साथ एक धागा बाँध कर दरवाजे के छेद से अन्दर डालते हैं, यदि भीतर बैठी स्त्रियों को राशि स्वीकृत हो तो वे दरवाजे को खोल देती हैं, नहीं तो अधिक धन देना पड़ता है। रात को नृत्य-गायन का कार्यक्रम होता है।

अगले दिन बरात विदा हो जाती है और घर आते समय 'लपचेस'[2], पुल तथा

1. एक सफेद रेशमी कपड़ा जो पवित्र तथा सम्मान-सूचक माना जाता है।
2. पर्वत-शिखरों पर दरों के पास पत्थरों व झण्डियों के कुछ ढेर इकट्ठे किए जाते हैं जिन्हें 'चोटियों के देवता' कहा जाता है तथा उधर से गुज़रते समय लोग देवता को भेंट चढ़ाते हैं।

नालों के पास वधु के भाई आगे बढ़ने से इन्कार कर देते हैं। उन्हें मनाने के लिए वर-पक्ष को कुछ राशि, पचास अथवा सौ रुपये तक, उन्हें देनी पड़ती है। इन स्थानों पर झण्डे चढ़ाए जाते हैं तथा बकरे की बलि दी जाती है। बरात की विदाई के समय लामा डमरू (दरू) तथा घण्टी (ड्रिलू) बजाता है।

लपचेस से चल कर वधु का भाई जितनी बार मार्ग में रूठता तथा आगे बढ़ने से इनकार करता है. उसे उतनी ही बार कुछ राशि दे कर मनाना आवश्यक होता है। उसके रुठने का ढंग भी अनोखा होता है। रुठते समय वह वधु के घोड़े की लगाम को खींच लेता है तथा प्रसन्न होने पर उस घोड़े पर से उतर जाता है। बरात के घर वापिस पहुंचने पर दरवाज़े पर लामा सत्तू का तीन कोने वाला तोरमा जिसे 'सौर' कहा जाता है, वर तथा वधु के सिरों पर घुमाता है और बाद में इस त्रिकोण वाली आकृति को आग में डाल देता है। इसका अर्थ भूत-प्रेतों को आग में जला डालना होता है। ज्यों ही बरात घर में प्रवेश करती है, दरवाज़े पर झट से बकरा काटा जाता है ताकि साथ आए भूत-प्रेत घर के भीतर प्रवेश न करें और प्रसन्न हो कर भाग जाएँ। विवाह के अवसर पर प्रश्नोत्तरों के लिए तिब्बती भाषा में लिखित एक पुस्तक 'ञरपे'[1] का महत्त्व-पूर्ण योगदान रहता है।

हङ्रङ् क्षेत्र में प्रचलित विवाह-प्रकार यहां की आदिम तथा विशिष्ट संस्कृति के परिचायक हैं। यहाँ विवाह के दस-पन्द्रह दिन के पश्चात् निमन्त्रित किए जाने पर वर वधु सहित अपने ससुराल जाता है। इस अवसर पर वर-वधु को बुलाने के लिए वधु की बहिन उसके घर जाती है। ससुराल में पहुंचने पर वर को सास के पाँवों पर कुछ राशि (पाँच रुपये तक) रखनी पड़ती है और 'जू' (राम-राम या नमस्ते) कह कर झुकना पड़ता है। इस क्रिया को 'छाकपेचा' कहा जाता है। शेष सम्बन्धियों को पैसे देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। जब 'छाकपेचा' हो रहा हो तो सालियां वर को धक्का देकर गिराने का प्रयत्न करती हैं।

इस क्षेत्र में केवल समीप के रक्त-सम्बन्धों को ही विवाह के लिए वर्जित समझा जाता है। ऐसे बच्चे, जो अविवाहित लड़कियों अथवा विधवाओं के यहाँ हो जाते हैं, 'कुमो' कहे जाते हैं। 'कुमो' को सामाजिक दृष्टि से किसी भी प्रकार से हीन नहीं माना जाता। लड़की होने की दशा में कुमो को माता की सम्पत्ति से तथा लड़का होने की दशा में पिता की सम्पत्ति से अपने भाग का अधिकार होता है परन्तु झगड़े की दशा में गाँव के गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा किया गया निर्णय सामाजिक रूप से मान्य होता है। यद्यपि मामा के लड़के अथवा लड़की से विवाह की प्रथा सर्वमान्य तथा आवश्यक सामाजिक नियम नहीं है परन्तु हङ्रङ् क्षेत्र में तथा कम या अधिक अन्य क्षेत्रों में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। ऐसा विवाह चर्चा का विषय नहीं होता।

'ञाओं' प्रथा इस क्षेत्र की सामान्य विवाह-पद्धति है। 'ञरपे' (ञर—शादी, पे—पेचा—पुस्तक) अर्थात् 'विवाह की पुस्तक' जिसकी प्रतियाँ प्रसिद्ध 'ञाओं' के

---

1. ञर—विवाह, पे—पुस्तक, अर्थात् विवाह की पुस्तक।

पास कई गाँवों में मिल जाती हैं, तिब्बती भाषा में लिखित व प्रकाशित ग्रन्थ है। इस में पूछे जाने वाले प्रश्न, उनके उत्तर तथा सम्पूर्ण विवाह-पद्धति का उल्लेख रहता है। लामा तथा 'ज़ोमो' (चोमों अथवा ज़ोमो—बौद्ध भिक्षुणियां) इन पुस्तकों से प्रश्नोत्तर याद करते हैं तथा अवसर आने पर श्रोताओं को चकित करते हैं। रोपा घाटी में 'टशिश' प्रकार की विवाह प्रथा में भी इस प्रथा के अवशेष विद्यमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तिब्बती विवाह-पद्धति तथा स्थानीय विवाह-परम्परा का समन्वित रूप 'टशिश' में समा गया था।

शादी में 'ज्याओं' अर्थात् विवाह-गायकों को बरात के साथ जाने से लगभग दस दिन पूर्व निमन्त्रित किया जाता है और उन्हें वाक्युद्ध के लिए विशेष रूप से तैयार करने हेतु शराब व शिकार भेंट किया जाता है। वे एक प्रकार से विवाह के विशिष्ट अतिथि माने जाते हैं। वधु के घर के पास पहुंचने पर जब उस गाँव की स्त्रियां उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए गाते हुए बरात की ओर आती हैं तो उन्हें प्रश्नों के निश्चित उत्तर देने के लिये आगे आना पड़ता है। वे प्रायः गाते हुए प्रश्नों के उत्तर गौरव तथा शालीनता से देते हैं।

'ज्याओं' की यह प्रथा तिब्बत की भी अपनी परम्परागत प्रथा नहीं है। इसके सम्बन्ध में तिब्बती धर्म-ग्रन्थ 'मणि-काबुम' में एक रोचक कथा आती है, जिसका सारांश इस प्रकार है :—

जब तिब्बत के राजा स्रोङ्सेन गम्पो गद्दी पर बैठे तो तिब्बत की दशा शोचनीय थी। चारों ओर अराजकता, बीमारी तथा भूत-प्रेतों का प्रभाव था। अज्ञानता चरम सीमा पर थी। उस समय सारे देश में कोई भी पढ़ा लिखा नहीं था और न ही देशवासियों की कोई अपनी लिपि थी। राजा ने अपने शासन को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से शिक्षा को महत्त्वपूर्ण साधन माना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने नालन्दा विश्वविद्यालय में अपने मन्त्री थोनमी (थोमिक) सम्भोट के नेतृत्व में सोलह तिब्बती युवकों का एक दल शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजा। यह दल नालन्दा में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् तिब्बत लौटा। इन विद्वानों में से ही बाद में एक व्यक्ति तिब्बत का मंत्री बना। पड़ोसी राजाओं से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने के उद्देश्य से उसने राजा का विवाह अच्छे घराने में कराने की बात सोची। सुयोग्य लड़की की तलाश में वह चीन जा पहुंचा। इस मन्त्री का नाम बोलन रिक्पा चन्द था। बोलन रिक्पा चन्द ने अनेक वर्षों तक चीन के रीति-रिवाजों का बड़ी गहराई से अध्ययन किया। रहन-सहन, खान-पान तथा भाषा-संस्कृति का अध्ययन करने के पश्चात् एक समय ऐसा आया जब उसने चीन के राजा को अपनी लड़की का विवाह तिब्बत के राजा के साथ करने के लिए मना लिया।

इस राजसी शादी में सर्व प्रथम चीन के रिवाजों के अनुसार इस प्रकार के गीतों के माध्यम से दोनों पक्षों की ओर से बहस हुई। इसके पश्चात् तिब्बत की विवाह-प्रथाओं में भी यह परम्परा घर कर गई। यहां के प्रचलित विश्वासों के अनुसार गुग्गल धूप का प्रयोग केवल भूत-प्रेतों के प्रभाव को कम करने के लिए किया जाता है तथा धूप व अगरबत्ती देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

तिब्बत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण किन्नर क्षेत्र के अधिकांश भागों में बरात के आने पर उसे गाँव के बाहर रोक लिया जाता है तथा ग्रोक्च[1] आग जला कर स्क्रोग्मो[2] करते हैं। देवता की शक्ति[3] आने पर देवता का ग्रोक्च् अपने हाथ से एक सफेद कपड़ा दूसरे ग्रोक्च् के पास देता है और वे दोनों इस कपड़े को तोरण की तरह मार्ग के मध्य फैला कर खड़े हो जाते हैं। इस तोरण के नीचे से ही हर बराती को लांघना होता है। इस समय अश्लील भाषा का प्रयोग वर्जित नहीं है क्योंकि यह माना जाता है कि यह भूत-प्रेतों को गाँव से दूर रखने के लिए किया जाता है।

कपड़े के नीचे से बरातियों के गुजरने के समय देवता के ग्रोक्च् (माली) के हाथ में एक काँटेदार झाड़ी भी रहती है। इस झाड़ी का स्थानीय भाषा में नाम 'बेकलिङ्' अथवा 'ब्रेकलिङ्' है। यह झाड़ी तीखे काँटों से युक्त होती है और जादू तथा भूत-प्रेतों के प्रभाव को दूर करने वाली मानी जाती है। देवता की शक्ति के कारण ग्रोक्च् यह जान जाता है कि मार्ग में भूत का प्रभाव किस व्यक्ति पर अधिक हुआ। यदि ग्रोक्च् को यह शक हो जाए कि अमुक व्यक्ति पर भूत का प्रभाव प्रतीत होता है तो वह कपड़े (तोरण) के नीचे से लाँघते समय बराती को बेकलिङ् से पीटता है। यह भूत के भगाने के उद्देश्य से किया जाता है। यह माना जाता है कि ब्रेकलिङ् की मार भूत को अच्छी नहीं लगेगी और वह वापिस लौट जाएगा। यह प्रथा निचार सब-डिवीजन के अनेक गाँवों में समाप्त-प्राय है परन्तु काल्पा व पूह सब-डिवीजनों के सुदूर गाँवों में वर्तमान समय में भी प्रचलित है। किन्नर क्षेत्र में गाँव के बाहर बीरान स्थलों तथा पर्वत-शिखरों पर रहने वाली आत्माओं को 'सावणी' देवियां अथवा 'कालियां' कहा जाता है। सावणी देवियों को 'योगिनियां' अर्थात् अवांछित आत्माएँ माना जाता है। बरात के आने अथवा अन्य शुभ कार्य हेतु एक गाँव से दूसरे गाँव में जाते समय सावणियों के साथ हो जाने की आशंका रहती है। विश्वास किया जाता है कि सावणी केवल देवियाँ या कालियां ही नहीं होतीं बल्कि उनके भाई व माता-पिता भी उनके साथ होते हैं तथा इस वर्ग के देवी-देवता संकोची तथा अधिक सम्वेदनशील होते हैं अतः यदि ग्राम-वासी कोई ऐसी अश्लील भाषा बोलें जो कि भाई बहिन न सुन सकते हों तो सावणी शर्म के मारे वापिस चले जाते हैं। यह एक आदिम विश्वास है जो केवल किन्नर-क्षेत्र में ही प्रचलित नहीं है बल्कि अन्य ऊँचे क्षेत्रों में भी इसका प्रचलन रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह इस क्षेत्र की प्राचीन संस्कृति का अवशेष है जिसका अध्ययन स्वतन्त्र विषय के अन्तर्गत करना युक्ति संगत रहेगा।

'ज्याओ' प्रथा के अन्तर्गत चर्चित बहस में सर्वप्रथम गुग्गल धूप के सम्बन्ध में पूछा जाता है। इस शास्त्रार्थ का स्थानीय नाम 'डोगला गोनपा' है। कहा जाता है कि जिस व्यक्ति ने तिब्बत के राजा के विवाह के अवसर पर इस शास्त्रार्थ में तिब्बत की ओर से भाग लिया था वह 'डोगला' नामक स्थान का निवासी था तथा उसका नाम

---

1. देवता का कृपापात्र जिस पर देवता की शक्ति का आरोपण हो जाता है।
2. देव-शक्ति आने पर प्रभावित व्यक्ति का प्रभाव के अन्तर्गत हिलना तथा देवता का सन्देश देना।
3. घरौनिङ्।

'गोनपा' था अतः इस बहस का नाम उसके सम्मान में 'डोगला गोनपा' पड़ गया। 'गोनपा' के वाक्चातुर्य के कारण तिब्बत की बरात का चीन में बहुत सम्मान हुआ था। इस अवसर पर पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर सहित कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं। प्रश्नों व उत्तरों की भाषा तिब्बती है परन्तु क्योंकि भाषा के लिखित व प्रचलित रूप में भिन्नता रहती है अतः सम्भव है उच्चारण-भेद के कारण शब्दों के रूप में परिवर्तन हो गए हों। यहाँ केवल इतना ही वाँछित है कि प्रबुद्ध पाठक वर्ग इस शास्त्रार्थ की एक झलक पाकर अपनी जिज्ञासा को शान्त कर सकें। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

प्रश्न-1. गुग्गुल गी दुत्पा शरदू सोड्वा दे चीई दोन लब।	पूर्व दिशा की ओर गुग्गुल की गन्ध (धूप) देने का क्या अर्थ है ?
उत्तर-1. शर छोक डीजा दुलवई छीर।	पूर्व दिशा की ओर जितने भी असुर व भूत-प्रेत हैं उनके अशुभ प्रभाव जो इस शादी में होंगे, कम करने के लिए।
प्रश्न-2. दिर छोक की ब्याओं मी ता छो।	इधर आए हुए तमाम आदमी व घोड़े आदि।
खा संग गी छालुक जिङा जाई।	कल आप लोगों की क्या वेश-भूषा थी ?
जाई की जई लुख चिङा जाई।	कल आप लोगों ने क्या खाया ?
डाङो यीङ्लुख चिङा जाई ?	आज सुबह किस प्रकार चले थे ?
विन्मो योङ्लुख चिङा जाई ?	दोपहर के समय आप किस प्रकार चल रहे थे ?
उत्तर-2. ने देर छोक मी ता छो।	हम इधर आए तमाम व्यक्ति व घोड़े आदि।
दङ् सुम यक फो थो न जोई ?	हम लोग (ने) जंगली, याक, हिरण की तरह ग्रस्त व्यस्त रात काटी।
गोइनी चङ्मो टपु ज्योन।	ओढ़ने के लिए शेरनी की खाल थी।
जाइनी लानी दुगी जा।	सुबह (इस भांति) प्रस्थान किया।
डा डों चङ्मो ई दुर डोई जह।	जैसे शेरनियां शिकार की तलाश (में जाती हैं)।
गिइमो गोवगी दिङ् डो जह	दिन के समय हमारी चाल आकाश में स्थिर चाल से चलने वाले गिद्ध जैसी।
छिमो वामोई जार डोई जह।	शाम के समय हमारी चाल (उन) चालाक लोमड़ियों की तरह जो चालाकी से अपने शिकार की खोज में घूमती हैं।

तत थाई सिकच् शाबुंग दीला तत ।	उसी प्रकार हम सब की निगाह भी लोमड़ियों की तरह ही इस आप की पवित्र भूमि पर लगी हुई थी।

इस प्रकार यह बहस आगे बढ़ती है और तब तक चलती है जब तक कि वधु-पक्ष की ओर से गाने वाले स्त्रियां या पुरुष पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हो जाते। किन्नर प्रदेश इस प्रभाव के अन्तर्गत कब और कैसे आया, इस सम्बन्ध में यद्यपि जानकारी बहुत कम है परन्तु इतना निश्चित है कि अति प्राचीन काल से इस क्षेत्र के निवासियों के विवाह-सम्बन्ध हिमालय के उस पार के लोगों से रहे हैं। यही नहीं, इस क्षेत्र के अधिकांश निवासियों के पूर्वज भारतीय क्षेत्र में आकर बसे हैं और वे अपने साथ उस क्षेत्र के रीति-रिवाज भी आवश्यक रूप से लाए होंगे। किन्नर क्षेत्र के मूल निवासियों की संस्कृति ने भी इसके रीति-रिवाजों को प्रभावित किया और देव-संस्कृति का क्षीण प्रभाव इस क्षेत्र में भी फैला। किन्नौर के उपरि क्षेत्र की दुर्गमता के कारण हङ्रङ् क्षेत्र के निवासियों के लिए अपनी प्राचीन परम्पराओं को सुरक्षित रखना कठिन नहीं था। तिब्बती क्षेत्र से व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण विवाह-सम्बन्धों का प्रसार अद्यतन उस क्षेत्र तक रहा परन्तु अब लामाओं के विद्याध्ययन हेतु तिब्बत में न जा सकने तथा भारत-चीन के सम्बन्ध कटु होने के कारण निश्चय ही इन प्रथाओं में परिवर्तन की सम्भावना है। हङ्रङ् क्षेत्र में भी किन्नौर के अन्य क्षेत्रों की भांति बहुपति विवाह प्रथा का प्रचलन है परन्तु इस क्षेत्र के निवासियों में मंगोल प्रजाति के रक्त व आकृति के कारण तथा सांस्कृतिक अन्तर के कारण प्रायः काल्पा से नीचे के क्षेत्रों के लोग इस क्षेत्र के लोगों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने से संकोच करते है। इस क्षेत्र में प्राचीन परम्पराओं को सुरक्षित रखने के लिए लामाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हङ्रङ् में वधु-पक्ष की ओर से प्रश्नोत्तर हेतु केवल गायिकाएँ ही गाँव के समीप खुले स्थान पर जाती हैं परन्तु पूह तथा रोपा क्षेत्रों में दोनों पक्षों की ओर से लामा आते हैं। अतः यह विश्वास किया जा सकता है कि तिब्बत से बौद्ध-धर्म के इस क्षेत्र में आने पर यह प्रथा भी लामाओं द्वारा इस क्षेत्र में लाई गई।

विवाहावसर पर प्रश्नोत्तर की प्रथा केवल किन्नर क्षेत्र में ही प्रचलित नहीं है। इससे मिलती-जुलती प्रथा उपनयन संस्कार जो हिमाचल के कई क्षेत्रों में विवाहासर पर ही सम्पन्न होता है, में पण्डित वर से चारों धामों की यात्रा आंगन में ही योगी का वेश बनवा कर करवाता है और विभिन्न प्रश्न पूछता है। चौपाल क्षेत्र में तथा सिरमौर के एक बड़े भाग में जहाँ मातृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था के अवशेष अब तक विद्यमान हैं तथा इसके अन्तर्गत वधु बरात ले कर वर के घर जाती है, वधु की बरात गाँव में पहुँचने पर वर-पक्ष की स्त्रियाँ गा कर अनेक प्रश्न, समस्यात्मक पहेलियां पूछती हैं और समुचित उत्तर मिल जाने पर ही बरात को आगे बढ़ने देती हैं। शास्त्रार्थ अथवा वाक्युद्ध की यह प्रथा प्राचीन काल में अपरिचित वंश के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते समय उसके बुद्धि-कौशल से परिचित होने के लिए प्रचलित रही होगी। 'भगाने का विवाह' जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है, भी वधु की रक्षा की परीक्षा के अन्तर्गत आता है। अब ये प्रथायें औपचारिकता मात्र रह गई हैं और इनका महत्त्व गौण हो

गया है। फिर भी संस्कृतियों के विकास के सोपानों का अध्ययन रुचिकर होता है और इन परम्पराओं का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है।

हारी :

किन्नर क्षेत्र में विवाह-प्रकारों के अन्तर्गत हम 'हारी' का वर्णन करना भी आवश्यक समझते हैं। जब कोई स्त्री विवाह के पश्चात् आयु के किसी भी भाग में अपने पति अथवा बहुपति विवाह प्रथा के अन्तर्गत पतियों से, असन्तुष्ट हो तथा नए पति के यहां जाना चाहती हो तो नए पति को पहले पति द्वारा मंगनी, विवाह आदि पर खर्च किया हुआ सारा धन उसे 'इज्जित' के रूप में देना पड़ता है। इज्जित के रूप में पहला पति कुल खर्च किए हुए धन की दुगनी अथवा इससे भी अधिक राशि नए पति से प्राप्त कर सकता है। जब तक पहले पति से हिसाब न हो जाए, स्त्री विधिवत् रूप से नए पति की पत्नी नहीं हो सकती। 'हारी' इस क्षेत्र में विवाह की भांति प्रचलित सामाजिक प्रथा है अतः किसी भी दृष्टि से इसे हेय नहीं माना जाता। इस प्रथा के सम्बन्ध में अनेक लोकगीत तथा लोक-कथाएं इस क्षेत्र में यत्र-तत्र प्रचलित हैं। 'हारी' शब्द 'हरण' से बना है।

हारी का रुपया पहले पति पर निर्भर करता है। धन के सम्बन्ध में निर्णय हो जाने पर पति तथा पत्नी तलाक लेते हैं। तभी पत्नी अपने पति को छोड़ सकती है। जब तक तलाक न हो, अन्य स्थानों पर विवाह की सम्भावना नहीं होती। 'हारी' को 'हार' भी कहा जाता है।

किन्नर क्षेत्र के ऊपरी भागों में विवाह के समय शर्तनामा (बीथोपोनो) लिखा जाता है, हारी की दशा में उसे नष्ट कर दिया जाता है। बीथोपोनो में यह लिखा रहता है कि यदि पत्नी को किसी प्रकार की कठिनाई हो अथवा ससुराल के लोग ठुकराएं तो उस दशा में सम्पत्ति का कौन सा भाग उसे कठिनाई के दिनों में मिलेगा। इस सम्बन्ध में एक दो खेत तथा मकान का कोई कमरा उसके नाम लिख दिया जाता है।

हारी की दशा में लिखित शर्तनामा (बीथोपोनो) समाप्त समझा जाता है। बीथो-पोनो की प्रथा किन्नौर के उपरि-क्षेत्रों में अधिक है परन्तु निचले क्षेत्रों में इस सम्बन्ध में लोग उदासीन हों, ऐसी बात नहीं है। शर्तनामा लिखित रूप में न होने पर भी गांव के गण्यमान्य व्यक्तियों के सम्मुख विवाहावसर पर ही यहां भी सम्पत्ति के भाग को, कठिनाई अथवा अनबन की दशा में, दिए जाने के सम्बन्ध में निर्णय ले लिया जाता है और ये व्यक्ति ही समस्याओं के उत्पन्न होने पर समझौता कराने में सहायता करते हैं। पढ़ाई-लिखाई का प्रचार हो जाने पर अब लोग लिखित शर्तनामा अधिक पसन्द करने लगे हैं। जब स्त्री किसी अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह कर ले तो उसका अधिकार लिखित सम्पत्ति पर समाप्त हो जाता है। हारी की दशा में नए पति द्वारा विवाह का खर्च चुका दिए जाने पर या तो दहेज की सारी वस्तुएँ पत्नी के साथ दूसरे घर में चली जाती हैं अथवा उस की इच्छानुसार उनका मूल्य आँक लिया जाता है। सन्तान होने की दशा में न तो सामान्यतया सन्तान उसके साथ भेजी जाती है और न दहेज की वस्तुएँ ही वापिस करने की प्रथा है। अनेक बार सन्तान का भी बँटवारा कर लिया जाता है परन्तु यह सामान्य नियम नहीं है। वास्तव में हारी के समझौते के सम्बन्ध में कोई सर्वमान्य

नियम नहीं हो सकते क्योंकि यह मुख्यतया दो पक्षों का निर्णय होता है अतः इसमें शर्तें परिस्थिति के अनुसार ही रहती हैं।

हारी मुख्यतः निम्न कारणों से होती है :—

1. यदि कोई पति पहली पत्नी के रहते हुए अन्य पत्नी ले आए।
2. पत्नी को घर में यथोचित सम्मान का अभाव।
3. पति से अधिक सुन्दर पुरुष से पत्नी का प्रेम होना तथा विवाह की इच्छा।
4. पति के अवैध रूप से किसी अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध होना।
5. पत्नी के विवाहेतर सम्बन्ध तथा ससुराल में अप्रिय वातावरण, इत्यादि।

तलाक विवाह-सम्बन्धों का अन्तिम चरण है। इसका वर्णन करने से पूर्व इस क्षेत्र में विवाह के अवसर पर दिए जाने वाले कपड़ों व गहनों का संक्षिप्त विवरण देना भी उपयुक्त होगा। इस क्षेत्र में विवाहावसर पर निम्नलिखित कपड़े व गहने वधु को दिए जाते हैं :—

1. दोहड़ू खमरू दार—कढ़ाई किया हुआ ऊनी कम्बलनुमा वस्त्र जिसे स्त्रियां धोती की भांति पहनती हैं।

2. गाची—दोहड़ू के ऊपर कमर में लपेटा जाने वाला वस्त्र।

3. टोपरू से छानली—पट्टू (कई स्थानों पर देते हैं)।

4. बिजरयालू दोहड़ी।

5. पेद टेपिङ्—सीधी टोपी जो काले रंग की होती है और जिस पर लाल और सफेद रंग का कपड़ा चढ़ा होता है। इस टोपी पर चमकाऊ (फूल) लगा रहता है।

6. गुलू जुट्टी—चाँदी का एक गोल गहना जिसको पुरान्दे के साथ बाँधा जाता है।

7. बालू—नाक का गहना।
8. तनौले—माथे पर बालों के साथ लगाया जाने वाला गहना।
9. डामगे—चान्दी का गहना जो बालों को पिछली ओर खींच कर रखता है।
10. कौन्ताई—कानों की बालियां।
11. जुमकू—कानों के झुमके।
12. काण्टा—कानों का गहना।
13. लौंग (सोने का)—नाक का गहना।

14. खुण्डोच—नकफौंस जो नाक के निचले भाग में इधर उधर लगाया जाता है।

15. बलाक—सोने की पत्तियां जो खुण्डोच की तरह लगाई जाती हैं।

16. तरमोले—सोने के गहने जो गले में हार की तरह डाले जाते हैं।

17. लिक्खो—गले का चांदी का गहना।

18. बीत्री—बीत्री भी चाँदी की होती है और इसके बीच चाँदी का रुपया पिरोया गया होता है।

19. चन्द्रहार—गले में डाला जाने वाला अर्द्ध-चन्द्रमा की भांति का हार।

20 टुङ्मा—हार की तरह डाला जाने वाला चाँदी का गहना।

21. पाटिक—चाँदी का पतला सा गहना।

22. टोरो या धागलो—दोहड़ के साथ का गहना।

23. शाङ्लियां—डिगरा और डोमोक्च को मिलाने वाले सांकल।

24. मुन्दी—हाथ की अंगूठी।

25. वाङ्पोले—पांव की उंगलियों की अंगूठियां।

26. चाक—सिर का गहना।

27. सुनङ्नो—सोने का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है, इत्यादि।

शिङ टग टग :

विवाह पवित्र बन्धन होता है परन्तु जब गृहस्थी में झगड़े-बखेड़े हो जाते हैं तो पति-पत्नी के सम्बन्धों में कटुता आ जाती है जिसके परिणाम स्वरूप हारी और तलाक आवश्यक हो जाता है। हारी का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। हारी का निर्णय होते ही निर्णायकों के सम्मुख पति तथा पत्नी एक सूखी लकड़ी, जो लगभग सात-आठ इंच लम्बी होती है, दाएं हाथों से इकट्ठे पकड़ते हैं और तोड़ कर अपने पीछे की ओर फैंक देते हैं। यह लकड़ी 'शुर' की होती है। तलाक के लिए इस क्षेत्र में पर्यायवाची शब्द 'शिङ् टग टग' (लकड़ी तोड़ना) अथवा 'शिङ् चगमिग' है। कहा जाता है कि 'शिङ् टग टग' के पश्चात् प्राचीन काल में अलग होने वाले पति-पत्नी एक दूसरे की ओर घृणा से थूकते भी थे पर अब केवल 'लकड़ी तोड़ना' ही पर्याप्त समझा जाता है।

सन्थालों में तलाक की प्रथा को 'सकम-अरक' कहते हैं जिसका अर्थ 'पत्ता फाड़ना अथवा तोड़ना' होता है। इसमें 'साल' वृक्ष के पत्ते को पति-पत्नी सारे गाँव के लोगों के सामने तोड़ कर दो टुकड़ों में विभक्त करते हैं। लाहुल में 'ऊन का धागा' तोड़ कर तलाक लिया जाता है।

सारांश यह है कि किन्नर क्षेत्रीय विवाह, हारी तथा तलाक की प्रथायें आकस्मिक रूप से विकसित नहीं हुई हैं बल्कि उनका उद्भव व प्रचलन अति प्राचीन संस्कृति के साथ सम्बन्ध रखता है। वर्तमान काल में प्रचलित विवाह-प्रथायें प्राचीन प्रथाओं के अवशेष हैं जिनका अध्ययन संस्कृति के महत्त्वपूर्ण तन्तुओं में पुनः तारतम्य स्थापित करने के लिए किया जाना आवश्यक है। इस क्षेत्र की विवाह-प्रथायें नृतत्त्व-शास्त्रीय तथा लोक-साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि शोध-कर्ताओं के सम्मुख 'किन्नर-किरात', 'सुर-असुर', 'आर्य-अनार्य', 'आग्नेय-मंगोल' तथा 'मोन-ख्मेर एवं कोल' संस्कृतियों के सम्बन्ध में जो प्रश्न उत्पन्न हुए हैं उन पर भी अनिवार्य सामग्री प्रस्तुत करती हैं। हिमालयी क्षेत्र की संस्कृति इतनी विविधता तथा

रहस्यमयता लिए हुए है कि इस में प्रागैतिहासिक कालीन अवशेष अब भी सुरक्षित तथा विद्यमान हैं। स्पीति में तलाक के समय धागा बीच में आग जला कर तोड़ा जाता है तथा पुराङ्ग में बलपूर्वक विवाह की प्रथा अब भी प्रचलित है। तिब्बत की विवाह-प्रथाओं का इस क्षेत्र की विवाह पद्धतियों के साथ पर्याप्त साम्य है। सिक्किम, आसाम तथा टिहरी-गढ़वाल के उपरि-क्षेत्रों में प्रचलित विवाह-प्रकार तथा बहुपति प्रथा-प्रधान क्षेत्रों में प्रचलित शादी की प्रथायें इस दिशा में तुलनात्मक अध्ययन की महत्त्व-पूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती हैं जिनके लिए जिज्ञासु को गहन अध्ययन तथा सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। हिमालय के इस सुदूर क्षेत्र की विवाह-प्रथायें जहां रोचक व नित नवीन हैं, वहां वे प्राचीन संस्कृति का अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग हैं और उन से इस क्षेत्र का जो इतिहास प्रकाश में आता है वह सर्वथा अलिखित तथा अछूता है, अतः अपने में मूल्यवान है।

मृत्यु सम्बन्धी संस्कार :

अन्य संस्कारों की भांति किन्नर-समाज में मृत्यु सम्बन्धी संस्कारों में भी विविधता मिलती है। इन्हें मुख्यतः दो वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. निचले किन्नौर से सम्बन्धित संस्कार तथा,
2. उपरि-किन्नौर से सम्बन्धित संस्कार।

मृत्यु के पश्चात् आत्मा पहाड़ों पर चली जाती है पर उन लोगों की आत्मा जो महान् रहे हों, उन पहाड़ों को पार करके किसी अच्छे स्थान पर चली जाती है, ऐसा विश्वास है। रल्दङ् (रल्डङ्), जो किन्नर कैलाश में साङ्ला की ओर स्थित है किन्नरों का स्वर्ग है। सभी आत्माओं को पानवी गाँव से ऊपर के पहाड़ों में, जिस स्थान को 'कुमशूङ्रिङ्' (कुछ लोग कुमशिक्रिङ् भी कहते हैं) कहा जाता है तथा जिस का अर्थ 'भुलावे वाली चट्टान' है, जाना होता है। 'कुम' का अर्थ 'भ्रम अथवा सिरहाना' होता है और 'शूङ्रिङ्' सम्भवतः शिक्रिङ् या शुक्रिङ् का अपभ्रंश हो सकता है, जिसका अर्थ है—शृंखला या चट्टान। यहां सब आत्माएं तब तक रहती हैं जब तक उन्हें भगवान का दूसरा आदेश नहीं मिल जाता।

कहा जाता है कि मूरङ् गांव का एक व्यक्ति रोहडू की तरफ से भेड़ों के साथ पहाड़ों को पार करता हुआ कभी कुमशूङ्रिङ् स्थान पर पहुंच गया। वह थका हुआ था, अतः उसे नींद सी आने लगी। उस ने अपने पांव के पास से ऊपर को जाती हुई सीढ़ियां देखीं। उसे इस बात पर बहुत अचम्भा हुआ कि यह सब क्या है। वह बेकार तो था ही, इस लिए उन सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगा तो उस ने दूरी पर एक फाटक देखा। उसने उस फाटक को धक्का दे कर खोला तो अन्दर कुछ लोग नृत्य कर रहे थे। दूसरे कुछ लोग उन्हें किनारे से एक बड़े मकान में बैठ कर देख रहे थे पर उस समय उसे उन लोगों में से कोई परिचित नहीं दिखाई दिया। ध्यान से देखने पर उसने पाया कि नाचने वालों में सब से आगे चंवर अपने हाथ में लिए हुए उसका बड़ा भाई नाच रहा था। अब उस से फाटक के बाहर न रहा गया। वह अन्दर आ गया और अपने भाई से बात करने के लिए व्याकुल हो उठा।

जब वह अन्दर आया तो सारी आत्माएं अपने अपने नाक से कुछ सूंघने लगीं और अपनी (किन्नौर की) भाषा में कहने लगीं कि कहीं से कच्चे मांस की गन्ध आ रही है। सब ने ध्यान से देखा तो उस आदमी का पता चल गया। इसके पश्चात् उन आत्माओं ने उसे पकड़ा और बल पूर्वक बाहर निकाल दिया। फाटक के बाहर आने पर उसे अपनी स्थिति का भान हुआ तो पता चला कि उसके सामने तो एक बहुत बड़ी लाल ढांक है, वहां सीढ़ियां तो कहीं भी नहीं थीं। जब वह कुछ दिनों बाद अपने घर पहुंचा तो उसे पता चला कि उसके भाई को गुजरे हुए आठ दिन हो गए थे।

मृत व्यक्ति के नाम पर मूड़ी तथा पोल्टू फुल्याच आदि त्यौहारों में क्रियाकर्म करने के उद्देश्य से बांटे जाते हैं। क्रियाकर्म फुल्याच में ही होता है, इस प्रकार शोक की अवधि कम या अधिक एक वर्ष हो जाती है। इस अवधि में फूल पहनना तथा मेला लगाना वर्जित होता है। पूह में यह प्रथा है कि मृत व्यक्ति के नाम पर एक मेले में पोल्टू आदि दिए जाते हैं और जब वे लामा को दिए जाते हैं तो गांव के युवा लड़के-लड़कियां उन्हें झपट कर खा लेते हैं, इसे बुरा नहीं माना जाता।

मृत व्यक्तियों के नाम पर गांव के पहाड़ की ऊंची चोटी पर 'दुम शेखर' (शिखरों का समूह) बहुत से पत्थरों को इकट्ठा करके चबूतरे के आकार में बनाए जाते हैं। सम्भवतः ये इस लिए बनाए जाते हैं कि मृत व्यक्ति का नाम देर तक याद रहे। इन्हें मुख्यतः फुआल (भेड़ बकरियां चराने वाले) लोग बनाते हैं। जिस दिन उन्हें बनाया जाता है उस दिन वहां पोल्टू आदि बना कर खाए जाते हैं। 31 अक्तूबर, 1965 के दिन हम चगांव के ऊपर के पहाड़, जिसकी ऊंचाई लगभग 13000 फुट है, घूमने के लिये गए थे, वहां कई दुम-शेखार देखे। एक शेखार पर कन्घी पड़ी हुई थी, वह कुछ टूटी हुई थी, बाद में पता चला कि वह शेखार किसी स्त्री की याद में बनाया गया था। इन शेखारों पर 20 भादों को फुआल लोग फुल्याच मनाते हैं। वे खूब पोल्टू खाते तथा घण्टी (शराब) पीते और किलकारियां मारते हैं। बताया जाता है कि हर गांव के ऊपर चोटियों पर सदियों पुराने शेखार हैं जो कभी न तो गिरे न किसी ने गिराए। इन शेखारों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। सुना जाता है कि सतरहवीं शताब्दी में रामपुर बुशहर में एक राजा हुआ जिसने सारी चरागाहों को पशुओं के स्वास्थ्य की दृष्टि से गांव वालों में बांट दिया। इसके लिए वह हर गांव के ऊपर के पहाड़ पर स्वयं गया और इस याद में उस ने वहां कुछ शेखार बनवाए। कई शेखार तो शायद उस समय के भी हों, पर इनकी संख्या बहुत नहीं हो सकती। इस क्षेत्र में यदि किसी की मृत्यु प्रातः ही हो जाये तब तो उसे दोपहर के बाद जला दिया जाता है पर उस के बाद मरने पर शव को दूसरे ही दिन जलाते हैं। उस रात सारे सम्बन्धी इकट्ठे होते हैं तथा उस रात को 'दुम रातिङ्' अर्थात् 'इकट्ठा होने की रात' कहा जाता है। मुर्दे को एक बड़े बर्तन जिसे 'लम कुन्याल' कहते हैं, के ऊपर पकड़ कर नहलाया जाता है और सफेद रंग के कपड़े में सी दिया जाता है। 'दुम रातिङ्' मृत्यु के बाद की दो रातें मानी जाती हैं। इनमें सगे सम्बन्धी घर वालों को समझाते हैं कि शोक नहीं करना चाहिए।

मुर्दे को दो व्यक्ति उठा कर श्मशान घाट ले जाते हैं। उसे एक बड़े तख्ते पर,

टांगें घुटनों से पीछे करके, चार खूंटों के सहारे बैठा सा दिया जाता है। मुर्दे की टांगें घुटनों पर से मोड़ देने के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि यदि उस की टांगें सीधी रखी जाएं तो उसका भूत उस के शरीर में प्रवेश कर जाता है और वह खड़ा हो सकता है। लोग इस प्रकार के भूत से बहुत डरते हैं।

यहां यह विश्वास है कि मृत व्यक्ति का कफन काफी लम्बा होना चाहिए। जब मृत व्यक्ति को श्मशान घाट ले जाया जाता है तो मार्ग में दो व्यक्ति उसके आगे 'राम रानी' का एक कपड़ा टेढ़ा फैला कर चलते हैं। इस कपड़े को 'ओम काफरा' अर्थात् 'रास्ते का कपड़ा' कहा जाता है। इसका अर्थ मृतक की आत्मा को श्मशान-घाट का मार्ग दिखाना होता है। इस कपड़े को जलाया नहीं जाता। किसी की मृत्यु के दस, बारह या इससे अधिक दिन तक घर में शोक तो रखा जाता है पर मृतक के नाम पर दान आदि नहीं दिया जाता। जब अपनी सुविधा हो और सामान जुटाया जा सकता हो तो घर का मालिक सभी गांव वालों तथा सम्बन्धियों को खाने तथा शराब पीने पर बुलाता है। इस दिन को स्थानीय भाषा में छण्ट्यामो (क्रिया-कर्म का दिन) कहते हैं। रात को गांव के लोग तथा सम्बन्धी इकट्ठे हो जाते हैं और मेले के आरम्भ में शराब पीकर गाना गाते हैं। इस मेले में सबसे पहले शोक गीत गाया जाता है, बाद में दूसरे किसी भी प्रकार के गीत गाए जा सकते हैं। ये गीत इस लिए गाए जाते हैं ताकि घर वाले मृत व्यक्ति के शोक को भूल जाएं।

तिब्बत में मृतक की खोपड़ी को लामाओं द्वारा विशेष अवसरों पर भोजन आदि खाने के लिए काम में लाने के उद्देश्य के पीछे भी पितरों की आत्माओं को डर के कारण प्रसन्न करने का भाव निहित है। लामा किन्नर-क्षेत्र के उपरि-भागों में मृतक को शिखा से पकड़ कर उसके कान में तीन बार 'फोआ' कहता है। वाल्टर हट्चिन्सन तथा वाडेल[1] के अनुसार यह प्रथा तिब्बत में आत्मा को मार्ग दिखाने के उद्देश्य से ही प्रचलित है। उनका कथन है कि मृतक को वहां लामा के आने तक छूआ नहीं जाता तथा उसके आने पर सारे खिड़कियां तथा दरवाजे बन्द कर दिए जाते हैं। लामा मृतक के सिर की ओर बैठता है और मन्त्रों द्वारा आत्मा को बाहर जाने का मार्ग दर्शाता है। वह अपनी उंगलियों से मृतक के बालों को झटके देता है। इस प्रकार यह विश्वास किया जाता है कि वह आत्मा को शरीर से बाहर निकलने का मार्ग बता रहा है। यदि इन झटकों से बाल उखड़ जाएं और खून की कुछ बूंदें निकल पड़ें तो शुभ शकुन माना जाता है। किन्नौर में यह प्रथा तिब्बती प्रथा का ही प्रतिरूप है। बर्मा की कुछ जातियों में जब मृतक को जला कर लोग घर आते हैं तो परिवार का वृद्ध व्यक्ति सबकी कलाइयों में धागे अथवा रस्सी बाँध देता है ताकि उनकी आत्मा उनके शरीरों से न भाग जाए।[2] चीन में यह विश्वास किया जाता है कि जब पूर्वज अप्रसन्न हों तो कार्य में

---

1. Customs of the World—Edited by Walter Hutchinson with an Introduction by A. C. Haddon, Pp. 570-571.
2. Golden Bongh—J. G, Frazer. 'Taboo and Paril of Soul', Part II, Page 51.

असफलता मिलती है, वहां के देवता कभी जीवित नायक रहे होते हैं। कुछ आदिम जातियों में ये विश्वास भी प्रचलित है कि मृतक को जन-मार्ग से श्मशान घाट नहीं ले जाया जाता बल्कि ऐसे रास्ते से ले जाना ठीक समझा जाता है जहां से लोग नहीं जाते हों, क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि इस प्रकार आत्मा घर आने में कठिनाई अनुभव करेगी और लौट नहीं सकेगी[1]। स्काट लैण्ड में मृतक को घर से निकालने पर सारी कुर्सियों को उल्टा कर रखने की प्रथा है क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि ऐसा न करने से आत्मा घर से बाहर नहीं जाती[2]।

किन्नर-क्षेत्र के अनेक त्यौहारों में पितरों की तुष्टि के लिए पोल्टू आदि बांटे जाते हैं तथा फुल्याच् मेले में तो 'गितकारेस' इस प्रकार के गीत गाते हैं जिनके द्वारा आत्मा को 'रल्डङ्' से वापिस बुलाया जाता है तथा उसे उसके परिजनों द्वारा खाने पीने की वस्तुएं दी जाती हैं। इन वस्तुओं को मृतक की ओर से गितकारेस ही प्राप्त करते हैं और मृतक की आत्मा को दिए जाने वाले शराब को यही लोग पी जाते हैं। एक ऐसे गीत के सम्बन्ध में चगांव में गितकारेसों के मुखिया ने बताया था कि इस गीत को विशेष अवसर के अतिरिक्त नहीं गाया जा सकता क्योंकि इससे आत्माएं इकट्ठी हो जाती हैं। गाँव के बीच तथा घर के अन्दर इस प्रकार के गीत गाना बड़ा अपशकुन माना जाता है।

मृतकों के शोक-दिवस पर केवल प्रथम गीत ही शोक से सम्बन्धित होता है। उसमें घर के पत्थरों, लकड़ियों से पूछा जाता है कि क्या उन्होंने यम राज (शौंराजस) के निमन्त्रण के सम्बन्ध में परिवार के लोगों को पहले नहीं बताया ! इस गीत में यमराज से प्रार्थना की जाती है कि वह रल्डङ् का दरवाजा बंद कर ले ताकि वहां कोई भी व्यक्ति न जा सके। लियो में एक देवता है जिसे 'तालङ्सा' कहा जाता है। इसका ग्रोक्च् कहता है कि उसके पास रल्डङ् की चाबी है और यदि वह अप्रसन्न हो जाए तो 'रल्डङ्' का दरवाजा खोल देगा जिससे बहुत लोग मर जाएंगे।

मृतकों के नाम पर चबूतरे (शेखार, शकरी, कोटङ्) आदि बना कर उन पर झण्डे चढ़ाना भी आत्माओं को प्रसन्न करना है। ये चबूतरे पर्वत की चोटियों पर होते हैं।

जब मृत व्यक्ति को श्मशान घाट ले जाया जाता है, उसके कोई आध घण्टे बाद रोटी को किसी दाल या अन्य सब्जी आदि के साथ मिला कर छत के ऊपर फैंका जाता है। इस क्रिया को 'थूनिङ्' अर्थात् कौओं का 'दाल रोटी को मिलाकर उठाना' कहते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि रोटी कव्वों के द्वारा मृत व्यक्ति की आत्मा को प्राप्त हो जाती है।

---

1. Primitive Culture—Edward B. Tylor, LL. D., F. R. S. Vol. II, Pp. 118-119.
2. Ethnology in Folk lore—George Lawrence Gomme, 1892, Page 120.
3. Ibid—Quoting Folk lore Record, ii, 214.

जिस दिन मृत व्यक्ति को जलाया जाता है उस शाम का भुने हुए जौ या गेहूं के आटे में घी मिलाया जाता है और उसे किसी मिट्टी के बर्तन में अंगारे डाल कर एक लकड़ी के तख्ते पर रख देते हैं जिस से उस से धूआं उठने लगता है। इस धूएं के सम्बन्ध में विश्वास है कि वह मृत व्यक्ति की आत्मा का भोजन होता है। यह कार्य घर के बाहर ही किया जाता है। इस के बाद घर में शोक रहता है और जब कोई सम्बन्धी आता है तो घर की स्त्रियां रोने-धोने लगती हैं। वे रोना बन्द करने पर मुंह धोती हैं, बाकी कोई क्रिया नहीं की जाती।

यूला गांव में यह प्रथा है कि देवता द्वारा नियुक्त पन्द्रह-सोलह व्यक्ति जो देवता के कारदार भी होते हैं, फुल्याच के पहले दिन ही सन्थङ् में बैठ जाते हैं और दिन में एक पुस्तक से, जिसमें एक गीत टांकरी लिपि में लिखा हुआ है, उनमें से एक व्यक्ति पढ़ कर गाता है तथा दूसरे बाद में उसका अनुसरण करते हैं। इस बीच मृत व्यक्ति के घर वाले उनके सामने बिछाई गई चादर में पोल्टू, हलवा तथा पूड़ी आदि रखते जाते हैं और गाना समाप्त करने के बाद, यदि वे चाहें तो उसे वहीं खा सकते हैं या अपने घर बांट कर ले जा सकते हैं। कई गांवों में यही क्रम मरने के तीन वर्ष बाद तक चलता है पर अन्य कुछ में एक ही वर्ष में शुद्धि हो जाती है।

यूला में यदि कोई व्यक्ति फुल्याच के बाद मरे तो अगले फुल्याच तक क्रिया-क्रम नहीं होता। शोक को कम करने के लिए बच्चों को बीच में 'खाए' (खाने के लिए भोजन) दिया जाता है जिस से कुछ वस्तुओं को इस्तेमाल करने की छूट हो जाती है। 'खाए' एक ही बार दिया जाता है, भले ही बाद में 'छण्ट्यामो' कितनी देर के बाद हो। कई लोग बीशू को भी छण्ट्यामो मना लेते हैं परन्तु उस दिन गितकारेस नहीं होते।

रोपा गांव में क्रिया-कर्म का समय निश्चित नहीं होता। जब भी रोपा कूहल की सफाई की जाती है, मृतकों के परिवारों को पितरों के नाम पर प्रत्येक व्यक्ति को एक एक पोल्टू बांटना पड़ता है।

स्पीलो तथा कानम गांवों में मृतक का क्रिया-कर्म (छण्टयामो) करने की तिथि का निश्चय नहीं किया जाता। मृतक के नाम पर किसी भी समय दान दिया जा सकता है। साधारणतया आठ दिन के पश्चात् लामा द्वारा क्रिया-कर्म सम्बन्धी शुद्धि कर दी जाती है। परिवार को शुद्ध करने के उद्देश्य से लामा 'सङ्' पढ़ता है। लामा क्रिया-कर्म सम्बन्धी अनुष्ठान करता है तथा उस आयोजन को 'छोत्पा' कहा जाता है। लामा उस दिन धर्म-पोथी पढ़ता है तथा वह मृतक व्यक्ति का नाम एक कागज़ पर लिख कर उसे सब के सामने जला देता है। उस समय से यह विश्वास किया जाता है कि मरने वाला व्यक्ति सचमुच ही मर गया। लामा के इस कार्य को 'शुगू लामा' (शुगू-कागज़ लामा-करना) अर्थात् 'कागज़ पर लिख कर जलाना' कहा जाता है।

इस के पश्चात् लामा सात सप्ताह तक मृतक के गुज़रने वाले दिन (सप्ताह में एक बार) उस के घर में जा कर पोथी (छोस) पढ़ता है। इस प्रकार से पढ़ने को 'जा सिलमा' (जा-बार, सिलमा-पढ़ना) कहा जाता है। सात सप्ताह के पश्चात्

गाँव के लामा तथा जोमो इकट्ठे हो कर सारी पोथी को पढ़ कर समाप्त करते हैं और घर वाले उन्हें भोजन खिलाते हैं।

जिस दिन कोई व्यक्ति गुजरता है उसी दिन लामा 'खान्मा' (ज्योतिष) के अनुसार किताब देख कर यह हिसाब लगाता है कि मृतक का अगला जन्म कहाँ होगा और उस के कल्याण के लिए क्या किया जा सकता है ! लामा को यदि ऐसा प्रतीत हो कि मृतक का अगला जन्म किसी न्यून योनि में होगा तो वह घर वालों को कुछ पूजा पाठ बताता है और दान-पुण्य भी कराता है। लामा के बताने पर कुछ लोग अपने पूर्वजों की मूर्तियाँ भी बनवाते हैं।

छित्कुल गांव में शेटङ् मेला में, जो 20 सावन को होता है, मृतकों के परिवारों के लोग फुआलों अथवा कण्ढे से फूल लाने वालों के पास पहाड़ की चोटी पर मृतकों के नाम पर पोल्टू आदि चढ़ाने के लिए कण्ढे में भेज देते हैं। इस प्रकार की प्रथा प्रायः सारे किन्नर-ग्रामों में है।

पूह में मृतक के नाम पर तीन वर्ष तक फुल्याच आदि त्यौहारों में पोल्टू बाँटे जाते हैं। 'साना पन' (मृतक की थाली) पर सारी वस्तुएं मृतक के लिए सजा दी जाती हैं जिस का शिम्बू (आत्मा) आकर उन्हें अदृश्य रूप से खाता है। बाद में इन वस्तुओं को हरिजन तथा बच्चे उठा लेते हैं। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण त्यौहारों के अध्याय में दिया गया है।

गन्थुल घाटी तथा कानम क्षेत्र में मृतक के लिए 'छोत्पा' तक घर में बनी हुई सारी वस्तुएं खाने के लिए एक कोने में रखे गए पत्थर पर परोसी जाती हैं। 'छोत्पा' के दिन इस पत्थर को बदल दिया जाता है तथा उसे फैंक कर नया पत्थर वहाँ पर रखा जाता है। इस अवसर पर मृतक के लिए समय समय पर भोजन परोसा जाता है। वर्ष के चार मेलों 'शिरकिन', 'मिन्थोको', 'माने' तथा 'ऊ रू' के समय मृतकों के नाम पर पोल्टू बांटे जाते हैं जिन्हें 'आतिङ्' कहा जाता है।

फुल्याच में 'शकरी' पर झण्डा भी चढ़ाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग शकरी बनाना आवश्यक होता है। एक ही शकरी पर सब के झण्डे नहीं चढ़ाए जाते। मृतक के लिए उसके पसन्द की वस्तुएं भेंट की जाती हैं जिन्हें बजन्तरी तथा उपस्थित लोग खाते हैं। किसी परिजन की मृत्यु के समय भी परिवार को सहायतार्थ अनाज बांट कर दिया जाता है इसे 'तोन्मो द्रू' (तोन्मो-मृत व्यक्ति के खाने का, द्रू-अनाज) कहा जाता है। इस का लेखा रखना पड़ता है और समय आने पर इसे सम्बन्धित परिवारों को वापिस किया जाता है।

इस क्षेत्र में तथा लिप्पा घाटी और बौद्ध-धर्म प्रभावान्तर्गत क्षेत्र में किसी व्यक्ति के गुजर जाने की स्थिति में हो जाने पर लामा को बुलाया जाता है और वह मरने वाले व्यक्ति के कान में चोटी (शिखा) पकड़ कर उस के नाम के साथ 'इक फोद्' तीन बार कहता है। मरणासन्न व्यक्ति को चूली की खली के साथ नहलाया जाता है और कन्घी को सिर के साथ ही लगा कर रखा जाता है।

इस के पश्चात् मृतक को श्मशानघाट ले जाया जाता है और बैठने की सी मुद्रा में सन्दूक में रख कर जला दिया जाता है। मृतक को जलाने के लिए श्मशानघाट

में जो लकड़ी की चिनाई की जाती है उसे 'दुङ् खङ्' कहा जाता है। लामा मन्त्रोच्चारण करता रहता हैं और लोग 'दुङ् खङ्' के तीन चक्कर लगाते हैं। जो लोग मृतक को श्मशानघाट पहुंचाने जाते हैं, वे सभी वहीं मुंह धोते हैं। अन्त्येष्टि के समय एक, दो अथवा इस से अधिक व्यक्ति वहीं रहते हैं तथा शेष अपने घर वापिस चले आते हैं। दूसरे दिन ब्राह्ममूहूर्त्त में मृतक की हड्डियां चुनी जाती हैं।

आठ दिन पश्चात् 'छोत्पा' होता है। इस दिन लामा मृतक का नाम कागज पर लिख कर जलाता है ताकि उस का इस जन्म से मोह छूट जाए। जब मुर्दा जलाया जाता है तो उस से दूसरे दिन ऐसे मन्त्र पढ़े जाते हैं जिन में यह बताया गया होता है कि आत्मा कहां कहां जाएगी और क्या क्या कार्य करेगी! इन मन्त्रों को 'ठोडोल सिल्वङ्' कहा जाता है। ये लगभग दो सप्ताह तक पढ़े जाते हैं। यह कथा विष्णु तथा गरुड़ पुराण की कथा की भांति होती है और आठ दिन में समाप्त होती है। आठवें दिन एक एक पोल्टू प्रत्येक व्यक्ति के लिए उस के घर पहुंचाया जाता है।

जन्म, विवाह तथा मृत्यु के संस्कारों के साथ लामाओं का बहुत सम्बन्ध है। लामा इन समयों पर जनता जनार्दन के शोक तथा हर्ष में सम्मिलित होता है तथा पण्डित की भूमिका निभाता है। दाह-संस्कार के समय लामा द्वारा पढ़े जाने वाले मन्त्रों में से कुछ इस प्रकार हैं :—

लामा द्वारा पढ़े जाने वाले दाह-संस्कार के मन्त्र में अग्नि देवता की स्तुति :—

1. डबरङी सोअल।	1. पहले का रिवाज।
2. छेंदई दोन्दू जिमसेक जावानी।	2. मृतक के लिये किया जाने वाला संस्कार।
3. थप खुङ्ग कित डांगसोङ् में ला सोरवला।	3. अग्नि कुण्ड को यज्ञ का मण्डप बना कर और उसमें अग्नि देवता का आगमन करवा कर।
4. डाङ्न चांङ्नि छोत् तोत दो असल बुलाजङ्।	4. अग्नि देवता को अतिथि के रूप में बुला कर, उनका पूर्ण आतिथ्य सेवा करके और उनका गुण गा कर, उनकी मनोकामना के लिए प्रार्थना करना।
5. राङ् नीङ् सेकछूल जावाई फान मोन नी।	5. फिर उसके बाद पुनः उनके निवास स्थान के लिये आदर पूर्वक विदा करना।

(पहले मन्त्र में स्तुति की जाती है, दूसरे मन्त्र में उस स्तुति का क्या फल मिलता है, यह बताया जाता है)।

दूसरा मन्त्र :—

छेदवई चो जाई डोबा योङ् की	मृतक को इस लाभ की आधार शिला मान
लुई ङ्गाक हित सुमगी लाईङ्-	कर उसके साथ जीवधारी जो कि मन,

लामा तिब्बती भाषा में लिखित धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन कर रहे हैं।

↓

इस क्षेत्र में लामाओं द्वारा तिब्बती भाषा में शिलालेख बनाने की प्रथा प्रचलित है। इन शिलालेखों को गांव के बाहर चबूतरों पर रखा जाता है। इन्हें 'माणी फाणी' (मणि फणि) कहा जाता है।

↓
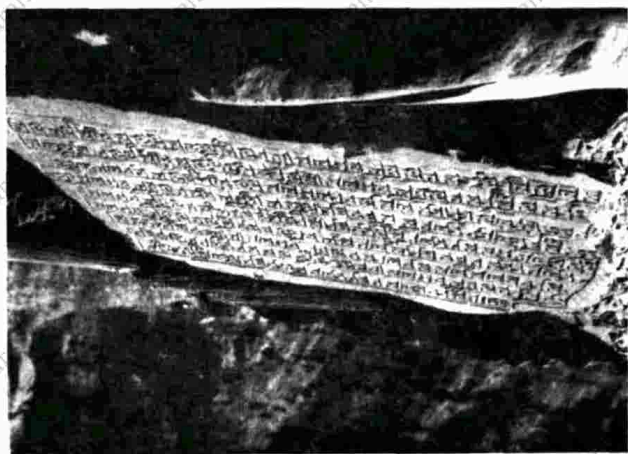
गान डिक डिप थम चत जङ्	वचन और काया के पापों से दबे होने के
जिङ् साङ्याकी गोफङ् रिन्पोछे	कारण ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते उन
थो पाई छिर जा वाहो ।	सब का पाप धुल कर वे निर्वाण प्राप्ति के अधिकारी बनें ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किन्नर क्षेत्र में जन्म, विवाह तथा मृत्यु के संस्कार भी अन्य प्रथाओं की भांति विविध प्रभाव लिए हुए हैं ।

किन्नर समाज में स्त्री का स्थान :

बहुपति-प्रथा प्रधान समाजों में स्त्रियों को परिवार में विशेष स्थान प्राप्त होता है । इस प्रकार की समाज-व्यवस्था में सारा परिवार स्त्री रूपी धुरी के गिर्द घूमता है और स्त्री का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक पति, पुत्र अथवा पुत्री को यथा शक्ति प्रसन्न रखे तथा उन की देख भाल करे । इस क्षेत्र की स्त्रियां बहुत अधिक भावुक होती हैं और आत्मसम्मान को प्रमुख स्थान देती हैं । वे जिस व्यक्ति से विवाह अथवा प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लें उसे जीवन भर का साथी बनाने की इच्छा रखती हैं परन्तु दूसरा विवाह करने की अपेक्षाकृत स्वतन्त्र सामाजिक-व्यवस्था के कारण उन्हें विपरीत परिस्थितियों में किसी प्रकार के बन्धन में रहने की अधिक आवश्यकता नहीं रहती ।

परिवार की सब से बड़ी स्त्री 'गोयने' (गृहणी) कहलाती है । गोयने के पास सारे भण्डार तथा सम्पत्ति-गृह की चाबियाँ रहती हैं । जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यहां मूल्यवान सम्पत्ति तथा अनाज को घर से बाहर एक छोटे से लकड़ी के मकान (कोठार) में रखा जाता है । कोठार की चाबी एक ही व्यक्ति के पास रहती है तथा जो भी वस्तु घर में लाई जाती है अथवा बाहर दी जाती है वह गोयने की सहमति अथवा जानकारी के बिना नहीं होती । परिवार के सब से बड़े व्यक्ति को 'गोरतेस' अथवा 'गृह स्वामी' कहा जाता है । 'गोरतेस' सारी गृह-सम्पत्ति का हिसाब गोयने की सहायता से रखता है । गोयने को अनेक गाँवों में 'गोयन' भी कहा जाता है ।

गृह-स्वामी की आज्ञा से परिवार के सब छोटे बड़े व्यक्ति परिवार की समृद्धि के लिये कार्य करते हैं और जो भी धन किसी व्यक्ति के द्वारा कमाया जाता है, उसे गोयने के पास दिया जाता है ।

स्त्री अपने सारे पतियों को बराबर समझती है और किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करती । इस प्रकार की समाज-व्यवस्था में जो बात खटकती है वह यह है कि दाम्पत्य-सुख स्वतन्त्र नहीं रह पाता । पत्नी एक पति के साथ एकाधिकार पूर्ण सम्बन्ध नहीं बना सकती अत: यह जीवन केवल पारिवारिक-सम्बन्धों तथा श्रम-विभाजन के ही साथ सम्बन्धित रह जाता है । पति घर की उन्नति के लिए कार्य करते हैं परन्तु उनमें भी मनोमालिन्य होने की दशा में अनेक बार वे अलग विवाह करने की धमकी देते रहते हैं, जिस के कारण ऐसी दशा में मनोवैज्ञानिक रूप से पारिवारिक विघटन आरम्भ हो जाता है । यही कारण है कि इस प्रकार के परिवारों में अधिकांशत: स्त्रियों को वही बातें बताई जाती हैं जो उन से सीधे तौर पर सम्बन्धित होती हैं और पुरुष घर के बाहर की सारी बातों को स्वयं ही निपटाते हैं ।

पुरुषों में वैमनस्य के भाव प्राय: कम होते हैं क्योंकि वे इकट्ठे बहुत कम रहते हैं और जब इकट्ठे हों, शराब के दौर चलते हैं जिस से उन्हें आपसी तनाव के लिये अपेक्षाकृत कम समय रह जाता है। जो बातें गोयनों के कार्य क्षेत्र में पड़ती हैं उन में पुरुष प्राय: हस्तक्षेप नहीं करते। जैसे यदि वर्षा न हो तो गोयने देवता के मन्दिर में इकट्ठी हो कर देवता से प्रार्थना करती हैं कि वह उनके बच्चों को भूखा मरने से बचाए। पुरुष इस सम्बन्ध में अलग प्रार्थना करते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि स्त्रियों की प्रार्थना पर देवता शीघ्र ध्यान देगा। सुङ्रा गाँव में तो गोयने वर्षा न होने की दशा में देवता के मन्दिर में प्रार्थना करने के पश्चात् देवता को धमकी देने के लिए सतलुज नदी में डूब मरने के लिये निराश हो कर चल पड़ती हैं और देवता के कारदार उन्हें रोक कर तथा मना कर लाते हैं।

किन्नर लोक-गीतों में इस प्रकार के अनेक उद्धरण मिल जाते हैं जिन में पारिवारिक कलह, पत्नी का सब पतियों से प्रेम, एक पति को छोड़ कर दूसरा विवाह करना, पत्नी का सब से अप्रसन्न होना तथा घर में घुटा घुटा अनुभव करना आदि बातें वर्णित हैं। असफल प्रेम-सम्बन्धों तथा अतिशय भावुकता के कारण इस क्षेत्र की स्त्रियों में आत्म-हत्या की प्रवृत्ति सामान्यतया अधिक है।

यहां स्त्रियां पुरुषों से अधिक कार्य करती हैं और स्वभाव से हंसमुख होती हैं। उनके मुख्य कार्य निम्न लिखित हैं :—

1. खाना बनाना।
2. खेतों में कार्य करना।
3. चूहली आदि के फलों को सुखा कर तथा ओखली में कूट कर तेल निकालना।
4. कण्ढे की भूमि से अनाज आदि लाना।
5. भेड़ बकरियां चराने में पति/पतियों की सहायता करना।
6. मेलों में नृत्य-गायन करना।

इन सब कार्यों के कारण किन्नर-स्त्री इतनी अधिक व्यस्त रहती है कि उसका जीवन एक मशीन की भांति हो जाता है। उनका जीवन हंसी खुशी से भरा होता है। दिन भर कार्य करने के पश्चात् भी युवतियां रात को लोगों के घरों में मेला लगाती हैं तथा हंस-खेल कर अपने मन को बहलाती हैं। जलवायु की शीतलता के कारण इस क्षेत्र में रहते हुए शारीरिक-श्रम के पश्चात् भी वैसी थकावट नहीं होती जैसी कि गर्म क्षेत्रों में होती है। उनके जीवन-दर्शन को 'जिन्दगी रङ् जिन्दगी' गीत के बोल भली प्रकार दर्शाते हैं। इस गीत में कहा गया है कि 'अपने कर्म का फल भुगतने के लिए चौरासी लाख योनियों से गुजरना पड़ा फिर भी मनुष्य जन्म में आराम नहीं मिला, यह प्रारब्ध का दोष है। यदि पुरुष का दु:ख बढ़ जाए तो वे एक बाटिच् (प्याला) शराब पीते हैं अथवा एक घूंट तम्बाकू लेते हैं परन्तु स्त्रियां दु:खी होने पर या तो एक शब्द गीत गाती हैं अथवा गंगा (सतलुज) में छलांग लगा लेती हैं।'

किन्नर-समाज में विवाह से पूर्व लड़की को नृत्य तथा गायन की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, जिसके कारण वह अपनी इच्छानुसार विवाह कर सकती है परन्तु ये युवतियां

अत्यधिक शर्मीली होती हैं और विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने में पहल नहीं करतीं। यहां *यह उल्लेखनीय है कि यहां प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जाने का अर्थ विवाह होता है।*

बलपूर्वक भगा कर विवाह करने की प्रथा के कारण विवाह से पूर्व लड़कियों के भविष्य का निर्णय कठिन होता है। इस प्रथा के कारण पारिवारिक जीवन अनेक लड़कियों के लिये तनिक भी सुखदायी नही रह जाता और वे शेष जीवन मानसिक कठिनाइयों में काटती हैं परन्तु सब दशाओं में ऐसा नहीं होता। अच्छा परिवार मिल जाने की दशा में लड़कियां सुखी हो जाती हैं और बल पूर्वक भगाये जाने की बात को साधारण घटना मानती हैं।

अपने मायके को प्रत्येक किन्नर-बाला 'सुनहरी' समझती है। विवाह के उपरांत भी सर्दियों के दिनों में तीन अथवा चार मास तक प्रायः प्रत्येक किन्नर-युवती अपने मायके में रहती है। जिन परिवारों में ऐसी सुविधा न हो वहां भी मायके के लोग 'बान्ठो' (बांट, भाग) लड़की के ससुराल में भेजते हैं। बान्ठो में एक किल्टा भर पोल्ट अथवा बकरे का शिकार दिया जाता है।

यह कहा जा सकता है कि जीवन की कठिनाइयां होने की दशा में भी किन्नर-समाज में स्त्रियां मुख्य आकर्षण हैं और अनेक बार ऐसा प्रतीत होता है कि सुरा तथा सुन्दरी के आकर्षण के कारण ही मनुष्य ने सर्व प्रथम इस क्षेत्र को अपना निवास-स्थल बनाया होगा।

स्त्री के लिये यहां 'छेच' अथवा 'छेच मी' अर्थात् 'स्त्री आदमी' (छेच-स्त्री, मी-मनुष्य) शब्द प्रचलित हैं। किन्नर भाषा के अनुसार जिन शब्दों के पीछे 'च' का प्रयोग होता है उन्हें 'छोटा' समझा जाता है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री के जन्म को ही पुरुष के जन्म की भांति उच्च नहीं माना जाता। तिब्बत में भी स्त्री को पुरुष से घटिया प्रकार का प्राणी माना जाता है। वहां स्त्री के लिए 'छये-मी' अर्थात् 'घटिया जन्म का पुरुष' शब्द प्रचलित है। पत्नी के लिए 'नार' शब्द का प्रयोग भी इस क्षेत्र में होता है जो पहाड़ी भाषा का शब्द है।

खान-पान :

यहां मुख्यतया निम्नलिखित खाद्यान्न होते हैं—

अनाज—1. जौ, 2. गेहूं, 3. ओगला, 4. फाफरा, 5. मक्की, 6. चलाई (तुलसी), 7. चीना, 8. कोदा, 9. बाथू, 10. धान, (बहुत कम)।

दालें—1. मूंग, 2. मसूर, 3. लोबिया, 4. मास, 5. सेम, 6. रौंगी, 7. बरठ (मोठङ), 8. मटर, 9. मटरी।

इन्हीं अनाजों से यहां का साधारण परिवार निर्वाह करता है।

मुख्य भोजन निम्नलिखित हैं—

1. **पोल्टू**—ये गेहूं और चलाई के बनते हैं। मक्की, कोदा, ओगला और फाफरा के भी पोल्टू बनाए जाते हैं। आटे को गर्म पानी से गूंथ कर रखा जाता है फिर आठ

या दस घण्टे के बाद तेल में रोटी की भांति छोटा-छोटा बनाकर पूरी की तरह डाला जाता है। उबलते हुए तेल में डालने व पकाने से ये पूरी की भांति बनाए जाते हैं।

2. **रोटी (रोटे)**—जिन अनाजों के पोल्टू बनते हैं उन्हीं की रोटियां बनाई जाती हैं। रोटी आटे को गूंथ कर बनाई जाती है।

3. **चिल्टे**—ये ओगला व फाफरा के बनते हैं। कोदे का आटा भी इस काम में लाया जाता है। पानी में आटे को घोल दिया जाता है और पतला करके हाथों से तवे (पन्न) पर फैला दिया जाता है। ये रोटी से नरम होते हैं और पकाने में भी आसान होते हैं। साधारणतया घरों में चिल्टे ही बनाकर खाए जाते हैं।

4. **दू (बड़िया)**—'दू' ओगला, फाफरा, चीना, बाथु, मक्की और जौ के आटे का बनता है। पहले पानी को उबालते हैं फिर उसमें नमक और भेड़, बकरी या बकरे की चर्बी लगा कर उबलने पर ऊपरोक्त अनाजों में से किसी एक का आटा डाला जाता है और घोट कर मिलाया जाता है। सूख जाने पर उसे आग पर से उतार देते हैं। 'दू' को लड़की के डण्डे (स्क्युरबा) से घोला जाता है। विशेष अवसरों या उत्सवों पर भी 'दू' बनाया जाता है। देवताओं के उत्सवों में तो यह एक साधारण भोजन है परन्तु शादी में यदि देवता को न बुलाया जाए तो इसे नहीं बनाया जाता।

5. **फण्टिङ्**—यह सूखी बंहमी और चूहली के फलों को पानी में भिगो कर बनाया जाता है। छिलके निकालकर उन्हें अलग कर के पानी में उबाल कर घोल लेते हैं फिर उसमें चलाई (तुलसी) का आटा डाला जाता है। इस प्रकार पतली सी लेई बनाई जाती है। इसमें नमक नहीं डाला जाता। इसे भी भोजन के रूप में खाया जाता है। रोटी या सत्तू भी इसके साथ कई बार ले लिए जाते हैं। इसे 'चुल फण्टिङ्' और 'रंग फण्टिङ्' (बंहमी की फण्टिङ्) कहा जाता है। खोबली फण्टिङ् बनाने के लिए आटे को लड्डू जैसा बना कर पानी में छोड़ते हैं फिर दाल में डालते हैं। इसमें नमक भी डालते हैं।

6. **सुतराले**—यह त्यौहारों का भोजन है। फाफरे का 'दू' बनाते हैं फिर लकड़ी का खड्डू (मेमना) जो हर एक घर में या गांव के कई घरों में होता है, और जिस की पीठ पर एक बड़ा छेद होता है, में ऊपर में दू डाल दिया जाता है और उसके पेट के छेद में 'सुतराल शिङ्' से दबाने पर सेवियों की की तरह नीचे को छोटे-छोटे रेशे निकल आते हैं। इन सेवियों को हाथ में लेकर धीरे से इकट्ठा कर लेते हैं। ये चार इंच से लम्बी नहीं होतीं फिर इन्हें खा लिया जाता है। इसे दाल, स्कन या साग के साथ खाया जाता है।

7. **सुनपोले (जुले-पूह डिवीजन)**—ओगले के आटे को पानी में घोल कर जलेबी की भांति तेल की कहाड़ी में डाल कर पकाये जाते हैं। इस में नमक, मिर्च, मशाले आदि डाले जाते हैं। ये भी विशेष त्यौहारों पर बनाए जाते हैं। ये पकौड़ों की तरह चाय के साथ लिए जाते हैं।

8. **कऊणी**—कंगणी को धान की तरह कूटा जाता है, फिर अनाज को अलग कर के चावलों की तरह पकाया जाता है और थोड़ा ढीला रहने पर एक तख्ते (गोट) पर फैलाया जाता है। फिर ठण्डा होने पर बर्फी की तरह चौकोर टुकड़ों में काट लिया

जाता है । इन टुकड़ों को दाल के साथ खाया जाता है । यह देवता का प्रिय भोजन है । यह अधिकतर त्यौहारों के समय हरिजनों को दिया जाता है । इसे पवित्र अवसरों पर लोगों में बांटा भी जाता है ।

9. **सत्तू (युद)**—ये जौ तथा चलाई को भून कर तथा पीस कर बनाए जाते हैं, फिर जौ के सत्तू नमकीन चाय अथवा लस्सी के साथ तथा चलाई के सत्तू लस्सी के साथ किसी भी समय खाए जाते हैं । सत्तू को अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिए 'बोटङ्' (एक अनाज विशेष) के दाने भून कर डाले जाते हैं, इससे वे मीठे हो जाते हैं ।

10. **आलू**—आलू (हलगङ्) भी भोजन के रूप में उबाल कर पोदीने की चटनी के साथ खाए जाते हैं । कद्दू की भांति अनेक परिवारों में रोटी के स्थान पर अनेक बार यही सारे परिवार का भोजन होता है ।

11. **मूड़ी (पुग)**—यह गेहूं, नंगा जौ, मक्की, तुलसी, बोटङ् आदि अनाजों को भून कर तैयार करके दिन के किसी भी समय शिल (दोपहर का खाना) के रूप में खाई जाती है । प्रत्येक घर में अनाजों को इस प्रकार अखरोट तथा चूली आदि की गिरी डाल कर बड़े प्रेम से प्रतिदिन खाया जाता है ।

12. **स्कन**—सूखे अथवा हरे सरसों व शलजम के पत्तों को पका कर उन में आटा तथा मशाला व घी डाल कर चूहली के छिलके डाल दिये जाते हैं । यह खट्टा तथा पतला साग बन जाता है, इसे ही स्कन कहते हैं ।

13. **रल (चावल)**—ये तीन तरह से खाए जाते हैं—

(1) साधारण ढंग से तैयार किए हुए ।
(2) खौलते हुए पानी में डालकर पतले बनाए जाते हैं । इसे 'रल् थुपा' कहते हैं । इसमें नमक, मशाला और चर्बी आदि भी डालते हैं ।
(3) खिचड़ी (खिचरी) इसमें साबुन या दले हुए माश डाले जाते हैं ।

प्रात: का खाना — खाऊ ।
दोपहर का खाना — शिल ।
सायंकाल का खाना — खाऊ ।

दण्ड विधान :

किन्नर-समाज में दण्ड तथा पारितोषिक के भी अपने ही ढंग हैं । देवता तथा राजा प्राचीन काल से दण्ड के निर्णायक होते थे परन्तु बिरादरी का दण्ड सबसे भयानक माना जाता रहा है । बिरादरी द्वारा लगाया गया दण्ड भी कानून की दृष्टि से मान्य होता था । यह प्रथाएं किसी न किसी रूप में आज भी प्रचलित हैं । मुख्य दण्ड व्यवस्थाएं निम्नलिखित हैं—

1. **छेत्पा** :—यह बिरादरी लगाती है । कोई भी व्यक्ति जो नीच काम यथा, अवांछित वर्ग से विवाह-सम्बन्ध या अभक्ष्य भक्षण कर ले उसे दण्ड दिया जाता है । छेत्पा रुपयों के रूप में लगता है तथा गांव की पंचायत के पास या देवता के कोष में जमा

हो जाता है। यह गाँव की पंचायत द्वारा सर्वसम्मति से निर्धारित किया जाता है। सारे गाँवों के लोगों का यह एक पूर्व निश्चित नियम होता है। यह अधिकतर व्यक्ति के आय-साधनों को दृष्टि में रख कर होता है। यहां प्रत्येक गांव में अपनी 'पंचायत' होती है जो गांव के सारे झगड़ों का निर्णय करती है। यह पंचायत आधुनिक समय की निर्वाचित ग्राम-पंचायत से अलग होती है। विकास-सम्बन्धी कार्यों में न आने पर मजदूरी के हिसाब से छित्पा लगता है। छेत्पा अथवा छित्पा मुख्यतया निम्न बातों के लिए भी होता है :—

(1) देवता के मन्दिर में न आने या देर से आने के लिए।
(2) ग्रामीणों द्वारा बुलाई गई दुमसा (सभा) से अनुपस्थित रहने पर, तथा
(3) कोई भी ऐसा कार्य करने पर जिसे समाज वर्जित मानता हो।

2. **तिचिग मिचिग** :—यह सामाजिक बहिष्कार होता है। जो व्यक्ति समाज के नियमों के अनुसार न चले उसे समाज से अलग कर दिया जाता है। यह सामाजिक आदेश, यथा, स्थान-विशेष पर अधिकार करना और लोगों के कहने पर भी उसे छोड़ने के लिए तैयार न होना अथवा देवता के आदेश का उल्लंघन करना तथा ऐसे वर्ग से विवाह कर लेना जहां सामाजिक दृष्टि से हानि हो, आदि के लिए होता है। यह छेत्पा का परिवर्द्धित रूप है।

3. **देवता के द्वारा न्याय** :—देवता का निर्णय अन्तिम होता है, कोई भी व्यक्ति देवता के निर्णय के बाहर नहीं जा सकता। देवता पहले कैद की सजा दे सकता था। रोहड़ू में कैदखाने की एक जगह है, जहां जाबल नारायण अभियुक्त को कैद कर देता था। प्राचीन समय में किन्नर-ग्राम-पंचायतें मौखिक रूप से ही हिसाब-किताब रखती थीं और जघन्य अपराधों के लिए मौत की सजा भी दे देती थीं। परम्परा है कि चीनी से रोघी की ओर की एक ढांक में 'दुङ्गलू' नामक चोर, जो अ्रेलिङ्गी का कोली था और जिसने किसी सवर्ण लड़की के साथ अभद्र व्यवहार भी किया था, को चीनी और रोघी से ऊपर तथा पांगी से नीचे की पंचायतों ने मौत की सजा दी और 'टम्नङ्से' ढांक के नीचे गत शताब्दी में एक सूखी हुई टहनी में बाँध कर आगे धकेल दिया तथा फिर कुल्हाड़ी से टहनी को काट कर नीचे गिरा दिया था। इस घटना का कोई भी लिखित विवरण नहीं मिलता, परन्तु यह मौखिक रूप से अब भी जन-प्रचलित है।

प्राचीन काल में 'यलो जला' का दण्ड भी दिया जाता था। इस में अपराधियों को नंगा करके 'यल' नामक कांटेदार बेल का कोड़ा बना कर पीटा जाता था।

4. **इज्जत** :—'इजित' निम्न बातों के लिए ली जाती है—

(1) यदि पहली पत्नी के होते हुए कोई व्यक्ति दूसरी पत्नी ले आए या अन्य स्त्री से अवैध-सम्बन्ध स्थापित कर ले तो पहली स्त्री अपने पति से 'इजित' मांगती है परन्तु इस दशा में उसे साधारणतया तलाक नहीं देती। यह 'इजित' पति के सामाजिक स्तर के अनुसार होती है। 'इजित' लेने के बाद अनेक बार दोनों पक्षों में समझौता हो जाता है।

(2) **झूठे आरोप पर**—किसी व्यक्ति पर चोरी या व्यभिचार का झूठा आरोप लगाये जाने पर वह 'इजित' की मांग या अदालत की धमकी दे देता है तथा

इस दशा में कसूरवार व्यक्ति जिस ने झूठ कहा था, उसे 'हार' पहनाता है। यह हार फूलों का भी हो सकता है पर सामान्यता न्योजे, मीठी चूली या अखरोट के बीजों का होता है। इसका अर्थ है कि वह अपनी भूल स्वीकार कर के क्षमा की प्रार्थना कर रहा है। यदि दूसरा व्यक्ति हार को स्वीकार कर ले तो उसे 'इज्जत' के रूप में रुपया दिया जाता है।

5. **ती दारङ् शिशे**—पानी की धार गिराना। यह कार्य देवता तभी करता है जब वह किसी व्यक्ति की हरकतों से अत्यधिक नाराज हो जाए तथा वह व्यक्ति उस की बात को न मानता हो। यहां इसे बहुत अपशकुन माना जाता है। इसमें देवता के 'क्रो' से पानी गिरा कर ग्रोक्च अपराधी के अनिष्ट की प्रार्थना करता है। यह देवता का श्राप माना जाता है।

तोशिम :

किन्नर-क्षेत्र में एक मनोरंजक प्रथा प्रचलित है जिसे 'तोशिम' कहा जाता है। तोशिम इस जाति की प्रिय परम्परा रही है। इस में सर्दी के दिनों में अथवा अन्य फुरसत के समय में गांव की युवतियां किसी खाली घर में इकट्ठी हो जाती हैं, वहीं खाना बनाती हैं अथवा अपने घरों से अनेक बार खाना खा कर इकट्ठे रहतीं, सोतीं तथा मेला लगाती हैं। अवकाश के इन दिनों में गांव के युवकों को युवतियां खाने पर बुलाती हैं। वे सारा दिन उनके साथ गप्प शप्प मारते, नाचते-गाते हैं तथा अनेक बार रात को वहीं ठहरते हैं। कथा-कहानियां, पहेलियां तथा गीत इस कार्यक्रम के आवश्यक अंग होते हैं। 'तोशिम' का शाब्दिक अर्थ 'बैठना' या 'अवकाश प्राप्त करना' होता है।

इन आमन्त्रित युवकों को आतिथेय लड़कियों को अपनी इच्छानुसार कुछ रुपये-पैसे उनकी अतिथि-सेवा के उपलक्ष्य में देने होते हैं जिनको इकट्ठा करके लड़कियां दूसरे युवकों के लिये, जिन्हें किसी दूसरे दिन आमन्त्रित किया जाना होता है, के लिए खाने की सामग्री तथा नमक मिर्च आदि खरीद कर लाती हैं।

'तोशिम' के लिये बैठने वाली लड़कियां कई समूहों में अनेक अकेले घरों में बैठतीं हैं। वे युवकों के लिये स्वयं आटा पीसतीं तथा शराब निकाल कर रख लेती हैं। शराब यहां के खान-पान का आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण अंग है जिस के बिना अतिथि को भोजन कराना अच्छा नहीं समझा जाता।

कूनो तथा चारङ् गांवों में वर्ष भर में इस प्रकार के चार 'तोशिम' विभिन्न समयों पर आयोजित होते हैं। खुले रूप से तो नहीं परन्तु परोक्ष रूप से इन तोशिमों में अनेक बार युवक युवतियों के प्रेम-सम्बन्ध हो जाते हैं। इस प्रकार के सम्बन्धों का बनना अथवा बिगड़ना वैवाहिक जीवन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता।

तोशिम 'घोटुल' की श्रेणी का त्यौहार है परन्तु इसमें जीवन अपेक्षाकृत अधिक नियन्त्रित होता है और सामाजिक दृष्टि से यह युवतियों विशेष रूप से अपने ग्राम की लड़कियों) के लिए अवकाश व उल्लास का समय माना जाता है। ऐसे भी परिवार मिल जाते हैं जो अपनी लड़कियों को प्रसन्नतापूर्वक तोशिम में नहीं भेजना चाहते। यह प्रथा यद्यपि 'विश्राम करने' तथा बर्फ व सर्दी के दिनों को नाच-गा कर तथा ऊन कात कर बिताने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है तथापि दिन में युवक व युवतियां अपने अपने घरों में भी

काम करके रात को 'तोशिम किम' में इकट्ठे हो कर खाते पीते व आराम करते हैं। इस प्रथा में गाँव की वे विवाहित लड़कियां भी सम्मिलित हो जाती हैं जो सर्दी के दिन बिताने के लिये अपने मायके में आई हुई होती हैं। तोशिम एक मास या इस से अधिक या कम समय के लिये होता है। किन्नर बोली में 'किम' का अर्थ 'घर' होता है।

तोशिम का आवश्यक अंग 'ख डब' है, 'ख डब' का अर्थ (ख— गन्दगी, डब–चोट या मुक्का) गन्दगी छोड़ने के लिये लगाया जाने वाला मुक्का होता है। तोशिम मना रहे लोगों में गन्दी वायु (पाद) छोड़ना अशोभनीय माना जाता है। यदि दुर्गन्ध आये तो उपस्थित व्यक्ति झट से यह पता लगाने का यत्न करते हैं कि किस ने दुर्गन्ध छोड़ी है। जहां शक हो उस व्यक्ति के सिर पर एक 'धप्प' दी जाती है। अनेक बार 'दोषी' इस के लिये इनकार भी करता है परन्तु सभी लोग उसे कसमें दिला कर सत्य कहने के लिये मजबूर करते हैं। जब वह अपने 'अपराध' को स्वीकार करता है तो उसे इस बात के लिये कुछ रुपये अथवा किसी दूसरे दिन युवक युवतियों को उनकी इच्छानुसार मिठाई अथवा कोई अन्य वस्तु खिलानी पड़ती है। तोशिम वास्तव में कोई त्यौहार नहीं है, यह केवल एक प्रथा है। 'ख डब' के उपलक्ष में दी जाने वाली पार्टियां एक दिन में अनेक भी हो सकती हैं।

'ख डब' के लिये जुर्माना सर्दी के दिनों में लोगों के घरों में भी चलता है। अंगीठी के पास बैठे सारे परिवार के लोग इस बात की प्रतीक्षा करते हैं कि कहीं से दुर्गन्ध आए और अभियुक्त का पता लगाया जा सके। मुंह से कुछ नहीं कहा जाता, केवल सिर पर हल्की सी चोट करनी पड़ती है। यह कार्य बिना किसी रिश्ते को ध्यान में रख कर किया जाता है। बहू ससुर या सास को भी इस समय 'धप्प' दे सकती है तथा लड़के-लड़कियां तो अपने माता पिता को 'ख डब' देते ही हैं। अनेक बार जब बूढ़ा बाप अपने घर वालों के लिये मिठाई या हलवा बनाने का सामान खरीद रहा होता है तो उससे पूछने पर पता चल सकता है कि उसे कहीं 'ख डब' की सजा तो नहीं मिली है। यदि ऐसा हो तो वह सच कहते हुए संकोच नहीं करता। इस के प्रचलन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुण्डा वर्ग की प्रथा नहीं थी क्योंकि इस में स्थानीयता अधिक झलकती है तथा 'ख डब' से पूर्व यदि अपराधी घर के बाहर अथवा छत की चिमनी से 'सरगोला' (आकाश की परछाईं) कह कर आवाज लगाए तो अपराध मिट जाता है और इस दशा में उस पर 'छेत्पा' नहीं लगाया जा सकता।

तोशिम के सन्दर्भ में 'घोटुल' की प्रथा पर भी दृष्टिपात कर लेना रोचक रहेगा। गोंडों में 'घोटुल' की प्रथा है। हो, मुण्डा, ओराओन तथा छोटा नागपुर की अन्य आदिम जातियों में भी इस प्रथा का प्रचलन है। आसाम के नागा हिल क्षेत्र की कोन्याक जातियों में भी यह प्रथा मिलती है। मलेशिया, इण्डोनेशिया और न्यूगीनिया की कुछ जातियों तथा अफ्रीका की मसाई जाति में भी इस प्रथा का वर्तमान होना पाया जाता है। आसाम के कोन्याक नागा पुरुषों के इस प्रकार के घरों को 'मोरङ्' तथा स्त्रियों के इस उत्सव से सम्बन्धित घरों को 'यो' कहा जाता है। वहां लड़के तथा लड़कियां साधारणतया अलग अलग घरों में रहते हैं परन्तु कई दशाओं में उनके विश्राम-स्थल एक ही भवन में भी हो जाते हैं। चन्दा के गायत्रा गोण्डों में कुमार, कुमारियों के अति-रिक्त विवाहितों के लिए अलग अलग विश्राम-स्थान होते हैं। बस्तर के माड़ियों में

स्त्रियों को इन विश्राम-गृहों में जाने की आज्ञा नहीं होती परन्तु इसी क्षेत्र की कुछ जातियों में अविवाहित पुरुष तथा स्त्रियां इन अवसरों पर एक ही घर में रहते हैं। इस प्रकार के घरों को 'घोटुल' के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला घर अर्थात् 'घोटुल घर' कहा जाता है, जो 'तोशिम किम' की ही भांति होता है। वहां इन विश्राम-गृहों में यौन-सम्बन्धों की स्वतन्त्रता रहती है जिस से बाद में विवाह-सम्बन्ध भी हो जाते हैं, वैसे यह बात आवश्यक नहीं मानी जाती। डॉ० इरावती कारवे के अनुसार यह मुण्डा वंश की जातियों की विशेषता है कि वे मृतकों के नाम पर चबूतरे बनाते हैं और 'घोटुल' जैसी प्रथाओं में विश्वास रखते हैं[1] परन्तु अफ्रीका जैसे सुदूर देशों में निवास करने वाली जातियों में इस प्रथा के वर्तमान होने से ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में यह मुण्डा वर्ग की ही प्रथा नहीं थी।

घोटुल में यद्यपि विवाहित स्त्रियों तथा पुरुषों को आने की आज्ञा नहीं दी जाती परन्तु विधुर तथा विधवाओं को निमन्त्रित किया जाता है। घोटुल में लड़कियों का स्थान तथा आदर उनकी साथी सम्बन्धी स्थिति पर निर्भर करता है[2]। किन्नौर में तोशिम में यह बात नहीं दिखाई देती वहां कोई लड़का किसी लड़की का साथी नहीं होता और न ही यौन-सम्बन्धों की प्रकट रूप में स्वतन्त्रता रहती है। जैसा कि कहा जा चुका है 'तोशिङ्' अथवा 'तोशिम' का शाब्दिक अर्थ विश्राम करना अथवा 'बैठना' ही होता है। 'तोशिम' का आरम्भिक रूप क्या रहा होगा, इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाणों का अभाव है परन्तु 'घोटुल' जैसी प्रथा से सम्बद्ध करके हम इसके कारण ही किन्नरों को मुण्डा वर्ग के साथ सम्बन्धित करने के निश्चयात्मक प्रमाण नहीं पाते। सर्दियां हिम-प्रदेशों के लिए बड़ी दुखदायी होती हैं। लगभग चार मास का समय कम नहीं होता। इस अवधि में लोगों का घरों से बाहर जाना सम्भव नहीं होता। ऊन कातने तथा कथा-कहानियां सुनने-सुनाने में भी कितना समय व्यतीत हो सकता है। जीवन की कठिनाइयां मनुष्य को आराम करने के लिए बाधित करती हैं फिर जहां लड़कियों को अधिक प्यार-दुलार व स्वतन्त्रता हो, उनकी प्रसन्नता व उल्लास के लिए तोशिम जैसी प्रथा प्रचलित हो जाए तो आश्चर्य नहीं मानना चाहिए। यहां लड़की घर में जो कार्य करती है उसके लिए 'कामङ् लान्च' (अपेक्षाकृत मर्जी से कार्य करने वाली) शब्द प्रयुक्त होते हैं जब कि पुरुषों के कार्य के लिए 'कामङ् लानों' (कर्त्तव्य से कार्य करने वाले) शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं जो स्वतः ही लड़की की सामाजिक स्थिति का आभास देते हैं। 'तोशिम' जैसी प्रथा शिमला तथा सिरमौर क्षेत्र के खश वर्ग के लोगों में भी प्रचलित रही है। चूड़धार के समीपस्थ चेथा क्षेत्र में अब भी इस प्रथा का प्रचलन है। सम्भव है यह खश जाति की किसी प्राचीन प्रथा का अवशेष हो। इसका प्राचीन इतिहास कुछ भी रहा हो, यह किन्नौर, लाहुल स्पीति तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ अन्य क्षेत्रों की उल्लेखनीय परम्परा है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता।

---

1. Iravati Karvey—Kinship Organisation in India, Pp. 315-318.
2. Races and Cultures of India—D. N. Majumdar, Pp. 270-286.

10 | लोक–नाट्य

नृत्य में मानव की आरम्भ से रुचि रही है। ऋग्वेद में नृत्य के प्रचलन सम्बन्धी श्लोक आए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में नृत्यांगनाएं अपने नृत्य से दर्शकों का मनोरंजन किया करती थीं। इन उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल के मनुष्य भी कभी-कभी खुले स्थानों पर नृत्य-गायन करते थे। शतपथ ब्राह्मण में अप्सराओं के नृत्य के साथ सम्बन्धित होने का वर्णन है। जातकों में किन्नरों एवं अप्सराओं का नर्तक होना बताया गया है।[1]

लोकनाट्य लोकगीत की भांति लोक-मानस को प्रिय लगने वाला व्यापार है अतः इस की विशेषता उस के लोक-धर्मी स्वरूप में निहित है। लोक-जीवन से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। यही कारण है कि लोक से सम्बन्धित उत्सवों, तथा मांगलिक कार्यों के समय लोक-नाट्यों का अभिनय किया जाता है।[2] लोक नृत्य तथा लोक नाट्य एक ही क्रियाव्यापार के दो पहलू हैं। लोक-नृत्य में लोक-मानस नाचता है परन्तु लोकनाट्य में उसकी अभिनय-सम्बन्धी कलाभिव्यक्ति अधिक मुखरित होती है।

संसार की प्रायः सभी आदिम जातियों में नृत्य तथा गायन का प्रचलन अन्य समाजों की अपेक्षा अधिक रहता है। लोक-नाट्यों की लय तथा गति में 'लोक' स्वयं परिवर्तन करता चला जाता है और लोक-गीतों की भांति ये भी एक से दूसरे स्थान पर फैलते रहते हैं परन्तु यह देखा जाता है कि जन-मानस की रुचि का विषय होने के कारण तथा अधिकाधिक व्यक्तियों को इनमें सम्मिलित होने की छूट के कारण सामूहिक लोक-नाट्य अधिक समय तक समाज में व्याप्त रहते हैं। लोक-नृत्य लोक-नाट्यों का प्रधान अंग होता है, भले ही वह अधिक सुनियोजित न हो।

लोक-नृत्य तथा लोक-नाट्य किन्नरों के जीवन के प्रमुख अंग हैं। यहां प्रचलित लोक-नाट्यों को हम दो प्रधान वर्गों में बांट सकते हैं—

1. वे लोक-नाट्य जो मुखौटे लगा कर दर्शाये जाते हैं। इनके अन्तर्गत 'होरि-ङ्फो', 'खोन' आदि के लोक-नाट्य रखे जा सकते हैं।

2. वे लोक-नाट्य जो त्यौहारों तथा अन्य उत्सवों के अवसरों पर प्रदर्शित

---

1. कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायु पुराण-देवेन्द्रकुमार राजा राम पाटिल, पृ० 216.
2. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—षोडश भाग, पृ० 127.

किये जाते हैं। त्यौहार-उत्सवों से सम्बन्धित अध्याय में इन लोक-नाट्यों का कुछ विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है, यहां हम इनके प्रकारों तथा वर्गों पर विचार करेंगे। वर्गीकरण को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए निम्नलिखित सारणी का प्रयोग किया जा सकता है—

किन्नर लोक-नाट्य :

1. **मुखौटे वाले लोक-नाट्य :**
   - अ. लामाओं के नृत्य/नाट्य।
   - आ. राक्षसों के सम्बन्ध में नृत्य/नाट्य।
   - इ. देवताओं के सम्बन्ध में नृत्य/नाट्य।
   - ई. छम्म।
   - उ. बौद्ध-कथाओं पर आधारित स्वांग।
2. **साधारण लोक-नाट्य :**
   - अ. कायङ्।
   - आ. वाकायङ्।
   - इ. गोम्फना।
   - ई. घर कायङ्।
   - उ. छेरकी कायङ्।
   - ऊ. नागस कायङ्।
   - ए. शुना कायङ्।
3. **उत्सव लोक नाट्य :**
   - अ. विशेष त्यौहारों के समय प्रदर्शित किए जाने वाले लोक-नाट्य।

तथा आ. 'होरिङ्फो' स्वांग आदि।

मुखौटे पहन कर नृत्य करना किन्नरों के सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रायः प्रत्येक मन्दिर में प्राचीनकाल में बनाए गए मुखौटे सुरक्षित रखे गए होते हैं जिन्हें विशेष अवसरों पर पहन कर स्वांग निकाले जाते हैं। ये मुखौटे विषम, यथा, तीन, पांच, सात अथवा नौ की संख्याओं में होते हैं और निचले भागों में इन्हें राक्षसों के प्रतीक माना जाता है। उपरि किन्नौर में बौद्ध-मन्दिरों में मिट्टी से बनाए गए विचित्र प्रकार के अनेक मुखौटे रखे रहते हैं, जिन्हें बौद्ध-धर्म सम्बन्धी किसी सम्पूर्ण कथा को नाटक रूप में दर्शाने के अवसरों पर पहना जाता है। ये मुखौटे लामाओं द्वारा नए भी बनाए जाते हैं तथा प्राचीन मुखौटों से अधिक आकर्षक होते हैं।

लामा समय-समय पर दुरात्माओं से गाँव तथा फसल की रक्षा के उद्देश्य से लोक-नाट्यों का आयोजन करते हैं। 'छम्म' के समय लामा ही नाचते हैं और उनका नृत्य विशेष प्रकार का होता है। छम्म में वे पंजाबी भंगड़े का सा नृत्य करते हैं। उनके रूप इस समय बड़े भयंकर प्रतीत होते हैं। यह नृत्य-प्रकार उन्हीं गाँवों में प्रचलित है, जहां लामाओं की संख्या अधिक होती है। फसल की रक्षा के लिए इसका महत्त्व है। यह

अधिकांशतः निश्चित अवसरों पर ही आयोजित किया जाता है परन्तु यदि आवश्यकता हो तो किसी भी अवसर पर इसका प्रबन्ध किया जा सकता है ।

बौद्ध-धर्म-कथाओं अर्थात् जातकों पर भी स्वांग आयोजित किए जाते हैं । लाहुल स्पीति तथा तिब्बत की ओर से लोक-नाटककार इस क्षेत्र में प्राचीन काल से आते रहे हैं । स्पीति से अब भी यदा कदा इन नाटककारों के दल किन्नर-क्षेत्र में आते हैं परन्तु तिब्बत से उनका आना बन्द हो गया है । इनका उद्देश्य बौद्ध-कथाओं द्वारा जन-मानस का मनोरंजन करना होता है । ये अनेक प्रकार के मुखौटे लगा कर सुन्दर ढंग से सम्पूर्ण कथाओं को नाट्य-रूप में प्रदर्शित करते हैं ।

राक्षसों की प्रत्येक किन्नर-ग्राम में अदृश्य रूप से उपस्थिति मानी जाती है । यह कहा जाता है कि अति प्राचीन काल में इस क्षेत्र में भूत-प्रेतों तथा राक्षसों के कारण मनुष्य का बसना सम्भव नहीं था परन्तु ग्राम-देवताओं ने इन दुरात्माओं को गाँवों से बाहर भगा दिया । अब भी विभिन्न अवसरों पर मुखौटे लगा कर गाँवों में इस प्रकार के उत्सव आयोजित किए जाते हैं जिनमें एकाधिक व्यक्ति राक्षसों के प्रतीक बनते हैं तथा दर्शक उन्हें बुरा भला कह कर दूर भगाना चाहते हैं । उत्सवों की समाप्ति पर यह समझा जाता है कि अदृश्य भूत-प्रेत गाँव से बाहर भगा दिये गये । चगाँव में चँत्रोल, सुङ्रा गाँव में बीशू, सांगला गाँव का दीवाल तथा पांगी तथा जंगी गांवों के दकरेणी के मेले इस प्रकार के आयोजनों के लिये प्रसिद्ध हैं ।[1] 'होरिङ्फो' लोक-नाट्य तो हिमाचल के चार प्रसिद्ध लोक-नाट्यों, यथा, करयाला, बांठड़ा, स्वांग तथा हरण्यातर में में से एक नाट्य है । इसी कारण किन्नरों को 'हरिणनर्तक' भी कहा जाता है ।

देवताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से मनाये जाने वाले मेलों में लोक-नृत्यों का होना आवश्यक माना जाता है । सामूहिक नृत्यों में स्त्रियां व पुरुष इस प्रकार नाचते हैं कि पुरुष पहले तथा स्त्रियां उनके पीछे एक दूसरे के हाथ पकड़े रहें । सब से अगला व्यक्ति 'धुरे' (धुरी में रहने वाला) कहा जाता है उसके साथ हाथ पकड़े हुए दूसरे व्यक्ति उसके पांवों की गति के अनुसार नाचते हैं । उपरि किन्नौर में एक पुरुष के पश्चात् एक स्त्री भी अनेक अवसरों पर नृत्य-पंक्ति में नाच सकती है परन्तु निचार तथा काल्पा सब-डिवीजनों में स्त्रियां पुरुषों की पंक्ति में प्रायः अलग ही नाचती हैं उनके बीच पुरुष नहीं नाचते । यदा-कदा कई पुरुष आगे से अपने हाथ छुड़ा कर स्त्रियों के बीच नाचना आरम्भ कर देते हैं परन्तु यह साधारण प्रथा नहीं है । देवता की पालकी को एक स्थान पर रख दिया जाता है अथवा कुछ व्यक्ति उसे अपने कन्धों पर उठा लेते हैं और नृत्य आरम्भ हो जाता है । देवता के वाहन को भी ऐसे अवसरों पर नृत्य कराया जाता है ।

किन्नर क्षेत्र के निचले भागों में 'कायङ्' अर्थात् माला-नृत्य सब से प्रसिद्ध है । इसमें नर्तक एक दूसरे को इस प्रकार पकड़ते हैं कि उनके बाजुओं का गुणा का चिन्ह बन जाता है, यह इस प्रकार होता है कि दायां हाथ बांई ओर नाचने वाले व्यक्ति के दायें हाथ से पकड़ा जाता है और बायां दूसरी ओर के व्यक्ति की ओर बढ़ाया जाता है । इस प्रकार सब नर्तक माला के मनके से लगते हैं । धुरी में नृत्य करने

---

1. विशेष विवरण के लिए देखिये इसी प्रबंध का 'त्यौहार-उत्सव' अध्याय ।

वाला व्यक्ति इस नर्तक दल का नेता होता है। इसमें स्त्रियां नाचते समय गीत गाती जाती हैं। गीत की जिस प्रकार की लय हो उसी प्रकार को नृत्य-गति हो जाती है।

'कायङ्' के एक प्रकार को 'जातरू कायङ्' भी कहा जाता है। यह मन्दिर में त्यौहार के अवसरों पर होता है। इसमें त्यौहार सम्बन्धी गीत गाए जाते हैं। इसमें एक साथ नृत्य करने वालों की संख्या सौ तक पहुंच जाती है। इसमें वादक अपने वाद्य-यंत्रों को बजाते हैं तथा घुरे चंवर लेकर नाचता है। चंवर के लिये नर्तकों में अनेक बार झगड़े हो जाते हैं अतः कई गांवों में चंवर की थोड़ी बहुत फीस रखी रहती है जिसे देवता के कोष में जमा कर दिया जाता है। इसमें घुरे देवता का 'क्रो' लेकर भी नाचता है। इसे ही 'चाशिमिग' भी कहा जाता है।

'थर' का अर्थ **'बाघ'** होता है। जब बाघ की भांति तेजी से नाचें, आगे बढ़ें तथा पीछे हटें तो **'थर कायङ्'** कहा जाता है। इसमें गाए जाने वाले गीत नाटी के प्रकार के होते हैं। 'थर कायङ्' प्रायः **'बोर्चो नाटी'** के समय होता है। जब कोई व्यक्ति बाघ का शिकार करता है तो उसे सम्मानार्थ पगड़ी पहनाई जाती है तथा बाघ की खाल में भूसा भर कर उसे शिकारी के तथा दूसरे गांवों में नचाया जाता है। इस अवसर पर 'बोर्चो नाटी' का गीत गाया जाता है जिसमें बाघ का अपने घर से चलना मार्ग में भेड़ बकरियां खाना तथा उस गांव में पहुंचना वर्णित रहता है। इस प्रकार के प्रदर्शन के लिए गांव के लोग नर्तकों को रुपये-पैसे तथा अनाज देते हैं जिन्हें वे आपस में बांट लेते हैं।

'नागस कायङ्' केवल कुछ ही स्थानों पर होता है। चगांव में फुल्याच तथा ऐराटङ् मेले के दिनों में इस कायङ् को निश्चित् स्थान पर आयोजित किया जाता है। इसमें एक व्यक्ति कण्ढे की देवी नागिन बन जाता है और उसके हाथ में पानी से भरा 'क्रो' दे दिया जाता है। यह कण्ढे की देवी नागिन को वापिस भेजने के लिए होता है। नागिन के 'क्रो' से गिरा हुआ पानी सौभाग्य-चिन्ह माना जाता है अतः युवक इस पानी को अपने शरीर पर गिराने के लिए नागिन के पास जाते हैं। इस प्रकार के कायङ् में लोग सर्प की गति में नाचते हैं अतः नर्तकों की पंक्ति टेढ़ी-मेढ़ी होती रहती है।

'छेरकी कायङ्' का अर्थ है-शीघ्रतापूर्वक नाचना। कायङ् यहां का इतना अधिक प्रचलित शब्द है कि प्रत्येक मेले को ही 'कायङ्' कहा जाता है। इसमें विशेष रूप से प्रेमी प्रेमिका का गीत गाया जाता है। इस प्रकार के नृत्य में लय तथा गति बहुत तेज होती है अतः बूढ़े तथा बूढ़ियां नहीं नाच सकतीं। यह मेला मन्दिर में कम लगाया जाता है।

'शुना कायङ्' का अर्थ है-राक्षसों का मेला। नाम के अनुसार ही इसमें व्यवस्था का प्रश्न कम उठता है। नर्तक कभी तेजी से दौड़ते हैं तथा कभी इतनी मन्द गति से नाचते हैं कि एक के पांव दूसरे से टकराते हैं। शूना कायङ् प्रायः उन्हीं गांवों में लगता है जहां राक्षसों से सम्बन्धित जन-कथाएं प्रचलित हैं।

वाकायङ्—'वा' का अर्थ है-दो साथ-साथ। जब कोई पुरुष नर्तक न मिले और स्त्रियां नृत्य करना चाहें तो वे दो अलग अलग पंक्तियों में एक दूसरे की ओर मुंह करके खड़ी हो जाती हैं। कोई गीत आरम्भ कर दिया जाता है और दोनों दल कभी पीछे हटते जाते हैं और कभी आगे बढ़ते हैं। पुरुष वाकायङ् में नहीं नाचते। इस

अवसर पर गाया जाने वाला गीत मंद लय में होता है। इसमें जब एक पंक्ति की नर्तकियां आगे आ रही होती हैं तो दूसरी पंक्ति की पीछे हटती जाती हैं। जब वे आगे बढ़ने वाली नर्तकियों को आगे न बढ़ने देना चाहें तो उन्हें नाचते हुए आगे झुक कर हाथ का संकेत करती हैं जिसका अर्थ यह होता है कि उन्हें पीछे हटना चाहिए।

गोम्फोना—यह घर के भीतर लगाया जाने वाला 'कायङ्' होता है। गोम्फोना में एक व्यक्ति भी नाच सकता है।

रोपा घाटी क्षेत्र में नृत्य के निम्न-लिखित प्रकार प्रचलित हैं :—
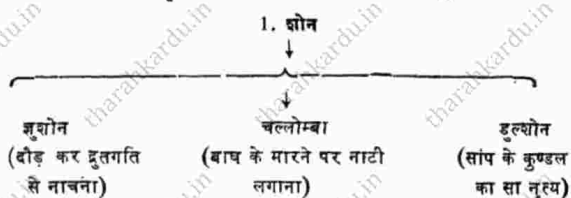
शोन तथा उसके उपभाग निचले किन्नौर के कायङ् तथा उसके उपभागों, यथा, नागस कायङ् तथा बोचों नाटी से मिलते हैं। अन्तर केवल यह है कि इनमें हाथ पकड़ कर नृत्य करना आवश्यक नहीं होता। चल्लोम्बा में बाघ की खाल में भूसा भर कर उसकी नाक में सोने का आभूषण डाल कर नृत्य कराया जाता है।

2. **जबरो**—नृत्य का यह प्रकार बौद्ध-धर्म का प्रभाव लिये हुए है। इसमें नर्तक अर्द्धगोलाकार में नाचते हैं। इसमें हाथ पकड़ना आवश्यक नहीं होता। अनेक बार नर्तक शारीरिक व्यायाम करने की सी स्थिति में आ कर अर्द्धचक्र में चलते हैं। इसमें साधारणतया चार पग आगे तथा चार पग पीछे जाना पड़ता है। इसमें दुङ्ग्युर (धर्म-चक्र) की भांति बाईं ओर को नाचा जाता है। इसमें गाए जाने वाले गीत लामाओं को समर्पित होते हैं। ये गीत तिब्बती भाषा में होते हैं और अधिकांशतः करुण रस से ओतप्रोत रहते हैं। 'जबरो' का अर्थ (जब—पैर, रो—नाचना) 'गाते हुए, पैर से नाचना' होता है।

3. **खार**—जब एक व्यक्ति अकेला नाचे तो उस नृत्य-प्रकार को 'खार' कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त हङ्रङ् में नृत्य के अन्य निम्न लिखित प्रकार हैं :—

1. **सोमा हेलङ्**—सोमा—नया, हेलङ्—स्वर। इसमें 'कायङ्' की तरह हाथ आगे तथा पीठ के पीछे पकड़े जाते हैं। ढोल भी बजाया जाता है। चंवर का प्रचलन इस क्षेत्र में नहीं है। इसमें किसी भी संख्या में लोग नाच सकते हैं।

2. **गर**—इसमें ढोल कई प्रकार से बजाया जाता है। गर का अर्थ 'ढोल की ताल' पर नाचना होता है। इसमें देवता का माली घुरी में झारी के साथ नाचता है। यहां दोरजे छेन्मो देवी जो लोचा रिनछिन जाङ्बो (रत्न भद्र) की शुङ्मा (रक्षक) मानी जाती है, (ये सात बहिनें हैं), अकेली ही नाचती है, सब से आगे उसका माली

नाचता है। इसमें हाथ पकड़ने की प्रथा नहीं है। नर्तक केवल चादर या मफलर, रूमाल आदि हाथों में फिरा कर गाते समय दायरा लगाते तथा नाचते हैं।

3. **काटक्पा**—नमङ्‌न में होता है। इसमें बजन्तरी ढोल बजाते हुए नर्तकों के सामने आगे चलते हैं। नाचने वाले एक दूसरे का हाथ नहीं पकड़ते। नर्तक ढोल की तान पर नाचते हैं। ग़र और काटक्पा में अन्तर यह है कि ग़र में ताल और लय मधुर होता है जबकि काटक्पा में द्रुतगति से नाचना होता है।

4. **जबरो**—ढोल नहीं बजाया जाता। इसमें 'गोबो' (एक यन्त्र विशेष जो इकतारे की भांति होता है) के साथ गाना गाया जाता है। ढोल न होने पर भी नाचने वाले गीत गाते हैं। जबरो के बाद मेला समाप्त हो जाता है। जबरो गीत तिब्बत से आए हैं और तिब्बती भाषा में ही मिलते हैं।

पूह क्षेत्र के नृत्य :—

1. **ग्यबशुन**—इसमें हाथ खोल कर पीछे दोहरा पैर ले जाते हैं। एक दूसरे के हाथ पीछे पकड़े जाते हैं। ग्यब—पीछे, शुन—नाचना।

2. **ग्यङ् लू**—लम्बे तर्ज से गाये जाने वाले गीतों के साथ इसमें कायङ् ही लगाया जाता है। ग्यङ्—लम्बा तर्ज, लू—गीत।

3. **ग्युक्शुन**—ग्युक्—दौड़ना, शुन—नाचना। इसमें कायङ् की तरह हाथ पकड़ कर दौड़ना होता है।

4. **दोङ्शुन**—यह कायङ् ही है पर इसका गीत मन्द गति से गाया जाता है। दोङ्—सामने, शुन—नाचना।

5. **जबरोह**—इस में दो प्रकार हैं। पहला, इसमें दायीं ओर भी गति रहेगी और बाईं ओर भी। दूसरा, गोल दायरे में पहले पीछे फिर आगे को बढ़ना।

6. **कर लू**—इसमें हाथ नहीं पकड़े जाते। अपनी-अपनी गति से सभी नर्तक दायरे में नाचते हैं। कर—उठ कर नाचना, लू—गीत। इसे नीचे की बोली में **गोम्फना** कहा जाता है।

7. **छङ् लू**—कुछ गीत ऐसे हैं जिन्हें छङ्—अनाज की शराब पी कर लोग बैठ कर ही गाते हैं। इन्हें 'छङ् लू' कहा जाता है। वैसे तो गीत यहां की बोली में कम मिलते हैं लेकिन छङ् लू आदि यहां की स्थानीय बोली में मिल जाते हैं। 'छङ् लू' अपेक्षाकृत पुराने गीत हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लोक नृत्य तथा लोक-नाट्य इस समाज के दैनिक जीवन की आवश्यकता है तथा पौराणिक किन्नरों के गायन तथा नृत्य सम्बन्धी गुणों को वर्तमान समाज में भी देखा जा सकता है।

11 | लोक-भाषा

किन्नर-बोली की कोई स्वतन्त्र लिपि नहीं मिलती। प्राचीन काल से इस क्षेत्र में जिस लिपि का राजकीय कार्यों में प्रयोग होता रहा, वह बुशहर रियासत द्वारा अपनाई गई टांकरी थी। टांकरी अथवा टाकरी केवल बुशहर की ही नहीं बल्कि सारे पहाड़ी क्षेत्र की लिपि थी जिस के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में निवास करने वाले खशों आदि की अपनी स्वतन्त्र भाषा थी जिसे अपनी लिपि में व्यक्त किया जाता था। टाकरी में लिखे गए ग्रन्थ इन क्षेत्रों में यत्र तत्र देखने में आते हैं। इस लिपि के अक्षरों की बनावट से पता चलता है कि यह ब्राह्मी लिपि से मिलती जुलती थी तथा इस के अक्षर वर्तमान देवनागरी लिपि के विकास के मूल के साथ सम्बन्धित थे। इस में मात्राओं का बहुत सरल क्रम होता था और इस के कुछ अक्षर वर्तमान गुरमुखी से भी मिलते थे। इस में 'आ' की मात्रा प्रायः अक्षर के ऊपर एक टेढ़ी लकीर लगा कर व्यक्त की जाती थी। सराहन के पास रावीं गांव में एक बहुत प्राचीन पुस्तक है जिस का अध्ययन इस लिपि के इतिहास के सम्बन्ध में किया जा सकता है। इस पुस्तक में क्या लिखा गया है, यह तो स्पष्ट नहीं है परन्तु लिपि से ऐसा प्रतीत होता है कि यह शारदा अथवा टांकरी के किसी रूप में लिखी गई है। टाकरी सिन्ध तथा व्यास नदियों के बीच बसे टक्कों द्वारा अपनाई गई लिपि बताई जाती है। पुस्तक के सम्बन्ध में एक रोचक किम्बदन्ती है कि जब प्राचीन काल में किसी समय निरमण्ड में भूण्डा यज्ञ हो रहा था तो इस में प्रयोग में लाए जाने के उद्देश्य से दो मटके घी से भर कर रखे गए थे। उन में से एक मटके में सांप मर गया परन्तु किसी को इस बात का पता नहीं चल सका। कहा जाता है कि एक कव्वा उड़ कर रावीं के एक पण्डित के पास गया। वह पण्डित कव्वों की भाषा जानता था। कव्वे ने जो भी वृतान्त कहा, वह उस पण्डित ने लिख लिया जिस के परिणाम स्वरूप यह पुस्तक बन गई। बाद में पण्डित ने निरमण्ड में इस सम्बन्ध में सूचना भेजी जिस के कारण सैंकड़ों व्यक्तियों की जानें बच गईं। परम्परा है कि भूण्डा के अवसर पर अब भी इसी घटना के कारण उस वंश का एक पण्डित आमन्त्रित किया जाता है। किन्नर-क्षेत्र में भी कुछ व्यक्तियों के पास कुछ गांवों, यथा कामरू, मीरू आदि में प्राचीन ग्रन्थों के टांकरी में छिटपुट अनुवाद मिलते हैं परन्तु वे महत्वपूर्ण रचनाएं नहीं हैं, उनका अध्ययन इस लिपि के विकास के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है।

किन्नर-क्षेत्र में प्रागैतिहासिक काल से प्रचलित हिसाब-किताब रखने की परम्पराएं देव-मन्दिरों में सुरक्षित मिल जाती हैं। जब टांकरी लिपि का प्रचलन इस

इस क्षेत्र में अभी नहीं हुआ था तो लोग अशिक्षित होते थे और अधिकांश लेन-देन वस्तुओं के परिवर्तन के द्वारा ही किया जाता था। उस समय से लेकर गत शताब्दी तक निचले किन्नौर के अनेक गांवों के देव-मन्दिरों में तथा धनिकों के घरों में छोटी छोटी लकड़ियों के साथ ही हिसाब रखा जाता था। इन लकड़ियों को 'रेखङ्' कहा जाता है। कामरू गांव के मन्दिर में अभी तक भी देवता के मन्दिर से अनाज उधार लेते समय मन्दिर के कारदार पत्थों के हिसाब के लिए लगभग दस इंच लम्बी लकड़ियों पर लकीरें लगा कर अनाज के साथ ग्राम-वासियों को देते हैं। यह इस लिए किया जाता है कि उधार लेने वाले व्यक्ति को याद रहे कि उस ने देव-मन्दिर से कुल कितना उधार लिया है। इस प्रकार की लकड़ियों के लिए एक पत्थे के लिए छोटी सीधी लकीर तथा 20 पत्थे (छरार) के लिए एक टेढ़ी लकीर लगाई जाती है। बड़ी तथा छोटी लकीरें अलग अलग नापों के लिए बनी होती हैं अतः उधार देते समय 'रेखङ्' बनाने वाले व्यक्ति को ध्यान पूर्वक लकीरें लगानी पड़ती हैं। इस लकड़ी से भी समस्या का समाधान नहीं था क्योंकि यह कठिनाई थी कि ऋणी यह भूल सकता था कि उसने देव-मन्दिर से कौन सा अनाज उधार लिया था। इस के लिए ओगला तथा फाफरा[1] के लिए दो भिन्न प्रकार की लकड़ियां प्रयोग में लाई जाती हैं। सापनी गांव में भी 'रेखङ्' की प्रथा रही है।

चगांव गांव में जो प्राचीन काल की 'रेखङ्' मिली हैं उन को बीच से काट दिया गया होता था, इस प्रकार की 'रेखङ्' देव-मन्दिर में रखी जाती थीं। यहां एक लकड़ी लेकर उस पर पत्थों तथा छरार (20 पत्था) के लिए चिन्ह लगा दिए जाते थे और बाद में उस लकड़ी को दो भागों में चीर दिया जाता था। रेखङ् का एक भाग देवता के मन्दिर में रखा रहता था तथा दूसरा उधार लेने वाले व्यक्ति को दिया जाता था। जब वह व्यक्ति उधार वापिस करने के लिये आता था तो अपने साथ के भाग को भी लाता था। देवता के कारदार उसके भाग को अन्य रेखङों के साथ मिला कर उस का मन्दिर में रखा गया भाग ढूंड निकालते थे और यदि वह व्यक्ति सारा ऋण चुका देता तो रेखङ् के दोनों भागों को जला दिया जाता था। यहां यह उल्लेखनीय है कि 'रेखङ्' शब्द ही रेखा से बना प्रतीत होता है। 'रेखङ्' पर पत्थे के लिए छोटे चिन्ह तथा छरार के लिए बड़ी लकीरें अंकित की जाती थीं। रेखङ् का बहुवचन 'रेखङा' होता है।

उपरि किन्नौर में तिब्बती भाषा में ही लिखा-पढ़ी का प्रचलन है अतः टांकरी लिपि उस क्षेत्र से लुप्त-प्रायः हो गई है। किन्नौर में टांकरी का जो रूप प्राचीन बहियों तथा सरकारी कागज-पत्रों में उपलब्ध होता है वह अन्य पहाड़ी क्षेत्रों की टांकरी से कुछ भिन्न है। यह बात सब पहाड़ी रियासतों के सम्बन्ध में घटित होती है। क्योंकि यह लिपि जन-लिपि के रूप में ही प्रचलित रही और लोगों ने इसे विशुद्ध साहित्य-रचना के लिए नहीं अपनाया तथा इस की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था नहीं थी अतः इस का यथोचित विकास नहीं हो पाया।

यह कहना युक्तिसंगत ही है कि, 'भाषा तथा बोली में प्रायः वही सम्बन्ध है

---

1. देवता द्वारा मुख्यतः इन्हीं अनाजों का लेन-देन किया जाता है।

को पहाड़ तथा पहाड़ी में है । यह कहा जा सकता है कि ऐवरेस्ट पहाड़ है और हालवार्न पहाड़ी है, किन्तु इन दोनों के बीच की विभाजक रेखा को निश्चित रूप से बताना कठिन है । इस के अतिरिक्त कभी कभी दार्जिलिंग के पहाड़ को, जो 7500 फुट ऊंचा है, पहाड़ी और स्नोडन को, जो केवल 3500 फुट ऊंचा है, पहाड़ कहते हैं । भाषा और बोली का प्रयोग भी प्रायः इसी प्रकार से शिथिल रूप में होता है[1]' ।

भाषा के अध्ययन की दृष्टि से हम किन्नर-क्षेत्र को दो भागों में बांट सकते हैं—

1. **उपरि किन्नौर**—पूह उप-खण्ड की पूह तहसील तथा लियो उप तहसील का प्रायः सारा भाग ।

2. **निचला किन्नौर**—मूरङ् तहसील के अधिकांश गांव एवम् काल्पा तथा निचार सब-डिवीजन ।

पूह क्षेत्र की बोली तिब्बती मिश्रित है तथा तिब्बती लिपि में लिखी जाती है और इस पर हिन्दी अथवा पश्चिमी पहाड़ी का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हुआ है । इस क्षेत्र में भी अनेक गाँवों की बोलियों में उच्चारण सम्बन्धी विविधता है । हङ्रङ् में निवास करने वाले हरिजन थेबर स्कद बोलते हैं तथा सुङ्नम गाँव के निवासी तिब्बती मिश्रित भिन्न भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे समीप के गाँवों के निवासी नहीं समझ पाते । जङ्रामी (जंगी, लिप्पा व असरङ् की बोली) केवल तीन गाँवों में प्रचलित बोली है ।

निचले क्षेत्रों में छित्कुल-रक्छम, कूनो-चारङ् तथा नेसिङ् की बोलियों में समानता है तथा औरेस व हरिजन अलग उपभाषाओं का प्रयोग करते हैं ।

इस विषमता को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण किन्नर-क्षेत्र को भाषा की दृष्टि से हम निम्नलिखित उपवर्गों में बांट सकते हैं—

1. **कनौरयानुस्कद**—इसे हम निचले किन्नौर में प्रयुक्त 'खश भाषा' अथवा 'स्वर्णों की बोली' भी कह सकते हैं । यह निचार तथा काल्पा क्षेत्रों में रक्छम तथा छित्कुल गांवों को छोड़ कर बोली जाती है । इस वर्ग में पूह सब-डिवीजन के जंगी, लिप्पा तथा असरङ् को छोड़ कर मूरङ् तक के गांव रखे जा सकते हैं । कनौरयानुस्कद क्षेत्र के गाँवों में औरेस (लुहार) तथा अन्य हरिजन अलग अलग बोलियों का प्रयोग करते हैं अतः इन दो वर्गों की बोलियों को 'कनौरयानुस्कद' का भाग नहीं माना जा सकता । इन दोनों उपभाषाओं में कनौरयानुस्कद से भाषा-परिवार सम्बन्धी भिन्नता है अतः कनौरयानुस्कद भाषा-भाषी क्षेत्र में तीन अलग बोलियां प्रचलित हैं । वर्गीकरण के अनुसार 'औरेस' तथा 'हरिजनों' की बोलियों का कनौरयानुस्कद के साथ ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ताकि एक गाँव में प्रचलित सब बोलियों में समानता-असमानता को देखा जा सके ।

---

1. **भारत का भाषा-सर्वेक्षण—खण्ड 1, भाग 1, जार्ज इब्राहम ग्रियर्सन, अनुवादक डॉ॰ उदयनारायण तिवारी, पृ॰ 376,**

2. **छित्कुली**—यह बोली छित्कुल तथा रकछम गाँवों में प्रचलित है। ये गाँव तिब्बत की सीमा के साथ बसे हुए हैं। सुदूर कनो-चारङ् तथा नेसिङ् की बोलियों से इसकी समानता है।

3. **हरिजनों की बोली**—यह पश्चिमी पहाड़ी के अधिक निकट है।

4. **औरसों की बोली**—यह सवर्णों तथा हरिजनों की बोली से अलग है।

5. **न्यम स्कद**—यह सारे हङ्रङ् क्षेत्र की बोली है। कूनोचारङ्, छित्कुल तथा नेसिङ् गाँवों की बोली पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव है। इस पर तिब्बती भाषा का अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक प्रभाव है।

6. **सुङ्नम की बोली**—यह बोली शेष सारे किन्नौर की बोली से भिन्न है। इस में भी तिब्बती भाषा का मिश्रण है।

7. **थेबर स्कद**—यह कानम से लेकर पूह तक के गाँवों में बोली जाती है। कनौरयानुस्कद की अपेक्षा इस पर तिब्बती भाषा का प्रभाव अधिक है।

8. **जंगी, लिप्पा तथा असरङ् की बोली**—यह भी थेबर स्कद के समीप है, केवल तीन ही गाँवों में बोली जाती है। इसे 'जंगरामी' कहा जा सकता है।

9. **नमगिया की बोली**—इस में टशिटङ् तथा खाबो गांव भी आते हैं।

इन बोलियों में अनेक शब्दों की समानता है और उच्चारण सम्बन्धी भिन्नता होते हुए भी एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र की बोली को समझ लेते हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि निचले किन्नौर के लोग उपरि-किन्नौर की बोलियों को नहीं समझ पाते तथा इन क्षेत्रों के लोगों के साथ विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम टूटी फूटी हिन्दी होता है। क्यों कि इस क्षेत्र की किसी भी बोली में लिंग-भेद नहीं है तथा तीन बचन हैं अत: यहां के निवासी हिन्दी में बात करते समय किन्नौरी व्याकरण के अनुसार बोल जाते हैं जिससे हिन्दी का विकृत रूप सामने आता है। इस बोली का हिन्दी म अनुवाद करना कठिन है। वैसे ही हिन्दी का अक्षरश: अनुवाद करना इन बोलियों में सम्भव नहीं है। स्थानीय बोली में 'स्कद' अथवा 'कद' बोली अथवा भाषा को कहा जाता है।

निचार तथा काल्पा क्षेत्रों में प्राय: सभी गाँवों में तीन बोलियां समानान्तर रूप से बोली जाती है :—

1. सवर्णों (खश वर्ग) की बोली।
2. औरेसों (बढ़इयों) की बोली।

तथा 3. अन्य हरिजनों की बोली।

ऊपरवर्णित सभी प्रकार की बोलियों में निम्नलिखित हिन्दी कहानी का अनुवाद इनके पारस्परिक अन्तर को स्पष्ट करने में सहायक होगा। इस कहानी के वाक्यों से भाषा के विविध रूपों तथा उत्तम पुरुष के द्विवचन व बहुवचन के सम्बन्ध में जानकारी

प्राप्त होती है । इसका अनुवाद सहज स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया गया है और उसे उसे यथावत यहां प्रस्तुत किया जा रहा है । कहानी इस प्रकार है :—

हिन्दी कहानी

एक आदमी के तीन पुत्र और दो लड़कियाँ थीं । दूसरा लड़का खराब था । उसने अपने पिता को घर बार बांटने के लिए कहा । उसके दो भाइयों ने कहा—हम सब को इकट्ठे रहना चाहिये फिर भी यदि तुम नहीं मानते हो तो हम दो इकट्ठे रहेंगे । मंझला पुत्र उस दिन से ही मजे में रहता था । फिर उसने अपने पिता की धन-दौलत (घर-बार) खत्म करना आरम्भ किया । उसने खेत बेच दिए और घर रहन रख दिया । उस के पश्चात् उस को रोटी प्राप्त करना कठिन हो गया था, उसने अपना गाँव छोड़ दिया ।

कनौरयानुस्कद चौरा-कफौर क्षेत्र

इद मियू शुम छड़ा रङ् निश चिमे डूझो । आइद छाङ् माज डूग्यो । दोस आनु बावा पे किमा-रिमा काकशिमो रिङो तेक । दोऊ निश आलेगास लोईग्याश—'किशा चेई कठ निम ग्यामिग । दोली की माशकन मा, किशा निश गठ निते ।' माजोगाङ् छाङ् देम्या मौजाओ नियो तेग । दौस दोस अनु वावाऊ नोरसङ् छिङीम मेलशिग्यो । दोस रिमा रेनमिग किम रहन तागग । दो निम दो खाना पोरेना मुशकल हुचिग—दोस अनु गोनिङ् छेशमिग ।

औरेस बोली चौरा-कफौर क्षेत्र

एक मानस री त्रोन कनारी सी दी छोटी थी । दुग्रौ कनारी मारे थौ । ते सै आपनौ बुबा घौर बौन बांटनै बोलान थौ । तेसरै दी भाइऐं बोलेर, 'आमरी सोबियें कौटे थाकनै चैन्दो, तै भी तुमरी ना मनयादे, आमदी कौट थाकमै ।' माचको छोटु सह दिनै कापोरू मजाकै थाकदा थी । तेतका तेसै बुबा सेइयो दन दौलत (घौर बौन) खतम करानलै शुरू कियों । ते सै डोकरै बेचेर आई घौर रहन थौएर । तेतका पाचका तेसलै खाऊ खानौ मुशकल फिरेर, तिनियें आपनौ देश छाड़ेर ।

हरिजन बोली चौरा-कफौर क्षेत्र

एक मणशे त्रोन छोटू सी दी छोटी ती । दूग्र छोटू नेड़ त । तेओए आपणें बाओ ले घर बार बांटने बोलो । तेओए दी भाइए बोलो—'हामे सोबीले केठे थाकण चेई । जेबी तू न इदीदे ते हाम दिए कठे थाकमे ।' माझक छोटू तथू का ऐ मझे के थाकदात । फिरी तेओए आपणे बाओ ये डोखरे बेचे हां घर रहन थओ । तेतका पोरू तेओले रोटी प्राप्त करन ऐ हौसल नही थ । तेओए आपणें ग्रोवा छाडो ।

कनौरयानुस्कद राजग्रामङ् क्षेत्र

इद मीयू शुम छाङा रङ् निश चिमेदे दुग्यो । आइद छङ् बिगड़ेडे दुग्यो । दोस अनु बवा पङ् किम रिम कागचिमो लोचो । दोऊ निश अते रङ् वाइचौस लोचो—'किशाङों चईवयुई इदी निमो ग्याच । दोक ले का माश्कोन्ना, निशी निश इदी नीतिच ।'

माजङ्स्या छङ् हीदोम्याक्ची मजो नीच् दुग्यो । दोक बुश्रो जायदाद (किम-रिम) खत्म लाश्रो शुरू लानग्यो । दोस रिम रैंचो श्रई किम बान्दा ताग्यो । दोक निपे दो पङ् खाऊ पोरेन्नो ले मुश्किल हाचिस दूग्यो, दोस अनु देशङ् छेरयाग्यो।

औरेस बोली — राजग्रामङ् क्षेत्र

एक मानुशो त्रौन याने आई दी छोटी थी । आएक यानो बिगड़ा हुएर थो । तैंसे अफनो बुवा ले घर बार बाटाले बोलो । तेसरो दी बाइए बोलो—'तामेसो बे कोठा थाक्मे । तैं भी अगर तुमें ना मोनदे तमबी कोठा थाक्मे ।'

माच कोस्या यानो तेई कानी मजाके थाबन थो । तेईकनी बापसीयां जायदाद (घर बारो) खत्म करन ले शुरू करो । तैंसे खेत बेचौ और घोर बान्दा जागो । तेईकनी तेस ले रोटी बी प्राप्त करना मुश्किल फिरो । तैंसे अफना देश बी छारे बेजो ।

हरिजन बोली — राजग्रामङ् क्षेत्र

इक मानुशरे त्रौन छोटू द्वी छोटी थीसा । आईक छोटू बिगरोन्दो थीश्रोस । तिऊँएं अफरो बापला घोर बोन बाँटबै बोलस । तिऊँरे द्वी भाइए बोलस, "तामोरिए कोठे थाकनो चांदो । तेवी तू न मन्यादे अम्बी ता कोठे थाक्सी ।"

माभकोस्या छोटू तदु का पिछुए निहाल थाकेन थीश्रोस । तैं बापेरो घर बोन खोतम कोरनो शुरू कौरोस । तिऊँएं डौखरो बीकनौस घोरस्या रहन छारोस । तदुका पीछू तीऊँला खाउ खानो वी प्रापत नाहीं फिरस, तिएंऊं आफरो मुलुक शोठयास ।

कनौरयानुस्कद — काल्पा-क्षेत्र

इ मियू शुम छङा रङ् निश चिमेदा दियो । मजुबङ्स्या छङ् मरी दियो । दोस अनु बोनू किम रिम कगमू लोतो । दो निश अते बयागास लोतो, 'किशङ् चोइकी एके तोशिम जामिग दू । दोक लि कः मा मोत्यातोन ता, निशी ता एकई तोशिच ।' मजुबङ्स्या छङ् होदोम्यकची ब्याल कटयो दियो । दोक दोस बोनू जागा जिमी खतम लनिस दूशियो । दोस रिमा रेशिदे किम गिरवी ताशिद । दो शुम दो पङ् खाना पोरयननिग मुशकल हचिशिद । दोस अनू देशङ् शोठयाशिद ।

कनौरयानुस्कद — रिब्बा गांव

ई मीयू शुम छाङ नङ् नीश छेचाच दीयोय, ईद छाङ्स्या मारी दीयोय। दोस आनु बोबा तङ् किम रीम काकचमो लोचयोय । दोचू नीश नुचवासस—'काशङा ऐके तोशमीक लोचयोय । दोग ली की माशकोन्ना नीशी ता ऐके तोशीच लोचयोय ।'

मायङ्स्या छाङ् होदोमया कालीङ् माल लानो दीयोय । दोग दो आनू बोश्रो नोर साङ शुङ्म दीशीयोय, दोस आनू रीमा रेच योय । किम स्या बान्दो रानयोय । दो नीपी दोचू खाऊ पोटेन्नीक ली मुश्किल हाचीयोय । दोग दो आनू देशङो मा तोशीयोय ।

औरेस बोली — रिब्बा गांव

एक मानुशो तरौन यानो सी दी देतो लारी नी थौ। आजिकस्या यानों मारे थो।

होते से आपनो बुवा ले घौर बाटान ले बोलो। होतेस रौ दी भाई रीये बोलो-'तामरी सोब ले ऐके बैशनो चेनो। ते भी तु श्राम दी ले नाचे ता श्राम दी ऐके थाकसी'। माचके सीं यानो तेई कानी मौजाए थाकान थौ। तेसे बुग्राग्री घोर-बा र छेकान ले फ्याग्रौस। ते होतेसे डोखरो बेचे घोर भी बांदो बेजोस। तेई कानी रोटी खान ले मुशकौल फिरौस। होते से आपनो देश छारे बेजोस।

हरिजन बोली — रिब्बा

एक मानुश रो बोन छेल्परे मि दुई दी हैरी हुदौस। आइकस्या छेल्डु मारे हुदौस। हौतिनिए आपरो बुग्रा लै बौलौस-एं घौर बान्ठनो स्या। हौतिग्रो दुई अते हैरी एं बौलौस-'तामलै एके थाकनो चांदो। ते भि तु नो मौन्यता ग्राम्बी स्या एके थाकसि'। माचको स्या छेल्डु हौतादु कै पिछु थालै थकिन हुदौस। ते हौतिनिएं आपरो बुग्रा री घौर बार, नौर-सांग सबै छिकयानो लागौस। हौतिनिए डोखरो बिक्याग्रौस। घोर लै स्या बांधो दैनौस। तादु कै पिछु होतिन लै खानो पौरनै लै वि मुस्कौल फिरौस। तै हौतिनिए आपरो देश लै भि शौठयाग्रौस।

कनौरयानुस्कद — मूरङ् क्षेत्र

इद मियू शुम डेखराच् ताङ् नीश छेचाचोन दियो। माजुगांस छाङ मार दियो। ओदोस उणु भोचौवू किमोन रिमोन काङमू लोया। आणु निश आचो दांग बायास लोयो- 'कशांग मांग चेग्यू एके तोशिच ग्यामिग दाग ली की माणूकोन्मा, नीशीदा एके तोशिच'। माजुगांस छांग ओदो मयागची ज्यालो तोशिच दियो। दाग अणू भोवावू नोरोन सागोनू (किमोन रिमोन) शुङ दिशियो। ओदोस रिमोनू रेयो, आए किमू बान्धो शेयो। दाग ज्यूम खावू पोरानिग ली क्याद दियो आणू देशांग ली छेरायो।

ओरेस बोली — मूरङ्

एक मानुष का ग्ररोन यानो ग्रई दी लारी थी। ग्रईग यानो मारे थो। सो यानो बोबा ले घर बोन बाटन लै बोलन थो। तेस रो दी भाई बोलन थो-ग्रमरी सब इके बैस तो चैनो, फिर भी तुमरी नई सता दी जोन ने था कीं। मएको यानो ते कानी ग्रानन्द बेजे थाकोय। ते कानी अपनो घर-बार बेचन लै कर दे लगोय। तेसे ठोखरो बेचते लगोय, घर लै बन्दा बेजेयो। तिच का पाछे खानो-पीनो खनलै भारी ग्रासे पोचोय, तेसे अपनो देश छारोय।

हरिजन बोली — मूरङ

एक मानुष रो ग्ररन छैलू दुई छैली थीयो। माचको छैलू मरे थीयो। मे एके नथकु मना हिस्सा दे नो चांदो। दुई ग्रचो ने बोलो-तमे एके था कोनो, ते वि तुमवि तम दि एके था कि ने, माचको छैलू ग्रंमा के यांला थीयो। ते तिनूयें बाप रो माल-मता छीका ग्रो। डोखरो बेचो, घर वि बेचो। तिचके पीछो तिन ले खानो वि नि थियो, तिन् एं मूलक छरा ग्रो।

कनौरयानुस्कद — सांगला गांव

इद मीयू शुम छाङो रं निश चिमेदो दुगयो। मजुगङ सया छङ मारी दुगयो।

दोस आनु बुवा पं किमो रिमों काकचिमो लोक्यो। दु निश आते बाइचो सलोक्यो—'काशाङआ चैंईकैनु इके निवरयामिग्, दोक नी की माशकन मा, निशी ता ऐके नितिच। माजुगङसया छङ् होदो निपी मजास तोशिशिज। दोक होदोस बुवौ माया मता (किमो रिमो) छेक्यामों शुरू लानशिज। दोस रीमो रेशिद आई किम रैन ताशिद। होदो निपी होद् खाऊ जामो ली प्राप्त मा हाचिशिद। दोस अनु देशांङ् शोटयाशीद।

कनौरयानुस्कद — ठङ क्षेत्र

इद् मीयू शुम छाङों ऐ निश छेवाच दीओश। आई छङ् वाल मारी दीओश। हौदोस अनु बुआ पङ् किम रिम काङमू लोयोश। होदो निश अतेश लोयोश-'किशङ् चेनू एके तोशिमिग तोच, दाक ली की माश्कौआ, किशङ् एके तोशिदे'।

म्याङस्या छङ् ओदो देयारोच न्यालस तोशो दीओश। दक बुओ नौङसक शुङो शेरयोश। होदोस रिम रेरेद किमू रहन तागयोश। हाँदो न्युम (युम, युपी) होदोपङ् खऊ पोराओ ली असे हाचिग्योश, होदोस अनु देशङ् छेरयाग्योश।

कनौरयानुस्कद — रोपा गांव

इ मीयु शुम छांग आई निश चिमिद हुए। आइद छअंग हाल्म हुए। दोअश आनु आपाउ क्युम रिम कागमी तौंईस लो लोद। दोऊ निश बिअमस् लो लोद-'काशंग चेनू शोनंग तोशीमी जामीं दाक ली कलाचित कि पंग माशकोन नां, काशंग निश शोनंग तोशे'। वर पा छअंग ओदोम्याकची ऐमस तोशो हुए। दाख दोअश आपाऊ क्युमरिम शुंगमी जुग जुग। दोअश रिम रे रेद आई क्युम रहन ता ता। दोऊ न्युम आनु थाक तुक जामी ओल्डो हाचिश, दोअश मानाऊं देशंग छररा।

औरेस बोली — रोपा गांव

इ मीयू शुम छअंग आई निश चिमित तोअश। आईद छअंग वामंग तोश। दो अनु आपा मूं क्युम कांग मी तौंईस लो लोद। दोऊ निश दा आचोपंग लो लोद—'निम पंग चेईनू शोनंग ता ची मिग्यास दो ली किम पंग माश्कोन ना नि पंग निश शोनंग तो शोक'। मांजांगों छअंग ओदोम्याक नुम मजा तोशिश तोश। दाअख दोअश आपाऊ जिमी जगा क्युमरिम शुंग मियूं लालन। दोअश रिम रे रेत शे शेद, आई क्युम रहन ता ता शेशिद। दो न्युम दो पूंग थाक थुक पोराओ क्यात हाचिश तोत, दोअश अनु देशंग छर रा शेशिद।

हरिजन बोली — रोपा गांव

इ मीयूं शुम छअंग आई निश चिमिद हुए। आइद छङ् मारी तोश। नूं अनु अपा मूं क्युमरिम काकशिमी लो लोद। नूपो निश आचोस लो लोद-'निग पंग चेनी इपुंग तोसिमी ग्यास दाख ली मास खोआ दाख निग पंग निश इ पंग तोसिमी ग्यास'। म्याओं छांग ओदोमिया देयारोस अन मोजा ला लम तोशित हुए। दाख ली अनु अपाऊ क्युमरिम शुंगी लालन। दोऊ अनु रिम रे रेद, आई क्युम रहन ता ता। दोन्युम दो थक तुक खामीं मा पो रत, दो अनु देशंग शोटा टा।

कनौरयानुस्कद **रुस्कलङ् गांव**

इ मिउ हुम छांग निश चामेत ताश ! आइ छांग हालम ताश । औदी आपारा क्यूम छुशमा लौ । द निशु निश अचोस लोऊ —'उलपंग आटंग इपिन पौसमा गिनमा, हेली किनपंग म्यान्नंग, निंग निश इ पिन पौसतोईं'। बरजीक पा छंग औदीम्यां मजास पौसो । धक औदी आपाओ जगह पंग क्यामा लाओ । औदी री रांऊ आला किम क्यूम खेओ पावली थाउ । औदी शाबतिङ् ओ दौरा थाकतु जामा मुसकिल बांगरे, औदी देशङो पौसमा प्रुतौपिनु ।

छित्कुली **छित्कुल क्षेत्र**

ई मीए होमो डेआ अचचङ् नीशी डयू अचचङ् तसे । आई आची माशोरो तासे । हौयो ची ऐ आऊ तीङ यूम रींग छु चंग लाची । होयो ऐ निशी आते चंग ची लोची—केङ् चे ऐखे होनङ् दिङची, लो किन मागेआ न तङना, निनीङ ऐखे होनङ् होना हेन । पाला आची स्या हो देने ची मजा दो होना तासे । ते आऊ स्या ऐ माया छेसंग दीशे, जोमी जगह रङ्दे । आई क्यूम तेआए । दो नेचो होयो कोन थोप चङ् मुश्कल आसी तासे । होयो ची ऐ देशङ् होती फेते ।

जंङ्रामी **असरङ् गांव**

इद मिए हुम छंङक तङ निश चामेत तोक । दोत नाङर माजूअंङ छङक हलम तोक । दोकस एं अपानङ क्यूम छएनच लोतती । दोके निश आचो दङ बेतेश लोती—'औरवंग चो इपङ पोसँन गिङत, दत्तलो कन मयावनङ ब्निनिश ज्ञम फोपोनोच'। मऊ-वंगसा छङक ओ दो मी शंख मोहक्च चो सुका पोशी । तोक दच दोक्श अपाई नोरजा दन दौलत क्यायेन शुरू लाशित । दोकश रि रङे पिनशित उन क्युम बनदो ताई । दत्त नेयों हुंक दोनङ सेर पोरा देन मुश्कल वङगो । दोकश एं देशंग छव्रशिद ।

थेबर स्कद **कानम क्षेत्र**

ई मीऊ हुम छंख मङ ई चामेत तश्क्यो । बरजीकपा छंख तो हलम तोद क्यो । दोख ऐनु अपारा क्योम री छुआ लोदक्यो । दोऊ बीयम दी नीशु लोदक्यो—'ऊपंग अटंख रा ज्ञामपो पोसमा गीनमा । दात ली का माया नंग नीङ नीश ता ज्ञपो पोस तोश'। बरजीक्पा छंख दो ओदोमयख थललथ सुकंङू पोसी तोदक्यो । दथ दो ऐनु आपु नोर क्यामा जुग्यो । दोख री राङू पीन, यो अला क्योम बन्दो ताग्यो । दोऊ ग्यप तीङ दोरा रोटी पोरतमाली बयाती वाङगयो । दोख ऐनु देशङ् शोठागयो ।

सुन्नमी **सुङ्नम गांव**

नी मीये सुम छांग नंग नीशी चामेत नीयां । वरजिकपा छांग हा हालम नीयां । हासु ऐं आपा ली कुम रिम छुवांग लोका । हाये नीशी बीयम सु लोकायु—'ओकपंग आटंख लो ज्ञमफो पोहे शुनमंग नीय, हा लोकाली नान मायानंग एनशी बीयम नमफो पौहचनीं'। हा बरजिक्पा छाङ हा बामयाके थालात मजाए नाऊन पोखा । अचि हासु आपायी नौर-जाह खोतम लेममंग शुरू लेयां । हासु रीह रानां खैरगा दौरंग कुम

बन्धो चाका। हाय ज्ञावची हालो रोटी पीरतपंग ली क्यातको बानां। हासु रांने डेशाङ्ग शोटाहगा।

नमगिया–टशिगङ् स्कद नमगिया क्षेत्र

मी चिक ला टु सुम दङ् पुमो ज्ञी ग्रोतकां। ज्ञीपा टु ग्राखे ग्रोतकां। खोसु ग्रापा-ग्रामे खङ्पा गो ला जा बा। खोइ ग्राचो ज्ञी सु जा बा ग्रोशक सिग ज्ञामो दत गोशक। क्योत मि ज्ञान नाग्रो ज्ञी ज्ञामो दतकुन। टु बार बा ग्राते ना सु कितपो जा पा ग्रोतकां। खो सु ग्रापे नोर जा गुसुम ग्रोनचा ला मुकपा। खो सु शिग छोंगपा दङ् खङ्पा तेवा ला चुकपा। तेई तिग ला खोला रोटी थपचा गांपो जुवां। खो सु रङ् युल ना क्यम सोंवां।

न्यम स्कद लियो क्षेत्र

मी चिक ला टुगु सुम वुमो ज्ञा दुग। टुगु चिक दे ङनबा दुगी। होदे सु खोई ग्रवा ला खंगवा गोय दु चुक सों। खोई टुगु ली सु सेर सों हो तोप ला मुई ला दे चा गा। क्योवा यग मि ज्ञान नंङ मा शा ज्ञीमो ञाम्फो देदगन। बरवा होदे जग न सु ही कोद पो चो दे देद दे दुक। खो से खोई ग्रवा नोर थोपगन देज़ोन दू चुक सोंङ। शींगा चोंङ खंङवा तेवा चुक। सब तुंग दे का दा खो ला दा गाफो जुंग सोंङ सेरगां। खो मि युल मिई खंगवा गुन ला रेईन रेईन देत दे दुग सेरगां। मि यग सु खो ला छन छिक मनग देद दु मि चंगा। दुदु न खो ला मि यग सु लव कां छु मि तंग ङ सेगां।

न्यम स्कद नाको गांव

मी चिक ला टू सुम दंग बोमो ज्ञी ग्रोतातुक। टू चिक ते ग्राखे ग्रोतातुक। ग्रौति ते सु खोरें ग्रावा ला सिरीसक जिग-खंगबा गोतचा ला जेवांक। खोई ग्रजो ञिवो सु जेवांक—ग्रौशक दकपो ञाम्बो देतकुन, जे नंग क्योत मिञान्न न ङा शक ञीवो ञाम्बो देतकन। खाला मिञाङन टू बारवा ते ग्रौति जाक न सु ग्रा ञाम दंग देतातुक। देने खो सु खोरें ग्रावी नोर (जिग खंगबा) जिहिन दु चुकचा जुहुक तां तुक। खो सु राई जिगा कंग चोंग, ऐं खंगबा कंग तेवा ला चुकतांक। ग्रौति तिग ला खोरंग ला जोपतुग थोपचा गाहफो बुईत सां तुक, देने खो राएँ युल ड़िम जा क्याम सां तुक।

इन पृष्ठों में दी गई हिन्दी कहानी का किन्नौर की विभिन्न प्रचलित उपभाषाओं में अनुवाद तथा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस क्षेत्र में बोलियों के अनेक वर्ग हैं जिनका मूल शब्द-भण्डार भी अलग है। इन बोलियों के कुछ अन्य शब्दों का अध्ययन भी रोचक रहेगा—

किन्नर–बोलियों में विभिन्न शब्दों का अध्ययन

हिन्दी	कनौरयानुस्कद			छितकुली		जंगरामी			थेबरस्कद	रोपास्कद			कुनोचारङ्	सुङ्नमी	न्यमस्कद	नमगियास्कद	नेसिङ्स्कद
शब्द	खश	ग्रौरेस	हरिजन	खश	हरिजन	खश	ग्रौरेस	हरिजन		खश	ग्रौरेस	हरिजन		खश		खश	खश
↓	1	2	3	1	2	1	2	3	↓	1	2	3	↓	↓	↓	↓	↓
नाक	स्ताकुच	नाखरो	नाक	रिम	नाक	ताकुस	मुर	मुर	मुर	ताकुस	ताकुस	ताकुस	नंऊं	ञ्‌ुम	नां	ना, णा	न
कान	कानङ्	कान	कान	रौच्	कात	रेच	रेपङ्	रेपङ्	रेपङ्	रेपङ्	कानङ्	कानङ्	ग्राम्चोक	रेपङ्	नामजोक	चे	णमचोक
पैर/टांग	बाङ्	खुण्डी	रोड़े	बोङ्	बङ्	बङ्	मङ्खोन	बङ्खन	मङ्खोन	बग्रङ्	बङ्	बङ्	कङ्पा	बङ्	कांगबा	कम्बा	कङ्पा
पुत्री	चेमेद	छेली	लारी	डियू/ग्रची	दीं	चामेत	चामेत	चामेत	चामेत	चिमित	चिमित	चिमित	पोमो	चमेत	कोमो	पोमो/छामो	फों
बैल	दामास	डमटू	डमटौ	दामो	दामो	दामस	एटोङ्	एटोङ्	एटोंग	एटोंग	एटोंग	एटोंग	सेमचेन	एटोंग	लेउं	लाऊं	लङ्दो
गाय	लाङ्	गोरू	खालङ्	मुरत	गोरू	लङ्	रद	रद	रत	लग्रङ्	मुनलङ्	मुनलङ्	पा	बालङ्	बालङ्	पालङ्	फालङ्
सूरज	यूनेग्	दौं	दिऊस	बेरङ्	दियूस	निमुक	निमुक	निमुक	नी	विनेक	विनेक	विनेक	निमा	नी	ञिमा	ङिमा	ञ्‌ूमा
चांद	गोलसङ्	जोत	जौत	गोलछङ्	जोत	गोलछङ्	गोलछङ्	गोलछङ्	गोलछङ्	गोलछङ्	गोलछंङ्	गोलछंङ्	लागर	गोलछङ्	दार	लार	लकर
मास	गोल	मासारो	मासरो	गोल	मास	ला	ला	ला	ला	गोल	गोल	गोल	दावा	ला	दाह्	दा	दा
आकाश	सोरगङ्	गोइन	सोरगो	सोलगङ्	बगवान	सोरगङ्	नम	नम	नम	सरगङ्	स्वरगङ्	सरगङ	नाम	नम्म	नम	नम	णम
पूर्व	जरको	पूर्व	पूर्व	जरको	ऊंजी	निजर	निर्जरिमा		शर	शर	शर	शर	शर	शर	शर	शर	शर
पश्चिम	रेदको	पश्चिम	पश्चिम	रेतको	ग्रोंदी	निग्योत	निग्योति		नुप	नुप	नुप	नुप	नुब	नुभ	नूब	नुप	नुब
उत्तर	—	उत्तर	उत्तर	—	खोजङ्	—	—	—	लो	जाग्रंग	जाग्रङ्	जाग्रंग	चाङ्	जंग	जंग	जंग	लो
दक्षिण	—	दक्षिण	दक्षिण	—	जाखङ्	—	—	—	जङ्	लोह	लोह	लोह	लो	लो	लौह	लो	छङ्
गेहूं	जोद	गेहूं	गेहूं	ग्रोजा	गेंऊं	रोजत	रोजत	रोजत	रोजत	जोद	जोद	जोद	टो	रोजद	डोह	डो	ठो
ताम्बा	त्रोमङ्	ताम्बो	ताम्बो	त्रामङ्	तोम्बा	त्रोबङ्	त्रोवङ्	त्रोबङ्	त्रोबङ्	त्रोमङ्	त्रोमङ्	त्रोमङ्	साङ्मा	त्रोमङ्	जाग्रङ्	संग	सङ्मा

कनावरी बोली में भाषा-विदों को कुछ ऐसे तत्त्व मिले हैं जो इसे मुण्डा भाषाओं के समीप ले जाते हैं। इस बोली में मुण्डा भाषाओं के अंश कहां, किस सीमा तक विद्यमान हैं, इस की समीक्षा करने से पूर्व हमें इन भाषा-वैज्ञानिकों के मतों तथा मुण्डा भाषाओं की विशेषताओं को जान लेना चाहिए ताकि किन्नौरी की भाषागत महत्ता को भली प्रकार परखा जा सके।

अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाषा-रहस्य' के प्रथम भाग में बाबू श्यामसुन्दर दास ने लिखा है-'मध्यप्रान्त के पश्चिमी भाग में तो मुण्डा बोलियां द्रविड़ बोलियों से घिरी हुई हैं। पर इससे भी अधिक ध्यान देने योग्य मुण्डा की कनावरी बोली है। यह हिमालय की तराई से लेकर शिमला की पहाड़ियों तक बोली जाती है।'[1] मुण्डा भाषाओं की विशेषतायें वे इस प्रकार वर्णित करते हैं—

1. प्रत्यय प्रधान तथा उपचय प्रधान।
2. अन्तिम व्यञ्जनों के पश्चात् श्रुति का अभाव।
3. पदान्त में व्यञ्जनों का उच्चारण श्रुति-हीन तथा रुक जाने वाला।
4. दो लिंग—पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग—पर वे व्याकरण के आधार पर नहीं चलते।
5. सजीव पदार्थ पुल्लिग तथा निर्जीव स्त्रीलिंग।
6. तीन वचन।
7. द्विवचन और बहुवचन बनाने के लिए संज्ञाओं में पुरुषवाचक सर्वनामों के अन्य पुरुष के रूपों का जुड़ना।
8. द्विवचन और बहुवचन में उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम के दो दो रूप—एक श्रोतारहित वक्ता का बोध कराने के लिए तथा दूसरा श्रोतासहित वक्ता का बोध कराने के लिए।[2]

हिमालय क्षत्र की बोलियों में वे ग्रियर्सन[3] तथा स्टेन कोनो (Sten konow) के अनुसार निम्नलिखित मुण्डा प्रभाव बताते हैं—

1. निर्जीव और सजीव पदार्थों में स्पष्ट भेद।
2. ऊंची संख्याओं को बीसी से गिनना।
3. बहुवचन के अतिरिक्त द्विवचन का प्रयोग।
4. उत्तम पुरुष सर्वनाम के दो रूप—एक श्रोता का अन्तर्भाव करने वाला तथा दूसरा न करने वाला।

---

1. पृ० 164—165.
2. वही, पृ० 166—169।
3. वही, पृ० 173 तथा L S. I. Vol. I, P. 56 and Vol. III, Part I, P. 179.

5. क्रिया के रूपों में कर्त्ता और कर्म के प्रत्ययों का लगना।

उनका कथन है कि हिमालय की भोटांशक बोलियां अति प्राचीन काल में तिब्बती भाषा के अविकसित रूप के साथ सम्बद्ध रही हैं। जब हिमालय के इन क्षेत्रों में तिब्बती भाषा का यह अपरिपक्व रूप आया, उस समय 'मुण्डा अथवा शाबर भाषाओं का यहां प्राधान्य था, इसी से इन हिमालयी बोलियों में ऐसे स्पष्ट अतिब्बती-बर्मी लक्षण पाए जाते हैं कि साधारण व्यक्ति उन्हें तिब्बती-बर्मी मानने में भी सन्देह कर सकता है'।[1] जय चन्द्र विद्यालंकार ने हिमालय क्षेत्र के सर्वनामाख्याती वर्ग को किरात-कनावरादि वर्ग[2] नाम दिया है। इस वर्ग को बाबू श्याम सुन्दर दास ने दो उपवर्गों में विभाजित किया है-(1) पूर्वी या किरात तथा (2) पश्चिमी या कनौर-दामी उपवर्ग। उनके शब्दों में—'नेपाल का सब से पूर्वी भाग सप्तकौशिकी प्रदेश किरात देश भी कहलाता है, वहां की बोलियां पूर्वी उपवर्ग की हैं। पश्चिमी उपवर्ग में कनौर की कनौरी (या कनावरी) बोली, उसके पड़ौस की कुल्लू, चम्बा और लाहुल की कनाशी, चम्बा लाहुली, मनचाटी आदि बोलियां एक ओर हैं और कुमाऊं के भोट प्रान्त की दामिया आदि अनेक बोलियां दूसरी ओर हैं। इस प्रकार हिमालय के मध्य में यह वर्ग फैला हुआ है[3]'।

डॉ० ग्रियर्सन का कथन है कि जिन बातों में कनावरी बोली तिब्बती-बर्मी से नहीं मिलती, उनमें यह मुण्डा भाषाओं से मिलती है। वे सन्थाली के सम्बन्ध में लिखते हैं[4]—

इसमें—1. आ, ई, ओ के स्थान पर ए, इ, उ बोले जाते हैं।

2. व्यवहार के अनुसार चेतन और जड़ वस्तुओं को व्यक्त करने के लिए दो लिंगों का प्रयोग होता है।

3. तीन वचन। द्विवचन का प्रत्यय (Suffix) 'किन' है तथा बहुवचन का 'को'। यथा, हाड़कीन— दो मनुष्य, हाड़को—बहुत से मनुष्य, इत्यादि।

4. इसमें बीस तक ही गिनती होती है। उदाहरणार्थ, पौन इसी—अस्सी, मारा इसी या मिट साए—सौ, तथा खन (अधिक) एवम् कम (थोड़ा) लगा कर संख्या बताई जाती है, जैसे, गल खन पौनेआ—दस अधिक चार—चौदह, तथा बारेआ कम बार इसी—दो कम दो बीस—अठतीस, इत्यादि, इसमें सब से अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता—

5. उत्तम तथा मध्यम पुरुष में द्विवचन तथा बहुवचन दो प्रकार से बनाना, वक्ता तथा श्रोता का अन्तर्भाव तथा बहिर्भाव, है।

---

1. भाषा-रहस्य, पृ० 173।
2. भारत-भूमि और उसके निवासी, पृ० 263।
3. भाषा-रहस्य, पृ० 173-176।
4. Linguistic Survey of India, Vol. IV, Part IV, Pp. 36-42.

मुण्डावर्ग की बोलियों की जो विशेषतायें ऊपर उद्धृत की गई हैं, उनकी कसौटी पर कनावरी बोली को कसने से पूर्व यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि किन्नर-क्षेत्र के आधे से भी अधिक भाग में जो बोली प्रचलित है वही भाषागत अध्ययन का आधार मानी जा सकती है क्योंकि पूह सब-डिवीजन के अधिकांश भाग में बोली जाने वाली उपभाषाओं पर तिब्बती भाषा का इतना अधिक प्रभाव हुआ है कि उनके प्राचीन रूप को समझ पाना कठिन है। हङरङ्, नमगिया, पूह, सुङनम तथा कानम आदि क्षेत्रों में तिब्बती भाषा की लिपि तथा गिनती का प्रचलन है तथा इन क्षेत्रों के लोग 'कनौरयानुस्कद' को समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं। यही कारण है कि डॉ० ग्रियर्सन ने भी अपने ग्रन्थ 'लिग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया' में निचले किन्नौर की बोलियों पर अधिक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है।

कनावरी बोली में मुण्डा भाषाओं की भांति लिंग-भेद के आधार पर निर्जीव तथा सजीव पदार्थों में भेद नहीं होता। यह बात निम्न लिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है—

1. इनमें लिंग-भेद वाचक शब्द नहीं हैं। उदाहरणतया 'सीता एक राजा की लड़की थी' तथा 'रामचन्द्र एक राजा का लड़का था' वाक्यों का अनुवाद 'सीता ई राजौ चीमेद तौच' तथा 'रामचन्द्र ई राजौ छङ नौच' होगा। ऊपरोक्त वाक्यों में चीमेद (पुत्री) तथा छङ् (लड़का) शब्द ही स्त्रीलिंग व पुल्लिंग का भेद स्पष्ट करते हैं।

2. इस बोली में विशेषण के साथ 'से' लगाने से स्त्रीलिंग तथा 'स्या' लगाने से पुल्लिंग बनता है। इन दोनों शब्दों का अर्थ 'वाला' या 'वाली' होता है, यथा—

(1) मेरा छोटा भाई भेड़ें चराता है—
अङ् **घाटोस्या** बाइच् जेह रोक्च् तो। तथा—

(2) मेरी छोटी बहिन भेड़ें चराती है—
अङ् **घाटोसे** बाइच् जेह रोक्च् तो।

यहाँ केवल 'से' और 'स्या' का ही अन्तर है। इसी प्रकार 'छोटा भाई घर में ही रहता है, बड़ी बहिन खेत मे है', वाक्य का अनुवाद '**गाटोस्या** बाइच् किमो ई नीतो, **तेगसे** दौच् रिमो तो', होगा जिसमें गाटोस्या (छोटे वाला) तथा तेगसे (बड़े वाली) शब्दशः अर्थ होंगे। 'सड़क पर छोटा पत्थर है' का किन्नौरी रूपान्तर 'सोलको गाटोस्या रग तो' अर्थात् 'सड़क पर छोटे वाला पत्थर है' होगा। निर्जीव वस्तुओं के साथ भी 'स्या' और 'से' का सन्दर्भानुसार प्रयोग होता है। अतः इस बोली में स्पष्टतया निर्जीव तथा सजीव वस्तुओं के स्त्रीलिंग—पुल्लिंग भेद शब्दों द्वारा दर्शाने की प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि लिंग-निर्धारण में सजीव वस्तुओं के नियम ही निर्जीव पर भी लागू होते हैं।

3. 'स्या' तथा 'से' के अतिरिक्त इस बोली में दो अन्य शब्द भी पुलिंग व स्त्रीलिंग का बोध कराते हैं, वे हैं—'ला' तथा 'ले'। जैसे—

(1) कहाँ जा रहा है ? वाक्य का अनुवाद 'हम ब्यो दुई ला ?' होगा, तथा

(2) कहाँ जा रही हो ? का अनुवाद—
'हम ब्यो दुई ले ?' होगा।

यहां यह उल्लेखनीय है कि 'ला' और 'ले' शब्द केवल प्रश्नवाचक वाक्यों में ही प्रयुक्त होते हैं जब कि 'स्या' ओर 'से' साधारण वाक्यों में लिंग-बोध कराते हैं । इन सभी शब्दों के अर्थ 'वाला' तथा 'वाली' के लिए प्रयुक्त होते हैं, यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है । इस क्षेत्र के 18/20 परगना में स्त्रीलिंग के लिए 'ले' तथा पुलिंग के लिए 'ली' शब्द का प्रयोग होता है, यथा—

'हम ब्यो दुन ली ?' कहां जा रहे हो ?

तथा, 'हम ब्यो दुन ले ?' कहां जा रही हो ?

गत पृष्ठों में डॉ० ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत की गई हिमालयी-क्षेत्र की मुण्डा-भाषा सम्बन्धी विशेषताओं में दूसरी बात 'ऊंची संख्याओं को बीसी से गिनने' की है। किन्नर-बोली में गिनती का क्रम बीस तक न हो कर केवल दस तक प्रतीत होता है, यह बात नीचे लिखी गिनती से स्वत: स्पष्ट हो जाती है । इस बोली में गिनती का क्रम इस प्रकार है—

एक—इद, दो—निश, तीन—शुम/सुम, चार—प/पई, पांच—ङ, छः—टुग, सात—स्तिश, आठ—राए, नौ—स्गुई (गुई) तथा दस—साए ।

साए (दस) के पश्चात् एक, दो आदि शब्द मिला कर गिनती का क्रम चलता है, यथा-साए + इद—सिहिद—ग्यारह, साए + निश—सोनिश—बारह, साए + शुम—सोरुम—तेरह, साए + प—सोपह—चौदह, साए + ङा—सोङा—पन्द्रह, साए + टुग—सोरुग—सोलह, साए + स्तिश—सोस्तिश—सतरह, साए + राए—सोराए—अठारह, साए + स्गवि अथवा साए + ग्वी—सोज्गिव या सज्गवी—उन्नीस तथा निश × साए—निज्ञा—दो दस—बीस । इस प्रकार 'निज्ञा' का अर्थ 'बीस' हुआ । यह शब्द 'दो दस' से मिल कर बना है । जैसा कि लोक-भाषा का स्वभाव होता है कि आसान शब्द शीघ्र प्रचलित हो जाते हैं, उसी के अन्तर्गत 'निज्ञा' शब्द को आगे की गिनती के लिए अपना लिया गया है । इक्कीस के लिए प्रचलित शब्द 'निज्ञो इद' अर्थात 'बीस एक' है यदि इसे 'निश साए इद', 'दो दस एक' कहा जाता तो शुद्ध उच्चारण होता परन्तु 'लोक' ने जिस प्रकार 'ग्यारह' के लिए 'साए इद' के स्थान पर 'सिहिद' शब्द का प्रचलन कर लिया, वैसे ही 'निश साए' अर्थात 'दो दस' के लिए 'निज्ञा'—बीस को अंगीकृत कर लिया गया । पचास के लिए प्रचलित शब्द 'निश निज्ञो साए' अर्थात 'निश—दो, निज्ञो—निश साए—दो दस—बीस तथा 'साए—दस', यानि 'दो बीस दस' है तथा अस्सी के लिए 'प निज्ञा'—'चार दो दस' की गिनती है । पहले दिए गए उदाहरण के अनुसार मुण्डा-भाषाओं में गिनती का क्रम 'खन' (अधिक) तथा 'कम' (थोड़ा) लगा कर व्यक्त किया जाता है । जहां मुण्डा बोलियों में अठतीस को 'दो कम बीस दो'—'बारेआ कम बार इसी' तथा चौदह को 'दस अधिक चार' या 'गल खन पोनेआ' कहा जाएगा, वहां किन्नौरी बोली में इनके लिए 'निज्ञो सोरुग' अर्थात 'निश साए साए टुग' 'दो दस दस आठ' अथवा 'बीस दस आठ' तथा 'सोपह'-साए प—दस चार—चौदह होगा । अत: स्पष्टतया मुण्डा भाषाओं के साथ इस गिनती को नहीं जोड़ा जा सकता । यह द्रष्टव्य है कि किन्नर-बोलियों में क्रमात्मक गिनती का अभाव है अत: इनमें पहला, दूसरा, तीसरा, पांचवां, बीसवां आदि नहीं गिने जा सकते ।

यदि बीसवां व्यक्ति कहा जाना वांछित हो तो 'निजा नम्बरस्या मी' अर्थात् 'बीस नम्बर वाला आदमी' कहा जाएगा। गिनती के आधार पर ये बोलियां तिब्बती अथवा संस्कृत से मिलती हैं, क्योंकि तिब्बती भाषा तथा संस्कृत में गिनती का क्रम 'दस' तक है। परन्तु क्रमात्मक गिनती का अभाव किन्नर-बोलियों की अपनी विशेषता है जिसे हम किसी अन्य भाषा-वर्ग से नहीं जोड़ सकते।

तीसरी बात जो डॉक्टर ग्रियर्सन ने हिमालयी बोलियों पर मुण्डावर्ग का प्रभाव बताते हुए कही है, वह है—'इन बोलियों में तीन वचन होना तथा द्विवचन की विद्यमानता'।

निस्सन्देह किन्नर-उपभाषाओं में तीन वचन हैं परन्तु मुण्डा बोलियों की भांति उनका प्रयोग नहीं होता। उदाहरण के अनुसार द्विवचन का प्रत्यय 'किन' तथा बहुवचन का 'को' बताया गया है। जहां मुण्डारी में 'दो मनुष्यों' के लिए 'हाड़कीन' (अर्थात् 'हाड़'-मनुष्य, तथा 'कीन'-दो को बताने वाला प्रत्यय) कहा जाएगा वहां किन्नौरी में 'निश मी' अर्थात 'दो मनुष्य' तथा 'बहुत आदमी' के लिए 'हाड़को' की तरह 'को' प्रत्यय न लगा कर 'मुलुक मी' या 'स्योंग मी' कहा जाएगा। कारकों के रूपों में 'मी' शब्द में विभक्ति के अनुसार अन्तर आता है परन्तु साधारण रूप में 'एक आदमी', 'दो आदमी' अथवा 'बहुत आदमी' कहने में 'मी' शब्द में कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरणार्थ यदि 'दस व्यक्ति अधिक हैं' कहना वांछित हो तो 'साए मी मुलुक तिश' कहा जाएगा और उसी प्रकार 'दस घोड़े अधिक हैं' कहना हो तो 'साए राङ् स्योङ् तिश' तथा 'दस स्त्रियां अधिक हैं' कहा जाना हो तो 'साए छेचमीगा स्योङ् तिश' कहा जाएगा। 'स्योङ्' शब्द का प्रयोग 'बहुत अधिक संख्या' या 'पर्याप्त' के लिए किया जाएगा जबकि 'मुलुक' का प्रयोग 'असंख्य' अथवा 'न गिने जा सकने वाले' के अर्थ में किया जाता है। अपनी इस विशेषता के कारण किन्नौरी बोलियां मुण्डारी से नहीं मिलती हैं।

उत्तम पुरुष सर्वमान के दो रूप बताते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने अपने ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' के वॉल्यूम III, भाग I, पृ० 433 पर जो सारणि दी है, उसे यथावत यहां उद्धृत किए बिना स्थिति को स्पष्ट करना कठिन होगा, सारणि इस प्रकार है :—

	Singular		Dual		Plural	
	Ordi-nary	Respe-ctful	Exclusive	Inclusive	Exclusive	Inclusive
I Person nom	ga	—	nishi	kashang	ningan	kishang
Instr.	gas	—	nishi's	kashang-s	ningan-s	kishang-s
genl.	ang	—	nishi-u	kashang-u	ningan-u	kishang-u
II Person nom.	ka	ki	—	kishi	—	kina'n
Instr.	kas	ki-s	—	kishi-s	—	kinan-s
genl.	ka-n	ki-n	—	kishi-u	—	kinan -u
III Person nom.	do	—	do-sung	—	dogon	—
Instr.	do-s	—	do-sung-s	—	dogon-s	—
genl.	do-u	—	do-sung-u	—	dogon-u	—

ऊपरोक्त सारणि में डॉ० ग्रियर्सन ने जिस बात को प्रमाणित करना चाहा है वह यह है कि किन्नर-बोली में उत्तम पुरुष में श्रोता का अन्तर्भाव दर्शाने वाले अलग सर्वनाम हैं, यथा, ग—मैं, निशि—हम दो (श्रोता रहित), काशङ्—हम दो (श्रोता सहित), निङा—हम सब—दो से अधिक (श्रोता रहित), किशङ्—हम सब—दो से अधिक (श्रोता सहित) ; तथा अङ्—मेरा, निशिऊ—हम दो का (श्रोता रहित), काशङ्ऊ—हम दो का (श्रोता सहित), निङानू—हम सब का (श्रोता रहित) तथा किशाङऊ—हम सब का (श्रोता सहित)। उनका कथन है कि किन्नौरी बोली के ये शब्द ग—मैं, निशि—मैं और वह, काशङ्—मैं और तू, किशङ्—मैं और आप तथा निङा—मैं और वे, मुण्डारी बोली का प्रभाव दर्शाते हैं। यह उल्लेखनीय है जिस प्रकार 'अङ्' का अर्थ 'मेरा' होता है, उसी प्रकार 'निङा' का अर्थ 'हमारा' होता है।

गत पृष्ठों में किन्नर-बोलियों मे जिस हिन्दी कहानी का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है उसका एक वाक्य है—उसके दो भाइयों ने कहा—"हम सब को इकट्ठे रहना चाहिए, फिर भी यदि तुम नही मानते हो तो हम दो इकट्ठे रहेंगे।" भाई तीन हैं अतः बहुवचन का प्रयोग होगा। 'हम सब' के लिए जो अनुवाद होगा उसमें वक्ता तथा श्रोता भी सम्मिलित हैं तथा 'हम दो' में एक श्रोता सम्मिलित है, दूसरा नहीं। इस क्षेत्र की कनौरयानुस्कद की विभिन्न बोलियों में इन वाक्यों का अनुवाद इस प्रकार हुआ है—

1.	चौरा-कफोर की बोली	'किशा' चेई कठ निम ग्यामिग, दो ली की माशकन मा, 'किशा' गठ निते।
2.	राज-ग्रामङ् क्षेत्र	'किशाङों' चईवयुई इदी निमो ग्याच्, दोक ले का माश्कोन्ना, निशि 'निश' इदी नीतिच्।
3.	काल्पा क्षेत्र	'किशङ्' चोइकी एके तोशिम ज्ञामिग दू, दोक ली कह् मा मोन्यातो नता 'निशी' ता एके ई तोच्।
4.	रिब्बा क्षेत्र	'काशङा' एके तोशमिक लोच्योय, दोग ली की माश्कोन्ना, 'निशी' ता एके तोशीच।
5.	मूरङ् क्षेत्र	'काशङ्माङ्' चेग्यू एके तोशिच् ग्यामिग, दागली की माशकोन्ना, 'निशी' दा एके तोशिच।
6.	साङ्ला क्षेत्र	'काशाङा' चेईकैन्नू इके निच् ग्यामिग, दोक ली की माश्कोनमा, 'निशि' ता एके नितिच।
7.	ठङ्गे क्षेत्र	'किशङ्' चेनू एके तोशिमिग तोच्, दाक ली की माश्कोन्ना, 'किशङ्' एके तोशिदे।
8.	रोपा क्षेत्र	'काशङ्' चेनू शोनङ् तोशिमी ज्ञामी, दाक ली कीपंग माश्कोनमा, 'काशङ्' शोनङ् तोशे।

डॉ० ग्रियर्सन ने वक्ता व श्रोता का अन्तर्भाव बताते हुए जिस नियम का प्रवर्तन किया है वह ऊपरोक्त उदाहरणों से, सम्भवतः, प्रमाणित नहीं होता। 'किशङ्' और 'काशङ्' शब्दों में अन्तर नहीं है। यह परिवर्तन केवल स्थान-विशेष का है। जहाँ रिब्बा, मूरङ्, साङ्ला तथा रोपा क्षेत्रों में 'हम सब' के लिए 'काशङ्' अथवा 'काशङा'

शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहाँ चौरा-कफोर, राजग्रामङ्, काल्पा तथा ठङे क्षेत्रों में 'किशङ्' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'हम दो' के लिए 'निशि' शब्द का प्रयोग ऊपरोक्त सारणि में 'श्रोता रहित हम दो' के लिए बताया गया है तथा 'श्रोता सहित' शब्द के लिए 'काशङ्' शब्द बताया गया है जब कि इन उदाहरणों में ठङे व रोपा क्षेत्रों को छोड़ कर 'निशि' शब्द का प्रयोग 'श्रोता सहित हम दो' के लिए हुआ है। यहाँ भी यह स्पष्ट होता है कि 'निशि' तथा 'काशङ्' का भेद भी स्थानीय ही है। स्पष्ट है कि मुण्डा भाषाओं का प्रभाव दर्शाते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे अप्रमाणित हैं तथा अन्य विद्वानों ने केवल उनका अनुकरण किया है और इस सम्बन्ध में तथ्यों की पुष्टि नहीं हो सकी है। यहां यह उल्लेखनीय है कि किन्नर-बोलियों में सन्थाली बोली की तरह आ, ई, ओ के स्थान पर ए, इ, उ बोलने की प्रथा नहीं है बल्कि च, छ, ज, झ के स्थान पर च, छ, ज, झ, त्स, त्ज तथा 'अ' के स्थान पर 'ओ' तथा 'आ' के स्थान पर 'औ' बोलने की प्रवृत्ति है। इस सम्बन्ध में आगे दिए गए उदाहरणों से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। इन बोलियों में 'मध्यम पुरुष' के लिए आदर-सूचक/साधारण शब्दों का प्रचलन है तथा उनके लिए अलग प्रत्यय निर्धारित हैं, यथा—

'की चेतिङ्ञ्' = आप लिखते हैं तथा 'का चेतन' = तू लिखता है। इत्यादि।

डॉ० ग्रियर्सन ने टी० ग्राहम बैली के आधार पर कनावरी बोली को थेबर स्कद, मिलचंग या मिलचनङ्ग तथा मलेस्टी उपवर्गों में बांटा है। उनका कथन है कि 'मिन-छन' या 'मिनछनङ्' 'मिलचंग' अथवा 'मिलचनङ्' के ही रूप हैं। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि टी० ग्राहम बैली द्वारा सर्वेक्षण में सम्मिलित किए जाने हेतु भेजा गया नमूना विलम्ब से मिला अत: उसका उपयोग नहीं किया जा सका तथा दूसरा नमूना एक गवाह का ब्यान था जिसे बोली के पर्याप्त ज्ञान के अभाव में तैयार किया गया था, इसलिए अशुद्ध था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि कनावर जिला से जो नमूना प्राप्त हुआ वह भी अधिक उपयोगी नहीं था क्योंकि उससे किन्नौरी के समस्यात्मक (Complicated) व्याकरण पर प्रकाश नहीं पड़ता था[1] अत: उनका अध्ययन मिस्टर ब्रुस्के (Mr. Bruske) द्वारा तैयार की गई शब्द-सूची पर ही आधारित रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रुस्के महोदय ने काल्पा के आसपास प्रचलित बोली के नमूने प्राप्त किए और इसी कारण उन्हें 'काशङ्', 'किशङ्' तथा 'निशि' आदि शब्दों का ठीक ज्ञान नहीं हो पाया। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ऊपरवर्णित अनुवाद के वाक्य स्वाभाविक हैं तथा प्रयत्न से नहीं लिखाए गए हैं अत: 'तू' (का) के स्थान पर 'आप' (की) शब्दों के प्रयोग अनुवाद में आ गए हैं।

'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया' में पृष्ठ 431 पर डॉ० ग्रियर्सन ने जो उदाहरण इस बोली के सम्बन्ध में दिए हैं उन पर भी विचार कर लेना युक्ति संगत होगा। उन्होंने 'घर' के लिए 'खिम' शब्द लिखा है जबकि यह तिब्बती शब्द का प्रचलित रूप 'किम' है, 'खिम' नहीं। 'घर में' के लिए 'किम-ओ' शब्द का प्रचलन 'खिम' में परिवर्तन होने से नहीं होता बल्कि 'किम' से 'किम-ओ' शब्द बनता है।

---

1. Opp. Cit. Page 430.

किन्नर-बोलियों में प्रथम वर्ण का लोप, यथा स्गुई (नौ) का 'गुई', स्तिश (सात) का 'तिश', स्का का 'का' तथा स्कर का 'कर' कहा जाना, 'स' आदि का लोप तिब्बती भाषाओं की प्रवृत्ति है तथा ये सभी शब्द तिब्बती भाषा के हैं अतः इसे किसी भी प्रकार मुण्डा-भाषाओं के प्रभाव के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसी प्रकार उन्होंने अन्तिम वर्ण के लोप को स्पष्ट करते हुए 'यूनेक्' (सूर्य अथवा धूप) शब्द का उदाहरण दिया है। उनका ध्यान सम्भवतः इस तथ्य की ओर नहीं गया कि यह शब्द भी तिब्बती भाषा का है और इसका उच्चारण इसी प्रकार तिब्बती में भी होता है। उच्चारण-भेद से यूनेक् (यूनेग्) के जो रूप किन्नर-क्षेत्र की विभिन्न बोलियों में प्रचलित हैं उन का विवरण पृ० 346 पर द्रष्टव्य है, वे हैं–यूनेग्, यूनेक्, यूने, निमुक, विनेक, निमा, नी, ञिमा, ङिमा, तथा ञ्ा ूमां। इस के अतिरिक्त किन्नौर के 18/20 परगना में इस शब्द का उच्चारण 'रङिग' हो जाता है। अन्तिम वर्ण का लोप तिब्बती के अतिरिक्त द्रविड़ भाषाओं में भी मिलता है। इन भाषाओं में 'कोमल स्वराघात' उच्चवर्ग के लोगों द्वारा तथा 'कठोर स्वराघात' निम्न वर्ग के लोगों द्वारा प्रयुक्त होता है।[1] कोमल स्वराघात की प्रवृत्ति संस्कृत में भी है फिर इसे मुण्डा भाषाओं की ही विशेषता मान कर किन्नर-बोलियों को क्यों उनके साथ जोड़ने में दूर की कौड़ी लाई जाए !

संस्कृत के साथ इन बोलियों की बनावट का अनेक प्रकार से, शब्द-भण्डार के अलग होने पर भी, अपेक्षाकृत सामीप्य का सम्बन्ध प्रतीत होता है, इनकी कुछ समानताएं निम्नलिखित हैं—

दोनों में उत्तम, मध्यम तथा प्रथम पुरुष के विभिन्न रूप हैं तथा क्रिया में इन पुरुषों के अलग प्रत्यय लगते हैं, यथा—

कनौरयानुस्कद	हिन्दी	संस्कृत
ग खऊ जालुक।	मैं खाना खाऊंगा।	अहम् भोजनम् भक्ष्यामि। (भक्षयिष्यामि)
निशि खऊ जातिच।	हम (दो) खाना खाएंगे।	आवाम् भोजनम् भक्ष्यावः। (भक्षयिष्याव:)
किशङ् खऊ जाते।	हम (सब) खाना खाएंगे।	वयम् भोजनम् भक्ष्यामः। (भक्षयिष्यामः)

यही नहीं, संस्कृत में गिनती दस तक है तथा किन्नर-बोलियों में भी गिनती का क्रम दस तक ही है।

संस्कृत में भी मध्यम पुरुष के लिए आदरसूचक तथा साधारण—दो प्रकार के शब्द प्रयुक्त होते हैं, यथा—

किन्नर-बोली	हिन्दी	संस्कृत
का ब्यो किन्।	तू गया।	त्वम् अगच्छत्।
किसी ब्योकिच।	आप (दो) गए।	भवान्/युवाम् अगच्छताम्।
किना ब्यो केई।	आप (सब) गए।	यूयम् अगच्छत्।

किन्नर-बोलियों में कर्त्ता का बोध कराने के लिए 'स्' प्रत्यय है जिसका अर्थ 'ने' होता है, यथा—

1. On the Original Inhabitants of Bharatavarsa or India—Gustav Oppert, Page 4.

'रीछनी दूध नहीं देती' का अनुवाद 'होमनिगस बेरङ् मा केयो' अर्थात् रीछनी (ने) दूध नहीं देती, होगा—

किन्नर-बोलियों में सन्थाली व मुण्डारी भाषाओं की तरह सार्वनामिक मध्य-प्रत्यय (Pronominal infixes) नहीं होते। सन्थाली में 'वह उसे मारता है' के लिए 'दल—इ—ए—इ' तथा 'वह मुझे मारता है' के लिए 'दल—इयू—ए—इ' होगा, परन्तु किनौरयानुस्कद में 'वह मुझे मारता है' के लिए 'ओदो अङी तोङ्चो दू' तथा 'वह उसे मारता है' के लिए 'ओदो दोगोनू तोङ्चो दू' होगा।

कनावरी बोली की क्रिया को डॉ० ग्रियर्सन सर्वाधिक मनोरंजक विशेषता बताते हैं। उनका कथन है कि उत्तम पुरुष में 'ग' तथा मध्यम पुरुष में 'न' सार्वनामिक प्रत्यय (Pronominal suffixes) जोड़ कर इस बोली में कर्त्ता का बोध करवाया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तम व मध्यम पुरुष के कर्म को बताने के लिए 'च्' प्रत्यय जोड़ा जाता है।[1] परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस बोली में कर्त्ता का बोध 'स्' प्रत्यय लगाने से होता है। 'स्' का अर्थ 'ने' होता है परन्तु वह स्पष्ट नहीं किया जाता। 'च्' 'छोटा' के अर्थ में प्रयुक्त होता है और वह उत्तम तथा मध्यम पुरुष के कर्म को स्पष्ट नहीं करता। अतः यहां भी वे अपने निष्कर्षों का स्पष्टीकरण नहीं दे सके हैं।

श्री मौलूराम ठाकुर[2] अपने ग्रन्थ पहाड़ी भाषा में लिखते हैं—'आदिवासी कोल, किरात और किन्नर की मुण्डा भाषा का प्रभाव केवल किन्नौर, मलाणा, लाहुल और स्पिति तक ही सीमित नहीं, यहां तो यह काफी हद तक मूल-भाषा है। वरन् इसका प्रभाव कोल, किरात तथा किन्नर के सगे-सम्बन्धी कनैत और कोली के माध्यम से समस्त हिमाचल की पहाड़ी भाषा तथा पड़ौस की भाषाओं पर भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।' वे आगे लिखते हैं—'योगात्मकता में भी मुण्डा भाषाएं मध्ययोगी अश्लिष्ट रूप लिए हुए हैं, अर्थात् प्रयत्न प्रायः प्रकृति के मध्य में जोड़ा जाता है जैसे 'दल' से 'दपल'। यदि इस प्रकार शब्द के मध्य में अक्षर जोड़ने से ही योगात्मकता मुण्डा भाषाओं की विशेषता है तो पहाड़ी भाषा में अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिसमें घिर्थों की बोली में जरा (बुढ़ापा) से जबरा (बाप), कोंक से 'कड़ोंक' आदि विशेष रूप भी मिल जाते हैं'।[3] ऊपरोक्त मत को मानने में दो कठिनाइयां हैं—पहली तो यह कि जिस भाषा के अवशेष हिमालय के इस क्षेत्र में मिलते हैं क्या वह 'मुण्डारी' ही थी? क्या उसे हम स्वतन्त्र वर्ग में नहीं रख सकते! सम्भव है वह किन्नरी-बोली हो जिसमें किरात-भाषा के शब्द मिल गए हों, साथ ही, मध्य-प्रत्यय के जिस उदाहरण से 'जरा' व 'कड़ोंक' शब्दों को मिलाया गया है वे क्रियाएं नहीं हैं जब कि 'दपल' क्रिया सहित एक पूरा वाक्य है जिसका अर्थ 'प' के 'दल' (मारना) क्रिया के बीच आ जाने से 'मैं मारता हूं' होता है। अस्तु, कुछ भी हो, इतना अवश्य है कि इस क्षेत्र की सम्पूर्ण भाषाओं को नए सिरे से

1. Ibid, (L.S.I.), Page 428.
2. पहाड़ी भाषा, प्रथम संस्करण, पृ० 60।
3. वही, पृ० 60।

अध्ययन करने की आवश्यकता है क्योंकि मुण्डावर्ग के साथ नत्थी कर देने से जहाँ भाषा-शास्त्रियों में इनके प्रति जिज्ञासा बढ़ी है वहाँ सारी वस्तु-स्थिति का अहित हुआ है। वर्तमान परिस्थितियों में समाजशास्त्रीय-भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की अधिक आवश्यकता है ताकि सांस्कृतिक अध्ययन के आधार पर सोदाहरण निष्पक्ष निष्कर्ष निकाले जा सकें।

टी० ग्राहम बैली[1] ने इस क्षेत्र की बोली को केवल चार ही भागों में बांटा है। उन के अनुसार (1)—कनावर के निचले भागों की भाषा, (2)—स्टैण्डर्ड कनावरी, (3)—छितकुली तथा (4) थेबर स्कद बोलियां ही इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। वे थेबर स्कद को लिप्पा असरङ्, कानम, मुङ्नम तथा स्याशो में फैला हुआ बताते हैं। प्रस्तुत अध्ययन से पता चलता है कि उन के द्वारा किया गया वर्गीकरण युक्ति संगत नहीं है। स्टैण्डर्ड कनावरी से उन का अभिप्राय काल्पा क्षेत्र की बोली से था जो कि 'कनौरयानुस्कद' का ही एक भाग है। उनका कथन है कि एक अंग्रेज पादरी एच० ब्रस्के ने, जो कनावर में ईसाई मिशनरी था, कनावरी भाषा में बाइबल के एक भाग का अनुवाद किया है जिसे देव नागरी लिपि में बाइबल सोसाइटी ने प्रकाशित करवाया था[2]। उन्हों ने अपनी पुस्तक में कुछ शब्दों के उच्चारण भी प्रस्तुत किए हैं। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि अधिकांश किन्नौरी शब्द आर्य-भाषाओं की व्युत्पत्ति के हैं[3]। ए० एच० फ्रैंक[4] ने लिखा है कि लाहुल की तीन बोलियों, पुनन, मनचाट (मिनचङ्) तथा तिनन से कनावरी बोली की बहुत समानता है और यह बोली मुण्डा वर्ग की बोलियों से मिलती है। उनके अनुसार शब्द-रचना की दृष्टि से इन तीन लाहुली बोलियों की बनावट तिब्बती भाषा से मिलती है परन्तु व्याकरण की दृष्टि से मुण्डा-भाषाओं से इन की आश्चर्य-जनक समानता है।

कनौरयानुस्कद की कुछ स्वतन्त्र विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

इस बोली में तिब्बती प्रभावान्तर्गत 'स' का लोप हो जाता है, जैसे—स्ग्वी-ग्वी (उच्चारण) 'नौ', स्तिश—तिश-'सात' स्कर-कर 'तारे', स्का-का-'बाल', स्गिन-गिन 'जंगली बकरा'। तिब्बती भाषा के अनेक शब्द इस बोली में आ गए हैं, यथा—किम-घर, ङ-पांच, सुम/शुम-तीन, दू-है, ओम्स-आगे, स्तिङ् (तिङ्)-दिल, मार-मक्खन/घी, अङ्-मेरा, ग-मैं, स्तेम (तेम)-बहू, मिग-आंख, आदि।

उपरि किन्नौर की बोली तिब्बती भाषा के पचास प्रतिशत से भी अधिक शब्द अपने में संजोये हुए है। इस बोली में आदर-सूचक शब्दों की विद्यमानता तिब्बती भाषा के प्रभावान्तर्गत है परन्तु आर्य-भाषाओं में भी 'तुम' और 'आप' का प्रयोग होता है, अतः इसे हम विशुद्ध तिब्बती प्रभाव नहीं मान सकते।

---

1. Kanauri Vocabulary in Two Parts (English Kanauri and Kanauri English)—Rev. T. Grahame Bailey, Page 1.
2. Ibid, Page 3.
3. Ibid, Page 5.
4. A. H. Francke—A History of Western Tibet—Page 182.

महीनों तथा वारों के नामों को देखने से प्रतीत होता है कि इस बोली पर आर्य-भाषाओं का बहुत प्रभाव रहा है। सप्ताह के दिनों के नाम इस प्रकार हैं— तवारङ्-रविवार, सवारङ्-सोमवार, मङ्लारङ्-मंगलवार, बुदारङ्-बुधवार, ब्रेसप्त-वीरवार, शुकारङ्-शुक्रवार, शनशीरस-शनिवार, दियूसङ्—वार, दिवस।

महीनों के नाम इस प्रकार हैं :—

चेतरङ्-चैत्र, वैशाखङ्—वैशाख, जेशटङ्-ज्येष्ठ, आशारङ्-आषाढ़, शौनङ्—श्रावण, भदरङ्-भादों, इन्द्रमङ्-असौज, कातयङ्-कार्तिक, मगशीरङ्-मग्घर; पोशङ्-पौष, माहङ्-माघ, फागनङ्-फाङ्नङ्—फाल्गुन।

आदर-सूचक शब्दों में भी सर्वनामों के कारण सहायक क्रियाओं में परिवर्तन होता है, यथा—

तू पीटता था का कुल्चो दुगेन।
तथा आप पीटते थे की कुल्चो किस।

इस भाषा में क्रमात्मक गिनती का अभाव है। यह अभाव हमें कनौरयानुस्कद में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है, जैसे—सातवां व्यक्ति-स्तिश मी, अर्थात 'सात व्यक्ति' ही कहा जाएगा। 'पांचवां चोर भाग गया' कहने के स्थान पर 'पांच चोर भाग' कहा जाएगा।

दो शब्दों को मिला कर अनेक बार अर्थ बदल दिए जाते है यथा, फोच् का अर्थ 'गधा' होता है परन्तु वह जिन दो शब्दों से मिला कर बना है, वे हैं—फो (जंगली-जानवर) तथा च् (छोटे के अर्थ में प्रयुक्त होता है)। इस प्रकार 'फोच्' का शाब्दिक अर्थ 'छोटा जंगली जानवर' होता है परन्तु यह शब्द 'गधा' अर्थ में प्रयुक्त होना आरम्भ हो गया। सम्भव है आरम्भ में जब लोगों ने गधे को देखा होगा तो छोटा जानवर समझा होगा परन्तु बाद में उनकी धारणा बदल गई होगी।

इस भाषा में पीछे 'च्' प्रत्यय जोड़ने से लघु का बोध होता है, जैसे—

अमा—माता, अमाच्—छोटी माता अर्थात् मौसी।

बबा—पिता, बबाच्—छोटा पिता अर्थात् चाचा।

(इस प्रकार के कुछ अन्य शब्दों की सूची अगले पृष्ठों में दी गई है।)

ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरी भाषाओं से लिए गए शब्दों के पीछे 'ङ्' शब्द जुड़ जाता है, यथा—

माटिङ्—मिट्टी, शानङ्—ताला, गुरङ्— गुड़, गारङ्—नाला इत्यादि।

बड़ी तथा उल्लेखनीय वस्तुओं के साथ सामान्यतया 'स' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है, जैसे सब प्रकार के देवता–मेशूरस, नरेनस, नागस आदि तथा सप्पस–सांप, बन्दरस-बन्दर, भौंराजस—यमराज, आदि। संस्कृत में भी कुछ नामों में 'स्' लगाने का प्रचलन है, यथा, मनस्—मन, चन्द्रमस्—चन्द्रमा, दुर्मनस्—दुर्जन, धीमस् बुद्धिमान, ज्यायस्—बड़ा (भाई), धनस्—धनुष, सरस्—तालाब, पयस्—दूध, इत्यादि। 'स्' प्रत्यय को संस्कृत में विसर्ग (:) हो जाती हैं, यह संस्कृत के विकसित रूप के कारण है। किन्नर-बोली का परिमार्जन नहीं हुआ अतः 'स्' यथावत् रह गया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस क्षेत्र की कनौरयानुस्कद बोली यहां निवास करने वाली जाति की विशुद्ध बोली मानी जा सकती है, क्योंकि इसमें ही प्राचीन भाषा के अधिकांश शब्द मिलते हैं।

इस भाषा में निम्नलिखित प्रत्यय मिलते हैं—

उई, च् (दुच), न (दुन), मो (करमो-लाने के लिए),

लान्मो—लान्—मो—करने के लिए।

चल्यामो—छानने के लिए।

'ते' प्रत्यय—

जाते—खाएंगे।

रान्ते—देंगे।

संस्कृत में 'त्' प्रत्यय लगने से 'ते हुए' अर्थ हो जाता है यथा, क्रीड़त्—खेलते हुए, धावत्—दौड़ते हुए, जपत्—जपते हुए, ददत्—देते हुए, पतत्—गिरते हुए तथा खादत्—खाते हुए, इत्यादि, परन्तु कनौरयानुस्कद में 'ते' प्रत्यय से भविष्यत् काल का बोध होता है।

'अस' प्रत्यय—

मोठस—मोटा, घाटस—हल्का, छोटा, कम; छोटस—छोटा।

'स्या', 'से' प्रत्यय—

तेगसे—बड़ी वाली, माजङ्स्या—बीच वाला, मंझला।

च् प्रत्यय—

कोनेच्—साथी, मोमाच्—मामा, आदि।

किन्नर-बोलियों में पहाड़ी तथा हिन्दी भाषा के इतने अधिक शब्द मिलते हैं कि व्याकरण को छोड़ कर यह विश्वास करना कठिन होता है कि यह बोली कभी आर्य-भाषाओं से भिन्न रही होगी। ऐसा मानना न्यायसंगत होगा कि आरम्भ में इस क्षेत्र की बोली संस्कृत अथवा उसका कोई अति प्राचीन-पूर्व-वैदिक कालीन रूप रहा होगा परन्तु बाद में तिब्बती तथा बर्मी बोलियों का इस पर प्रभाव पड़ा होगा। द्विवचन की विद्यमानता इस बात को और भी पुष्ट कर देती है। यहां दी गई शब्द-सूची से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत के ये शब्द 'उधार लिये हुए' (Loan Words) नहीं हैं बल्कि किसी आरम्भिक बोली के अवशेष हैं, क्योंकि इन बोलियों में इन के पर्याय नहीं मिलते हैं।

डॉ॰ ग्रियर्सन 'ती—पानी' तथा उसके पर्यायवाची शब्दों को मुण्डारी शब्द 'डाक' तथा 'ख्मेर' भाषाओं के 'डिक' शब्द से उत्पन्न हुआ मानते हैं (भारत का भाषा सर्वेक्षण—वॉल्यूम III, भाग I, पृ॰ 429) परन्तु यह द्रविड़ भाषा के 'तण्णि' तथा 'चीत्त' शब्दों के अधिक निकट प्रतीत होता है, ऐसा अन्यत्र भी कहा जा चुका है। अस्तु, 'ती'—पानी शब्द के कुछ प्रयोग रोचक रहेंगे! यथा,

1. पसीना—दुसती—दुस—गर्मी, ती—पानी।

दुस दुस दू—गर्म हो गया है।

2. आँसू—मिस्ती—मिग—आँख, ती—पानी।
3. झरना—छोतङ्—छू/छो—नालसिरा, ती—पानी (यहां 'ती' से 'तङ्' शब्द बन गया है)।
4. दुकती—चूहलियों तथा वहमियों को सिल पर पीस कर बनाई हुई एक प्रकार की चटनी।
5. नाक का पानी—स्तमती—शीम, स्ताकुच—नाक, ती—पानी।
6. लस्सी—रा ती—रा—नीला/ऊन, ती—पानी। 'रा ती' का अर्थ 'नीला पानी' हुआ परन्तु यह शब्द 'लस्सी' के लिए प्रयुक्त होता है क्योंकि 'लस्सी' 'खल्टे' में बनाई जाती है तथा नीले रंग की होती है।

   ज्यादा पानी लगाने पर जो रंग लस्सी का हो जाता है उस लस्सी को पुर—हल्का नीला, ती—पानी 'पुरती' कहते हैं।
7. लार (मुंह की) लालङ्—लालङती,—लार-पानी।
8. घर के ऊपर से टपकने वाला पानी। चोकती—चोक—टपकना, ती—पानी।
9. चा ती—चा—चाय, ती—पानी। पो ती—बर्फ का पानी।

आदेशात्मक अथवा सुझाव बताने वाले विधि-लिंग क्रिया-पदों में इस बोली में 'च' लगा कर बहुवचन बन जाता है, यथा—पई—चलो (एक वचन), पईच—बहुवचन, (चलो)। जिरईं—आना (एक वचन), जिराच—आना (बहुवचन) जिरीं—आओ (एक वचन), जिरिच—आओ (बहुवचन)। परन्तु संज्ञावाचक में 'च' लघु के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा—

'छोटा' बताने के लिए 'च' का प्रयोग :

च—नानेच—छोटी नानी—बूआ, ववाच—चाचा, वाईच—भाई, अमाच—मौसी, गाटोच—छोटा, फोच—गधा, प्याच—चिड़िया, छङ्च—छोटा बच्चा, छाटेच—छोटी टोकरी (जिसमें रोटियां रखते हैं), छाटोच (करण्डी), तङ्च—वाटिच—छोटा थाल, टीनिच—छोटी खिड़की, पाठोच—छोटा कमरा, पन्ठङ्च—छोटा कमरा, शूच—छोटा देवता जिस से बच्चे खेलते हैं, जिगिच,—छोटा, थोड़ा; पन—तवा, पत्थर, पन्च—छोटा तवा, खेन्च—चम्मच, कुटिच—छोटी कुदाली; कैंपच—सुई, इत्यादि।

भेड़ का बच्चा—खाच, खाचो।

भेड़—खस, खासो।

बकरी का बच्चा—माच, माचो।

बकरी—वाखोर, बाखोरे।

बकरा—अज, अजे।

गधे का बच्चा—ठुरुच।

घोड़े का बच्चा—ठुरुच।

प्या—आकाशधारी सभी पक्षी।

प्याच—चिड़िया, (छोटा पक्षी); प्याचो—चिड़ियां।

थर—बाघ, थरछङ्—बाघ या शेर का बच्चा ।

होम—भालू, होमछङ्—भालू का बच्चा ।

रोच्—बकरी के बच्चे जैसा जंगली जानवर ।

स्केयो खाच्—पुलिंग भेड़ । स्केयो—नर ।

मनच् खाच—स्त्रीलिंग भेड़ । मनच्—मादा । 'मादा' अथवा स्त्रीलिंग का बोध कराने वाले शब्दों के साथ 'च्' का प्रयोग सम्भवत: उन्हें 'छोटा' बताने के उद्देश्य से होता है ।

इस बोली में 'स्' प्रत्यय बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा यह विशेष अथवा उल्लेखनीय संज्ञा को व्यक्त करता है, यथा—

छोट्स् : छोटा ; दूरस : मनुष्य का ससुराल ; सप्पस : सांप ; गोल्डस : गिद्ध ; बन्दरस : बन्दर ; राकसस : राक्षस ; गोनस : लंगूर ; सूरस : सूअर ; मोरस : मोर ; डाकेस : हरिजन ; औरेस : बढ़ई ; चारस : प्रबंधक ; फोंराजस : यमराज ; युकुन्तरस बर्फ का राजा; ठकरस : ठाकुर; दामस : बैल; मोनशिरस : महेश्वर; इत्यादि ।

'ङ्' संस्कृत के 'म्' प्रत्यय का परिवर्तित रूप है—यथा, माटिङ् : मिट्टी; कातिङ् कार्तिक; खोलगङ् : गेट (ड्योढ़ी) ; पतरङ् : पत्तियां; गोएनिङ् : वर्षा; माहङ् : माघ (सभी महीनों तथा दिनों के साथ 'ङ्' शब्द लगता है), गोलसङ् : चांद; तेलङ् : तेल; गुरङ् : गुड़; अश्लेचङ् : आषाढ़ का मेला; समुद्रङ् : नदी; गारङ् : नाला; देशङ् : गांव; गोटङ् : घराट; युल्मङ् : लम्बी पत्थर की शिला; शानङ् : ताला; पितङ् : दरवाजा; वोर्षङ् : वर्ष, आयु; अनङ् : अन्न; रङ् : पर्वत (पर्वत का अन्य नाम नहीं है); चनालङ् : हरिजन, चमार; रल्डङ् : स्वर्ग; जू : बादल (बादल का बहुवचन नहीं होता); सन्थङ् : मन्दिर का आंगन, लागङ्, बौद्ध मन्दिर; ग्रोमतङ्, गो मूत्र; द्वारङ् : दरवाजा; बोठङ् : वृक्ष; डालङ् : टहनियां; टीनिङ् : खिड़की; ठेपिङ् : टोपी; दूमङ् : धूआं; धुईङ् : कोहरा; सोरङ् : तालाब; बेम्रङ् : प्यार; शेम्रङ् : दोघरी; न्योटङ् : युगल; खेरङ् : दूध; खुरङ् : खुड्ड; पन्ठङ् : कमरा; मुसलङ् : मूसल; कानिङ् : ओखली; छतिङ् : बांझ (जिस भेड़ के अभी तक बच्चा न हुआ हो); छातिङ् : मच्छर; शटङ् : शीम; डोकङ् : ढांक; दाखङ्; अंगूर; त्रोबङ् : ताम्बा; जघरङ् : झाड़ी; पिलिङ्च् : बिल्ली; जमङ् : स्वाद; झोलङ् : मैल; जामङ् : जिन्दगी; दाखेनङ् : पूजा; उबालङ् : उबाल; डोमङ् : हरिजन, डोम; जेष्टङ् : बड़ा, ज्येष्ठ; माजङ् : बीच; कोनसङ् : छोटा, कानङ् : कान; छतरङ् : छाता; नामङ् : नाम; बातङ् : बात; कामङ् : काम; दियुसङ् : दिन; मल्थङ् : छत; खातङ् : आंगन; तोगङ् : बरामदा; बेरङ् : समय; बाइरिङ् : बाहर; द्योगलङ् : देव-मन्दिर; मोनङ् : मन; बोजङ् : भोज; ग्रोणङ् : ग्रहण; खानिङ् : खान; चकरङ् : घराट का चक्र; धूपङ् : धूप; कोचङ् : बुरा, दिशा; कूचङ् : झाड़ू; दोइङ् : दही; डबरङ् : गुफा, बिल; गोरबोरिङ् : गड़बड़, धक्का पेल होना; पायथङ् :दाल; गन्ठङ् : घण्टी; गन्ठुङ् : गांठ; दोषङ् : दोष; शिरङ् : शरीर, सिर; सीरङ् : नसें; मुखङ् : मुख; मेशङ् : धीरे; मङ्मङ् : छुपाकर; तङ्तङ् : देखकर; धीमङ् : सही; बामङ् : उलटा; शास्त्रङ् : पहेलियां; डेयङ् : शरीर; क्योलमङ् : देवदार; रोमङ् : बाल; रोषङ् : गुस्सा; मायटङ् : मायका; पेटिङ् : पेट; पिष्टिङ् : पीठ; कूलङ् : कूहल;

दोरिङ् : दीवार; शारङ्: घर के नजदीक का बगीचा (किचन-गार्डन); भारङ् : बोझ; कारङ् : एक ढंग (भोजन का एक समय); ग्रासङ् : ग्रास; डकारङ् : डकार (जाभा डकारङ् तामा फुचारङ् : खाए तो डकार, रखे तो बरबाद। अगर खाया होता तो डकार आना था पर अब बरबाद हो गया); कौथङ् : कंघी; बीयङ् : बीज; जितरङ् : दरांती; बालङ् : पौधा; जीलङ् : जड़ (हरिजन लोग मां को 'जीलङ्'—जड़ कहते हैं), दारङ् : धार; छोतङ् : झरना; शोपङ् : शोक मनाना; पेरङ् : परिवार; बानिङ् : बर्तन; खानङ् : टुकड़ा; खानिङ् : काटना; दीवङ् : दीपक; मोलङ् : गोबर, मूल्य; पानुङ् : चरागाह; छापरङ् : छप्पर; चङेरङ् : चंगेर, बैल की ठूठ; गोलिङ् : खिलना (औजार); गुलिङ् : रान; गोनङ् : घन्न; कीलङ् : कील; सोन्जिङ् : करण्डी; बीतिङ् : दीवार; सिस्थङ् : मोम; सीथङ् : हल का फाल; सीमङ् : सीमा; बागङ् : भाग; चपरङ् : देवता की जटा; जमानङ् : पालकी, इत्यादि। 'ङ्' प्रत्यय युक्त शब्द इस बोली में बहुत अधिक हैं और वे इसके इतिहास के साथ किसी न किसी रूप से सम्बद्ध हैं, इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत के 'म्' प्रत्यय की भांति अथवा उसी से बिगड़ कर 'ङ्' प्रत्यय किन्नर-बोली के मूल के शब्दों के साथ जुड़ गया। जैसे ग्रहणम् से 'ग्रोनङ्' ग्रासम् से 'ग्रासङ्', शास्त्रम् से 'शास्त्रङ्' आदि शब्द बन गए परन्तु 'ङ्' वाले सारे शब्द संस्कृत के नहीं हैं बल्कि किन्नर-भाषा के भी हैं, यह बात सूची से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

किन्नर भाषा के कुछ अन्य शब्द जिन पर आर्य भाषाओं का प्रभाव है :

हिन्दी	किन्नर-बोली	हिन्दी	किन्नर-बोली
सूर्य ग्रहण	यूनेगो ग्रोनङ्	चन्द्र ग्रहण	गोलसङ् ग्रोनङ्
मिट्टी	माटिङ्	टांग	बङ्
तेल	तेलङ्	कुत्ता	कुई
कूहल	कूलङ्	गुग्गल	गुग्गलङ्
धूप	धूपङ्	हाल चाल	हालङ् चालङ्
नहीं	मा (संस्कृत)	पसली	रिब (अंग्रेजी)
घराट	गौटङ्	स्कूल	स्कूल
पटवारी	पटवारी	मास्टर	मास्टर
कानूनगो	कानगो	वेला (समय)	वेला (संस्कृत)
भाग	भाग (हिन्दी)	पता	पौता (पता)
अज (बकरा)	अज	बकरी	बाखोर
पूर्णमाशी	पौंणासिङ्ग	लोटा	लोटरी
लज्जा	लाजङ्	नाला	नालङ्

बन्दर	बन्दरस	चोर	चोरस
कथा	कोथा	आकाश	सरगङ्
कान	कानङ्	बकरी के बाल	रौमङ्
भित्ति (दीवार)	भितिङ्	पत्ता	पतरङ्
काग (कव्वा)	काग	कील	कीलङ्
मुक्का (मुट्ठी)	मुट्ठस	चपटा	चपटङ्
दुबा या दूब	द्रबङ्	फाल	फालङ्
डोरी	डोर, डोरिङ्	सांकल	शङ्लिङ्
गांव	देशङ्	घराट	गौटङ्
घराट का चक्र	चकरङ्	आरसी (शीशा)	अरशू
धुरी सिरा, अगला भाग, धुरी	धुरी	पेट	पेटिङ्
शिराएं (नसें)	सिरङ्	पाहुना (मेहमान)	पौनालि
दही	दहिङ्	धूआं	धुमङ्
आसमान (स्वर्ग)	सरगङ्	गरुड़	गरुडङ्स
सर्प	सप्पस	ओस	ओशङ्
ढोल	ढोलङ्	रणसिंगा	रणशीङ्ग
पंख	पङ्खङ् (पखङ्)	दिवस	दिउंसङ्

महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार किन्नर भाषा में तीन तत्त्व पाए जाते है—मूल (किरात) भाषा, हिन्द यूरोपीय (संस्कृत पारिवारिक भाषा), तथा भोट (तिब्बती) भाषा। तीनों भाषाओं का मिश्रण अथवा वर्गीकरण दिखाने के लिए उन्होंने अपनी पुस्तक किन्नर-देश (पृ० 376) में इस भाषा के कुछ शब्द दिए हैं :—

पृथ्वी— वाल्यङ् (हिन्दी)।	अग्नि —मे (भोट)।
बालू—वाल्यङ् (हिन्दी)।	चूल्हा—मेलिङ् (भोट-किरात)।
जल—ती (किरात)।	चकमक—मे रक (भोट-किरात)।
पत्थर—रग (किरात)।	कूप—कूपङ् (हिन्दी)।
खेत—रिम (किरात)।	बर्फ—ठनङ् (किरात)।
चबूतरा—ठण्टी (किरात)।	वृक्ष—बोटङ् (हिन्दी)।
न्योजा—रो बोटङ् (हिन्दी-किरात)	हथियार योलङ् (हिन्दी)।

वे आगे लिखते हैं :—

संस्कृत के शब्द किन्नौरी भाषा में काफी मिलते हैं, यथा—काठ (काष्ठ), कोहर (कोहरा), बिजुल (बिजली), रिसा (रीछ), खऊ (खाय), छोप (सूप, मांस रस), रण्डोलस (रण्डुआ), भोगान (भगवान), पुजा (पूजा), बोदी (बहुत), बैया (भैया)।

उन्होंने तो किन्नर-भाषा में शब्दों का अनुपात भी बता दिया है—इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं, 'जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं किन्नर-शब्द-कोष में प्राय: 25 से 52 प्रतिशत हिन्दी, 14 प्रतिशत भोटिया, और 16 से 59 प्रतिशत तक शुद्ध (किरात) भाषा के शब्द हैं' (पृ० 322)। पता नहीं इस गणना का आधार क्या रहा है परन्तु इतना अवश्य है कि उनके कथन में अंशतः अतिशयोक्ति नहीं है। किरात भाषा को वे 'मूल-भाषा' मानते हैं जो युक्ति संगत नहीं है। यह भ्रांति इस लिए हुई है कि वे किन्नर-किरातों को एक ही वर्ग से सम्बन्धित मानते थे।

डॉ० ग्रियर्सन ने 1891 ई० की जनगणना के आधार पर रामपुरी और पश्चिमी पहाड़ी बोलने वालों की संख्या 55,717 बताई है। वे इसी जनगणना के आधार पर राम पुर बुशहर रियासत में तिब्बती-बर्मी भाषा-परिवार की भाषा बोलने वालों की संख्या 17,455 बताते हैं।

इस बोली में कई शब्दों की बनावट बड़े साधारण ढंग से होती है, यथा :—

मे—आग, शिङ्—लकड़ी मेशिङ्—आग की लकड़ी, दियासलाई।
मङ् मङ्—छुप कर मङ्—स्वप्न।
ती—पानी, श्प्रोक्च—छलांग लगाने वाला, तीश्प्रोक्च्—मेंढक।
यल—थकना/चाबुक यलो यला—चाबुक से सजा देना।
यल यल—थक कर

इस बोली में सहायक क्रिया का बहुवचन नहीं होता, यथा—

घोड़ा चल रहा था। घोड़े चल रहे थे।
राङ् युनो दुगे। राङा युनो दुगे।

कनावरी बोली में तीन 'वचन' हैं परन्तु उन में सर्वनाम के अतिरिक्त अन्तर नहीं दिखाई देता। यथा—

1. एक बैल घास खा रहा है। ई दामेस ची जऊ दू।
2. दो बैल घास खा रहे हैं। निश दामा ची जऊ दू।
3. (दो से अधिक) बैल घास खा रहे हैं। दामा ची जऊ दू।

सर्वनाम में यह अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है—

(1) 1. तुम (अकेले) गए। किह बियो।
2. तुम दो गए। किशि ब्योच म।
3. तुम (सब) गए। किनो ब्योच म।

(2) 1. मैं (अकेला) गया। ग ब्योक।
2. हम (दो) गए। निशि ब्योच्।
3. हम (सब) गए। निकों ब्योच्।

(3) 1. वह (एक) गया। दो ब्यो।
2. वे (दो) गए। दोकसुङ् ब्यो।
3. वे (सब) गए। दोगो ब्यो।

इस बोली में 'बहुवचन' बनाने के लिए निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं :—

1. 'ग्रा' या 'ग्रो' शब्द जुड़ने से—

राङ् : घोड़ा; राङ्गा या राङ्गो : घोड़े; छेच : स्त्री; छेचो : स्त्रियां; रग : पत्थर; रगो : बहुत पत्थर; थर : बाघ; थरो : बहुत बाघ। शालिच : लोमड़ी; शालिचो : बहुत लोमड़ियां।

2. 'गो' लगा कर बहुवचन बनाना :—

हाथी : हाथीगो; शू : देवता; शूगो : बहुत देवता;

बौबा : पिता। बोबागो : बहुत पिता;

लामा : बौद्ध भिक्षु; लामागो : बहुत बौद्ध भिक्षु।

कुकरी : मुर्गा (मुर्गी); कुकुरीगो बहुत मुर्गे (मुर्गियां)।

3. 'ए' लगा कर बहुवचन बनाना :—

दुकान : दुकाने; सोलक : सोलके; रोट : रोटे; (बहुत रोटियां)।

खोशनिग : राजपूत स्त्री ; खोशनिगे (बहुवचन)।

कुई : कुत्ता; कुए : कुत्ते।

4. 'स' का 'या' होकर बहुवचन :

कुछ शब्दों के बहुवचन 'स' को 'या' होकर बनते हैं, यथा, ग्रौरेस से ग्रौरया, डाकेस—डाक्या, कोनेस—कोन्या, ग्रादि।

जेद —भेड़ बकरी का बहुवचन 'जेदा' या 'जेदो 'तो 'ग्रा' या 'ग्रो' जोड़ने के नियम में ग्रा जाता है परन्तु इस का एक ग्रौर बहुवचन भी होता है—वह है 'जेह'। यह ऊपरोक्त नियमों का ग्रपवाद प्रतीत होता है।

5. 'नो' लगा कर भी बहुवचन का बोध होता है, यथा :—

1. नदी में मछली है। समुद्रङों मच्छस दू।
2. नदियों में मछली है। समुद्रङोंनो मच्छस दू।
3. नदियों में मछलियां हैं। समुद्रङोंनो मच्छा दू।

ऊपरोक्त वाक्यों में 'नो' शब्द 'बहुवचन' के साथ 'में' शब्द के लिए ग्राया है। परन्तु एक वचन में वह दिखाई नहीं देता। डॉ० ग्रियर्सन के ग्रनुसार यह मुण्डा—भाषाग्रों का प्रभाव है। वैसे ही उनके मत में 'मी' (ग्रादमी) का गीत की भाषा में 'मीएन' (बहुत-ग्रादमी) तथा मीएनऊ (बहुत से ग्रादमियों का) हो जाना भी मुण्डा प्रभाव को व्यक्त करता है।

'भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड' भाग 1 में डॉ० उदय नारायण तिवारी द्वारा ग्रनूदित डॉ० ग्रियर्सन का वक्तव्य पठनीय है—

'जैसा कि हमें याद है मुण्डा भाषाएं छोटा नागपुर तथा भारत के मध्य भाग में बोली जाती हैं। यह बात भी सब को याद है कि इन मुण्डा भाषाग्रों से सुदूर उत्तर

में स्थित हिमालय में व्यवहृत भाषाओं में तिब्बती-बर्मी भाषाओं की विशेषताएं वर्तमान हैं। किन्तु यहां सर्वेक्षण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दार्जिलिंग से ले कर पंजाब तक एक ऐसी विचित्र बोली की पट्टी चली गई है जिस में पूर्वी मुण्डा वंश की भाषाओं की विशेषताएं स्थित हैं किन्तु जिसे बाद में आने वाले तिब्बती—बर्मी भाषा—भाषी लोगों ने दबा दिया है। इस प्रकार के प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अति प्राचीन काल में पंजाब स्थित कनावर (कनवार) से ले कर भारत के बाहर प्रशान्त महासागर होते हुए ईस्टर द्वीप तथा न्यूजी लैण्ड तक एक भाषा प्रचलित थी, जिस का अवशेष इन स्थानों की भाषाओं में आज भी वर्तमान है। भाषा—विज्ञान तथा नृविज्ञान के पार्थक्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए और इन तथ्यों को हमें नृविज्ञानियों के हाथ में आगे की खोज के लिए सौंप देना चाहिए।'

अतः स्पष्ट है कि कनावरी बोली अनेक भाषाओं के बीच एक कड़ी का कार्य करती है और इस पर कई भाषाओं का प्रभाव है।

दूसरी भाषाओं के कुछ शब्दों को इस भाषा-भाषियों ने अपनी आवश्यकतानुसार उच्चारण करना आरम्भ कर दिया और अब वे शब्द इस प्रकार घुल मिल गए हैं कि उन के असली रूप का पता लगाने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है। अनेक हिन्दी शब्दों को इस बोली ने आत्मसात कर लिया है और उन के लिए यहां कोई पर्यायवाची शब्द ही नहीं मिलते। ऐसे कुछ शब्दों का अध्ययन रुचिकर होगा :—

रेकङ् ; रेखा; ओटक्याचिम् : अटकाना ; पोल्टयामो : पलटना; रीशास : ऋषि; थौम्यामू : थामना; आखौर : अक्षर; तोमासो : तमाशा; पीरङ् : पीड़ा/बीमारी; गरौतराङ् : गौ मूत्र; दियूसाङ् : दिवस; सौंकट : संकट; पुरशी : पुरुष; सोथिऊं : सत्य वाले; बौसना : बसना; पौता : पता; थानाङ् : थान; आमोलिया : अमल वाला, आदत वाला ; पौरजा : प्रजा; सोचकोई : सच ही; आराक : शराब/अर्क; दूबाङ् : दूब; दूपाङ् : धूप; डोबी : डिबिया; खानङ् : खान; बोटने : बटन; डूबेदा : डूब गए; तनु : शरीर; जोरिङ् : जोड़ी; बौलास : बल से; फुकयामो : जलाना; चकरङ् : चक्र; ओसङ् : ओस; बोगान : भगवान, इत्यादि।

इस प्रकार के शब्दों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का किन्नौरी-बोली पर विशिष्ट प्रभाव है और इस के भाषा-शास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता अब भी बनी हुई है। सीमावर्ती क्षेत्र होने के कारण यहाँ के लोगों की संस्कृति तथा लोक-भाषा आकर्षण तथा महत्त्व की वस्तुएं बन गई हैं।

कारकों में इस भाषा में एक वचन तथा बहुवचन में निम्नलिखित रूप बनते हैं—

आदमी—'मी' शब्द के कारकों की सभी विभक्तियों में रूप—

मी—आदमी

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्त्ता—ने	मीस	निश मीस	मीस, (बेबर 'स्कद में आदमी को' अर्थ होता है)

	आदमी ने।	दो आदमियों ने।	आदमियों ने।
	मी पङ्	निश मी पङ्	मीनो, मीनू (मीपङ्)।
कर्म-को	आदमी को	दो आदमियों को	आदमियों को
करण-से	मीयू द्वक्च	निश मीन द्वक्च	मीन द्वक्च, मीनू द्वक्च।
के द्वारा	आदमी से, के द्वारा।	दो आदमियों से, के द्वारा।	बहुत आदमियों के द्वारा।
सम्प्रदान-	मीऊ ताङेस	निश मीनू/मिऊ ताङेस	मीनू ताङेस
के लिए	आदमी के लिए	दो आदमियों के लिए	आदमियों के लिए
अपादान	मीयोच	निश मीनोच, मियोच	मीनोच, मीनूच
से	एक आदमी से।	दो आदमियों से।	आदमियों से।
सम्बन्ध	मीयू	निश मीयू	मीनो, मीनू
का, के की	आदमी का/के/की।	दो आदमियों का/के/की	आदमियों का/कि/की।
	मीयू देन/मीयू	निश मीनो	मीनू/मीनो (मीनू देन)
अधिकरण पर	आदमी पर/में	दो आदमियों पर/में	आदमियों पर/में
सम्बोधन-	ओए मी !	ओए मीसुङ् !	ओए मीगो !
हे	अरे आदमी !	हे दो आदमियो !	अरे आदमियो !

वह—दो

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता-ने	दोस	दोकसुङ्स	दोगोस
	उसने	उन दोनों ने	उन्होंने
कर्म-को	दोपङ्	दोकसुङ्ों	दोगोनो
	उस को	उन दो को	उन सब को
करण-से,	दोऊ द्वक्च	दोकसुङ्ों द्वक्च	दोगोवो द्वक्च
के द्वारा	उस से	उन दो से	उन सब से
सम्प्रदान-	दोउ ताङेस	दोकसुङ्ों ताङेस	दोगोन ताङेस।
के लिए	उस की/के लिए	उन दो के लिए	उन सब के लिए
अपादान-	दोऊ द्वक्च/च	दोकसुङ्ो द्वक्च/च	दोगोनो द्वक्च
से	उससे	उन दो से	उन सब से
सम्बन्ध-	दोऊ	दोक सुङ्	दोगोनू/नो
का,-के, की	उस का	उन दो का, के, की	उन सब का, के, की
अधिकरण-	दोऊ देन	दोक सुङ्ों देन	दोगोन देन
में, पर	उस पर	उन दो पर/ऊपर	उन सब पर।
सम्बोधन	—	—	—

इस बोली में आर्य-भाषाओं के बहुत अधिक शब्द हैं कुछ की सूची नीचे दी जा रही है—

दारङ् : धार; दिवाङ् : दीपक; सोताजुग : सत्ययुग; रोथाङ् : रथ, पालकी। माऊले : मामा; बान्जास : भान्जा; मी : आदमी; छेली : बकरी का बच्चा (बलि देना), बांग्या : भागा ; दूपाङ् : धूप; गोटङ् : घराट; गोर : घर; पाइनोन : पहनावा; दुखी : दुःखी; कोइलयोश : कैलाश; चोनडिका : चण्डिका; दोषाङ् : दोष, अपराध; हिलयाश : हिला; पोछयागयो : पहुंचा; बेशाम : बैठाना; पोरीस : पढ़ना; मन : मां; बन/बौन : बाप, पिता; पालयारेईं : पालना; मुलुक : देश, अधिक संख्या में; देशाङ् : गांव; बेराङ् : देर, समय; बँरङ् : बाहर; सोना : सोना ; ओटकयाचिद : अटकाना, रोकना; माटिङ् : मिट्टी; बोसोम : भस्म; गीथङ् : गीत; नालिङ् : नाला, घाटी; बोखयाया : टिकाकर; प्रायो/पराया : ससुराल ; मोनाङ् : मन; : बबा : बाप; तलाई : तालाब; पोरमी : प्रेमिका, पत्नी; जाही/जाई : लड़की, बेटी ; जानी : जिन्दगी; बेमानीष : बेइमान; इमानदार : इमानदार; मुस्ल : मूसल; तोमासो : तमाशा; घागरु : घागरा; ठण्डेव : ठण्डा; कुई : कुत्ता; मिग : आँख; आदाङ् : आधा; बापू : पिता; नामी नोखी : नई नई; लोस्ते : आलसी; बान्डारी : भण्डारी; मापो : मामा/ननिहाल; कुलाङ् : कूहल; कोभी : कभी; पालस : फुआल; ठोङ् : ठोकर/इशारा; बोठङ् : वृक्ष पोरिष्टाङ् : प्रतिष्ठा/उद्घाटन; सोतमत : सत्य; पोरख्याशो : परख रहे; लायकी : लड़की; वईच : छोटी बहिन; जागाङ् : जगह; सोकिन : सौत; गोरबन : घर बार; सलोकी : सलूक; कागली : कागज; आखौर : अक्षर; गोयने : गृहस्वामिनी; आदो : आधी; रोपङ् : धान के खेत; कुटोन : कुट्टन; बोरङ् : वरदान; रीशास : ऋषि; लाङ्ग्या : लांघना; थोमा : थामना; डाडिङ् : डण्डी; टोल्या : ढूंडने के लिए। इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रागैतिहासिक काल से इस बोली का संस्कृत तथा अन्य आर्य-भाषाओं के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। मुण्डा भाषाओं में 'खन' तथा 'कम' शब्द गिनती में लगते हैं। संस्कृत में भी 'अधिकम्' शब्द लगा कर गिनती होती है, यथा—त्र्यधिकं शतम्—एक सौ तीन, 'विंशत्यधिकम् सहस्र',-एक हजार बीस, इत्यादि। संस्कृत भाषा के गिनती के नियम किन्हीं अंशों तक किन्नर-बोलियों से मिलते हैं, यथा—संस्कृत में भी गिनती दस तक होती है और 'दश' शब्द के पहले 'एकादश'—एक+दश, द्वादश—द्वि+दश आदि का क्रम चलता है। इसी प्रकार कनौरयानुस्कद में 'साये' (दस) के पश्चात् इद (एक) लगाने में सिहिद (ग्यारह) बनता है। अन्तर केवल एक—दो आदि गणनावाचक शब्दों के 'पहले' अथवा 'पीछे' जुड़ने का है।

वैसे किन्नर-बोलियां शब्द-भण्डार की दृष्टि से सशक्त हैं और उनमें छोटे-से-छोटे भावों को व्यक्त करने की क्षमता है। इस सम्बन्ध में 'जलना' शब्द का प्रयोग स्थिति को स्पष्ट करता है—

लकड़ी जल रही है—शिङ् बारो दू। बारो—Good Sense.

मकान जल रहा है—किम बोगो दू। बोगो—Bad Sense.

('बोगो' जल कर खराब होना)

कपड़ा जल रहा है—गस बोगो दू।

लकड़ी जलाओ – शिङ् ल्योग ।   ('ल्योग' दूसरी जलती हुई वस्तु से जलाना)
दीपक जलाओ—दीवाङ् च्योईं/ल्योगीं । (दियासलाई आदि से जलाना)
सिगरेट जलाओ—सिगरेट ल्योगीं ।
अपना घर मत जलाओ—मुरों किमू था पोगीं । ('पोगीं' किसी चीज को जलाना अथवा जला कर नष्ट करना) ।
लकड़ी जलाओ—शिङा पोगीं ।
ल्योगमो—जलाना । (दूसरी जलती हुई वस्तु से जलाना) ।
चूल्हे में आग जलाओ—मी फालिङ् मे पारीं । पारीं—नए सिरे से आग जलाना ।
पोगमो —जलाना (रखी हुई वस्तु को जलाना) ।
मुर्दा नहीं जला—शीमी मा बुक । बोक—गर्म, बोकती--गर्म पानी ।
बुग्मो—जलना, जलकर उसी समय बिल्कुल नष्ट होना ।

इस बोली में पुरुष के ससुराल के लिए 'दूरेस' तथा स्त्री के ससुराल के लिए 'परायो किम' (दूसरे का घर) शब्द मातृसत्तात्मक व्यस्था को सिद्ध करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में स्त्रियां अपने घरों में रहती थीं तथा पुरुष ससुराल में आकर रहना आरम्भ करते थे । पुत्री को मायके में लाड़-प्यार तथा गृह-कार्य की स्वतन्त्रता इस बात की पुष्टि करते हैं ।

इस बोली में उत्तर व दक्षिण दिशाओं को बताने के लिए कोई शब्द नहीं हैं ।

गाँव के लिए इस बोली में 'देशङ्' शब्द मिलता है तथा दूध के लिए एक मात्र शब्द खेरङ् (क्षीर) इस जाति के इतिहास के साथ सम्बद्ध है । नदी के लिए एक मात्र शब्द 'समुद्रङ्' का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि अति प्राचीन काल ङ इस वर्ग के लोग 'समुद्र' (सागर) के पास रहते होंगे । सम्भव है ये लोग मानसरोवर के पास रहते हों और उसे 'समुद्रङ्' कह कर पुकारते हों तथा सतलुज को मानसरोवर के साथ सम्बद्ध होने के कारण 'समुद्रङ्' नाम दिया गया हो । नदी को 'गंगा' कहने का प्रचलन इस बोली पर द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव दर्शाता है । बंगला भाषा में छोटी नदी को 'गांग' कहा जाता है । ये शब्द इस जाति के इतिहास के अटूट तन्तु हैं अतः इनकी व्युत्पत्ति का अध्ययन अनेक महत्त्वपूर्ण गुत्थियों को सुलझाने में सहायक सिद्ध हो सकता है । किन्नर-बोलियों का द्रविड़ भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि इस वर्ग के विभिन्न प्रागैतिहासिक कालीन सम्बन्धों को अधिक स्पष्टता से प्रकाश में लाया जा सके ।

'सोमसी' शब्द का ब्राह्ममुहूर्त के लिए प्रयोग इस क्षेत्र की 'सोम' सम्बन्धी संस्कृति का द्योतक है । 'गोलसङ्' का अर्थ इस बोली में महीना है जबकि 'गोल' शब्द चाँद के लिए प्रयुक्त होता है तथा 'सङ्' का अर्थ ब्राह्ममुहूर्त अथवा 'खुलना—उदय होना' होता है । इसका अर्थ यह है कि यहाँ निवास करने वाली जाति 'चन्द्रमास' से अपना समय गिनती थी । वर्ष के लिए 'बोर्षङ्' शब्द का प्रचलन है परन्तु यही शब्द 'आयु' के लिए भी प्रयुक्त होता है, यथा, 'किन ते बोर्षङ्' का अर्थ हुआ 'आप की क्या उम्र है ?' यह सिद्ध करता है कि आरम्भ में इस क्षेत्र के निवासी 'वर्ष' के सम्बन्ध में जानकारी नहीं

रखते थे। इसी प्रकार दिन व धूप के लिए तिब्बती शब्द 'यूनेग् (अथवा उसके पर्यायों) का प्रयोग तथा 'दिउस' शब्द के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'दिउस' अथवा 'दिउसङ्' संस्कृत का शब्द है पर तिब्बती भाषा-भाषी लोगों के प्रभाव के कारण 'यूने' शब्द का प्रचलन आरम्भ हुआ। 'उत्तर' व 'दक्षिण' दिशाओं के लिए शब्दों का अभाव भाषा-वैज्ञानिक तथा नृतत्त्वशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। किन्नर—भाषा की बनावट प्राचीन संस्कृति की झलक प्रस्तुत करती है अतः इस वर्ग के इतिहास के सम्बन्ध मे निष्कर्ष निकालते समय हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए।

परिशिष्ट 1

लोक गीत

मेशुरों का गीत

गोली गो होना हाया वे होना ।

टेक ।

युचाला डेना, कुल्लु देवता, युचाला शोङ् हो हिरमा देवी ने । युचाला । जोम की चा जोम हो ग्रोसो थानङ् ।

नीचे से ऊपर कुल्लु देव, नीचे से ऊपर हिरमा देवी । नीचे से ऊपर । इकट्ठे हुए (सुंगरा के पास) थानङ् नामक स्थान पर ।

व्याहे होना हो गोरबोरिङ् अग्ग हो ।

विवाह किया गोरबोरिङ् गुफा में ।

गुरबिन हो हिरमा देवी ने, गुरबिन हो । जाए सीना हो, सोरई युङ्रिङा, जाये-सीना ।

गर्भवती (हो गई) हिरमा देवी, गर्भवती । उत्पन्न हुए अट्ठारह भाई बहिन, उत्पन्न हुए ।

पाशा खेलीच हो सोमा पाने, पाशा खेली ।

पाशा खेल,ा सोमा पाने (स्थान में), पाशा खेला ।

जाये सीना हो देवीयू चोण्डिके, जाये सीना ।

पैदा हुई देवी चण्डिका, पैदा हुई ।

दङ्ची जाएस हो, ग्रोसो शङ्करस, दङ्ची जाएस ।

इसके पश्चात् उत्पन्न हुआ, सुङ्रा का शङ्कर इसके पश्चात् ।

दङ्ची जायेस हो छोल्यो शङ्करस, दङ्ची जायेस ।

इसके पश्चात् पैदा हुए चगांव के शङ्कर, इसके पश्चात् पैदा हुए ।

दङ्ची जायेस हो चिकम्बा दुर्गा, दङ्ची जायेस ।

वहां से पैदा हुई छोटा कम्बा की दुर्गा, बाद पैदा ।

दङ्ची जायेस हो तेकम्बा दुर्गा, दङ्ची जायस ।

इसके बाद पैदा हुई बड़ा कम्बा की दुर्गा । बाद पैदा हुई ।

दङ्ची जायस हो, ताराने तारासन दङ्ची जायेस ।

वहां से पैदा हुई तरण्डा की तारा, वहां से उत्पन्न हुई ।

दङ्ची जाएस हो, उषा जङ्खाइने, दङ्ची जायेस ।

वहां पैदा हुई ऊषा सोने (के जेवरों) वाली, वहां से पैदा हुई ।

दङ्ची जाएस हो लाटे शा ठोंटे, दङ्ची जायेस ।

वहां से उत्पन्न हुए, गूंगे बहरे, उत्पन्न हुए ।

जेता मानी हो भागा बान्ठो शेते, जेता मानी।	ऐसा नहीं, भाग बांटेंगे (लगायेंगे), ऐसा (तो) नहीं।
पाशा खेली हो, नुदा शा ज़ोदा, पाशा खेली।	पाशा (तास) खेलने लगे, इधर से उधर, पाशा खेलने लगे।
कीसी बान्ठ्या हो जेष्माङ्स्या युङ्जे, कीसी बान्ठ्या।	आप ही बांट दो ज्येष्ठ भाई आप ही बांट दो।
कीसी बांठ्या हो गंगीचा रिङ्जे, कीसी बान्ठ्या।	आप ही बांट दो (बड़ी) मेरी बहिन आप ही बांट दो।
कीनो तोदे हो, ग्रोसो शंकरस कीनो तोदे।	आप को है, सुंगरा के शंकर। आप को है।
कीनो तोदे हो, ग्रोसो थानङों, कीनो तोदे।	आप को है, सुंगरा (का स्थान) आप को है। (है)।
नोस्ता मानी हो, गांगीचा रिङ्जे, दोस्ता मानी हो।	इतने से नहीं, मेरी बहिन, इतने से नहीं।
नोसमा नीमा हो राये दयार (दशहरा) दोसमी, नोसमा नीमा हो।	इतने से न हो आठ दिन दशहरा, इतने से न हो तो।
नोसमा मानी हो गांगीचा रिङ्जे, नोसता मानी।	इतने से (भी) होगा नहीं, मेरी बहिन, इतने से नहीं।
नोसमा नीमा हो, पीरियों सोरानङ् नोसमा नीमा हो।	इतने से नहीं होगा तो, सुनहरी सराहन, इतने से न हो तो।
पीरियो सेरानङ् हो, वाणासुरो खण्डी, पीरियो सोरानङ्।	सुनहरी सराहन, बाणासुर का त्रिशूल, सुनहरी सरहान।
कीनो तोदे हो, भाबेओ शङ्करस, कीनो तोदे।	आप को है. भावा के शङ्कर, आप को है।
कीनो तोदे भाबेको खुनाङ्, कीनो तोदे।	आपको है भावा का परगना, आपको है।
नोसता मानी हो, गांगी रिङ्जे, नोसता मानीक।	इतने से (होगा) नहीं, मेरी बहिन, इतने से नहीं।
नोसमा नीमा हो, स्पीति खागो, नोसमा नीमा हो।	इतने से न हो तो, स्पीति का क्षेत्र इतने से न हो तो।
नोसता मानीक हो, गांगीचा रिङ्जे नसता मानी हो।	इतने से होगा नहीं, मेरी बहिन, इतने से नहीं।
नोसमा नीमा हो, एका बोल्दोर, नोसता मानी हो।	इतने से न हो तो, एक बोल्दार (कण्ठा), इतने से नहीं।

महेश्वरों का गीत

दुङ्ग लेयो दङ्शङ् युचाला डेना मादेव गोनों बवा।	नीचे से ऊपर, महादेवों का बात।

थुवाला शोङा मादेवगोनो ग्राऊ ।	ऊपर से नीचे, महादेवों की मां ।
मादेवगोनो ग्राऊस लोतिश–युङ्ज़ो ! या युङ्ज़ो ! हम व्योमो बद दुई ?	महादेवों की मां ने कहा—भाई ! ऐ भाई ! कहां जाने के लिए ग्रा रहे हैं ?
बणासिरस लोतिशच्छा ग्रोनो छोङ्सा व्यो दुक ।	बाणासुर ने कहा—नमक के व्यापार के लिए जाऊंगा ।
ज़ोम गोरबोरङ् ग्रागो ।	गोरबोरिङ् गुफा में ।
गोरबोरिङ् ग्रागो गुबिन हाचिस हिरमा देवी ।	गोरबोरिङ् गुफा में गर्भवती हो गई, हिरमा देवी ।
ज़ोरमेस देवी चोण्डिका, दङ्चले ज़ोर-मेस सुङ्रा महेश्वर ।	पैदा हुई देवी चण्डिका, उसके बाद हुए सुङ्रा महेश्वर ।
दङ्चले ज़ोरमेस भावा मोनशिरस ।	बाद पैदा हुए, भावा महेश्वर ।
दङ्च ले ज़ायाश चगांव महेशुर ।	बाद पैदा हुए, चगांव महेश्वर ।
दङ्चले ज़ायाश नल्चे ऊषा देव ।	बाद पैदा हुई, निचार की ऊषा देवी ।
दङ्चले ज़ायाश लोटे शा ठोटे ।	बाद पैदा हुए, गूंगे और बहरे ।
काकचो ले दुश, बाग बान्ठी ।	बांट रहे हैं, भाग बांट (रहे हैं) ।
सुङ्रे मेशुरिस लोतिश—	सुङ्रा महेश्वर ने कहा—
दऊचे ! या दऊचे ! किस कग कग केरई ।	बहिन ! ऐ बहिन ! आपने बांट कर देना ।
ज्येष्टङ्स्या युङ्ज़ोच-की तोशिरई सुङ्रा देशङ्चो ।	बड़े वाले भाई, आप ने बैठना, सुङ्रा गांव में ।
दे लोन्मो बेरङ् सुङ्रे मेशुरिस लोतोश रिङ्ज़ो ! या रिङ्ज़ो ! नास्ता मानी ।	ऐसा कहते समय, सुङ्रा महेश्वर ने कहा—बहिन ! ऐ बहिन ! इतने से नहीं ।
युङ्ज़ो या युङ्ज़ो नास मानिमा सोरानो बोलन तारीं ।	भाई ! ऐ भाई ! इतने से न हो तो सराहन (आपका) बल रहा ।
माज़ो गाङ्स्या युङ्ज़ो किनो बोलन भावे खुनाङ्ो ।	बीच वाले भाई ! आप के बल में भावा परगना
रिङ्ज़ो या रिङ्ज़ो ! नास्ता मानी ।	बहिन ! ऐ बहिन ! इतने से नहीं !
दे लोन्नो बेरङ् रिङ्ज़ो चण्डिका स लोतिश-नास मानिमा स्पीति नालिङ्ो बोलन ।	ऐसा कहते समय बहिन चण्डिका ने कहा—इतने से नहीं होगा तो स्पीति नाला—बल से ।
कोनसङ्स्या युङ्ज़ोच-की तोशिरई पग्रामङ् खुनङा ।	छोटे वाले भाई ! आप बैठना चार गांव परगने में ।
रिङ्ज़ो ! या रिङ्ज़ो । नास्ता मानी ।	बहिन ! ऐ बहिन । इतने से नहीं ।

राजग्रामङ् खुनाङ्गों, बूग्रङ्ख	राजग्राम परगना, बुग्रा से
योङ् मेल्लमच रिङ् ।	नीचे रामणी से ऊपर ।
बाइचे ! या बाइचे ! की	बहिन ! ऐ बहिन । आप
तोशिरईं नल्चे देशङ्चो ।	बैठना निचार गांव में ।
हमगी शेती लाटेशा ठोटेश ?	वहां लगाएंगे गूंगे बहरों को ?
चगांव मेशुरिस लोतिश-अङ् लाटे	चगांव महेश्वर ने कहा-मेरी गूंगी
रिङ्जे च अङ रङ् ई तातोक ।	बहिन, मेरे (अपने) साथ रखूंगा ।
अङ् रङ् ही तातोक	मेरे साथ ही रखूंगा ।
शिर मुखङ्गों दङ् मङ्मङ् ।	सामने वाले मूहरे (मूर्ति) के पास छुपा कर ।
अनेनो तागिश, चण्डिकास	अपने को रखा चण्डिका
बेश्टोलो योठङ् ।	ने वेणी के नीचे ।
मङ् मङ् दुशा सता शूग्रालिङ	छुपा कर है सत शूग्रा (का परगना),
युमनो वेरङ् थ्योगिश,	पीछे के समय गई,
देवी चोण्डिका अनेनो तोशिमिग	देवी चण्डिका अपनी बैठने के
कोश्टाम्पी ।	(स्थान) कोठी (में) ।
अनेनो मङ् मङ् तागिश,	अपने को छुपा कर
सत शूग्रालिङ् ।	रखा सत शूग्रालिङ् ।

साङ् गीतङ् गीथङ्

यो नाले गोले गोना	
हाया वे होना ।	टेक
हाला लानते, हुना जादो	या तो गाएं-बनाएं, अभी
वेरङ् ।	इस समय—
कोय ता लानते भगवान	या तो बनाएं भगवान
जीव गीथङ् ।	जी का गीत ।
कागलीऊ अक्षर आ रङ्	कागज के अक्षर
इ ई ।	अ आ के साथ इ ई (से शुरू होते हैं) ।
छासू आखोर उमा रङ् सीरी ।	तिब्बती अक्षर के साथ ॐ श्री (से शुरू होते हैं)
गीथाच् आखोर हाया वे होना ।	गीत के अक्षर 'हाया वे होना' हैं ।
नीमचो रातयाङ्	पिछली रात (रात का अन्तिम पहर)
यान चो तोइयां ? प शिङ् ? प रग ?	जाग रहे हो ? ऐ (घर की) चार (कोनों की) लकड़ियो ? चार पत्थरो ?
यान चो तोइयां पाटो	जाग रहे हो (लकड़ी के) समतल
बोरोनिङ् ।	लरजो ?

यान चो तोइयां अशी
दीवारें ?
यान चो तोइयां उटूटी
टीनीङ् ?
यान चो तोइयां कोयले
गोष्टाङ्ग ?
यान चो तोइयां फालिङ्
दाङ् गोयने ?
दूपाङ् शेरइयं चाङ्कुम
मेलिङ्गो ।
यान चो तोइयां ताली
बन्डारी ?
हार शानेदा नीमचो
रात्याङ्गो ।
तो ता काईयं हूरछाङ्
चो शुदङ् ।
दो मा नीमा, श्रोई दम
तो माकू ।
दो मा नीमा श्रोई ठण्डा
पानी ।
साङ्चो लेग्याइयं
जाऊ कोनसाङ्से वाङ्चे ।
साङ्ग्योई लिक्याइयं
उटूटी टीनिङ्स वाइराङ् ।
आई ताले मा साङ्
आई ता आदो रातीङ् ।
पोद माइच कूकरी आदो
रात्याङ् वाशो ।
पोद से कुकुर नीमचो
रातीङ् वाशो ।
दाऊच ता लोतोश-
वाङ्चे ये कुन्ता कूपा ले
क्याईयं सेरे रोपाङ्गों गोने

जाग रहे हो एक ही (पेड़ की) लकड़ी
दरवाजे ?
जाग रही हो एक
ही लकड़ी की बनी खिड़की !
जाग रहे हो ? लाल
गाए (व) पशुओ के समूहो ?
जाग रही हो चूल्हे के पास
(सोई हुई) गृह-स्वामिनी ?
धूप लगाओ एक ही
पत्थर के बने चूल्हे में ?
जाग रहे हो ताली
रखने वाले भण्डारी ?
गला जम गया या बैठ
गया पिछली रात (अन्तिम पहर) में ।
अगर है तो लाओ शराब
की सुराही से शराब ।
वह यदि नहीं है, एक
सूटा तम्बाकू ।
वह यदि नहीं है एक (घूंट)
ठण्डा पानी । (ही दे दो) ।
रात खुल गई देखो
सब से छोटी वाली बहिन !
रात खुल गई देखो
एक लड़की की बनी खिड़की से बाहर ।
अभी नही खुली
अभी तो आधी रात है ।
बिना तमीज का मुर्गा आधी
रात को बोला ।
तमीज वाला मुर्गा पिछली
रात बोला ।
बड़ी बहिन ने कहा—
बहिन कुन्ती नीचे
देखना धान के खेतों वाले रोपे में लंगूर

बन्दारों बूले रङ् तीङ्ली।	बन्दर हैं पीठ पर गोद में (बच्चों के साथ)।
कुनतास्ता लोतोश-दाऊचे !	कुन्ती ने कहा-बहिन !
ये दाऊचे ! आङ् ता माय	ऐ बहिन ! मेरे तो नहीं हैं।
बूले रङ् तीङ् ली।	पीठ पर गोद में (बच्चे)।
कुनता वीग्योश कुटोन नानेऊ द्वा।	कुन्ती चली गई कुट्टनी नानी के पास।
कुनतयास लोतोश-या खूटोन नाने।	कुन्ती ने कहा-या कुट्टन नानी !
आङ् वोरङ् केइराइयं बूली रङ् तीङ्ली।	मुझे वर देना पीठ पर व गोद में (बच्चे)।
कूटोनस लोतोस-आङ् छूदू वोराङ्?	कूटनी ने कहा—मैं क्या वर दूं?
ग चूटोन नाने।	मैं कुट्टन नानी हूं।
वोरङ् ग्यामा रीशास	वर चाहिए तो ऋषि
मोमाऊ वाद् वीरईंय।	मामा के पास जाना।
कुनता वीग्योश रीखास खोनलीङो।	कुन्ती गई ऋषियों की सभा में।
कुनतास लोतोश-या रीशास	कुन्ती ने कहा-ऐ ऋषि
मोमा आङ् वोराङ् केराईय।	मामा, मुझे वर देना।
रीशास लोतोश-अङ् छदू वोरङ्	ऋषि ने कहा-मैं क्या वर दूं?
ग रीशास मोमा।	मैं ऋषि मामा हूं।
कुन्ताश लोतोश-किन	कुन्ती ने कहा—आप से
मानिमा नीतो हातु वोलास?	नहीं होगा तो किसकी शक्ति से (होगा?)
रीशास मामास लोतोश-कुन्ता देवी	ऋषि मामा ने कहा—कुन्ती देवी !
किनू वोरङ् ग्यामा बारह वर्षाङ्	आप को वर चाहिए तो बारह
सेवाङ् लानरईं।	वर्ष सेवा करो।
लाननू ले लानरेईं नीमचू	करना, सेवा पिछली रात
रातीङ् लानरेईं।	(अन्तिम पहर में) करना।
नीमचू रातीङ् गोवरो चुङ्गी।	पिछली रात (अन्तिम पहर) को गोबर उठाना।
ग्रन्ता जाली कोइले गोष्टाङ् पङ्	लाल गाएं के समूह के मूत्र में (के साथ)-
ती ली केरेईं नीमचू रातिङ्।	पानी भी लाना पिछली रात (ब्राह्ममुहूर्त) को।
नालङो ती प्याच मा लोङ्ग्यास तङ्।	नाले में परिन्दा नहीं लांघने तक।
कर मू ली केरेईं औलासा घोरो।	लाना और लाना कच्चे घड़े में।
घरन औसेरेईं पोक्शिशा गोरो।	पानी गिरने की आवाज से गिराना पक्के घड़े में।
लाजा माली औलासा गोरो।	इधर उधर कच्चे (पानी पड़ने लगा) घड़े से।

कुन्ताश लोतोश नालाङो	कुन्ती ने कहा—नाले
ती प्या !	के पानी के पक्षी !
अङ् बुद्धिङ् करेईं ।	मुझे बुद्धि दो ।
ती प्याचस लोतोश—	पक्षी ने कहा—मेरी
अङ् ठदू बुद्धि !	कैसी बुद्धि !
कि मानिम नीतो हाते बुद्धि !	'आप को नहीं होगा' कैसी बुद्धि !
ती प्याचस लोतोश—हेद ठदू बुद्धि !	पानी-परिन्दे ने कहा-और कैसी अकल !
लेसा लासी तीओ तीखमस	लीपना पानी की हरी काई से
लेसा लासी ।	लीपना ।
ऊ ली थोरेईं नीमचू	फूल भी उठाना, पिछली
रातिङ् ।	रात को ।
ऊ ली थोरेईं स्युई रङ्	फूल भी उठाना नौ
कुम्मोच ।	कण्ढों के बीच से ।
थुम्मू ली थोरेईं स्युई	उठाना भी उठाना नौ
किस्मो ऊ ।	किस्मों के फूल ।
कुन्ता विग्योश, स्युई	कुन्ती चली गई, नौ
रङों कुमो ।	कण्ढों के अन्दर ।
जाईनू थुस्को डुलचिद ऊ ।	वहां से नीचे डुलचिद् नाम का फूल ।
डुलचिदा ऊ हाला	डुलचिद फूल (तू) कैसे
नीमच् दाक्चिद !	पीछे रह गया !
हालास ता मानी ? निद्रङ्	किसी तरह नहीं । नीन्द
आलसी ।	और आलस से ।
अनता डुलचिद ऊ	उस डुलचिद फूल की
काथौरियो बासी ।	कस्तूरी की सुगन्ध (होती है) ।
काथौरियो बासी स्तुपचो	कस्तूरी की सुगन्ध, मुट्ठी में
थौमा स्तुपची बासी ते ।	उठाएं तो हथेली में बास हो जाती है ।
बोक्चो थौमा बुक्च	गठड़ी में उठाएं तो गठड़ी
बासयातो ।	में सुगन्ध हो जाती है ।
दुगे थुस्को श्वीग्यो जे विजे ।	उस से ऊपर लाल रंग का जे विजे (फूल) ।
दुगे थुस्को छोगे जे विजे ।	उस से ऊपर सफेद जे विजे ।
दुगे थुस्को खशतोटे शपा ऊ ।	उस से ऊपर छोटा शापा फूल ।
दुगे थुस्को पीगे जे विजे ।	उस से ऊपर पीला जे विजे ।
जाईनू थुस्को रुजा डोंगर ।	सब से ऊपर बूढ़ा डोंगर (फूल) ।

आनता रुज़ा	पलने आप तो बूढ़ा है (पर)
मूलू डाडिङ् स्या।	डण्ठल चाँदी का है।
जाङ् मोलिङ्स्या।	चोटी सोने की है।
आनता रुज़ा, काथीरियो वासी।	अपने आप तो बूढ़ा है, पर कस्तूरी की महक है।
डेकरासू लीयेस रुज़ा डोंगरे।	नवयुवकों के लिए बूढ़ा डोंगर (पहाड़ी कमल)
छेचानू लिए खशपोटो शप ऊ।	महिलाओं के लिए छोटे घास वाला फूल।
कुनता देवी दाई थोङ्	कुन्ती देवी फिर नीचे नीचे।
थोङ् बनमा सग्युई रङ् कुमोच।	नीचे नीचे आई कण्डों में से।
कुनता देवी बारह बोषाङ् सेवाङ् लानगिश।	कुन्ती ने बारह वर्ष तक सेवा की।
कुन्तास लोतोश—या रीशस मामा	कुन्ती ने कहा-हे ऋषि मामा !
सेवाङ् लानोक अङ् बोरङ् केरेईं।	सेवा हुई (की) मेरा वर दो।
बोरङ् लानग्योश बुले	वर दिया पीठ पर
रङ् सतङली।	और गोद में (बच्चे)।

कहा जाता है कि जब कुन्ती ने 12 तक तपस्या की तो उसे ऋषि ने कहा कि प्रातः काल मुर्गे की बाँग पर यदि वह उससे वर लेने आए तो उसकी इच्छा पूरी हो सकती है। मुर्गा बदतमीज़ था उसने आधी ही रात को बाँग दे दी, उसकी बड़ी बहिन उस समय जागती थी और यह जानती थी कि कुन्ती सन्तान प्राप्ति के लिए तपस्या कर रही है, वह चुपके से उठी और ऋषि के पास चली गई। ऋषि को जब उसने बताया कि उसने 12 वर्ष तक तपस्या की है तो उसने बिना अगला प्रश्न किए 60 कौरवों का वर दे दिया प्रातः काल जब कुन्ती की आंख खुली और मुर्गों ने बांग दी तो वह भी उठ कर ऋषि के पास गई। जब उसने वर मांगा तो ऋषि बड़ा क्रोधित हुआ और कहा कि बार बार वर नहीं मिलता। इस पर उसने सारी बात बताई। ऋषि को दया तो आई पर वह क्या कर सकता था, उसने उसे बताया कि उसे फिर तपस्या करनी पड़ेगी। 12 वर्ष दोबारा तपस्या करने के बाद वह जब वर लेने गई तो उसे ऋषि ने 5 पुत्रों का वर दिया। उसने इसका कारण पूछा तो पता चला कि वे 5 ही पुत्र 60 से कहीं अधिक बलशाली होंगे। इस प्रकार 5 पाण्डवों का जन्म हुआ।

वर्षा लाने का गीत

अरित अनकालङ् बीरोशे वङ्कार	इस ऋतु में अकाल (पड़ गया) और सब कुछ समाप्त (हो गया)।

काकङ्ो ची रङ्, काकचो दामङ् रङ् ।
मुंह में घास (के साथ) गर्दन में रस्सी के साथ ।

राय निज़ागो गोयने निश गुद हाथ जोड़यो ।
आठ बीस गृहणियां दोनों कर-हाथ जोड़ रही ।

फायुलो डोम्बर गोल्यन्निग हाचे ।
अपने क्षेत्र के देवता (अब हम तो) गल गए ।

जेस कुसता मानी गोल्यन्निग हाचे ।
ऐसा तो नहीं यह तो गलने का हो गया ।

अमृत कन्पा ताङ्म किन नामङ् नीतो ।
अमृत बरसाए तो आपका नाम होगा ।

किम नामङ् नीते नामङ् चाल्य तो ।
आपका नाम होगा, नाम चलेगा ।

यु रङों योथ् थु राङों थुद् ।
नीचे कण्डे से नीचे, ऊपर कण्डे से ऊपर ।

न्योट्यो डोम्बरसुङ् राय दयारी बेशो
दोनों देवता आठ दिन बैठे

दयोगलङ् कुमो ।
दयोगलङ् के अन्दर ।

दुरे शङ् ङयामा भगवती डोम्बर ।
धुरी पर देखे तो भगवती देवी ।

राय दयारो दोम्या राय निज़ागो ।
आठवें दिन को आठ बीस (160),

बोनयुङज निशगुद हाथ जोड़ेयो ।
भाई बन्धु दोनों कर-हाथ जोड़ रहे ।

जोल्यो जी माराज जेस्किस्ता मानी ।
जय हो माराज ! इस तरह तो नहीं ।

गोल्यन्निग हाचे ताङशिद मानी
गलने का हो गया (तेरा) अच्छा

ना ताङ्मा वाग्याग्या बीतोश ।
देखा हुआ नहीं है तो भाग कर जाएंगे ।

भागवातीश लोतोश-अङ् बोलास मानी
पार्वती ने कहा- मेरे बल से नहीं,

शिशेरिङों लोरिच ।
शिशेरिङ् को कहना ।

शिशेरि ङोस लोतोश-राय निज़ागो
शिशेरिङ् ने कहा आठ बीस

छाङा ! राय निचागो छाङा ।
के लड़के ! आठ बीस के

किना इथनीमा ।
लड़के ! आप का एक समूह हो ।

किना हथनीमा गोयनिङ्
आप का एक समूह (हो तो) वर्षा

गस बोक ।
मैं लाऊंगा ।

राए दयारो कोमो होवोन लानतोक ।
आठ दिन के अन्दर हवन यज्ञ करूंगा ।

की गोयनिंग कन्ना निङा खुशी लानतोई ।
आप वर्षा लाएं तो हम खुशी (से) मनाएंगे ।

राय दयारु दोम्या मूछल पानी छुटयाश ।
आठ दिन के बाद मूसलाधार वर्षा छूटी ।

दुनिया चो हैरान ।
संसार हैरान ।

होम्यू जोग लान्योश, दारयोश कोटङे ।
हवन, यज्ञ किया धार के कोटङ् पर ।

मी चेनी लोशो—हात डाम्बोरोस
लोगों सब ने कहा—किस देवता ने

काशिद ? रातिङ् ली लागे ।
लाया ? रात भी (वर्षा) हो गई ।

हात डोम्बर मा लोन शिशेरिङ्	किसी देवता ने नहीं, शिशेरिङ्
डोम्बोर ।	देवता ने ।
शिशेरिङ् डोम्बर—डोम्बर ता टेजी ।	शिशेरिङ् देवता-देवता तो तेज (है) ।
डोम्बोर ता टेजी पोरजा ता सुस्ती ।	देवता तो तेज है, प्रजा तो सुस्त है ।

शू कुव आदि में 'शू साम्यमू' का गीत

दुङ्गो लयो दङ्शङ् की बकिद	टेक । आप आ गए
ची रात्याङ् ले लाहे ।	तो रात भी दिन ।
रात्याङ् ले लाए, की व्यो किद	रात भी दिन, आपके जाने से
ची निङ्ले माजू शोईं ।	हमें भी बुरा लगा ।
निङ्ले माज शोईं किना दुर पोरजा ।	हमें भी बुरा लगा, आप की प्रजा को ।
की व्यो किद्ची लाहे ले रात्याङ् ।	आप के जाने से दिन भी रात ।
हेले जाईं बोदरेयो नारेसन ।	फिर भी आना बद्री नारायण !
जेहे लानरईं आजीयू आम्बोर	ऐसा ही करना अजर अमर
कागो रुद् सूस्तङ्	कव्वे के सींग निकलने तक,
रागो चम सूस्तङ् ।	पत्थर में ऊन उगने तक ।
जे हे लानरईं खाकङों गीथङ् ।	ऐसा ही करना, मुंह में गीत
काना रे ऊ रङ् ।	कान पर फूल के साथ ।
जे हे लाम्रा किन नामङ् नीतो ।	ऐसा ही करे तो आप का नाम होगा ।
किन नामङ् नीतो बोदरेयो नारेनस ।	आप का नाम होगा, बद्री नारायण ।
हेले जारईं सेरयानो युङ्जेच ।	फिर भी आना सेरयान (रोषी का देवता) का भाई ।

शोक गीत

गोली गो होना हाया वे होलोना ।	टेक ।
बयोच मा नेगयो ।	वह (किस रास्ते से) गया नहीं जानता ।
होले आशी दुवारे होले	किस रास्ते से गया,
बयोच, मा नेगयो ।	नहीं जानता ।
बच मा नेगयो होले	(पैदा होते) आते हुए भी
आशी दुवारे होले बच,	पता नहीं चला, किस रास्ते
मा नेगयो ।	से आया, नहीं जानता ।
बयोच मा नेगयो	जाते हुए नहीं जाना,
होले पशिङ् प रागस	चार लकड़ियां, चार पत्थर
होले बयोच, मा नेगयो ।	(ने भी) जाते हुए नहीं जाना ।

दई था गिनयाव होले	और मत सहना (ऐसा कार्य)
प शिङ्, प रागा, दई था गिनयाव ।	चार लकड़ी, चार पत्थर और मत सहना ।
दई था गिनयाव होले,	और मत सहना,
ओंराजासू चिट्ठी होले	यमराज की चिट्ठी,
दई था गिनयाव ।	और अब मत सहना ।
हाल मा नेगयोई होले	कैसे नहीं जाना ?
ई शुर थाङ्गाङ्गस होले	एक शुर (वृक्ष का प्रकार) के खम्भे !
हालमा ने गयोई !	कैसे नहीं जाना !
का था चालरा होले,	तू नहीं समझना,
आङ् देनची जेसकी होले,	मेरे पर ही ऐसा,
का था चालरा ।	तू नहीं समझना ।
हुना मानी, होले फाने	अब से नहीं, पहले
जुगाङ् मया, होले हुना मानी ।	युग से, अब से नहीं ।
फाने जूगे, होले सोता	पहले युग से, सत्य
जुगाङ्मया, होले फाने जुगे ।	युग में, पहले युग में ।
दई था गिनयाव होले,	और मत सहना,
ओंराजासू चिट्ठी होले	यमराज की चिट्ठी, और मत
दई था गिनयाव होले,	और मत सहना,
प शिङ् प रागा,	चार (कोनों की) लकड़ी, चार पत्थर,
दई था गिनयाव ।	और मत सहना !
दई था गिनयाव होले,	और मत सहना,
बाटो बोरोनिङ् होले,	वृक्ष के शहतीर,
दई था गिनयाव ।	और मत सहना ।
दई था गिनयाव होले,	और मत सहना,
आशी दुवारे होले,	लकड़ी के दरवाजे,
दई था गिनयाव ।	और मत सहना ।
हाल मा नेगयोन होले !	कैसे नहीं जाना !
बाटो बोरोनिङ् होले,	वृक्ष के शहतीर,
हालमा नेगयोन !	कैसे नहीं जाना !
दई था गिनयाव होले,	और मत सहना,
गुरु गोरशिदा होले,	सारे बराबर,
दई था गिनयाव ।	और मत सहना ।

दई था गिनयाव होले,	और मत सहना।
झोंराजासू चिट्ठी होले,	यमराज की चिट्ठी,
दई था गिनयाव।	और मत सहना

शोक गीत

रोन्वो तोइयां, खोल्चे दुवारे।	सुन रहे हैं, ड्योढ़ी और दरवाजे।
रोन्वो तोइयां, प शिङ् प रागा।	सुन रहे हैं, चार लकड़ियां, चार पत्थर।
रोन्वो तोइयां गोरा गोरशिरा।	सुन रहा है (रहे हैं), सारा मकान।
दई था गिने झोंराजाऊ चिट्ठी।	और न सहना यमराज की चिट्ठी।
किथा चालरई अङ् देनची	आप नहीं सोचना (कि)
जेस्कीय।	मेरे पर ही ऐसा।
ये बीते दो फाने जोगङ् मया।	यह बीत गया पहले युग में (अर्थात मरना जीना पहले युग में भी था)।
फाने जुगे रा शू किरपेनम्या।	पहले युग में जब 100 देवता निकले थे।
किथा चालरई अङ् देन की जेस्की।	आप नहीं सोचना मेरे पर ही ऐसा-
फिरने थुरे खाने गोइङा।	अब भगाना दूर आबे घराट को। (अर्थात् गर्दिश को ऐ घर अब दूर भगा देना ताकि दुबारा ऐसा न हो)।

जाङ्मोपती का गीत

गोली चो गोले हो होना हाया वे होना।	टेक।
दुङ्गो लेव दङ्शङ् बातेशो किलिम्बा।	रास्ते के किनारे किल्वा।
बातेशो किलिम्बा या छ जागा ले दुग्यो?	रास्ते के किनारे किल्वा, कैसी जगह है?
छ जागा ले दुग्योशा? फिनदरी चो फिनदरी, बरे जाकरयाङ्।	कैसी जगह है? चारों ओर, बान के घने जंगल।
फिनदरी चो फिनदरी बरे	चारों ओर बान के घने
जाकरयाङा माझोचो	जंगल बीच में
हङ्लेचो सोराङ्।	खुला तालाब।
माझो हङ्लेचो सोराङ्,	बीच में खुला तालाब,
माझो अंग्रेजो अस्पताल।	बीच अंग्रेजी अस्पताल।
माझो अंग्रेजो अस्पतालो,	बीच में अंग्रेजी अस्पताल में
या डाक्टर बाबू हात तोशा?	डाक्टर बाबू कौन है?

डाक्टर बाबू लोनमा या देसो	डॉक्टर बाबू कहे तो देश (मैदान)
बौना युङ्जान ।	के भाई बन्धु ।
देसो सेठो छाङा ।	मैदान के सेठ के लड़के ।
देसो सेठो छाङों या,	देश के सेठ के लड़के का,
नामाङ् छ ले दुग्योश ?	नाम क्या है ?
नामङ् ताले लोनमा या चुनीलाल	नाम कहे तो चुनी लाल
चुनी लाल डाक्टरो या	चुनी लाल डाक्टर का
गुर वाईच हात दुग्योश ?	मित्र कौन है ?
गुरवाई लोशिमा,	मित्र कहे तो,
या रोहड़ू डेकराचोन ।	रोहड़ू का युवक—
रोहड़ू डेकराचोना हातो व छाङा ?	रोहड़ू के युवक, किसके के लड़के ?
छाङा लोशिमा या रोहड़ू	लड़का कहे तो रोहड़ू के
लाम्बरो छाङा ।	लम्बरदार का लड़का ।
रोहड़ू लाम्बरो छाङों या	रोहड़ू के लम्बरदार के लड़के का
नामङ् छ ले दुग्योश ?	नाम क्या है ?
नामङ् लोशिमा कम्पोटर जोर सिंह ।	नाम कहे तो कम्पाऊण्डर जोहर सिंह ।
दो न्योटाटाङ् गुरवाई या	वे दोनों मित्र
माजो अंग्रेजी अस्पतालो ।	अंग्रेजी अस्पताल के बीच ।
माजो अंग्रेजो अस्पतालो,	अंग्रेजी अस्पताल के बीच,
या कुर्सी चो थोरिङ् तोशिस ।	कुर्सी के ऊपर बैठे हुए ।
कुर्सी चो थोरिङ् तोशिस,	कुर्सी पर बैठे हुए,
बाताङों राऊवास लानो ।	बात की सलाह कर रहे ।
बाताङों राऊवास लानो,	बात की सलाह कर रहे ।
या बुल्कीचा सिग्रेट तुङों ।	धुआं उड़ाते सिग्रेट पी रहे ।
दो न्योटाङा गुरवाई यो,	उन जोड़ी मित्रों की,
कोनिच हाता दुग्योश ?	प्रेमिका कौन थी ?
कोनिच लोशिमा या	प्रेमिका कहे तो
क्यूल्वा छेचाचोन ।	किल्बा की युवती—
या नामङ् छ दुग्योश ?	नाम क्या था ?
नामङ् ता लोनमा या	नाम कहे तो
बनठिना जाङ्मो पति ।	सुन्दरी जाङ्मोपति ।
बनठिना जाङ्मो पोतीवा	सुन्दरी जाङ्मोमति की सखी
वायोच हाता दुग्योश ?	कौन थी ?

वायोचा लोशिमा खोना चो
यना सारयाङ् ।
खोना चो यना सारयङ्
वाङ्मो जाही ।
वाङ्मो जाहीवा
नामङ् छ दुग्योशा ।
नामङ् लोशिमा या बनठिना कृष्णी ।
बनठिना जाङ्मोपोती,
या सोमपोरो ले बेरङ् ।
सोमपोरो ले बेरङ्,
खोना चो यना सारयङ् ।
खोना चो यना सारयाङा,
वाङ्मो चो दुवारे,
ओपाङ् खाताङ्चो—
ओपाङ् खाताङ्चो या
वायोच ! वायोच ! कूदो ।
वायोच वायोच कूदो
या वाइरिङ् मा दोइयां, वायोच !
दे लोनमों ले बेरङ्
बनठिन कृष्णी—
बनठिना कृष्णी या,
चोव सारशिसा वाइरिङ् ।
छ रिङों दुइयां वायोच ?
छह रिङों दुइयां वायोचा ?
हम वीमो दुइयां वायोच !
दे लोनमो ले बेरङ् ।
जाङ्मो पोतीस लोतोश—
जाङ्मो पोतिस लोतोशा—
वायोच ये ले वायोच !
वायोचो ये ले वायोचा ।
हाम वीमो ले मानी ।
हम बीमो ले मानी,
या पाइयां कण्डे ले बीते ।

सखी कहे तो मैदान के
निचली ओर की जगह ।
मैदान के निचली ओर की जगह के
वाङ्मो खानदान की लड़की—
वाङ्मो खानदान की लड़की
का नाम क्या है ?
नाम कहे तो सुन्दरी कृष्णी ।
सुन्दरी जाङ्मोपति,
प्रातः के समय ।
प्रातः के समय
मैदान के निचले ओर के स्थान—
मैदान के निचले स्थान की ओर
वाङ्मों के द्वार पर
नीचे आँगन में—
नीचे आँगन में,
सहेली ! सहेली ! पुकार रही ।
सहेली ! सहेली ! पुकार रही,
बाहर नहीं निकलेगी, सहेली !
उतनी देर में,
सुन्दरी कृष्णी—
सुन्दरी कृष्णी,
झट उठ कर बाहर—
क्या कह रही है सहेली ?
क्या कह रही है सहेली ?
कहां जाना है सहेली ।
उतनी देर में,
जाङ्मो पति ने कहा—
जाङ्मोपति ने कहा—
सहेली ! ऐ सहेली !
सहेली ! ऐ सहेली !
कहीं जाना नहीं ।
कहीं जाना नहीं,
चलो कण्डे जाएं !

फई कण्ढे ले बीते,	चलो कण्ढे जाएं,
या कण्डे जीमी चो पोरी ।	कण्ढे की ज़मीन की देख भाल।
साथी जीमी व पोरी या,	साथ ही ज़मीन की देखभाल,
ब्रासो चो ले शामो।	फाफरे में कांटे छांटें।
ब्रासो चो ले शामो या,	फाफरे के कांटे छांटें,
स्कानो श्ररा लानमो !	साग में गुड़ाई करें।
कृष्णी सा लोतोश-बायोचे	कृष्णी ने कहा—सखी !
यो ले बायोच !	ऐ सखी !
बायोच ये ले बायोचा !	सहेली ! ऐ सहेली !
फई बीतेगे रिङ्तोईं।	ऐसे ही फिज़ूल जाना कहती है।
फई बीतेगे रिङ्तोईं,	ऐसे ही जाना कहती है,
या फुल गास छ ले फीते ?	(या) खर्च कपड़ा क्या ले जाएंगे ?
जाङ्मो पोतीस लोतोश-	जाङ्मोपति ने कहा—
फुल गास ताले फीते,	खर्च कपड़ा तो ले जाएंगे,
फुल गास ताले फीते,	खर्च कपड़ा तो ले जाएंगे,
या नयोरडिम रोमयाशिद श्रोलंगो।	न्योरडिम कण्ढे का पैदा किया हुआ श्रोगला।
बनठिना जाङ्मोपोतीस—	सुन्दरी जाङ्मोपति—
या कण्ढे चो शेनाङ्चो,	कण्ढे की दोघरी में,
कण्ढे चो शेनाङ्चो या,	कण्ढे की दोघरी में,
बीमार पोरयाचो।	बीमार पड़ गई।
कण्ढे चो शेनाङ्चो,	कण्ढे की दोघरी में,
या शेलायनो, इल्याज लानग्यो।	दवाई, इलाज किया।
शेलयानो इल्याज, लानो या	दवाई, इलाज किया
चुनी लाला डाक्टरस।	चुनी लाल डाक्टर ने।
बनठिना जाङ्मोपोतिबा,	सुन्दरी जाङ्मोपति का
काण्ढे चो शेन्नङ्	कण्ढे की दोघरी
अस्पताल।	अस्पताल।
बनठिना जाङ्मोपोतीबा	सुन्दरी जाङ्मोपति का,
बीमारीचो बेराङ् चुनीलाल।	बीमारी के समय चुनीलाल।
बीमारी चो बेराङ् चुनीलाल,	बीमारी के समय चुनीलाल,
चुनी लाल डाक्टर।	चुनी लाल डाक्टर।
बीमारी चो बेराङ् चुनीलाल	बीमारी के समय चुनी लाल,
या आरामी चो बेराङ् नरगूसेन।	आराम के समय नरगूसेन।

चुनीलाल स लोतोश—	चुनी लाल ने कहा—
जाङमोचो कोनिच वास्क्याङ्।	जाङमो की मित्रता के बजाय—
जाङमोच देसक कोनिच	जाङमोपति की तरह की प्रेमिका
वास्क्याङा वीन कोनिचा तोदे।	के बजाय बिना प्रेम (ही सही)
चुनी लाल स लोतोशा—	चुनी लाल ने कहा—
जाङमोपोतीच छह शेखी ?	जाङमोपति का क्या घमण्ड,
या बालेच वाङस्ताङ	सिर से पांव
आङ् रानशिद ।	तक मेरा दिया हुआ।
वालेच बाङे स्ताङ् आङ्	सिर से पांव तक मेरा
रानशिदा अङ् रानशिद	दिया हुआ, मेरी दी हुई
सोनेचो कान्गी।	सोने की कंघी।
आङ् रानशिद सोने चो कंघी,	मेरी दी हुई सोने की कन्घी,
या आङ् रानशिद	मेरी दी हुई
मुकमुइलो चोली।	मखमल की चोली।
आङ् रानशिद मुकमुइलो चोली,	मेरी दी हुई मखमल की चोली,
या आङ् रानशिद सोनेचो कांटा।	मेरा दिया हुआ सोने का कांटा।
आङ् रानशिद सोने चो कान्टा,	मेरा दिया हुआ सोने का कांटा,
या अङ् रानशिद	मेरे दिए हुए
सोनेचो तरमोले।	सोने के तरमोले (हार)।
नो जाङमो चो छह शेखी ?	इस जाङमो की क्या शेखी ?
या लाराङों शाङ् श्यामा,	शरीर में देखे तो,
लाराङों शाङ् श्यामा या	शरीर में देखे,
अङ् रानशिद टोपरु से दोरी।	मेरा दिया खमरुदार दोहडू।
बनठिना जाङमोपोती	सुन्दरी जाङमोपति
इमान माइचा राण्डी।	बिना ईमान की औरत—
इमान माश्चा राण्डी या	बिना ईमान की औरत,
बेमानी चा तोचिग्योश।	बेइमान थी।

गोरखा बोईरस का गीत

गोली गो होना, हाया बे होना।	टेक।
दुङगो लयो दङ् शङ् ठण्डा सोरानङ	ठण्डे सराहन में।
जामशो ले दुशा तिश खुनाङों छाङा।	इकट्ठे हो रहे हैं, सात परगनों के लड़के—

जामशीम जामशीमग्योश
बोली छ शोते ?
बोली ता शेते, माइयं
जामयाते ।
माइयस ता लोतोश—
तीश खुनाङ्ों छाङा !
छुह ले जाम्या जेथी ?
तीश खुनाङो छाङा निश
गुद हाथ जोरया ।
जी माइय ! देवी ! फोई ताले
मानी । वोईरीस बम्र लोशो,
गोरखा वोइरीस ।
बालतोन थोम्यारइयं ।
बालतोन राजासू ।
माइयस ता लोतोश-अङ्
वोलास मानी । बालतोन
थोम्यामू ।
वोइरीस बम्र लोशो—
लूहरी जाङ् छामोस ।
वकील हाले दो, लूहरी
जाङ् छामोस ।
बकील मा साशो,
गऊ माता मारशो ।
तीश खुनाङों छाङा दई
रिङ् रिङ् बनमा,
सुङरेओ देशाङों ।
तीश खुनाङ्स लोतोश-
तोइयं छ मइयं शूओ चारास ?
शुम चू शुन्यारा डोम्बोर
बोरम्यामू ।
डोम्बोर बोरब्यामू, सुङ्रेयो
मेशूरो जोलाङ् कोठीवदेन ।
सोम्पोरो वेराङ् डोम्बोर

इकट्ठे होने को इकट्ठे तो हो गए,
बात क्या लगाएं ?
बात को रखें, माता
(भगवती) को उठाएं ।
माता (भगवती) ने कहा—
सात परगने के लोगो !
(मुझे) क्यों उठाया ?
सात परगनों के लड़कों (लोगों)
ने दोनों कर—हाथ जोड़ कर—
जी माई ! भगवती ! व्यर्थ
में नहीं । वैरी आ गया कहते हैं,
गोरखा वैरी ।
नाबालिगपन सम्भालना,
नाबलिगपन राजा का ।
माता ने कहा—मेरे
बल से नहीं । नाबालिगपन
सम्भालने के लिए ।
शत्रु आ गया कहते हैं,
लूहरी में सोने के (सतलुज) पुल पर।
दूत भेजा, लूहरी के
सतलुज के पुल से ।
दूत को नहीं मारना चाहिए,
गऊ माता गिनते हैं ।
सात परगनों के लोग वहां से
ऊपर ऊपर हुए
सुङ्गरा गांव में ।
सात परगनों (के लोगों) ने कहा—
है कि नहीं ? देवता के प्रबन्धक !
तीन आवाजें सुना दो देवता को,
बाहर निकालना है ।
देवता को निकालना है, सुङरा
महेशुर को एक जोड़ी कोठी (मन्दिर) पर ।
प्रातः के समय देवता (को)

बोरध्याग्योश ।	निकाला गया।
डोम्बोरस लोतोश-जो	देवता ने कहा—इस
माजो लाहे, हात पोरजास	दिन के बीच, किस प्रजा
सारचेङ् ?	ने उठाया ?
दे लोन्मो वेराङ् तीश खुनाङों	इतनी देर में सात परगनों के
छाङा निश गुद हाथ जोड़या हो ।	लोगों ने अपने दोनों कर—हाथ जोड़े ।
जे डोम्बर शङ्करास,	जय देवता शङ्कर,
फोई ता लेमानी बोइरीस	व्यर्थ तो नहीं, शत्रु
ब ग्र लोशो ।	ग्रा गया, कहते हैं ।
बोइरीस ब ग्र लोशो,	शत्रु ग्रा गया कहते हैं,
बालतोन थोम्यारइयं ।	नाबालिग (राजा को) थामना ।
डाम्बोरिस लोतोश-ग्रङ् बोलास	देवता ने कहा—मेरे बल
मानी, बालतोन राजास	से नहीं, नाबालिगपन
थोम्यामू ।	राजा का सम्भालना ।
की भाबेयो फ्योरइयं	ग्राप भाबा ले जाग्रो,
बालतोन राजासू ।	ना बालिग राजा को ।
तीश खुनाङो छाङा,	सात परगने के लड़के,
दई रिङ् रिङ् बनमा—	वहां से ऊपर ऊपर जाए तो—
भाबेयो खोनाङो ग्रामङ् देशङों ।	भावा परगने में कटगाँव गाँव में ।
तोइयं छ माइयं शूग्रो चारस !	है या नहीं ? देवता का प्रबन्धक
शुम चू मुन्यारइयं, डोम्बोर	तीन बार सुनाना, देवता को
वाइरिङ् बोरध्याइयं ।	बाहर निकालना है ।
सोमपोरे वेरङ् डोम्बोर	प्रातः के समय देवता को
बोरध्याग्योश, बाइरे सन्थाङों ।	निकाला गया, बाहर सन्थङ में ।
डोम्बोरस लोतोश—छू लो	देवता ने कहा—(मुझ) क्यों
जान्या जेइयं ?	उठाया ?
दे लोन्मो वेरङ् तीश खुनाङों	उतनी देर में सात परगनों के
छाङा निश गुद हाथ	लड़के अपने दोनों कर—हाथ
जोड़याहो ।	जोड़ रहे ।
जे डोम्बोर शङकरास	जय शंकर !
फोई ताले मानी ।	व्यर्थ में नहीं ।
बोइरीस बग्र लोशो	दुश्मन ग्रा गया कहते हैं,
बालतोन राजास थोम्यारइयं ?	नाबालिग राजा को सम्भालना ।

अङ् बोलास मानी,
बल तोन थोम्यामू ।
की चगाँव फ्यो रईयं,
चगाँव देशाङों ।
तीश खुनाङों छाङा,
दई लो लो बनमा ।
रोशोले खागोशू पाटी
छेली ।
दई शोङ् शोङ् बनमा,
चगाँव देशङों ।
चगाँव देशङों द्रमल्यों
सन्थाङों ।
तीश खुनाङ्स लोतोश—
तोइयं छ माइयं ! शूओ चारस !
शुम चू शुन्यारइयं
डोम्बर बाइरिङ् बोरछ्याइयं ।
सोमपोरो बेरङ् डोम्बोर
बोरछ्याग्योश ।
बाइरे सन्थाङों परवेशी लानो ।
डोम्बोरस लोतोश-
छूह लो जाम्या जेइयं ।
दे लोन्मो बरङ् तीश
खुनाङों छाङा निश गुद
हाथ जोड़याहो ।
फोइले मानी, बोइरीस व ह
लोशो, गोरखा बोइरीस ।
बालतोन थोम्यारईयं ।
अङ् बोलास मानी, बालतोन
थोम्यामू ।
किन बोलास माइमा नीतो
हातू बोलास ?
बालतोन थोम्याग्योश
चगाँव मेशुरस ।
थोम्याम ता थोम्या

मेरे बल से नहीं,
नाबालिग को सम्भालना ।
आप चगाँव ले जाना,
चगाँव गाँव में ।
सात परगनों के लड़के,
वहां से इधर उधर आए तो ।
रुशनङ् की घाटी में भूरे रंग
की छेली की बलि (दी गई) ।
वहां से नीचे नीचे आए तो,
चगाँव गाँव में ।
चगाँव गाँव में दो मन्दिरों
के बीच आंगन में ।
सात परगने (के लोगों) ने कहा—
हो कि नहीं ? देवता के प्रबन्धक !
तीन आवाजें सुनाना,
देवता को बाहर निकालना है ।
प्रातः के समय देवता को
बाहर निकाला ।
बाहर के सन्थङ् में प्रवेश किया ।
देवता ने कहा—
क्यों उठाया ?
ऐसा बोलते समय सात
परगने के लड़के दोनों कर—
हाथ जोड़ रहे ।
व्यर्थ नहीं, बैरी आया कहते
हैं, गोरखा बैरी ।
नाबालिग (राजा को) सम्भालना ।
मेरे बल से नहीं, नाबालिग का
सम्भालना ।
आप बल से नहीं तो,
किस के बल से ?
नाबालिग (राजा) सम्भाल लिया ।
चगाँव मेशुर ने ।
सम्भालने को सम्भाला,

वासो हम रानते ?	बास कहां करें ?
मेशुरस लोतोश-बासो	महेशुर ने कहा–निवास
ता लोन्मा, सीलाचो याशङ्	कहे तो, नमीदार याशङ् में
दामेसू गोरे ।	दामेस के घर में ।
वासो ता रानोई, खज़ाना हम रानते ?	निवास तो दिया, खज़ाना कहां रखें ?
खज़ाना ता रानतोक,	खज़ाना तो दूगा,
माजो दरमालिङ् बाटू लो गोरे ।	धर्मालिङ् के बीच, भाट के घर में ।
खज़ाना ता रानोइयं,	खज़ाना तो दे दिया,
शिरकोट हाम रानते ?	अन्दर की कोठी (देवी) कहां दें ?
शिरकोट ता रानते सोखानू गोरे ।	भगवती तो दें, सोखान के घर में ।
शिरकोट तो रानोइयं,	शिरकोट तो दिया,
घोड़ा हाम रानते ?	घोड़ा कहां दें ?
घोड़ा ता रानतोक,	घोड़ा (अस्तबल) तो दें
दोरो चामरालिङ् छारो	किनारे चमरालिङ् में छरो
चामाङों गोरे ।	चामङ् के घर पर ।
बदाया लोशो, गोरखा	आ गया, कहते हैं, गोरखा
बोइरीस । गोखरा बोइरीम	वैरी । गोरखा वैरी छोल्तू
छोल्तू वाल्याङों ।	के रेत वाले स्थान पर ।
जाङ् कोचङ् क्यामा	इधर की ओर देखा,
चर्गांव मेशुरा नेस माली	चर्गांव महेशुर (को) इधर
हालादे ।	उधर घूम रहा है ।
फोचू देन थोगशिस	गधे पर बैठा कर उड़ा
ठायाया लोशो, चर्गांव मेशुरस ।	दिया कहते हैं, चर्गांव महेशुर ने ।
ठायास (छायास) लोशो	उड़ा दिया, कहते हैं,
दूलिङ् खाडस कोमो ।	दूलिङ खड्ड के अन्दर ।

दीवालू गोथङ्—साङ्ला

काशो दीवाल ता तोरो डु माइक्यो ?	हमारा दीवाल आज ही क्यों नहीं ?
तोरो नीमा ता काली बुखरी बाजो,	आज होता तो काली बुखरी बजती,
ढोली डमाकी बाजो ।	ढोल आदि बजाए जाते ।
तोरो नीमा ता शुरकी शुदुङ् तुङो ।	आज होता तो मदिरा पान करते ।
बाना उपचो यो दूली निरवोनिङ् ।	अजगर (उत्पन्न हुआ) नीचे निरमण्ड से ।
जावना सुनचे चिग्योश, ग रिङ्	(अजगर) ने जाना सोचे तो, मैं ऊपर
रिङ् बीतोक ।	ऊपर जाऊंगा ।

रिङ् रिङ् बन्ना खोना रामपुरा ।	ऊपर ऊपर आते हुए मैदानी रामपुर ।
खोना रामपुर येबा बजारिस लो माजो बजारो ।	मैदानी रामपुर निचले बाजार से बीच बाजार में ।
माजो बजारो मामाई देवता ।	बीच बाजार महामाई देवी ।
सुनचो निबजारिस महा माई देवता ।	इच्छा पूरी करे महामाई देवी ।
कुल्डुङ् दोशीग्योश माजो बजारो ।	कुण्डल लगाया बीच बाजार में ।
रिङ् रिङ् बन्ना ठण्डेयो सोरानङ्	ऊपर ऊपर आए तो ठण्डा सराहन में ।
रिङ् कोचङ् ख्यामा, जोल्यो शिरकोटे ।	ऊपर की ओर देखे तो, दो किले ।
शिरकोटू बाले घुघुती पयाच् ।	किलों पर पक्षी के रूप में कलश ।
जाखङ् शिरकोटो लांगूरा बीर ।	दाहिने किले में लांगूरा बीर ।
कुलडुङ् दोशीग्योश ठण्डेयो सोरानङ्	कुण्डल लगाया ठण्डे सराहन में ।
किस मा गीनयान लांगूरा बीर ।	आप को नहीं काटा लांगूरा बीर ।
रिङ् रिङ् बन्ना वाङ् तू ना जाङ्तू ।	ऊपर ऊपर आए वाङ्तू सुनहरे में ।
रिङ् रिङ् बन्ना किल्बा बालिङ्चो ।	ऊपर ऊपर आए तो किल्बा के रेत में ।
जावना सुनचेसग्यो, जङ्स बीगा ठ नङ्स बीग ?	जाना सोचे तो, इधर जाऊं या परे जाऊं ?
जावना सुनचेसग्यो, जङ्सी न डेन ।	जाना सोचा, इधर से ऊपर ।
रिङ् रिङ् बन्ना कोटङ् पा टाङों ।	ऊपर ऊपर आए तो कोटङ् (कामरू) पाटङ् की चढ़ाई पर ।
युनम मा हानग्यो कोटङ् पाटङ्ो ।	चढ़ नहीं पाया कामरू की चढ़ाई ।
किस मा गीनयान जी बद्री नायायण ।	आप को नहीं खाया बद्री नारायण ।
युनम मा हानन युगसी लो साङ्ला ।	चढ़ नहीं पाकर नीचे साङ्ला ।
युगसी लो सांगला येन देन जोलारिङ् ।	नीचे से साङ्ला परे से ऊपर जोलारिङ् में ।
दोम्या वेशेग्योश पानचो जेठेरी ।	वहां बनाए गए पांच कारदार ।
दोम्या वेशेग्योश सोङान खोर्मलिङ् ।	फिर बनाई गई पन्द्रह की सभा ।
दोम्या वेशेग्योश बीरु मोना	उस समय बीरु (खानदान) को बसाया गया ।
दोम्या वेशेग्योश गेगू लेलान ।	फिर गेगू लेलान (वंश) को बसाया गया ।
दोम्या वेशेग्योश रीतोच डोमङ् ।	फिर बसाया गया रीतोच नामक लुहार को ।
दोम्या वेशेग्योश सेमट्या चामङ् ।	फिर बसाया गया सेमट्या चमार को ।
आने गुप्ती जी बैरङ् नागस ।	उस समय गुप्त रहे बैरङ् नागस ।
आने गुप्ती जोल्यासुङ् प्रोप्ती ।	उस समय गुप्त, दो जोल्या प्रकट हुए ।
जोल्या प्रोप्ती येन देन जोलारिङ् ।	जोल्या प्रकट हुए, यहां से ऊपर जोलारिङ् ।
बाना काटो येन देन जोलारिङ् ।	अजगर (बाणा) काट दिया, यहां से परे जोलारिङ् मे ।

परिशिष्ट 2

लोक कथाएं

कुत्त जैसे आदमी की कथा

'कुईचगी मीच कोथा'

इद तिश वायामङो तोचो। दोगोनो सेरिङ् लोदो रिम दोग्यो। दो ती शेतुग्यो। ती शेदेरङ् ती डाक्यो। दोक चेईको जेष्टाङ् सा ब्योग्यो। दोक ती उर देन खीमा इद् कुईच मीच ती उरो बून ब्यो-क्यो। दोक दो छेस्मीस लोक्यो-ती छेरयाओ कुईच मीच! कुईचमीच लोक्यो-अङ् दोर बन्ना ती छेरयातोक, माय मा बन्ना ती माछेरयाक दो छेसमीस लोक्यो! कान दोर ता ठह् गे माछा-याग्यो दोक दे लो लो छेच्मी ब्योग्यो।

एक सात बहिन भाई थे। उन का एक सेरिङ् कहने वाला खेत था। वे (उसमें) पानी लगाते थे। पानी लगाते समय पानी खत्म हो गया। तब सब से बड़ी वाली (बहिन) गई। तब पानी की कूहल पर देखे तो एक कुत्ता आदमी पानी कूहल में लेटा हुआ (था)। तब उससे औरत ने कहा—पानी छोड़, कुत्ता आदमी! कुत्ते आदमी ने कहा—मेरे को आयेगी (तो) पानी छोडूंगा, नहीं आएगी, पानी नहीं छोडूंगा। उस स्त्री ने कहा-तेरे को तो क्या, न छोड़? तब ऐसा कह स्त्री चली गई।

हेदे चेई केसी मावच, लोक्यो। जोईको कोनसङ्सेस लोक्यो—कुईच मीच! अङ-सेरी रोपाङ् चेई छारो दू। दोक कुईचगी मींच लोक्यो-अङ् दोर पोताना दोक चेई को कोनसङ् से 'बतोक' लोक्यों। दोक कुईच मीचस ती छेराया-ग्यो। दोक कुईच मीचस आनु किमो फ्योचयो। दोक दुआरङो दाङ्च लोक्यो-आऊ! आऊ! तेम कराक। आऊसं पङ् कुईच मीचस दयारो ठगायाच दुग्यो।

और सब ने नहीं जाएंगे, कहा। सबसे छोटी वाली ने कहा-कुत्ता आदमी! मेरा सेरिङ् खेत सब सूख रहा है। तब कुत्ता जैसा आदमी ने कहा—मेरे को आएगी? तब सबसे छोटी वाली ने 'आऊंगी' कहा पानीछोड़ दिया। तब कुत्ते जैसे आदमी ने पानी छोड़ दिया। अपने को फिर कुत्ते जैसा आदमी (ने उसको) अपने घर ले गया। तब दरवाजे के पास से कहा—मां! मां! बहू ले आया। माता को कुत्ता आदमी ने रोज ठगाता था।

दोक आऊसेस लोक्यो-कान ख सु रिङां सी थुक करा। कुईचगी मीचस दो होदोसी थुग फ्यो ग्यो।

तब मां ने कहा—तेरा शौच लगाने वाले खेत से ही ऊपर ले आ। कुत्ते जैसा आदमी ने उसी से ऊपर ले गया।

आऊसेस नीच ग्वीमा तेम ताङ् ताङ् खुशीश शीग्यो। दोक तेमसे पङ् चानाङ्। गासो चेई रानग्यो। नीम इम्यां अनुतेम सेयो दौऊच रङ् गासो चीमो क्योग्यो। दोक गासो चीरङ् दऊचेस लोक्यो-गासो बोदलयाशे। दोकसुङ् आनोक गासो बोदल्याशीग्यो। दोक ती गुथुओ तीशार ग शार खीशीग्यो। तीयो खीशीरङ् दौचेस बाइचेस पङ् साक्यो। दोक दोऊचसेस्या कुईचगी मीचो किमो क्योग्यो। दोक निपे दोस्या अनु कुईचगी मीच रङ् तोचो।

कुईचगी मीच इद ती छुन्पा मी दुग्यो। होदो पङ् ई पयाचस (होदो शीजे छेचमी प्याचो तवारो ताचो) ती छुन्पा पङ् लोच दुग्यो-ती कुन्पा। ती छुन्पा। अङ्कुईच मीचो ईचे लोरा। दोक होदो ती छुन्पा किमो क्यो बातङ् लोश्नो बोशिग्यो। दोक नाव्या प्याचस ईग्यो-लोना-मालोम। दोक ती छुन्पास बोशिग्याक लोक्यो। पयाचस दोक हे ले कानाङों राग छू छू फ्योरा लोक्यो। दोक ईचे लोरा। दोक शुपा ती छुन्पा किमो क्योग्यो। गुदो जीशिमो कुईचगी मीनो राने-रच कानाङोच रग दोक्यो। दोक ती छुन्प लोक्यो-पयाचस ईचे रङों। देराङ् कुईचगी मीच नीमचो नारसेस शक लान लान लोक्यो- कानु-पयाचस ईचे रङो मानिया। दो ती छुन्पास लोक्यो-दी माई रङो। दोक नाव्या कुईचगीमीच रङ् ती छुन्पा। निथकी ती शेनक रिमो क्योग्यो कुईचगी मीच ई बोठङों योठङ् माङाशिस तोचो दोक हे ले पयाचस लोक्यो-कईचगीमीच ईचे लोश्ना।

(वह वासुकी नाग था)। माँ बहू देखकर बहुत खुशी हुई। तब बहू को जेवर कपड़े सब दिए। बाद में एक दिन अपनी बहू वाली बड़ी बहिन के साथ कपड़े धोने गई। तब कपड़े धोते समय बड़ी बहिन ने कहा-कपड़े बदलेगें। वे दो (ने) अपने कपड़े बदल लिए। तब पानी के गुथुग (कपड़े धोने की लकड़ी) में पानी में, सुन्दर तू या मैं सुन्दर देखा। पानी में देखते समय बड़ी बहिन ने छोटी बहिन को मारा। तब बड़ी बहिन कुत्ते आदमी को उसके घर गई। तब उसके बाद (उसने) वह अपने कुत्ते जैसे आदमी के साथ थी।

कुत्ते आदमी की एक पानी लगाने वाली आदमी (नौकरानी) थी। उसको एक चिड़िया ने (वह मरने वाली औरत चिड़िया के अवतार में थी) पानी की नौकरानी को कहती थी पानी की नौकरानी ! मेरे कुत्ते आदमी को राजी खुशी कहना। तब वह पानी की नौकरानी घर जा कर बात कहना भूल गई। तब दूसरे दिन चिड़िया ने पूछा-कहा नहीं कहा। तब पानी की नौकरानी ने 'भूल गई' कहा। चिड़िया ने तब कान में पत्थर बांध कर ले जाना कहा। तब शाम को पानी की नौकरानी घर गई। हाथ धोने के समय कुत्ते आदमी को पत्थर गिर गया। तब पानी की नौकरानी ने कहा—एक चिड़िया (ने) राजी खुशी कहना कहा—तब कुत्ते आदमी की पीछे वाली औरत ने शक करके कहा—तुझे चिड़िया ने राजी खुशी कहना नहीं कहा। तब पानी की नौकरानी ने कहा-सच ही कह रही हूं। तब दूसरे दिन कुत्ते जैसा आदमी और पानी की नौकरानी दाना पानी लगाने खेत में गये। कुत्ते जैसा आदमी एक पेड़ के नीचे छुपा हुआ था। तब फिर भी चिड़िया ने कहा-कुत्ते

दोक ती छुन्पास लोक्यो-माथास दुक युगी जीरा। माथस झार्की युगी जीरा ख बारचे (युगी) जीरा। बारचे बदेरङ् कुईचगी मीचस दो पयाचो चुमस्यो। चुम चुम प्याचो ढाक्चा ईग्यो। पयाच लोक्यो-ग पहले कान दोर तो चोक। अङ्गों दौचस गासो ची रङ् साचिस, ग प्याचो तबारो पक। दौऊचास्या कान दोर बूग्र। दोक कुईचगी मीचस लोक्या- का मी हाला हाचान? दोक पयाचस लोक्यो-ग्रालास पाठुचो तिश दयार बन्द ताझिरा। दोक ग मी हाचोक। तिस दयारोस्ताङ माखीग्यो। दोम्या खीमा मी हाचिस। दोक दो मीचास पहलेकचा बाताङा चेई लोक्यो दोक कुईचगी मीचास दो किमो छेचामी पङ् किमो फिन्दरा शुरुरचा साक्यो। दो निपे ग्रोमिकचे छेचामी रङ् कुईचगी मीचा न्यालस तोचो।

जैसे ग्रादमी को राजी खुशी कहना। नौक- नीचे ही रानी ने कहा—नहीं सुन रही हूं, ग्रा। सब से नीचे वाली टहनी पर ग्रा। सब से नीचे की टहनी पर ग्राते समय कुत्ते जैसे ग्रादमी ने उस चिड़िया को पकड़ा। पकड़ कर चिड़िया ने कहा-मैं चिड़िया पहले तुझे थी। मुझे बड़ी बहिन ने कपड़े धोते समय मारा। मैं चिड़िया के ग्रवतार में पहुंची। बड़ी बहिन तुझे ग्राई। तब कुत्ते जैसे ग्रादमी ने कहा- तू ग्रादमी कैसे बनेगी? तब चिड़िया ने कहा-कच्चे मिटी के बर्तन में सात दिन बंद रखना। तब मैं ग्रादमी बनूंगी। सात दिन तक नहीं देखा। उस दिन तो ग्रादमी बनी हुई। तब ग्रादमी ने पहले की बात सब कही। तब कुत्ते जैसे ग्रादमी ने उस घर की ग्रौरत को घर के चारों ग्रोर घुमा कर मार दिया। उसके बाद पहले वाली स्त्री ग्रौर कुत्ते जैसा ग्रादमी सुख के साथ थे।

बान्धो रस्सी ! मारो लाठी

इद् तोचो राजा। दोङा छा ङों दुग्यो। ङा छाङों नोच दो ई छाङों म्याच दुग्यो। दोपङ् म्या म्या दोस दोऊ हिस्सा कग कग रानग्यो। दो कामङ् मा लानच् दुग्यो।

एक था राजा। उसके पांच बेटे थे। उन में से वह एक को नहीं चाहता था। उसने उसका हिस्सा बांट कर दे दिया। वह काम नहीं करता था।

दो राजकुमार ग्रनु ठेपिङों चिसङ् लिग- शिस किमोच दद्वा ब्योग्यो। ईगा रङों दङ् पोचो। दाङ् दो ई रागुदेन तोशिस, स्तिश रोटे जुरयाग्यो।

वह राजकुमार ग्रपनी टोपी में ग्राटा लेकर घर से निकल गया ग्रौर एक नदी के किनारे पहुंचा। वहां उसने एक पत्थर पर बैठ कर, सात रोटियां बनाईं।

रोटे जामो ग्रोम्स दोस ग्रनुई लोचो- स्तिशी जातक। दो रागु योठङ् ई राक्सोनिग ग्रनु स्तिश छाङों रङ् नीच दुग्यो। दो राजकुमारो बातङ् थस थस व्याङ्ग्यो।

रोटी खाने से पहले उसने स्वयं से कहा—सातों को खाऊं। उस पत्थर के नीचे एक राक्षसी ग्रपने सात बच्चों के साथ रहती थी। उसने राजकुमार की बात सुनी तो डर गई।

वाइरिङ् द्वाद्वा दोस लोचा-ग्रङ् स्तिश छाङों तो, जोगोनो था जारा। दोस इद् डिग तोल्वा रानग्यो ग्रई लोचोग्रौन बदे-

बाहर निकल कर उसने कहा-मेरे सात बेटे हैं इनको मत खा। उसने एक पतीला निकाल कर दिया ग्रौर कहा-

रङ् जो डिगो, 'फुरुब डिग' लोरा जोस खऊ केतो।

जब भूख लगे तो इस पतीला को 'फुरुब पतीला' कहना। यह रोटी दे देगा।

दो होदो डीगू लिगशिस ई याङजेओ किमो तोशिग्यो। दो याङ्जेओ ई छङ् दुग्यो। रातिङ् दोगो चईकस दो डिगो 'फुरुब डिग' लोलो खऊ जाग्यो। याङ्-जेस रातिङ् सारशिस दो डिगो माङ्ग्यो, अई सोम राजकुमारो लोचो—दो पङ् रातिङ् चोरास खुचिस फयो।

वह उस पतीले को ले कर एक बुढ़िया के घर में ठहरा। उस बुढ़िया का एक बेटा था। रात को उन सब ने 'फुरुब पतीला' कह कर भोजन खाया। बुढ़िया ने रात को उठ कर उस पतीले को छुपा लिया, और प्रातः राजकुमार को कहा—उसको चोर चुरा कर ले गए।

दो राजकुमार हेले होदोई रागुदेन ब्योग्यो अई लोचो-स्तिशी जातक ? राक्सनिग लोचो-का हात पापी तोन ? अङ् छाङों था जारा। ग कानो ई बाखोर केतक, खेरङ् के जे।

वह राजकुमार फिर उसी पत्थर पर गया और कहा-सातों को खाऊं ? राक्षसीने कहा-तू कौन पापी है ? मेरे बच्चे नहीं खाना ! मैं तुम्हें दूध के लिए एक बकरी देती हूं।

राजकुमार बाखोर फयोग्यो। न्यूम रातिङ् दो इद देशाङों पोचो। दाङ् दो ई याङजिऊ किमो तोशिग्यो। शुपा चई-केस बाखोरो खेरङ् तुङ्ग्यो। रातिङ् दो याङ्जेस ले बाखोरो माङ्ग्यो, अई लोचो चोरास फयो।

राजकुमार बकरी ले कर चला गया। अगली रात वह एक गांव में पहुंचा। वहां वह एक बुढ़िया के घर ठहरा। शाम को सब ने बकरी का दूध पिया। रात को उस बुढ़िया ने भी बकरी को छिपा लिया और कहा कि चोर ले गए।

राजकुमार हेले होदोई रागु-देन बचो दोक लोचा-स्तिशी जातक। राक्सीनस ब्यङ् ब्यङ् दो पङ् ई बोश रानग्यो दोक लोचो-ई बोरी रङ्होजो बश छूरा अई ई दुम्मा छू रा। दोक हातेन द्वक्च् छ चीज उनो नीमा दोऊ ओमस्को लोरा-बश छुतक ! कुल दुम्या।

राजकुमार फिर उस पत्थर पर आया और कहा-सातों ही खाऊं ? राक्षसी ने डर के मारे उसे एक रस्सी दी और कहा-एक बोरी के साथ इस बकरी को बान्धना और सिरे में एक डण्डा बांध देना। फिर जिस से कोई चीज लेनी हो उसे—(उसके) सामने कहना—बांधू रस्सी ! मारो लाठी।

दो बशो लिगशिस निशि याङ्जेन द्वा ब्योग्यो। दोक अनु डिगरङ् बाखोर वापस उनग्यो। जंगलो ब्योए रङ् दोपङ् ई राक्ससो महल ताङ्ग्यो।

वह रस्सी को ले कर दोनों बुढ़ियां के पास गया और और अपना पतीला तथा बकरी मांगी। जंगल में जाते समय उसे एक राक्षस का महल दिखाई दिया।

दो होदो महलो ब्योग्यो। दङ् राक्सस यग् यग् तोचो। दोस लोचो—छुतक बोशस, कुल दुम्मा।

वह उस महल में चला गया। वहां राक्षस सोया हुआ था। उसने कहा—बांध रस्सी। मारो लाठी।

बशस दो पङ् छुचो। दुम्मास कुलमो शुरु लानग्यो। राक्सस दोक बाल परीशान तोचो। दोस राजकुमारु नोकर हाचिमो मोन्याग्यो।

रस्सी ने उसे बाँध दिया और लाठी ने पीटना शुरु किया। राक्षस इससे बड़ा परेशान था। उसने राजकुमार का नौकर बनना मान लिया।

राजकुमार रङ् राक्सस हुन मज़ास दो महलो तोशिख्यो।

राजकुमार और राक्षस अब मज़े से उस महल में रहने लगे।

इद् राजा प रानीगो कौथा

ई तोचो राजा। दू प रानीगो दुग्यो। राजो अनु रानी रङ् बासो मा दुग्यो। इम्या राजा पङ् अनेनु प रानी गोस लोचोस-कि हनेस सैखिस्या राजा, निङों-नो रङ् हनेस दुःखङ् लानच। कि बाल बाबा न ऊ फाटेच, काव काब न मोती हार हाचिद। शारे छेचमी रङा छ ब्याह लानती ? राजा पङ् दुखङ् देग्यो। राजा दयारो आइरङ् लान्मो बिच दुगीश। राजा अनु वज़ीरू हदेस शारे छेचमी पोचिम शेचोश। मुलुको राजा चीमेद हदेस शारे दुग्यो। वज़ीरस राजा पङ् लोचोश-हो राजा ! किन स्तिश शानाङों कोमो बेटी आयो जे माजे। राजा ता लोतो शनो कि बातङ् शेतोईं ? अङ् नेस्यो बेटिचू ग चोङग्यो माशेक। वज़ीरस लोतोश-ज़ाई आयो शारते। माशेनमो माश्को। शेनमी ग्यातो।

एक राजा था। उसके चार रानियां थीं। राजा का अपनी रानियों के साथ प्रेम नहीं था। एक दिन राजा को अपनी चार रानियों ने कहा—आप ऐसी शेखी वाले राजा हमारे साथ ऐसे क्रोध करते हैं। आप के अधिक हंस कर न फूल खिलता, रोने से न मोती हार होते। सुन्दर स्त्री से क्या विवाह करेंगे ? राजा को क्रोध आया। राजा हर रोज़ शिकार करने जाता था। राजा ने अपने वज़ीर को सुन्दर स्त्री ढूंढने भेजा। एक मुल्क में राजा की लड़की ऐसी सुन्दर थी। वज़ीर ने राजा से कहा—हे राजा ! आप सात तालों के अन्दर लड़की की शादी करेंगे या नहीं ? राजा ने कहा—यह क्या बात लगा रहे हैं ? मेरी ऐसी बेटी मैं कभी नहीं करूंगा। वज़ीर ने कहा—लड़की ससुराल में सजती है। नहीं भेजने (का) काम नहीं करना। भेजना ही चाहिए।

हाठ्यो हाठाङ्सी राजा मोनयाग्योश। वज़ीर अनु राजा पङ् हने हने वई बातङों लोचिश। राजा बाल खुशी ताङ् 2 हुन तैयारी तैयारी रानी करमो लोशो। राजा इम्या अनु वज़ीरो रङ् ब्याय लानमो ब्योगिश। राजा दोर करमगसे रानीयू दिल ई मोती हारू देन दुगिश। बेटिस अनेनू बापू पङ् लोचिश—मानेज तो किले माई। अङ् दिल मोती हारू देन तो। ग छ दहा शिमा आङ् या पोगचिरेईयं। ज़ागालू कोमो पलंगू देन

बड़ी मुश्किल (हठ) से राजा को मनाया। वज़ीर ने अपने राजा को ऐसी सब बातें कहीं। राजा बहुत खुश होकर अब तैयार ही तैयार, रानी लाना कह रहा। राजा एक दिन अपने वज़ीरों के साथ शादी करने गया। राजा को लाई जाने वाली रानी का दिल एक मोती के हार पर (में) था। बेटी ने अपने पिता को कहा—नहीं जानने वाले आप भी नहीं। मेरा दिल मोती के हार पर है। मैं किसी तरह मर गई (तो) मुझे नहीं जलाना। जंगल के

शोचिस ताजिरेई । कोमू मलथाङ था शोरेईयं । नुचलो राजा गाज बाज रङ्

रानी फ्युमो बचिश । देम्या दो बेटीयू सुंदूकोच मोती हार त्वा त्वा ई छाङों खिचेस छेसमिस लिगशिस । हार लिग-शिम नाङसी बेटी ता शिशी । राजा ता हैरान पोरयाचोश । हुन हाला लान्ते ? हेद हाला लान्ते । हुन छांग खिचे छेसमी पङ ही शेतेश । बाजा ग्रोम्या ब्याह लानगिश । शिचे बेटीचूस्या जांगालों पा पा तागिश । राजास खिमा ता होदो रानी ले वाली माशारे । राजा दुयारो श्रईरङ् विच दुगिश । इम्या लाए जाङ्-कस ई बोटाङों योछङ् तोशिगिश । देराङ् ई निश-प्याचू लोशो—कुमनो-किमो पिनदरा सेऊ हास शेदो नीतो । राजा सारशिस खिग्योश देरङ् ई किम ताङ्ग्योश । राजा हदाङ् ब्यूगिश । ब्यो ब्यो ता ई सेऊ त्वा त्वा जागिश । खानङ् जा जा खानङ् ई रागदेन तागिश । दोक अने ब्योगिश । शुपा दो राजाऊ रानीस मोती हार त्वादिरङ् दा बेटी ले शङगी हाचिद् दोग्यो ।

बेटी सारशिम होदो राग देनस्या सेऊ जागिश । सेऊ जामो नीपे बेटी मागोरे हाचिगिश इम्या ई बेटाच् जोर मेचिश । देम्या ले राजा श्राइरङ् लानो दूगिश । हे ले सेऊ जातक, चल चल हदाङ् बचिश । बनमा ता ई बाली षारो छङ् काबो राजा हैरान पोरयाचोश । छाङों स्तंगली तोल्याल्या खंग्यो दूमिश । शुपा तुरमो बेरङ् रानी ले सारशिगिश । सारशिस छाङ् पोचिगिश । राजास छङ् रानगिश राजा चई बाताङों ईगिश । रानी चई लोचिश-रानीयू बातङ् थास थास राजा बाल खुशी हाचिश । राजा चालग्योश—जो बेड़ाच् ले अङ् तो । राजा रानी पङ ईगिश होदो मोती हार

अन्दर पलंग पर लगा कर रखना । उसके अन्दर छत नहीं लगाना । परे से इधर

राजा गाजा बाजा के साथ रानी ले जाने आ गए । उस दिन उस लड़की के सन्दूक से मोती हार निकाल कर एक बच्चे देखने वाली औरत ने पहना । हार पहनते ही बेटी (राज कुमारी) मर गई । राजा तो हैरान पड़ गया । अब क्या करेंगे ? अब बच्चे देखने वाली औरत को ही भेजेंगे । बाजा बजा कर ब्याह किया । मरने वाली बेटी को जंगल में पहुंचा कर रखा । राजा ने देखा तो वह रानी बहुत बदसूरत । राजा हर रोज शिकार को जाता था । एक दिन गर्मी से एक पेड़ के नीचे बैठा । उस समय एक दो चिड़ियों ने कहा—निचली ओर घर के पास सेब किसने लगाया होगा ? राजा ने उठ कर देखा तब एक घर देखा । राजा वहां गया । जाकर एक सेब निकाल कर खाया । आधा सेब एक पत्थर पर रखा । तब खुद गया । शाम को उस राजा की रानी ने मोती हार निकाला तो वह लड़की भी जिन्दा हो गई ।

लड़की ने उठ कर उस पत्थर पर के सेब को खाया । सेब खाने के बाद लड़की गर्भवती हो गई । एक दिन एक लड़के को जन्म दिया । उस दिन भी राजा शिकार खेल रहा था । फिर भी सेब खाऊंगा, सोच कर वहां आ गया । आए तो बहुत ही सुन्दर लड़का रो रहा, राजा हैरान पड़ गया । लड़के को गोद में उठा कर देखता रहा । शाम को रात होते समय रानी भी उठ गई । उठ कर लड़का ढूंढा । राजा ने लड़का दिया, राजा ने सब बातें पूछीं । रानी ने सब बताया । रानी की बात सुन कर राजा बहुत खुश हो गया । राजा ने सोचा—यह बेटा भी मेरा है । राजा ने रानी को

कर कर केमा कि हे शङतियां। रानी 'हां' नोचिश। राजा सोमसी राङ देन शोगशिस अनेनु दरबारी बचिश। दरबारी बचिश। दरबारीं बअ्र बअ्र न्युग रानी पङ् लोचिश—होनो मोती हार अङ केमा कानू चई नोच् प्यार लान चोक। रानीस रान-ग्योश। दोक राजा रानी अनेनू बेटाच शुमी पोल्कियो दरबारो बचिश। दरबारो बअ्र बअ्र न्युग रानी पङ फांसी शेचोश। अनेनू प रानी ले बाल दुखङस। हुन ता हदेस शारे छेस्मी कराश। दो नीचे राजा ना बाल खुशिस राज चलयोओ।

पूछा—वह मोती हार ला कर दे तो आप फिर गाएंगी ? रानी ने हां कहा। राजा प्रात: ही घोड़े पर सवार हो कर अपने दरबार में आ गया दरबार में आ कर नई रानी को कहा—यह मोती हार मुझे दे तो तुझे सब (अधिक) प्यार करूंगा। रानी ने दिया। राजा ने मोती हार जंगल में पहुंचा कर रानी की गर्दन में दिया। फिर राजा रानी (और) अपना बेटा, तीनों ही पालकी में दरबार में आ गए। दरबार में आ कर नई रानी को फांसी लगाई। अपनी चार रानियां बहुत क्रोध से दुख से अब तो ऐसी औरत लाए। उसके बाद राजा ने खुब राज्य चलाया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी

अमरकोश

आर्यों का आदिदेश—डॉ० सम्पूर्णानन्द

उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति : एक अध्ययन—विजय बहादुर राव

ॐ मणि पद्मे हुं—लामा लोब्जंग

ऋग्वेद

ऋग्वैदिक आर्य—राहुल सांकृत्यायन

कविता कौमुदी—डॉ रामनरेश त्रिपाठी

काव्य के रूप—गुलाब राय

काश्मीर का लोक साहित्य—मोहन कृष्णदर

किन्नर देश—राहुल सांकृत्यायन

किरातार्जुनीय—भारवि

कुमाऊं—राहुल सांस्कृत्यायन

कुमार सम्भव—कालीदास

कुलूत देश की कहानी—लालचन्द प्रार्थी

कुल्लुई लोक साहित्य—डॉ० पद्म चन्द काश्यप

गढ़वाली लोक कथाएं—डॉ० गोविन्द चातक

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

छान्दोग्योपनिषद्

जातक कथाएं—भदन्त आनन्द कौसल्यायन

धीरे बहो गंगा—देवेन्द्र सत्यार्थी

पृथ्वीपुत्र—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

नित्याचार

पहाड़ी भाषा : कुलुई के विशेष सन्दर्भ में—मौलूराम ठाकुर

बुन्देली कहावत-कोश—श्री कृष्णानन्द गुप्त

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र

ब्रह्माण्ड पुराण

भागवत पुराण
भारत की लोक कथायें—सीता, बी० ए०
भारत का भाषा सर्वेक्षण—ग्रियर्सन अनुवादक डॉ० उदयन नारायण तिवारी
भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोष—विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री
भारत भूमि और उसके निवासी—जय चन्द्र विद्यालंकार
भारतीय लोक-साहित्य—डॉ० श्याम परमार
भाषा-रहस्य—डॉ० श्याम सुन्दर दास
भोजपुरी—लोक गाथा—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा
भोजपुरी भाषा और साहित्य—उदय नारायण तिवारी
भोट प्रकाश—विधुशेखर भट्टाचार्य
मत्स्य पुराण
मध्य पहाड़ी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० गोविन्द चातक
मनुस्मृति
महाभारत
मालवी लोकगीत—श्याम परमार
मेघदूत—कालिदास
मैथिली लोक गीतों का अध्ययन—डॉ० तेज नारायण लाल शास्त्री
राजस्थानी कहावतें—डॉ० कन्हैया लाल सहल
लोकायन—डॉ० चिन्ता मणि उपाध्याय
लोक वार्ता की पगडण्डियां—डॉ० सत्येन्द्र
लोक साहित्य की भूमिका—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
लोक साहित्य विज्ञान—डॉ० सत्येन्द्र
वामन पुराण
वाल्मीकीय रामायण
विष्णु पुराण
स्कन्द पुराण
सोमसी, त्रैमासिक पत्रिका, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, शिमला-9
शतपथ ब्राह्मण
शैवमत—डॉ० यदुवंशी
श्रीमद् भागवत महापुराण
हरिवंश पुराण
हिन्दी विश्वकोष—नरेन्द्र नाथ बसु

हिन्दी साहित्य कोश—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
हिन्दु देव परिवार—डॉ० सम्पूर्णानन्द
हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—षोडश भाग
हिमाचल के लोक गीत—लोक सम्पर्क विभाग, हि० प्र०
हिमानियों के बीच—राम कृष्ण कौशल
हिमाचल की लोक कथायें—लोक सम्पर्क विभाग, (हि० प्र०)
हिमप्रस्थ—मासिक पत्रिका, लोक सम्पर्क विभाग, शिमला
हिमभारती-पत्रिका—सांस्कृतिक प्रकरण विभाग हि० प्र० शिमला
हिमालय परिचय—राहुल सांकृत्यायन

BIBILIOGRAPHY

A Bibiliographic Dictionary of Puranic Personages—Akshaya Kumari Devi.

Abode of Snow—Andrew Wilson.

A Classical Dictionary of Hindu Mythology—Dowson.

Adivasis—Publication Divn., Govt. of India, 1969.

Account of Koonawar—Capt. A. Gerard.

African Myths together with Proverbs—Carter Godwin Woodson.

A Glossary of Tribes and Castes of North Western Province and Punjab—H. A. Rose.

An Introduction to Popular Religion and Folklore of Northern India—W. Crooke.

Annals and Antiquities of Rajasthan—J. Todd.

Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute.

An Outline of Indian Folklore—Durga Bhagwat.

Ancient Semitic Civilization—Sabatino Moscati.

Archaeological Survey of India—Journal.

Ancient Geography of India—A. Cunningham.

A Science of Folklore—Alexander H. Krappe.

A Study of Orrison Folklore—Kunj Bihari Dass.

Bengali Folklore—G. H. Damant.

Biographies of words and the Home of Aryans—Max Muller.

Census of India—Govt. of India, 1931.

Census of India—Kothi a Village Survey—Monograph Vol. XX—Part VI.

Chinese Creeds and Customs—V. R. Burkhardt.

Cultural History from the Vayu Purana—D. Kumar Raja Ram Patil.

Customs of the World - Walter Hutchison.

Development of Hindu Econography—J. N. Banerjea.

Dictionary of Kanawari Words—Pt. Tika Ram Joshi.

District Gazetteer of Kinnaur, 1971.

Early History of Mankind—E. B. Taylor.

Encyclopaedia of Classical Mythology.

Encyclopaedia of Religion and Ethics.

Encyclopaedia of Mythology—Larousee.
Epic Mythology—Hopkins.
Epics, Myths and Legends of India—P, Thomas.
Ethnography of Ancient India—Rebert Shafer.
Ethnology in Folklore—George Lawrence Comme.
Facts and Figures about 1961 Census—Sach Dev Verma.
Folklore—Magazine.
Folkways—William Graham Sumner.
Gandharvas and Kinnaras in Indian Iconography
—R. S. Panchamukhi
Gods and Men—J. G. Frazer.
Grammar of the Tibetan Language—Herbert Bruce Hannah.
Grimm's Popular Stories, Oxford University Press.
Himalaya Kalapadrum—Journal.
Himalayan Journal—Maj. D. G. P. Shavon.
Hindoos of the Himalayas—Berreman D. Gerald.
Hindu World—Beijamin Walker.
History and Literature of Buddhism.
History of Punjab Hills States—Hutchison and J. Ph. Vogel.
History of Sexual Customs—Richard Lewinsohn.
History of Western Tibet—A. H. Francke.
Holy Himalaya—E. S. Oakley.
Illustrated Weekly of India—Journal.
India and Tibet—Young Husband.
Indian Serpent Lore—J. Ph. Vogel, Ph.D.
Indian Folklore—G. Jethabhaji.
Indian Folk tales—S. M. Tylor.
Indo Aryans—R. Mitra.
Introduction to Tantric Buddhism—Bhushan Dass Gupta.
Introduction to Folklore—M. R. Cox.
Journal of Asiatic Society of Bengal.
Journal of a Tour Through Part of the Snowy Range of the Himala Mountains—James Baillie Fraser.
Kanawari Vocabulary—Rev. T. Grahame Bailey.
Kinship Organisation in India—Iravati Karve.
Kashatriya Tribes of Ancient India—B. C. Law.
Kulu and Lahul—C. G. Bruce.
Legends of the Punjab—R. C. Temple.
Linguistic Survey of India—G. A. Grierson.
Literary History of Ancient India—Chandra Chakravorti.
Love Songs and Proverbs of Tibet—Marion H. Duncon.
Macdonell's History of Sanskrit Literature—Macdonell.
Man in India—Magazine.
Mohenjodaro and the Indus Civilization—J. Marshall.
Motif Index of Folk Literature—Stith Thompson.

Mystic India in Middle Ages—Hussain Yussuf.
Myth and Cult among Primitive People—E. Jensen.
Myths of Middle India—Elwin.
Myths of North East Frontier of India—Elwin.
Notes on Ethnography of Bushehar State—Pt. Tikka Ram Joshi.
On an Indian Border—Pran Chopra.
Peaks and Lamas—Marco Palis.
Polyandry in the Himalayas—Dr. Y. S. Parmar.
Primitive Culture—Edward B. Tylor.
Primitive Religion—R. H. Lowie.
Races and Cultures of India—Dr. D. N. Majumdar.
Religion of an India Tribe—E. Verrier.
Sin and Sex—Briffault, R.
Simla Village Tales—A. E. Dracott.
Social Economy of a Polyandrous People—R. N. Saxena.
Soma in the Legends—B H. Kapadia.
Studies in the Geography of Ancient and Medieval India
—D. C. Sircar.
The Ancient Marriage Customs of Tibet—Sarat Chandra Dasa.
Bhumijas of Saraikilla—J. C. Dar.
The Buddhism of Tibet or Lamaism—L. A. Waddell.
The Elements of Hindu Econography—
The Geography of Puranas—S. M. Ali.
The Mythology of All Races—Beriedate Keith.
The Ocean of Story—N. M. Penzer.
The Origin and Development of Moral Ideas
—Edward Westermarck.
The Original Inhabitants of India—Gustav Oppert.
The Mathers of Tibet—Briffalt.
The Mundas and their Country—Sarat Chandra Roy.
The People of Tibet—Charles Bell
The Religions of Tibet—Humut Hoffman.
The Study of Folk Lore—Alen Dundes.
Tibet and Tibetans—Tseng-Lieu Shen and Shen-Chi Liu.
Tibet's Great Yogi—Milarepa—W. Y. Erans Wentz.
Todas—W. H. R. Rivers.
Trans Himalayan Discoveries and Adventures in Tibet
—Sven Hedin.
Types of Indic Oral Tales (India Pakistan and Ceylon)—Stith
Thompson and Warren E. Reberts.
Village Folk of India—Boyd.
Western Tibet and the British Overland—Charles A. Sherring.
Who were the Shudras—Dr. B. R. Ambedkar.

अनुक्रमणिका

बोली को समझने तथा बोलने वाले होंगे उतना ही अधिक लोकगीत का प्रसार-क्षेत्र होगा।

(10) इसके अतिरिक्त यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक गीत भी यदि लोक-गीतों के गुणों के अनुरूप हों, उन में लोक-मानस की छूने की क्षमता हो तथा रचयिता का नाम अज्ञात हो तो 'लोक' में प्रचलित गीतों की श्रेणी में आ जाते हैं।

किन्नर-क्षेत्र में अनेक प्रकार के लोक-गीत प्रचलित हैं। यहां लोकगीत रूपी नदी की अजस्र धारा बह रही है और उसे प्रवाहित रखने के लिए लोककवियों का प्रयास व सहयोग निरन्तर प्राप्त होता रहा है।

किन्नर-लोक-गीतों का वर्गीकरण :

लोक-गीतों के वर्गीकरण अनेक विद्वानों ने अपने अपने ढंग से किए हैं। आरम्भ में 'फॉक सांग' को 'ग्राम-गीत' ही माना गया था। बाद में 'लोक-गीत' शब्द का प्रचलन हुआ[1]। डॉ० सत्येन्द्र जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ लोक-साहित्य विज्ञान[2] में लोक-गीतों के अनेक भेद बताये हैं, जिन में क्षेत्र की दृष्टि से, जातीय दृष्टि से, अवस्था भेद से, योनि भेद से, उपयोगिता की दृष्टि से, वस्तु भेद से, रूप भेद से और प्रकृति भेद से लोक गीतों के वर्गीकरण का सुझाव दिया गया है। उन्होंने ब्रज के लोक-गीतों को उद्देश्यों की दृष्टि से दो प्रमुख भागों में बांटा है :—

1. अनुष्ठान-आचार सम्बन्धी तथा 2. मनोरंजन सम्बन्धी[3]।

ब्रज के लोक-गीतों का वे निम्न लिखित रूप से भी वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं :—

1. जन्म के गीत। 2. विवाह के गीत। 3. मृत्यु के गीत। 4. त्यौहार-व्रत और देवी आदि के गीत। 5. अन्य विविध-गीत। 6. प्रबन्ध गीत[4]।

डॉ० रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतों का विभाजन निम्न प्रकार से किया है[5] :—

1. संस्कार सम्बन्धी। 2. चक्की व चरखे के गीत। 3. धर्म गीत। 4. ऋतु-सम्बन्धी गीत। 5-7. खेती, भिखमंगी तथा मेले के गीत। 8. जाति-गीत। 9. वीर गाथा। 10. गीत-कथा तथा 11. अनुभव के वचन।

उपर्युक्त दोनों विद्वानों द्वारा किए गए वर्गीकरण किन्नर लोक-गीतों पर पूरे नहीं उतरते क्योंकि प्रस्तुत क्षेत्र में न तो जन्म के गीत प्रचलित हैं और न ही मृत्यु के समय गाये जाने वाले गीत अधिक संख्या में मिलते हैं। इस क्षेत्र में प्रबन्ध गीतों का भी अभाव है। चक्की व चरखे के गीत तो यहां प्रचलित ही नहीं हैं। इस

---

1. लोक-साहित्य विज्ञान—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 393।
2. वही, पृ० 393-414।
3. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—पृ० 106।
4. वही, पृ० 106-345।
5. कविता कौमुदी, भाग 5, पृ० 45 तथा लोक-साहित्य विज्ञान, पृ० 397।